इकाई 1

समाज मनोविज्ञान
(Social Psychology ,Concept,Scope)

1.1 उददेश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 समाज मनोविज्ञान की परिभाषा
1.4 समाज मनोविज्ञान का इतिहास
1.5 समाज मनोविज्ञान का अन्य विषयों से सम्बन्ध
1.6 समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र
1.7 समाज मनोविज्ञान की महत्ता
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 उददेश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेगें कि –

- आप समाज मनोविज्ञान की विषय – वस्तु को समझ सकेगें ।
- समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र को रेखांकित कर सकेगें ।
- समाज मनोविज्ञान के महत्तव को समझ सकेगें ।

1.2 प्रस्तावना

मनोविज्ञान एक व्यक्ति व प्राणियों के व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन करता है । समाज मनोविज्ञान यह अध्ययन करता है कि व्यक्ति समाज के सन्दर्भ में कैसा सोचता व महसूस करता है । इस विषय द्वारा यह पता चलता है कि दूसरों के कारण व्यक्ति का व्यवहार , विचार व भावनायें परिवर्तित होती है। प्रायः जब हम अकेले रहते है तो हमारा व्यवहार अलग होता है और जब कमरे में हमारे साथ कोई होता है तो हमारा व्यवहार अलग हो जाता है लेकिन इसका मतलब यह नहीं होता कि यदि कोई अन्य हमारे साथ उपस्थित नहीं है तो हम अन्य व्यक्तियों के प्रभाव से मुक्त हो जाते है । हम उस समय भी अन्य व्यक्तियों के व्यवहार से प्रभावित ही रहते है । उस समय भी हमारे विचार , भावनायें यहा तक कि हमारा व्यवहार अन्य लोगों से प्रभावित होता है जैसे –जब हम खाना खाने के बाद हाथ धोते है तो हमें याद आता है कि किस तरह से हमारे शिक्षक ने हमे खाने से पहले हाथ धोना सिखाया था या फिर आज दिन में किसी सहकर्मी ने यदि दिन में कुछ कहा था तो वो याद आ जाता है । इन सब उदाहरणों से यह समझ आता है कि समाज का हमारे ऊपर बहुत प्रभाव पडता है । प्रस्तुत इकाई में आप समाज मनोविज्ञान की परिभाषा से अवगत हो सकेगे । इसके लक्ष्य को जान सकेगे । इसके विषय विस्तार या क्षेत्र को समझ सकेगें । इसके अतिरिक्त इस विषय की महत्ता को समझ सकेगें ।

1.3 समाज मनोविज्ञान की परिभाषा

किसी भी क्षेत्र को परिभाषित करना एक जटिल कार्य है । समाज मनोविज्ञान के विषय में यह जटिलता दो कारणों से और बढ जाती है । पहला तो इसके विषय क्षेत्र की विस्तृता व दूसरा इसमें तीव्र गति से परिवर्तन ।

यद्यपि समाज मनोवैज्ञानिकों की रुचि का क्षेत्र विस्तृत है परन्तु ज्यादातर लोगों का केन्द्र इस पर है कि व्यक्ति समाजिक परिस्थिति कैसा व्यवहार करता है और क्यों करता है तथा सोचता है व क्या महसूस करता है ।
समाजिक मनोविज्ञान की प्रमुख परिभाषायें निम्न है –

"समाज मनोविज्ञान व्यक्तियों की पारस्परिक अंतःक्रियाओं का तथा अन्य अंतःक्रियाओं का व्यक्ति विशेष के विचारों , भावनाओं , संवेगों व आदतों पर पडने वाले प्रभाव का अध्ययन करता है ।

- " Social Psychology is the study of persons in there interactions with one another and with reference to the of the interplay upon the individual's thought , feeling and emotions **.(Kimbell Young : a Handbook of Social Psychology,1962)**

- समाज मनोविज्ञान समाज में व्यक्ति के व्यवहारों के अध्ययन का विज्ञान है ।
  क्रेच , क्रेच फील्ड तथा बैलेची
- " Social Psychology is the science of behavior of the individual in society" .
- समाज मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जिसमें किस तरह से किसी व्यक्ति के चिंतन , भावनायें व क्रियायें एक दूसरे द्वारा प्रभावित होती है ,का अध्ययन किया जाता है
  .फील्डमैन
- Social Psychology is the discipline that studies person's thoughts, feelings and activies which are affected by others.(*Fildman :Social Psychology*)

- समाज मनोविज्ञान एक ऐसा वैज्ञानिक क्षेत्र है जो सामाजिक परिस्थिति में व्यक्ति के व्यवहार एवं चिंतन के स्वरूप एवं कारण को समझने की कोशिश करता है **बैरोन , बर्न** ।

- Social Psychology is the scientific field that sees to understand that nature and cause of individual behavior and thought in social situation .

Baron ,Byrne Social Psychology-2006

इन विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि यद्यपि विभिन्न समाज मनोवैज्ञानिकों ने अपने अपने ढंग से परिभाषित किया तो है परन्तु उनके विचारों में काफी समानता है । अधिकांश मनोवैज्ञानिकों ने समाज मनोविज्ञान की विषय वस्तु के रूप में व्यक्ति द्वारा सामाजिक परिस्थिति में किये गये व्यवहार को स्वीकृत किया है । न्यूकॉम्ब ने ऐसे व्यवहार को अंतःक्रिया की संज्ञा दी है । इसी समानता को ध्यान में रखते हुए समाज मनोविज्ञान की एक सामान्य परिभाषा है –

समाज मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार तथा अनुभूतियों का सामाजिक परिस्थिति में अध्ययन करने का एक विज्ञान है ।

- Social Psychology is the science of studying the behavior and experiences of the individual in social situation .

उपरोक्त परिभाषा के आधार पर समाज मनोविज्ञान के प्रमुख कारण (Factors) है ।
1– समाज मनोविज्ञान एक विज्ञान है तथा विज्ञान की एक शाखा भी है ।
2– समाज मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहारों व अनुभूतियों का अध्ययन किया जाता है ।
3– समाज मनोविज्ञान इन व्यवहारों व अनुभूतियों का अध्ययन सामाजिक परिस्थिति में करता है ।

रीवर (1997) के अनुसार सामाजिक परिस्थिति उस परिस्थिति को कहा जाता है जिसमें दो से अधिक व्यक्तियों या समूहों के बीच अंतःक्रिया होती है ।

न्यूकॉम्ब (1962) के अनुसार अंतःक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया होती है जिसमें एक व्यक्ति वैसे व्यक्ति का प्रत्यक्षण कर अनुक्रिया करता है जो उसे प्रत्यक्षण करके उसके प्रति अनुक्रिया करता है । इस तरह अंतःक्रिया में एक व्यक्ति की अनुक्रिया दूसरे व्यक्ति के लिये उद्दीपक का कार्य करती है । अंतःक्रिया के दो प्रकार होते है ।– आमने सामने की अंतःक्रिया (Face To Face Interaction) तथा प्रतीकात्मक अंतःक्रिया (Symbolic Interaction)आमने सामने की अंतःक्रिया में एक व्यक्ति की अंतःक्रिया दूसरे व्यक्ति जो उसके सामने उपस्थित होता है उससे होती है ।

प्रतीकात्मक अंतःक्रिया में दो अलग अलग जगहों पर रहने वाले व्यक्तियों के बीच अंतःक्रिया होती है ।
समाज मनोविज्ञान में इन दोनों तरह की अंतःक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है ।
समाज मनोवैज्ञानिकों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि सामाजिक अंतःक्रियायें निम्न 3 तरह हो सकती है और इन सभी प्रकार की अंतःक्रियाओं का अध्ययन समाज मनोविज्ञान में किया जाता है ।
1– व्यक्ति तथा व्यक्ति के बीच की अंतःक्रिया (**Interaction between individual**)– दो व्यक्तियों के बीच बात चीत होना इस तरह की अंतःक्रिया का उदाहरण है
2– व्यक्ति तथा समूह के बीच अंतःक्रिया (**Interaction between individual and group**)– शिक्षक द्वारा वर्ग के छात्रों को पढाना तथा नेता द्वारा श्रोतागण को भाषण सुनाना इस तरह की अंतःक्रिया का उदाहरण है ।
3. समूह तथा समूह के बीच अंतःक्रिया (**Interaction between group and group**) – सिपाही के दो दलों के बीच संघर्ष खिलाडियों के दो दलों द्वारा खेल खेलना आदि ।

समाज मनोविज्ञान की विषय वस्तु में इन तीनों तरह की अंतःक्रियाओं का समावेश होता है । इन विभिन्न अंतःक्रियाओं के समावेश के कारण क्रेच , क्रेचफील्ड तथा बेलेची (Kretch, Crutchfeed & Ballachey) ,1962 ने समाज मनोविज्ञान को अंतःवैयक्तिक व्यवहार की घटनाओं का विज्ञान कहा है ।

1.4 सामाजिक मनोविज्ञान की इतिहास

प्रत्येक समाज मे सभ्यता और संस्कृति के हर स्तर पर मानव स्वभाव और इस स्वभाव की सामाजिक अभिव्यक्ति से संबंधित धारणायें पाई जाती रही है । प्राचीन काल में लोकगीत एवं लोक कलायें मानव स्वभाव को अभिव्यक्ति

प्रदान करने के सशक्त माध्यम रहे । आधुनिक युग में ज्ञान विज्ञान की विविध शाखाओं द्वारा मानव स्वभाव का अध्ययन किया जा रहा है । समाज मनोविज्ञान के ऐतिहासिक विकास क्रम को सुविधा की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1– **दार्शनिक आधार** – दार्शनिक आधार पर समाज मनोविज्ञान के चिंतन को जिन विद्वानों ने आगे बढाया है उनका विवरण इस प्रकार है –

(अ) **प्लेटो** – प्लेटो को सामाजिक मनोविज्ञान का जन्मदाता माना जाता है । प्लेटो ने अपनी अमर कृति 'Republic' में मानव व्यवहार और प्रकृति का सुंदर चित्रण किया है। प्लेटो के इन विचारों को अवयव वादी सिद्वांत के नाम से जाना जाता है । प्लेटो के विचारों की संक्षेप रूपरेखा इस प्रकार है –

(1) व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक वातावरण की देन एवं उसका वातावरण होता है ।

(2) व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक संगठन पर आधारित होता है ।

(3) सामाजिक प्रशिक्षण की सहायता से व्यक्ति के व्यवहार को संशोधित किया जा सकता है ।

(ब) **अरस्तू**– अरस्तू प्लेटो का शिष्य था । उसके विचार प्लेटो के विचार से भिन्न एवं विपरीत थे । अरस्तू के प्रमुख मनोवैज्ञानिक विचार इस प्रकार है –

(1) समाज व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों का परिणाम है । व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियां जैसे होगी समाज भी वैसा ही बनेगा । इस प्रकार व्यक्ति समाज को प्रभावित करता है ।

(2) मूल प्रवृत्तियां जन्मजात एवं अपरिवर्तन शील होती है । अतः समाजिक सुधार की कम संभावनायें है ।

(3) अरस्तू व्यक्ति वादी सामाजिक सिद्वांत के प्रतिपादक थे ।

(स) **एपीक्यूरस** – एपीक्यूरस के विचारों का संक्षेप वर्णन इस प्रकार है –

(1) व्यक्ति उस व्यवहार का चुनाव करता है , जिसमें उसे अधिक से अधिक आन्नद और कम से कम दुख हो ।

(2) यह सुख दुख अथवा स्वार्थ परायणता का सिद्वांत व्यक्ति के व्यवहार का निर्धारण करता है ।

(3) व्यक्ति अपने आनंद और स्वार्थ के अनुरूप व्यवहार करता है तथा सामाजिक संबंधों का निर्माण करता है ।

(4) इस प्रकार सुखवादी भौतिकता मानवीय संबंधों का आधार है ।

(द) **सिसरो** – सिसरो रोम का निवासी था । मानव स्वभाव और व्यवहार के बारे में उसके विचार इस प्रकार थे –

(1) मानव व्यवहार का आधार सुख व दुख होता है ।

(2) व्यक्ति अपने व्यवहार का संचालन निम्न दो बिन्दुओं पर आधार मानकर करता है –

(अ) ऐसे व्यवहारों का चुनाव करना जिससे या तो सुख मिलता है अथवा मिलने की संभावना होती है ।

(आ) ऐसे व्यवहारों को दूर भगाना जिनसे दुख मिलता है या मिलने की संभावना होती है ।

(इ) सिसरो का विचार है कि कानून भी व्यक्ति के व्यवहारों का निर्धारण करता है । उसका व्यवहार सुख व दुख पर आधारित होता है ।

(द) **आगस्टाइन** – मानव व्यवहार के संबंध में आगस्टाइन के विचार धर्म पर आधारित है । दूसरे शब्दों में आगस्टाइन के विचार भारतीय दर्शन के कर्म सिद्वांत पर आधारित है । आगस्टाइन ने लिख है कि पापों के कारण मनुष्य का जीवन दो भागों में विभाजित हो गया

(1) इस लोक का जीवन और

(2) परलोक का जीवन

उनके विचारों का संक्षेप निम्नांकित है –

(अ) मनुष्य जो भी व्यवहार करता है उसके कार्यो का प्रभाव पारलौकिक जीवन पर पडता है ।

(आ) मनुष्य अपने सामाजिक संबंधों के दायरे में उन्ही कार्यों का संपादन करता है जिससे उसके स्वार्थों की पूर्ति में मदद मिलती है ।

(ज) **हाब्स** – 1657 के लगभग थामस हाब्स ने यह मत व्यक्त किया कि मानव के स्वभाव का निर्धारण मूल प्रवृत्तियां करती है उनके विचारों की संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है –

(1) स्वभाव से ही मनुष्य स्वार्थी और के स्वार्थ का साधक होता है ।

(2) अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये वह समाज में संबंधों की स्थापना करता है ।

(3) सामाजिक संबंध व्यक्ति के व्यवहार का निर्धारण करते है ।

(ह) **रूसो** – रूसो का विचार हाब्स से भिन्न है । रूसो का कहना है कि मनुष्य स्वभावतः स्वार्थी नहीं होता । स्वभावतः मनुष्य निस्वार्थी और परोपकारी होता है लेकिन सभ्यता के प्रभाव ने उसे स्वार्थी बनाया तथा गलत कार्यों को संपादित करने की प्रदान की । इसी आधार पर उसने लिखा है कि मनुष्य स्वतन्त्र पैदा हुआ है , किन्तु सर्वत्र बंधनों से जकडा हुआ है । मनुष्य के स्वभाव की विवेचना करते हुए उसने सामान्य इच्छा (General Will) का सिद्वांत प्रतिपादित किया है । समाज के विकास में सभी व्यक्तियों की इच्छाओं और भावनाओं का एकीकरण हो जाता है । ऐसे स्थिति में मनुष्य सामूहिक हित को ही प्रधानता देते है ।

(य) **हीगल** – हीगल का विचार है कि चिंतन की प्रक्रिया ही विचार का निर्माण करती है । विचार के द्वारा जगत का निर्माण होता है । इस प्रकार विचार ही सामाजिक संबंधों और मानव व्यवहार का निर्माण करते है ।

(2) **वैज्ञानिक आधार** – वैज्ञानिक आधार पर समाज मनोविज्ञान संबंधी चिंतन को जिन विद्वानों ने आगे बढाया , उनमें डार्विन का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । डार्विन द्वारा प्रकाशित पुस्तक जाति – वर्गो का विकास (Origen

Of Species-1859) का समाज में क्रान्तिकारी और अतुलनीय प्रभाव पडा । डार्विन के अनुसार समाज का विकास प्राणीशास्त्रीय आधार पर होता है । डार्विन की इस पुस्तक के कारण विद्वानों ने अपने चिंतन को दो वर्गों में गतिशील किया –

(अ) वंश परम्परा संबंधी अध्ययन तथा खोजों को बल मिला ।

(आ) सामाजिक समस्याओं को विकासवादी आइने में सोचा समझा जाने लगा ।

सुविधा के लिये समाज व्यवहार और विकास के अध्येताओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(1) समाजशास्त्री (2) मनोवैज्ञानिक

(1) **समाजशास्त्री** – मानव स्वभाव और व्यवहार के बारे में जिन समाजशास्त्रियों ने मुख्य रूप से विचार किया है । इनका विवरण इस प्रकार है –

(अ) **अगस्त कामटे** – अगस्त कामटे का विचार है कि मनुष्यों के व्यवहारों का संचालन मूल प्रवृत्तियां करती है । मूल प्रवृत्तियां दो प्रकार की होती है –

स्वार्थवादी (Egoislic)

परार्थवादी (Altrueshic)

व्यक्ति स्वार्थी होता है । अतः सामाजिक प्रवृत्तियां दबी रहती है । व्यक्ति से व्यक्तिवादी प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि समाज को संगठित किया जाये तथा समाजवाद को विकसित किया जाये ।

(ब) **हर्बट स्पेंसर** – हर्बट स्पेंसर विकासवादी विचारक था । उसके अनुसार समाज एक आवश्यक है (**Society is an organism**) जिस प्रकार शरीर का निर्माण अनेक अवयवों से होता है , उसी प्रकार समाज का निर्माण भी अनेक संस्थानों और संगठनों से होता है । समाज में व्यक्ति का वही स्थान है जो शरीर में कोशिका का । शरीर और समाज ही उदविकास की प्रक्रिया से गुजरते है । इस प्रक्रिया का आधार है – सरल से जटिल की ओर स्पेंसर का विचार है कि जिस प्रकार समाज और शरीर सरल से जटिल की ओर विकसित होते है , ठीक उसी प्रकार मानव व्यवहार और स्वभाव का विकास भी सरल से जटिल की ओर होता है ।

(स) टार्डे – मानव व्यवहार की विवेचना करने में टार्डे का नाम महत्वपूर्ण है । टार्डे का विचार है कि स्वभावतः मनुष्य के स्वभाव में सुझाव ग्रहण करने की प्रवृत्ति होती है । इस प्रवृत्ति के कारण मनुष्य वैसा ही व्यवहार करतर है जैसा की दूसरों को करते हुये देखता है । इस प्रकार अनुकरण व्यक्ति के स्वभाव और व्यवहार का निर्धारण करता है । टार्डे का विचार है कि समाज में अनुकरण की यह प्रक्रिया अत्यन्त ही सरल तथा स्वभाविक ढंग से संचालित होती रहती है । अनुकरण ही वह आधार है जिनकी सहायता से व्यवहारों की उत्पत्ति , विकास , परिवर्तन एवं प्रगति आदि होती है ।

(द) **दुर्खीम** – समाज में व्यक्ति के व्यवहारों की विवेचना करने के लिये दुर्खीम ने अपने सामूहिक प्रतिनिधित्व के सिद्वांत का प्रतिपादन किया । दुर्खीम का विचार है कि समाज व्यक्ति का आइना है जिसमें रहकर वह अपने

व्यवहार का निर्धारण करता है । दुर्खीम के अनुसार जिस प्रकार हम अपने चहरे को शीशे में देखकर उसके अनुरूप परिवर्तन कर लेते है ठीक उसी प्रकार हम समाज के अनुरूप अपने व्यवहार को परिवर्तित कर लेते है । दुर्खीम ने लिखा है कि किसी भी समूह के सदस्यों के जो सामान्य विश्वास और स्थायी भाव होते है वे एक निश्चित रूप धारण कर लेते है वे एक निश्चित रूप धारण कर लेते है । इन सामूहिक विश्वासों की अपनी शक्ति व जीवन होता है ।

(र) **कूले**– अमेरिकन समाजशास्त्री कूले ने समाज मनोविज्ञान में आधुनिक विचारधारा का प्रतिपादन किया है । कूले का कहना है कि जहा एक ओर व्यक्ति समाज से प्रभावित होता है । वही दूसरी ओर वह समाज को भी प्रभावित करता है । कूले के ही शब्दों में समाज से परे व्यक्ति और व्यक्तियों से परे स्वतन्त्र समाज की कल्पना निराधार है ।

(ल) **सिमेल** – सिमेल का विचार है कि व्यक्ति का अध्ययन सामाजिक पृष्ठभूमि में ही किया जा सकता है । सामाजिक पृष्ठभूमि में व्यक्ति के व्यवहार का निर्धारण करती है ।

अन्य विद्वानों के नाम जिन्होने सामाजिक मनोविज्ञान के चिंतन की गति को आगे बढाया , इस प्रकार है –

मीड ,रोश नहावर , सेफिल

मनोवैज्ञानिक – सामाजिक मनोविज्ञान को विकसित करने में मनोवैज्ञानिकों की भूमिका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है । जिन मनोवैज्ञानिकों ने सामाजिक मनोविज्ञान के विकास में योगदान दिया है , उनका विवरण इस प्रकार है –

(अ) **रास** – रास ने सर्वप्रथम 1908 में समाज मनोविज्ञान नाम से एक पुस्तक प्रकाशित की थी । रास टार्ड के विचारों से प्रभावित था । रास ने अपनी इस पुस्तक में मानव व्यवहार की व्याख्या निर्देश के सिद्वांतों के आधार पर का है । रास के अनुसार सामाजिक मनोविज्ञान समूह मस्तिष्क का अध्ययन है ।

(ब) **मैकडूगल** – मैकडूगल का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है । नामक महत्वपूर्ण पुस्तक की रचना की थी । इस पुस्तक में मैकडूगल ने मानव व्यवहार को समझने के लिये मूल प्रवृत्तियों को आधार माना था । मूल प्रवृत्तियां ही प्रत्यक्ष या अप्रत्सक्ष रूप से मानव व्यवहार को प्रभावित करती है । मूल प्रवृत्तियां मानव व्यवहार का निर्धारण करती है , जिनके आधार पर समाज का विकास होता है ।

(स) **फायड** – मनोविज्ञान के क्षेत्र में सिरामंड फ्रायड का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है । फ्रायड ने मानव व्यवहार को मूल प्रवृत्तियां और सामाजिक नियम के बीच संर्घष का कारण माना जाता है । इससे व्यक्ति अपनी कुछ मूल प्रवृत्तियों को या तो संशोधित करता है या उनका दमन कर देता है । सामाजिक मनोविज्ञान में मनोविश्लेणवाद फ्रायड की महत्वपूर्ण देन है ।

जिन अन्य विद्वानों ने समाज मनोविज्ञान के अध्ययन को गति प्रदान की है तथा इसमें अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है , उन विद्वानों के नाम इस प्रकार है –

प्रो मीड (Social Psychology)
आलपोर्ट

जे वाटसन
मर्फी तथा मफी (Experimental Social Psychology)
न्यूकोंब
किंबल यंग
शेरिफ

1.5 समाजिक मनोविज्ञान अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध

समाज मनोविज्ञान के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि समाज मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो सामाजिक उत्तेजनात्मक परिस्थितियों भरा अनुप्रेरित मानव व्यवहार का सभी रूपों का अध्ययन करता है । वैसे अन्य विज्ञान भी व्यक्ति एवं समाज का अध्ययन करते है लेकिन उनके अध्ययन का पहलू पृथक है । अतः इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि कोई भी विज्ञान एक दूसरे संबंधित होता है लेकिन यह सर्वमान्य बात है कि कोई भी विज्ञान अपने में पूर्ण नहीं है । किसी भी विज्ञान की पूर्णता इस बात पर आधारित है कि उस विज्ञान की अपनी विषय वस्तु हो , अपनी अध्ययन विधि एवं शब्दावली हो , इतना होने के बावजूद भी कोई विज्ञान नही कहा जा सकता है । अतः कोई भी विज्ञान प्रकृति के चाहे जिस अंग का अध्ययन करने वाला हो अन्य विज्ञान की उपेक्षा कर के अथवा पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रहकर अपना कार्य नहीं कर सकती । अपने अध्ययन वस्तु का यथार्थ विश्लेषण के लिये दूसरे संबंधित विज्ञान शाखाओं का सहारा लेना पडेगा । यही कारण है कि समाज मनोविज्ञान भी अन्य शाखाओं से संबंधित है ।

समाजिक मनोविज्ञान और सामान्य मनोविज्ञान (Social Psychology & Genral Psychology)

वास्तव में समाज मनोविज्ञान समाज में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन है जबकि सामान्य मनोविज्ञान की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है । दूसरे शब्दों में वह व्यक्ति के अनुभव एवं व्यवहार का प्रत्यक्षात्मक अध्ययन है । अतः इन दोनों विज्ञानों का संबंध भी मानव व्यवहार के लिये है । समाज मनोविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर सूक्ष्म अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामान्य मनोविज्ञान के अध्ययन का धीरे धीरे विकास हुआ है । और सामान्य मनोविज्ञान से प्रेरणा पाकर ही समाज मनोविज्ञान का विकास हुआ था और सामान्य विज्ञान से प्रेरणा पाकर ही समाज मनोविज्ञान का विकास हुआ है । अतः इसे चार्ट द्वारा दिखाया जा सकता है ।

मनोविज्ञान
सामान्य मनोविज्ञान
व्यक्तिगत मनोविज्ञान
समाज मनोविज्ञान

इस प्रकार उपर्युक्त चार्ट के माध्यम से स्पष्ट हो जाता है कि समाज मनोविज्ञान ,सामान्य मनोविज्ञान की एक शाखा है । हरबर्ट शर्नी ने इस मत का प्रबल समर्थन किया है तथापि उनका कहना रहा है कि समाज मनोविज्ञान ने सामान्य मनोविज्ञान के बहुत से तथ्य अपना लिये है – जिसे सीखना , प्रेरणा , अनुकरण आदि क्रियाओं का अध्ययन सामान्य मनोविज्ञान करता है । तथापि ये क्रियायें सामाजिक क्रियायें है और इसका अध्ययन समाज मनोविज्ञान के लिये भी आवश्यक है । अतः दोनों विज्ञानों का अध्ययन केवल सामाजिक है । दोनों विज्ञान एक दूसरे से अंतःसंबंधित है । समाज मनोविज्ञान मानव के उन व्यवहारों का अध्ययन करता है जिनका मूल कारण

बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियां होती है । मनुष्य समाज में जन्म लेता है , समाज में रहता है । इसी दृष्टि से समाज मनोविज्ञान और सामान्य मनोविज्ञान को पृथक करके समझना कठिन है ।

मानव किसी न किसी परिवार का सदस्य होता है । परिवार में ही रहकर वह अपने व्यक्तित्व संबंधी गुणों को सीखता है और इसके विकास में उस समाज या परिवार का योगदान महत्वपूर्ण है । इस प्रकार समाज मनोविज्ञान और समान्य मनोविज्ञान दोनों ही व्यक्ति का अध्ययन सामाजिक प्राणी के रूप में करते है । इन दोनों के उद्देश्य कुछ भी हो एक असमाजिक व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन नहीं कर सकता है । अतः इन दोनों के बीच अंतर करना कठिन है ।

इन दोनों में घनिष्ठता का संबंध होते हुए भी अंतर पाया जाना स्वभाविक है । समाज मनोविज्ञान में व्यक्ति समूह की अतःक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है । दूसरी ओर सामान्य मनोविज्ञान के अंर्तगत व्यक्ति के अनुभव एवं व्यवहार का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है । दूसरा महत्वपूर्ण अंतर यह है कि सामान्य मनोविज्ञान की ईकाई व्यक्ति है और समूह की मनोवैज्ञानिक अंतःक्रियायें है । इन दोनों मनोविज्ञानों में अध्ययन विधि के विषय में पर्याप्त अंतर है वह इस अर्थ में सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्ति का अध्ययन उसके सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में करना है जबकि सामान्य मनोविज्ञान प्रयोगात्मक विधि द्वारा उसके मानसिक प्रक्रियाओं जैसे मूल प्रवृत्ति , उत्तेजनात्मक सामाजिक परिस्थितियां इत्यादि का अध्ययन इसके अंर्तगत प्रमुख रूप से आता है ।

सामाजिक मनोविज्ञान और समाजशास्त्र (Social Psychology And Sociology)

सामाजिक मनोविज्ञान और समाजशास्त्र का घनिष्ठ संबंध है । समाजशास्त्र समाज का अध्ययन है और समाज में पाये जाने वाले समूह व संस्थाओं का अध्ययन । समूह और व्यक्ति का पारस्परिक संबंध होने के कारण इन दोनों शास्त्रों में संबंध का होना अनिवार्य है । ये दोनों विज्ञान एक दूसरे पर आश्रित है । यह एक सर्वमान्य बात है कि मनुष्य के द्वारा ही किसी समूह या संगठनों का अध्ययन किया जाता है । इस संगठन के परिणामस्वरूप व्यक्ति अनेक प्रकार की क्रियाओं को करने की प्रेरणा प्राप्त करता है । समूह द्वारा ही व्यक्ति के समाज व वातावरण का नियमन किया जाता है जब तक समाज की विभिन्न संस्थाओं , संगठनों एवं संरचनाओं की जानकारी नहीं होगी तब तक व्यक्ति के व्यवहार को समझना मुश्किल होगा । अतः उसके व्यवहार को भली भाति समझने के लिये समाज मनोविज्ञान का सहारा लेना पडेगा ।

समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है । यह सामाजिक व्यव्स्था और सामाजिक संबंधों का एक विज्ञान है । समाजशास्त्र , समाज के किसी भी समूह के संगठनों , रीति –रिवाजों ,विवाह , धर्म, परम्परा , संस्कार आदि का अध्ययन करता है लेकिन मनुष्य ने इसका निर्माण किसी एक न एक दिन किया होगा अपितु सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित व प्रेरित होकर मनुष्य ने इसका निर्माण किया है ।

इन दोनों विभागों में समानता होने के बावजूद भिन्नता भी है । यह भिन्नता इस प्रकार है – समाजशास्त्र सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है ये प्रक्रियायें सहयोगी और असहयोगी दोनों ही प्रकार की होती है जबकि समाज मनोविज्ञान व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है । समाजशास्त्र का अध्ययन विषय समान है जबकि समाज मनोविज्ञान का अध्ययन विषय व्यक्ति का व्यवहार है ।समाजशास्त्र और समाज मनोविज्ञान

में अगला अंतर यह है कि समाजशास्त्र सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करता है जबकि मनोविज्ञान घटना का अध्ययन मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से करता है ।

समाज मनोविज्ञान और मानवशास्त्र (Social Psychology And Anthropology)

मानव शास्त्र आदिम मानव जातियों की सामाजिक संरचना का अध्ययन है । यह मनुष्य एवं कार्यों का अध्ययन है । अध्ययन की दृष्टि से इसके तीन भाग किये गये है जिनकी व्याख्या इस प्रकार है –

भौतिक मानवशास्त्र (**Physical Anthropology**) – इसके अर्न्तगत मनुष्य के शारीरिक लक्षणों का अध्ययन किया जाता है । इसके द्वारा मानव प्रजातियों की उत्पत्ति एवं मानव के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है ।

सांस्कृतिक मानवशास्त्र – मानवशास्त्र के इस भाग के अर्न्तगत सामाजिक परिस्थितियों में मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है ।

प्रागैतिहासिक पुरातत्वशास्त्र – इसके अर्न्तगत विशेष रूप से प्रागैतिहासिक काल की संस्कृतियों आदि का अध्ययन किया जाता है । समाज मनोविज्ञान का मानवशास्त्र के इन तीन विभागों से संबंध है लेकिन यहां पर सामाजिक समाजशास्त्र का समाज मनोविज्ञान से संबंध पर प्रकाश डाला जायेगा ।

सामाजिक मानवशास्त्र , सांस्कृतिक मानवशास्त्र की एक शाखा है । सामाजिक मानवशास्त्र सामाजिक व्यवहार का अध्ययन है । यह विशेष रूप से सामाजिक संबठन और संस्थाओं का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करता है । समाज मनोविज्ञान सामाजिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार का अध्ययन है । इस प्रकार स्पष्ट है कि दोनों विद्वान सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में अंतःक्रियाओं का अध्ययन करते है । अतः दोनों के अध्ययन की समान समस्यायें है । इस प्रकार से ये दोनों विज्ञान परस्पर संबंधित है लेकिन इसके बावजूद भी दोनों विद्वानों के बीच मुख्य अंतर निम्न है –

प्रथम अंतर विषय सामग्री का है सामाजिक मानवशास्त्र की विषय सामग्री सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थायें है जबहि मनोविज्ञान की व्यक्ति की परस्पर अंतःक्रियायें है । दूसरा अंतर प्रयोग की जाने वाली अध्ययन पद्वतियों का है । सामाजिक मानवशास्त्र विशेषकर कार्यात्मक पद्वति का उपयोग करता है । उसमें वह हिल मिल कर रहता है । उसके उत्सवों, त्योहारों आदि में हिस्सा लेता है जबकि समाज मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक , प्रश्नावली ,व्यक्तिगत जीवन अध्ययन पद्वति आदि का प्रयोग किया जाता है । तीसरा अंतिम महत्वपूर्ण अंतर है कि समस्याओं को सुलझाने में सामाजिक मनोविज्ञान के सुझाव बडे सिद्व हुय है जबकि सामाजिक मानवशास्त्र किसी भी समस्या को सुलझाने में मार्ग निर्देशन करने में असमर्थ है ।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समाज मनोविज्ञान का संबंध अन्य सामाजिक विज्ञानों से अत्यन्त घनिष्ठ है । अन्य विज्ञानों के संबंधों के आधार पर ही समाज मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहारों के सभी रूपों में अध्ययन कर सका तथापि एक वास्तविक विज्ञान के रूप में विकसित हो सका है ।

1.6 समाज मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र (Scope of Social Psychology)

समाज मनोविज्ञान की जो परिभाषायें दी गयी है , उस पर सूक्ष्म दृष्टि डालने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज मनोविज्ञान की विषय सामग्री व क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है । इसके क्षेत्र में निरन्तर विस्तार हो रहा है । आज के युग में समस्यायें बढती जा रही है । समाज मनोविज्ञान का इन समस्याओं का अध्ययन कर समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है । परिकलन के परिणामस्वरूप आज समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी कुछ परिवर्तन हुआ है । अतः समाज मनोविज्ञान की विषय सामाग्री एवं क्षेत्र का सर्वांगीण अध्ययन करने लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम समाज मनोविज्ञान के वर्तमान दृष्टिकोणों को प्रत्यक्ष रूप में रखकर करें ।
समाज मनोविज्ञान समाज में रहते हुए व्यक्ति के व्यवहारों का सभी रूपों में अध्ययन करता है । अतः इससे भली प्रकार स्पष्ट होता है कि यह एक विस्तृत विज्ञान है एवं इसके अन्तर्गत व्यक्ति के सभी प्रकार के व्यवहारों का समावेश है फिर भी विद्वानों ने इसके क्षेत्र का निर्धारण किया ।

काज व शैंक महोदय ने समाज मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र के सम्बन्ध में निम्न विचार प्रस्तुत किये है मानव अपने साथियों से सम्बन्ध पर आधारित यह सामाजिक संसार ही समाजिक मनोविज्ञान को विषय प्रदान करता है ।
It is this social world, based upon the relation of man to his fellows which matter of social psychology

Kalrz and Shank

इस कथन की व्याख्या करते हुए निम्न बाते देखने को मिलती है –
1– समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र सम्पूर्ण समाज है ।
2– सामाजिक अंतःक्रियाओं का प्रभाव भी इसके क्षेत्र में सम्मिलि है ।

व्यक्ति का व्यवहार अन्य व्यक्तियों के व्यवहार से प्रभावित होता है । अतः ये तीन बातें समाज मनोविज्ञान की विषय सामग्री है ।

राबर्ट एम फ्रमकिन ने समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र का निर्धारण अत्यन्त विस्तृत रूप मे किया है । इनके अनुसार समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र निम्न है –

1 – सीखने सिखाने की प्रकिया की गतिशीलता (The Dynamics of the teaching –learning Process) –व्यक्ति का व्यवहार उसके सीखने की प्रक्रिया पर ही निर्भर है । यह सीखना कई बातों पर आधारित है । व्यक्ति समाज में रहता हुआ अन्य व्यक्तियों के साथ सम्पर्क स्थापित करता है । इस सम्पर्क के परिणामस्वरूप अंतःक्रिया का होना स्वभाविक है । ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है कि इसका उस पर प्रभाव न पडे । सामाजिक अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप ही व्यक्ति दूसरों के व्यवहार की नकल करता है । अतः इस प्रकार के सीखने या सीखने में कौन से घटक अपना महत्व रखते है । ऐसे तत्व या कारकों का अध्ययन समाज मनोविज्ञान करता है ।

2 – सामाजिक व्याधिकी का अध्ययन (The study of Social Pathology)– इसके अर्न्तगत समाज मनोविज्ञान उन समस्याओं का अध्ययन करता है जिसके कारण समाज का ढाचा असन्तुलित हो जाता है तथा सामाजिक जीवन के स्वस्थ स्वरूप का प्रतिनिधित्व होने लगता है । अतः उन परिस्थितियों का भी अध्ययन इसके अर्न्तगत आता है जिनमें व्यक्ति समाज में अनुकूलन स्थापित नहीं कर सकता । उदाहरण के लिये युद्व क्रान्ति , मानसिक बीमारी , अपराध विघटन आदि व्याधिकीय समस्यायें है । इसका अध्ययन समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र के अर्न्तगत समाहित है ।

3 – समाजीकरण प्रक्रिया की गतिशीलता (The Dynamics of the Socializahim Process) –बालक समाज में जन्म लेता है । समाज में ही रहकर उत्तम व्यक्तित्व के लक्षणों को प्राप्त करता है । इस प्रकार बालक

समाज में अच्छाइयों को सीखता हुआ अपने व्यक्तित्व का संतुलित विकास करता है । बालक समाज में एक जीव के रूप में आया लेकिन किन गुणों के कारण वह सभ्य प्राणी के रूप मे परिणित हो गया । इस सब का अध्ययन समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत आता है ।

4– **संचार की गतिशीलता (The Dynamics of Communication)**– समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत संचार की गतिशीलता का महत्व अत्यधिक है । मानव व्यवहार संचार के माध्यम से अत्यधिक प्रभावित होता है । संचार के माध्यम से व्यक्ति अपने विचारों , भावनाओं आदि को दूसरों तक पहुचाता है । संचार के अन्तर्गत फैशन , प्रचार , जनमत इत्यादि आते है । समाज मनोविज्ञान संचार के इन साधनों का अध्ययन करता है तथा मानवीय व्यवहार के विकास में इन साधनों की क्या भूमिका रही है आदि का अध्ययन इसके क्षेत्र के अन्तर्गत आता है ।

5– **सामाजिक अंतःक्रिया की गतिशीलता (The Dyanamics of Social Interaction)** – मानव अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये दूसरों से सम्पर्क स्थापित करता है । इस सम्पर्क के परिणामस्वरूप अंतःक्रिया का जन्म होता है । ऐसा कोई भी व्यक्ति भी नहीं है जिस पर इस अंतःक्रिया का प्रभाव न पडे । अतः व्यक्ति के व्यवहार पर अन्य व्यक्ति या समूह का प्रभाव सामाजिक अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप पडता है । इस प्रकार समाज मनोविज्ञान के अन्तर्गत सामाजिक अंतःक्रियाओं का महत्वपूर्ण अंतःक्रियाओं के विभिन्न स्वरूपों को सामाजिक प्रक्रिया के नाम से जाना जाता है । ये प्रक्रियायें दो प्रकार की होती है –

एकीकरण करने वाली सामाजिक प्रक्रिया विभेदीकरण करने वाली सामाजिक प्रक्रिया एकीकरण करने वाली प्रक्रिया के अन्तर्गत सहयोग , आत्मसात व्यवस्थापन ,अनुकूलन आदि है जबकि विभेदीकरण करने वाली प्रक्रियाओं के अंतर्गत प्रतिस्पर्धा , संघर्ष व प्रतिकूलता आदि मुख्य प्रक्रिया में आती है ।

6– **पारिवारिक सामंजस्य की गतिशीलता (The Dyanamics of Family)**– पारिवारिक संगठन या सांमजस्य को बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि परिवार के सदस्य अपनी स्थिति एवं भूमिका के अनुरूप कार्यों का संपादन करें तभी परिवार संगठित रह सकता है । इस प्रकार समाज मनोविज्ञान परिवार के सदस्यों के कार्यों एवं पदों का पारिवारिक संगठन या सामंजस्य को बनाये रखने के संदर्भ में अध्ययन करता है ।

वैयक्तिक एवं सामूहिक अंतरों का विश्लेषण **(The Analysis of individual and Group Differences)** – समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत उन कारकों का अध्ययन किया जाता है जिसके कारण व्यक्ति और समूह के बीच भिन्नता पायी जाती है । इस भिन्नता के अनेक कारण है जो कि भिन्नता को विकसित करने में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है । उदाहरण –जाति , प्रजाति , धर्म , शिक्षा व राष्ट्र आदि इनके आधार पर भिन्नता या अंतर व्यक्ति एवं समूह के बीच में दिखाई पडता है । अतः समाज मनोविज्ञान उन तत्वों का अध्ययन करता है जो कि व्यक्ति व समूह के बीच अंतर भिन्नता को जन्म देता है ।

पक्षपात का अध्ययन (The study of Pryudical) – समाज मनोविज्ञान ऐसे पक्षपात का अध्ययन करता है जो कि वैयक्तिक व सामूहिक दोनों ही जीवन में अपना महत्व रखते है इन पक्षपातों के आधार है जैसे – जाति , प्रजाति , वर्ग इत्यादि । ये सामूहिक पक्षपात के ही विशिष्ट स्वरूप है इस प्रकार समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत इन पक्षपातों का अध्ययन किया जाता है।

समूह का निर्माण और विकास का अध्ययन (The Study of formation and Development) – समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत समूह का अध्ययन भी सम्मिलित है । व्यक्ति क्यों समूहों में रहता है ? व्यक्ति ने कैसे समूहों को जन्म दिया ? आदि कुछ ऐसे मौलिक प्रश्न है जिसको उसके अध्ययन की ओर ध्यानाकृष्ट होना पडता है । वास्तव में समूह में रहने या उसे विकसित करने में व्यक्ति की इच्छा ही मौलिक है । इस समूह का महत्व मनोविज्ञान की दृष्टि से समाजीकरण करने तथा व्यक्तित्व के विकास में इसका योगदान प्रमुख है । अतः समाज मनोविज्ञान समूह के विकास , प्रभाव आदि बातों का अध्ययन करता है ।

मनुष्य के संबंध में प्रौढ विचारधारा का जन्म (The Development of a Mature Conception of man) – अन्य वैज्ञानिकों ने मनुष्य का अध्ययन अनेक रूपों में किया लेकिन उसका सर्वाय करने में असफल रहे । ये वैज्ञानिक मनुष्य की प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन अपने दृष्टिकोण में ही किया । इसका परिणाम यह हुआ कि उसके प्रत्येक पहलू का पूर्ण अध्ययन नहीं हो सका लेकिन समाज मनोविज्ञान ने इस कमी को दूर करने का प्रयास किया है । मनुष्य के व्यवहार अनेक प्रकार के हो सकते है । इस प्रकार समाज मनोविज्ञान उन अंतः प्रतिस्पर्धा का भी अध्ययन करता है । जो व्यक्ति के कुछ अन्य प्रकार के व्यवहार को प्रेरित करती है ।

नेता और अनुयायी के संबंध की की गतिशीलता का अध्ययन (The Study of Dynamics of the leader , Follower Relationship) – समाज मनोविज्ञान नेता और अनुयायियों के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन करता है जो एक दूसरे को भी प्रभावित करते है तथा स्वयं को प्रभावित करने में सफल होते है अनुयायी उसे ग्रहण करता है । नेता अनुयायियों का नेतृत्व करता है तथा समूह क्या चाहता है के उद्देश्यों को ग्रहण करता है । इस प्रकार समाज मनोविज्ञान नेता और अनुयायियों के पारस्परिक संबंधों का भी अध्ययन करता है तो इसके विषय क्षेत्र के अन्तर्गत आता है ।

सामाजिक प्रत्क्षीकरण (Social Perception)–समाजिक मनोविज्ञान प्रत्यक्षीकरण के माध्यम से एक व्यक्ति जो एक सामाजिक परिस्थिति के सन्दर्भ में किया करता है या अध्ययन करता है । प्रत्यक्ष बात ही प्रत्यक्षीकरण है । अतः मनुष्य के व्यवहार को पूर्ण रूप से भी समझा जा सकता है कि जब सामाजिक प्रत्यक्षीकरण का ज्ञान पूर्ण ज्ञान हो । इस प्रकार समाज मनोविज्ञान सामाजिक प्रत्यक्षीकरण का अध्ययन करता है तो इसके क्षेत्र के अन्तर्गत आता है ।

इसके अतिरिक्त क्लाइन वर्ग ने अपनी प्रख्यात रचना समाज मनोविज्ञान में (Social Psychology) सामाजिक मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र पर प्रकाश डाला है , जो निम्नलिखित है –

बालक के सामाजीकण , संस्कृति और व्यक्तिव के विकास का अध्ययन सामाजिक व्याधिकी का अध्ययन व्यैक्तिक एंव सामूहिक भेद का अध्ययन सामान्य एवं सामयिक मनोविज्ञान की व्याख्या अभिरूचि , मत , विचारों के आदान प्रदान प्रचार आदि की विवेचना करना सामाजिक अंतःक्रिया , नेतृत्व ,समूह ,गति – विज्ञान आदि का अध्ययन राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय राजनीति का अध्ययन

कैज और शैव ने सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत निम्न समस्याओं की विवेचना की है । सामाजिक उत्तेजक दशायें (Social Stimulus Conditions)

चेतन जगत

अवचेतन जगत

मनुष्य की प्रतिक्रियायें – जो सामाजिक उत्तेजनाओं के कारण उत्पन्न होती है । व्यक्ति पर सामाजिक पर्यावरण का प्रभाव इस प्रकार उपर्युक्त से स्पष्ट हो जाता है कि समाज मनोविज्ञान की विषय सामग्री एवं क्षेत्र अत्यन्त ही विस्तृत है । यह मनुष्य के व्यवहार का सभी रूपों में अध्ययन करता है । परन्तु वास्तविकता यह है कि यह एक विकासशील विज्ञान है । आज हम देखते है कि समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र में नित्य नवीन अध्ययन पद्वतियों का विकास होता जा रहा है । अतः इसके विषय क्षेत्र को किसी निश्चित सीमा के अर्न्तगत नहीं बाधा जा सकता है । जैसा कि लैपियर तथा फान्स बर्थ ने लिखा है – सामाजिक मनोविज्ञान सामाजिक विज्ञानों के सामान्य क्षेत्र के अर्न्तगत एक विशिष्ट विज्ञान है एवं उसके विषय क्षेत्र को निश्चित रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता क्योंकि ज्ञान में वृद्वि होने के साथ साथ उसमें भी परिवर्तन होगा ही एवं समय विशेष में जिन समस्याओं का अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान करता है उन्हीं के आधार पर समाज मनोविज्ञान के सामान्य क्षेत्र को सम्भवतः सबसे अच्छी तरह उजागर कर सकता है ।

समाज मनोविज्ञान की प्रकृति (**Nature Of Social Psychology**) – समाज मनोविज्ञान की प्रकृति को निम्न कसौटियों पर करने का प्रयास किया जायेगा कि वह विज्ञान तथा वैज्ञानिक पद्वति का प्रयोग करता है –
1– वैज्ञानिक पद्वति का प्रयोग (**Use of Scientific Method**) – कार्ल पियर्सन ने बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा है कि सम्पूर्ण विज्ञान की एकता उसकी पद्वति में निहित है न कि उसकी विषय सामग्री में । इससे स्पष्ट है कि विज्ञान की एक मौलिक विशेषता है – वैज्ञानिक पद्वति का प्रयोग । सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में जो भी ज्ञान प्राप्त हुआ है वह वैज्ञानिक पद्वति की सहायता से । वैज्ञानिक पद्वति को सफल बनाने के लिये सामाजिक मनोविज्ञान में निरन्तर प्रयोग किये जा रहे है । सामाजिक मनोविज्ञान में निरन्तर प्रयोग किये ता रहे है । सामाजिक मनोविज्ञान में जिन प्रमुख पद्वतियों का प्रयोग किया जाता है , उनका विवरण इस प्रकार है –
(अ) समाजमिति (**Sociometry**)
(ब) सांख्यिकी पद्वति (**Statistical Method**)
(स) प्रयोगात्मक विधि (**Experimental Method**)
समाजिक सर्वेक्षण
समुदायिक अध्ययन विधि

व्यक्तिगत अध्ययन विधि (**Case Study**) – सामाजिक मनोविज्ञान में अध्ययन का प्रारम्भ समस्या के चुनाव से होता है । साथ ही उपकल्पना का भी प्रयोग किया जाता है । सुविधा एवं सत्यता के लिये अनेक यंत्रों का प्रयोग किया जाता है जैसे – प्रश्नावली (Questionnaire) , अनुसूची (Schedule) , साक्षात्कार (Interview) , जीवन इतिहास (**Life History**) , मापनी (**Scales**) आदि । चूकि सामाजिक मनोविज्ञान में वैज्ञानिक पद्वतियों एवं यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है । इसलिये कही जा सकता है कि समाज मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है ।
क्या है का अध्ययन (**Study Of 'What Is'**) – अध्ययन की दृष्टि से विज्ञान में दो प्रश्नों के पूर्ण उत्तरों का अध्ययन होता है –
क्यों है का अध्ययन (**Study of 'Why It Is'**) – अध्ययन की दृष्टि से विज्ञान से विज्ञान में दो प्रश्नों के पूर्ण उत्तरों का अध्ययन होता है –

क्या होना चाहिये का अध्ययन
समाजिक मनोविज्ञान क्या है का अध्ययन करता है । जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञानों में नियमों एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। उसी प्रकार सामाजिक नियमों एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन है । इस दृष्टि से भी कहा जा सकता है कि समाज मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है ।

सार्वभौमिक सिद्वांत (**Universal Principles**) – विज्ञानों की मौलिक विशेषता है – सार्वभौमिक सिद्वांत । ये सिद्वांत स्थान और परिस्थितियों में समान रूप से लागू होते है । सामाजिक मनोविज्ञान के नियम भी सार्वदेशिक होते है । इस दृष्टि से सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति को वैज्ञानिक कहा जा सकता है । उदाहरण के लिये भीड का नियम सार्वभौमिक है कि भीड में व्यक्ति का व्यवहार अकेले के व्यवहार से भिन्न होता है ।

सिद्वातों का प्रमाणीकरण (**Verfication of Principles**) – विज्ञान की अगली विशेषता है नियमों का प्रमाणीकरण सामाजिक मनोविज्ञान के नियमों का परीक्षण एवं पुनः परीक्षण किया जा सकता है । सामूहिक तनाव इसका उदाहरण है । प्रत्येक समाज में सामूहिक तनाव , अंधविश्वास , अज्ञान तथा पूर्व धारणा के कारण विकसित होते है ।

कार्य –कारण सम्बन्ध (**Causal Relations**) – कार्यकारण सम्बन्धों की विवेचना करना विज्ञान की अगली विशेषता है । समाज मनोविज्ञान कार्य समाज में कोई भी कार्य होता है तो उसके पीछे किसी न किसी प्रकार का कारण होता है । इस प्रकार सामाजिक विज्ञान में कार्य कारण सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है । उदाहरण के लिये बालक का समाजीकरण , भीड व्यवहार आदि विषय में समाज मनोविज्ञान जानकारी प्राप्त करता है ।

भविष्यवाणी (**Prediction**) – भविष्यवाणी विज्ञान की अगली विशेषता है चूकि सामाजिक मनोविज्ञान कार्य कारण सम्बन्धों का अध्ययन करता है अतः कार्य कारण सम्बन्धों के कारण भविष्यवाणी करना अन्यन्त सरल हो जाता है यही कारण है कि वर्तमान समाज में अनेक सामाजिक समस्याओं का समाधान करने के लिये सामाजिक मनोविज्ञान की भविष्यवाणियों की सहायता ली जाती है ।

समाज मनोविज्ञान की महत्ता (Importance of Social Psychology) – समाज मनोविज्ञान समाज में मानव व्यवहार का एक वैज्ञानिक अध्ययन है । यह मानवीय व्यवहार का समूह में अध्ययन करता है तथा इस बात का अध्ययन करता है कि मानवीय व्यवहार अन्य व्यक्तियों से कैसे प्रभावित होता है । यह सामाजिक मनोविज्ञान समूह में मानवीय व्यवहार के समाजिक मनोविज्ञान अभिप्ररकों को समझने में सहायता करता है । वर्तमान में सामाजिक मनोविज्ञान की महत्ता विस्तृत है ।

1.7 समाज मनोविज्ञान की महत्ता

समाज मनोविज्ञान की उपयोगिता को दो भागों में बाटकर प्रस्तुत किया जा सकता है –
1– व्यवहारिक उपयोगिता (Practical Utility)
2– सैद्वान्तिक उपयोगिता (Theoretical Utility)

इन दोनों तरह की उपयोगिताओं का वर्णन इस प्रकार है ।
1– व्यवहारिक उपयोगिता (Practical Utility)– समाज मनोविज्ञान की अनेक व्यवहारिक उपयोगितायें है । मनोविज्ञान की इस शाखा का ज्ञान होने से कई तरह की सामाजिक समस्याओं को समझने में मदद मिलती है

जिससे इसकी व्यवहारिक उपयोगिता काफी बढ जाती है । इसकी प्रमुख व्यवहारिक उपयोगिताओं का वर्णन निम्न है –

(अ) सामाजिक तनाव , युद्ध, शीत युद्ध , पूर्वाग्रह (**Prejudice**) , रूढि युक्तिया (**Stereotypes**) , सांप्रदायिक दंगे , अन्तरराष्ट्रीय युद्ध होते रहते है जिससे हमारे सामाजिक जीवन में खतरा उत्पन्न हो गया है । समाज मनोविज्ञान अपने सिद्वातों , आकडों एवं वैज्ञानिक अध्ययनों के आधार पर निश्चित रूप से कुछ इस प्रकार के तथ्य लोगों के सामने रखता है जिनसे व्यक्ति और व्यक्ति के बीच समुदाय एवं समुदाय के बीच उत्पन्न कटुता द्वेष , घृणा आदि कम हो सके और इसकी जगह पर भाईचारा एवं सहनशीलता का सम्बन्ध स्थापित हो सके । समाजिक मनोविज्ञान के अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि प्रत्येक समाज की अपनी अपनी संस्कृति होती है अतः हर संस्कृति में पलने वाले लोगों का व्यवहार दूसरी संस्कृति के व्यक्तियों से अलग होता है ।
समाज मनोविज्ञान से औद्योगिक विकास में भी काफी मदद होती है । समाज मनोविज्ञानी विशेष रूप से कुछ ऐसे कार्य क्षेत्रों में सक्रिय हो कर कार्य कर रहे है जिनका प्रभाव किसी भी राष्ट्र के औद्योगिक विकास पर सीधा पडता है जैसे – प्रचार (**Propaganda**) । जनमत कुछ ऐसे ही क्षेत्र है जिनमें किये गये अध्ययनों के आधार पर यह साबित हो चुका है कि यदि किसी उद्योग का मालिक अपने माल का प्रचार खास सिद्वांतों एवं नियमों के आधार पर करता है तो उसके माल के प्रति एक ऐसा जनमत तैयार होता है और इससे उसकी माँग (**Demand**) बढ जाती है ।

इसके अतिरिक्त समाज मनोवैज्ञानिकों के द्वारा मजदूरों एवं उद्योगपतियों के बीच उत्पन्न तनाव को कम करने का प्रयास किया जाता है जिससे औद्योगिक संस्थानों में सौहार्दपूर्ण संबन्ध स्थापित हो सके । इससे भी परोक्ष रूप से औद्योगिक विकास को बढावा मिलता है ।

(ब) वर्तमान सामाजिक जीवन विभिन्न प्रकार के पूर्वाग्रह (**Prejudice**) व रूढियुक्तियों (**Stereotypes**) से युक्त है । विशेषकर भारत में जातीय पक्षपात अपने चरम पर है । इससे सामाजिक जीवन काफी नीरस हो गया है । सामाजिक मनोविज्ञानी सामाजिक प्रत्यक्षण (**Social Perception**) पूर्वाग्रह (**Prejudice**) मनोवृत्ति (**Attitude**) आदि का अध्ययन करके सामाजिक नीरसता को दूर करने का प्रयास करते है ।

(स) समाज मनोविज्ञान व्यक्तियों के सामाजिक समायोजन (**Social Adjustment**) मे काफी मदद करता है । वर्तमान गतिशील सामाजिक जीवन को सजग , सरस एवं सफल बनाने के लिये आवश्यक है कि व्यक्तियों के समायोजन इन सामाजिक परिवर्तनों के साथ हो सके । समाज मनोविज्ञान सामाजिक मूल्यों (Social Values) सामाजिक मानकों (Social Norms) सामाजिक शक्ति (Social Power) इत्यादि के बारे में व्यक्तियों को यथोचित ज्ञान प्रदान कर उन्हें स्वस्थ सामाजिक अभियोजन करने में मदद करता है ।

सैद्वान्तिक उपयोगिता (**Theoretical Utility**) – समाज मनोविज्ञान की सैद्वान्तिक उपयोगिता भी है । जिनके कारण मनोविज्ञान की यह शाखा अधिक लोकप्रिय है । इसकी प्रमुख उपयोगितायें निम्न है –

(1) सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्ति की अंतःक्रियाओं का अध्ययन सामाजिक परिस्थिति में अध्ययन करता है जिससे एक स्वस्थ सामाजिक कम बना रहता है और प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवहारों का अर्थ समझता है ।
(2) प्रत्येक समाज का अपना एक मानक मूल्य होता है जो व्यक्ति के व्यवहारों को निर्देशित करता है । समाज मनोविज्ञान के अध्ययन से हमें समाज विरोधी व्यवहार के कारणों को समझने में सहायता मिलती है ।
समाज मनोविज्ञान व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास में मदद करता है । व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास के लिये आवश्यक सामाजिक परिस्थितियों का निर्धारण समाज मनोविज्ञानिक करते है ।
समाज मनोविज्ञान दूसरे व्यक्तियों का सही सही प्रत्यक्ष करने तथा उनके बारे में सही सही निर्णय लेने में मदद करता है ।
इस तरह से हम देखते है कि समाज मनोविज्ञान हमारे लिये काफी उपयोगी विज्ञान है । इसी कारण वश वर्तमान में समाज मनोविज्ञान का महत्व काफी बढ गया है ।

1.8 सारांश

अधिकांश मनोवैज्ञानिकों ने समाज मनोविज्ञान की विषय वस्तु के रूप में व्यक्ति द्वारा सामाजिक परिस्थिति में किये गये व्यवहार को स्वीकृत किया है ।सामाजिक परिस्थिति उस परिस्थिति को कहा जाता है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्तियों या समूहों के बीच अंतःक्रिया होती है ।सामाजिक अंतःक्रिया तीन प्रकार की होती है । व्यक्ति तथा व्यक्ति के बीच की अंतःक्रिया , व्यक्ति तथा समूह के बीच की अंतःक्रिया , समूह तथा समूह के बीच की अंतःक्रिया ।

समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र के अंतर्गत मुख्यतः सम्मिलित है – सीखने सिखाने की प्रक्रिया गतिशीलता सामाजिक व्याधिकी का अध्ययन , सामाजीकरण प्रक्रिया की गतिशीता , संचार की गतिशीलता , सामाजिक अंतःक्रिया की गतिशीता , पारिवारिक सामंजस्य की गतिशीलता , वैयक्तिक एवं सामूहिक अंतरों का विश्लेषण , पक्षपात का अध्ययन , समूह के निर्माण और विकास का अध्ययन , सामाजिक प्रत्यक्षीकरण आदि ।
सामाजिक मनोविज्ञान समाज में मानव व्यवहार का एक वैज्ञानिक अध्ययन है ।

सामाजिक मनोविज्ञान की व्यवहारिक उपयोगिता को दो भागों में बाटा गया है –
व्यवहारिक उपयोगिता
सैद्वान्तिक उपयोगिता
समाज मनोविज्ञान की व्यवहारिक उपयोगितायें है –
समाज मनोविज्ञान के अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि इसके द्वारा संस्कृति के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है ।

सामाजिक मनोविज्ञान से औद्योगिक विकास में भी सहायता मिलती है ।
समाज मनोविज्ञान विभिन्न प्रकार के पूर्वाग्रह , रूढियुक्तियों का अध्ययन करता है ।
समाज मनोविज्ञान व्यक्तियों के सामाजिक समायोजन को समझने में सहायता करता है ।
समाज मनोविज्ञान की सैद्वान्तिक उपयोगितायें – सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्ति की अंतःक्रियाओं का अध्ययन सामाजिक परिस्थिति में करता है ।

समाज मनोविज्ञान के अध्ययन से समाज विरोधी व्यवहार के कारणों को समझने में सहायता मिलती है ।
समाज मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व के स्वस्थ के लिये आवश्यक सामाजिक परिस्थितियों का निर्माण करते है ।
समाज मनोवैज्ञानिक अन्य व्यक्तियों का सही ढग से प्रत्यक्षण करने में सहायता करते है ।

1.9 शब्दावली

समाजिक परिस्थिति – वह परिस्थिति जिसमें दो से अधिक व्यक्तियों व समूहों के बीच अंतःक्रिया होती है ।
अंतःक्रिया – अंतःक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया होती है जिसमें एक व्यक्ति वैसे व्यक्ति का प्रत्यक्षण कर अनुक्रिया करता है जो उसे प्रत्यक्षण कर अनुक्रिया करते है ।
समाज मनोविज्ञान – समाज मनोविज्ञान एक ऐसा वैज्ञानिक क्षेत्र है जो सामाजिक परिस्थिति में व्यक्ति के व्यवहार व चिंतन के स्वरूप एव कारणों को समझने की कोशिश करता है ।

1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

डा डी एस बथेल (1995) सामाजिक मनोविज्ञान मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी
अरूण कुमार सिंह (2003) सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा,मोतीलाल बनारसी दास
Baron & Byren (2015) Introduction to Social Psychology

1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

समाज मनोविज्ञान की परिभाषा तथा प्रकृति बताइये ?
समाज मनोविज्ञान क्या है ? इसके कार्यक्षेत्र की व्याख्या कीजिये ?
सामाजिक अंतःक्रिया क्या है ? सामाजिक मनोविज्ञान का महत्व बताइये ?

रिक्त स्थान –

सामाजिक अंतःक्रिया में प्रकार .... की हो सकती है ।
समाज मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार तथा अनुभूतियों का .... परिस्थिति में अध्ययन करता है ।
सामाजिक परिस्थिति में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान की .... उपयोगिता है ।
सामाजिक रूढियुक्तियों का अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान की .... उपयोगिता है ।

इकाई -2

मनोवृत्ति : संप्रत्यय तथा निर्धारक (Attitude:concept & Determinants)

2.1 उददेश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 मनोवृत्ति की परिभाषा
2.4 मनोवृत्ति की विशेषतायें
2.5 मनोवृत्ति का विकास तथा निर्माण
2.6 मनोवृत्ति परिवर्तन
2.7 मनोवृत्ति परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध
2.8 मनोवृत्ति कार्य
2.9 मनोवृत्ति की माप
2.10 सारांश
2.11 शब्दावली
2.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.13 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
2.14 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 उद्देश्य

संक्षेप में इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

(i) अभिवृत्ति क्या है इसे समझ पायेंगे।
(ii) इसके निर्माण में क्या–क्या कारक समाहित हैं, इसे समझ सकेंगे।
(iii) मनोवृत्ति के कार्यों को समझ सकेंगे।
(iv) मनोवृत्ति में परिवर्तन के कारण को समझ सकेगे।
(v) मनोवृत्ति में परिवर्तन के कारण को समझ सकेगे।
(vi) मनोवृत्ति मापने के उपागम को समझ सकेगे।

2.2 प्रस्तावना

सामाजिक मनोवैज्ञानिक मनोवृत्ति **(Attitude)** शब्द का उपयोग संसार के किसी भी स्थिति या अवस्था के प्रति व्यक्ति के मूल्यांकन के रूप में करते हैं। लोगों की अनेक मुद्दों पर जैसे कोई विचार, वस्तु या कार्य पर अनुकूल या प्रतिकूल

राय होती है क्या आप पैराग्लाइडिंग करना पसन्द करते हैं, किसी विशिष्ट व्यक्ति के बारे में जैसे सामाजिक समुदाय के प्रति हमारी राय अनुकूल होती है या प्रतिकूल होती है। कुछ मनोवृत्तियाँ स्थिर होती हैं तथा उनमें परिवर्तन नहीं होता है। जबकि कुछ अस्थिर होती है तथा परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित हो जाती है। हम कुछ मामलों में अपनी मनोवृत्ति को स्पष्टतया या प्रदर्शित कर सकते हैं जबकि कुछ अन्य वस्तुओं या मामलों में हमारी मनोवृत्ति अस्पष्ट तथा अनिश्चित होती है।

सामाजिक मनोविज्ञान में मनोवृत्ति का अध्ययन एक केन्द्र बिन्दु के समान है क्योंकि अभिवृत्ति हमारे अनुभव के प्रत्येक दृष्टिकोण को नियंत्रित करती है उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि मनोवृत्ति हमारे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। इसका अर्थ बहुत अधिक वैज्ञानिक, निश्चित व वस्तुनिष्ठ होता है।

प्रस्तुत अध्याय में हम यह खोजने की कोशिश करेंगे कि मनोवृत्ति क्या है, कौन–कौन से कारण हैं जो इसका निर्माण करते हैं? क्या हमारी मनोवृत्ति हमारे तर्किक विचार का ही परिणाम है? इनके अतिरिक्त यह समझने की कोशिश करना जरूरी है कि क्या सभी मनोवृत्तियाँ एक समान होती हैं? क्या कुछ मनोवृत्तियाँअन्य अभिवृत्तियों की अपेक्षा व्यवहार से ज्यादा मजबूती से जुड़ी होती हैं।

2.3 उद्देश्य

संक्षेप में इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

(vii) अभिवृत्ति क्या है इसे समझ पायेंगे।
(viii) इसके निर्माण में क्या–क्या कारक समाहित हैं, इसे समझ सकेंगे।
(ix) मनोवृत्ति के कार्यों को समझ सकेंगे।
(x) मनोवृत्ति में परिवर्तन के कारण को समझ सकेगे।
(xi) मनोवृत्ति में परिवर्तन के कारण को समझ सकेगे।
(xii) मनोवृत्ति मापने के उपागम को समझ सकेगे।

मनोवृत्ति की परिभाषा को हम इस तरह समझ सकते हैं।

2.4 मनोवृत्ति की परिभाषा

समाज मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों वे मनोवृत्ति को मापने के लिये निम्न तीन दृष्टिकोणों को अपनाया है–

1. **एक विमीय दृष्टिकोण –(One Dimensional Approach)**

इस दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति की एक विमा अर्थात मूल्यांकन पक्ष (**Evaluative Aspect**) को ध्यान में रखकर उसे परिभाषित किया है। इस दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति ऐसी सीखी गयी प्रवृत्ति है जिसके कारण व्यक्ति किसी वस्तु, घटना, व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल व्यवहार करता है।

फिशबीन तथा आजेन ने इसी दृष्टिकोण से मनोवृत्ति को परिभाषित करते हुये कहा है ''किसी वस्तु के प्रति संगत रूप से अनुकूल या प्रतिकूल ढंग से अनुक्रिया की अर्जित पूर्ववृत्ति को मनोवृत्ति कहा है " An attitude is a

learned predisposition to respond in a consistently favourable or unfavourable manner with respect to a given object.”

1. द्वि–विमीय दृष्टिकोण (**Two Dimensional Approach**)

इस दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति की व्याख्या करने के लिये दो विमाओं का सहारा लिया गया है। भावनात्मक संघटक (Affective Component) तथा संज्ञानात्मक संघटन (Cognitive Component) संज्ञानात्मक संघटन से तात्पर्य किसी घटना का वस्तु के संबंध में व्यक्ति का जो विश्वास होता है उससे होता है।
भावात्मक संघटक से तात्पर्य किसी वस्तु घटना या व्यक्ति के प्रति सुखद या दुखद भाव की तीव्रता से होता है।
उदाहरण– व्यवसायी धनी होते हैं एक संज्ञानात्मक संघटक का उदाहरण तथा व्यवसायी साफ–सुथरा होता है एक भावात्मक संघटक का उदाहरण हैं दोनो मिलकर व्यवसायी के प्रति एक अनुकूल मनोवृत्ति पैदा कर सकते हैं जिसकी अभिव्यक्ति इस तरह हो सकती है–व्यवसायी अच्छे होते हैं।

2. त्रि–विमीय दृष्टिकोण –(**Three Dimensional Approach**)

आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति की व्याख्यां करने के लिये त्रिविमीय दृष्टिकोण अपनाया है। इस दृष्टिकोण के अनुसार मनोवृत्ति के पहले से चले आ रहे दो संघटकों में एक तीसरा संघटक अर्थात– व्यवहारात्मक संघटक को जोड़कर इसकी व्याख्या की गयी है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का यह विचार अधिकतर लोगों को मान्य है। इन लोगों का विचार है कि मनोवृत्ति संज्ञानात्मक संघटक (**Cognitive component**), भावात्मक संघटक **(Affective Component)** तथा व्यवहारात्मक संघटक (Behavioral Component)का एक संगठित तंत्र है। इसे आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों के मनोवृत्ति का ABC मॉडल कहा है।

A= भावात्मक संघटक (Affective Components)
B= व्यवहारात्मक संघटक (Behavioral Components)
C= संज्ञानात्मक संघटक (Cognitive Components)

इस आधार पर समाज मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों की परिभाषायें निम्न हैं–
‘‘वातावरण के कुछ पहलुओं के प्रति व्यक्ति के भावों, विचारों एवं क्रिया करने की पूर्व प्रवृत्तियों को मनोवृत्ति कहा जता है।

सेकर्ड तथा बैकमैन

The term attitude refers to Certain regularities of individual’s feelings, thoughts and predisposition to act toward some aspects of his enviornment.

किसी एक वस्तु के संबंध में तीन संघटकों का स्थायी तंत्र मनोवृत्ति कहलाता है। संज्ञानात्मक संघटक भावी वस्तु के बारे में विश्वास, भावात्मक संघटक यानी वस्तु से सम्बन्धित भाव तथा व्यवहारात्मक या क्रिया प्रवृत्ति संघटक यानी उस वस्तु के प्रति क्रिया करने की तत्परता है।'' फ्रेच, क्रचफील्ड तथा बैलची।

"An attitude can be defined as an enduring system of three components centring about a single object, the belief's about the object- the cognitive component, the affect connected with the objects – the feeling component and the disposition to take action with respect to the object-the action tendency component."

Kretch, Gutchfeld and Ballachey

निष्कर्ष स्वरूप हम यह कह सकते है कि मनोवृत्ति तीन संघटकों अर्थात संज्ञानात्मक घटक, भावात्मक घटक तथा व्यवहारात्मक संघटक को एक संगठित स्थायी तंत्र है। इन तीनों संघटकों में संगति का (**Consistency**) गुण पाया जाता है। इन तीनों से इस संगति के कारण व्यक्ति किसी वस्तु या घटना के प्रति एक खास ढंग से सोचता है तथा व्यवहार करने के लिए तत्पर रहता है।

2.5 मनोवृत्ति की विशेषतायें

मनोवृत्ति की अनेक विशेषतायें हैं। यंग, शैरिफ, केलिइल इत्यादि से अपने दृष्टिकोण के अनुसार अपनी सूची बनायी है, इनकी प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं–

1. मनोवृत्तियां व्यक्ति स्वयं अपने अनुभवों द्वारा ही सीखता है। यह जन्मजात नहीं होती। यह हमारी जैविक–जनित प्रेरणाओं पर निर्भर हो सकती है, परन्तु स्वयं जैविक–जनित नहीं होती। उदाहरण के लिए भूख एक जैविक–जनित प्रेरणा है किन्तु मांसाहारी या शाकाहारी भोजन करना हमारी सीखी गयी अभिवृत्तियों पर निर्भर करता है। यह हमारे समाज एवं परिवार के खाने की आदत पर निर्भर करता है कि हम किस तरह का भोजन करेंगे।
2. अभिवृत्तियाँ कम या अधिक मात्रा में स्थायी होती हैं, किन्तु उनमें भी परिवर्तन हो सकता है। इसके लिये उपयुक्त परिस्थितियों का होना आवश्यक है।
3. व्यक्तियों के विश्वास एवं अभिवृत्तियाँ, वस्तुओं विचारों एवं प्रतिमाओं से संबंधित होती हैं। ये इतने विभिन्न होते हैं, जितनी की उनसे संबंधित विभिन्न वस्तुयें तथा प्रतिमायें होती हैं। यहां पर याद रखना चाहिए कि व्यक्ति के विश्वास एवं अभिवृत्तियाँ असीमित नहीं होती। वह व्यक्ति के उस मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में सीमित रहती है जिससे कि व्यक्ति परिचित है।

4. अभिवृत्तियों का कोई अस्तित्व बिना एक पृष्ठभूमि के नहीं होता है। इससे तात्पर्य यह है कि बिना प्रतिमा या विचार के अभिवृत्तियाँ नहीं बन सकती। जब एक व्यक्ति इंद्र, गणेश आदि देवताओं के प्रति श्रद्धा का भाव रखता है तो उसके सम्मुख इन देवताओं के संबंध में यह प्रतिमा होंती है कि वह देवता इसकी मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं। अभिवृत्तियाँ केवल आंतरिक नहीं होती है। वो सदैव विशेष व्यक्ति वस्तुओं या समूहों के संबंध में निर्मित होती हैं।

मनोवृत्तियाँ व्यक्तियों एवं समूहों के संबंध में बनती हैं। एक व्यक्ति घृणा, द्वेष या प्रेम की मनोवृत्तियाँ दूसरे व्यक्ति की ओर निर्मित कर सकता है। वह उसी प्रकार की अभिवृत्तियॉ संपूर्ण समूह के प्रति बना सकता है। उदाहरण के लिये एक हिन्दू एक विशेष मुसलमान व्यक्ति के प्रति घृणा की मनोवृत्ति बना सकता है या एक मुसलमान हिन्दु के प्रति घृणा की मनोवृत्ति बना सकता है। मनोवृत्तियों के निर्माण में सामान्यीकरण की प्रक्रिया महत्वपूर्ण कार्य करती है। इसी प्रक्रिया के कारण एक स्व–समूह (In Group) का सदस्य पर समूह के सदस्यों के प्रति द्वेष की भावना रखता है।
अभिवृत्तियों के साथ पर्याप्त मात्रा में सर्वगात्मक तथ्य जुड़े होते हैं। यह हम उस समय बड़ी सरलता से देख सकते है जब विभिन्न राजनैतिक दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्तियों के बीच टी.वी. चैनल पर वाद–विवाद चलते हैं इसमें वे तीव्र संवेगों का प्रदर्शन करते हैं। इस प्रकार शैरिफ ने कहा है– अभिवृत्ति प्रेरणात्मक व भावात्मक गुण रखती हैं।

अभिवृत्तियॉ हमारे व्यवहार को दिशा प्रदान करती हैं। यह इस बात की ओर संकेत करती हैं कि विशिष्ट परिस्थितियों में हमारा व्यवहार किन दिशाओं में होगा। यह निर्णय की ओर ले जाती हैं और इस प्रकार से हम यदि एक व्यक्ति की अभिवृत्तियों के संबंध में जानते हैं कि हम उसके व्यवहार की दिशा का पुर्वानुमान लगा सकते हैं और यह भी बता सकते हैं कि विशिष्टपरिस्थितियों में वह किस दिशा में व्यवहार करेगा।, उदाहरण के लिये मोहन यदि टेबल–टेनिस खेलना पसंद नहीं करता परन्तु क्रिकेट में बहुत रुचि रखता है तब जब वह अखबार में खेलकूद संबंधी समाचार को पढ़ेगा वह क्रिकेट के संबंध में ही समाचारों को पढ़ेगा, टेबल–टेनिस के समाचारों को नहीं पढ़ेगा ।

सामाजिक अभिवृत्तियॉ कुछ विशेषतायें रखते हैं। वे ये है.

1. सामाजिक अभिवृत्तियॉ सामाजिक परिस्थितियों के संबंध में बनती हैं।
2. सामाजिक अभिवृत्तियॉ समाज के सब सदस्यों द्वारा बना ली जाती है तथा अनुभव की जाती हैं, ये अभिवृत्तियॉ केवल कुछ ही व्यक्तियों को छोड़कर समूह के सब अन्य सदस्यों में समान होती है। समान समूह व्यवस्था समूह द्वारा निर्देशित होती हैं।

2.5 मनोवृत्ति का विकास तथा निर्माण

मनोवृत्ति एक अर्जित प्रवृत्ति है। स्वभावतः तब इसके विकास में बहुत तरह के कारकों का प्रभाव पड़ता है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति के विकास को प्रभावित करने वाले बहुत से कारकों से संबंधित कई प्रयोग किया है जिससे मनोवृत्ति का निर्माण एवं विकास प्रभावित होता है। कुछ ऐसे ही महत्वपूर्ण काक निम्न हैं –

आवश्यकता पूर्ति (Want Satisfactions)

प्रायःदेखा गया है कि जिस व्यक्ति वस्तु तथा घटना से हमारे लक्ष्य की प्राप्ति होती है एवं आवश्यकता की पूर्ति होती है उसके प्रति हमारी मनोवृत्ति अनुकूल होती है तथा जिस व्यक्ति वस्तु एवं घटना से हमारे लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न होती है एवं आवश्कता की पूर्ति नहीं होती है उसके प्रति हमारी मनोवृत्ति प्रतिकूल हो जाती है। जैसे कि जो किशोर क्रिकेट के खिलाड़ी बनना चाहते हैं वे टी.वी. में आने वाले सभी क्रिकेट मैचों के प्रति अनुकूल मनोवृत्ति रखते है जबकि जिनको क्रिकेट के खिलाड़ी बनने में कोई दिलचस्पी नहीं होती है वे कि टी.वी. में दिखाये जाने वाले सभी क्रिकेट मैचों के प्रति अनुकूल मनोवृत्ति नहीं रखते हैं। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आवश्यकता पूर्ति एक महत्वपूर्ण कारक है जिससे व्यक्ति की मनोवृत्ति का निर्माण होता है।

1. **दी गयी सूचनायें (Given Information)**

मनोवृत्ति के निर्माण में व्यक्ति की दी गयी सूचनाओं की भी भूमिका होती है। आधुनिक समाज को भिन्न–भिन्न माध्यमों से व्यक्ति को सूचनायें दी जाती हैं इन माध्यमों में रेडियो, टेलीविजन, अखबार, पत्रिकायें आदि प्रधान हैं। इन माध्यमों से दी गयी सूचनाओं के अनुसार व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति विकसित करता है। इन माध्यमों के अलावा अन्य माध्यमों से भी व्यक्ति को सूचनायें मिलती हैं और अनके अनुसार व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति विकसित करता है।

इन माध्यमों के अलावा अन्य माध्यमों से भी व्यक्ति को सूचनायें मिलती हैं। इनके अनुसार व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति विकसित करता है जैसे माता–पिता, भाई–**बहिल** आदि।

2. **सामाजिक सीखना**

सामाजिक सीखना का प्रभाव भी मनोवृत्ति के विकास में काफी पड़ता है। जिस तरह से व्यवहार के भिन्न–भिन्न रूपों को व्यक्ति सीखता है ठीक उसी तरह मनोवृत्ति के विकास में भी सीखने की प्रक्रिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि मनोवृत्ति के विकास में सीखने की तीन तरह की प्रक्रियाओं का महत्वपूर्ण स्थान है ये तीनों क्रियाओं के महत्व की व्याख्या निम्न हैं–

1. **क्लासिकल अनुबंधन**

क्लासिकी अनुबंधन सीखने का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। इस सिद्धांत के अनुसार जब कोई तटस्थ उद्दीपक को अनुक्रिया उत्पन्न करने वाले उद्दीपक के साथ बार–बार उपस्थित किया जाता है तो वैसी परिस्थिति में कुछ समय के बाद तटस्थ उद्दीपक में भी उसी तरह की अनुक्रिया करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है समाज मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि क्लासिकी अनुबंधन के इस नियम द्वारा हम दिन प्रतिदिन की जिन्दगी में अनेक नयी –नयी मनोवृत्ति को सीखते हैं। उहारण के लिये जब एक बच्चा यह अपने घर के आस'पास यह कहते हुए सुनता है कि सिक्ख, साहसी, मेहनती व ईमानदार व्यक्ति होते है, तो धीरे–धीरे वह सिक्ख के प्रति अनुकूल मनोवृत्ति विकसित कर लेता है प्रारम्भ में सिक्ख उसके लिये एक तटस्थ शब्द था जिसके प्रति किसी तरह की मनोवृत्ति नहीं थी।

2. साधनात्मक अनुबंधन (**Instrumental Conditioning**)

साधनात्मक अनुबंधन का नियम सीखने का एक दूसरा महत्वपूर्ण नियम है जिससे मनोवृत्ति का विकास प्रभावित होता है। साधनात्मक अनुकूलन का नियम इस बात पर बल डालता है कि जिस अनुक्रिया को करने से व्यक्ति को पुरस्कार मिलता है उसे वह सीख लेता है तथा जिस अनुक्रिया को करने से उसे दंड मिलता है उसे वह दोहराना नहीं चाहता है। बच्चों में ठीक वैसी मनोवृत्ति बहुत जल्द विकसित होती है जैसा कि उनके माता–पिता की होती है। इसका प्रधान कारण यह है कि समान मनोवृत्ति दिखलाने पर उन्हें पुरस्कार दिया जाता है अर्थात उसके व्यवहारों की प्रशंसा करते हैं। इसी तरह अपने माता–पिता की मनोवृत्ति के विपरीत मनोवृत्ति दिखाने पर उन्हें डॉट फटकार और कभी–कभी शारीरिक दंड भी दिया जाता है। फलस्वरूप वे इस तरह की मनोवृत्ति के विपरीत मनोवृत्ति विकसित कर लेते हैं।

3. प्रेक्षणात्मक सीखना (**Observational Learning**)

प्रेक्षणात्मक सीखना का सार यह है कि मानव दूसरों की क्रियाओं एवं उसके परिणामों को देखकर नयी अनुक्रिया करना सीख लेता है। इस नियम के प्रमुख प्रवर्तक बैंडूरा है।

4. समूह बंधन (**Group affiliation**)

व्यक्ति की मनोव1त्ति निर्माण में समूह संबंधन (Group affiliation) का भी प्रभाव पड़ता है। समूह प्रबंधन से तात्पर्य व्यक्ति का किसी खास समूह के साथ संबंध कायम करने से होता है यह निश्चित है कि जब व्यक्ति अपना संबंध किसी खास समूह से जोड़ता है तो वह उस समूह के मूल्यों, मापदण्डों (Norms) विश्वासों, तौर–तरीकों को भी स्वीकार करता है। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति इन मूल्यों एवं मापदण्डों के स्वरूप के अनुसार अपने में एक नयी मनोवृत्ति विकसित करता है। अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से भी यह स्पष्ट हो गया है कि समूह संबंध द्वारा व्यक्ति की मनोवृत्ति विकसित होती है।

स्माज मनोवैज्ञानिकों ने निम्न दो प्रकार के समूह को मनोवृत्ति विकास पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया है।

प्राथमिक समूह (**Primary Group**)

प्राथमिक समूह वैसे समूह को कहा जाता है जिसमें सदस्यों की संख्या साधारणतः कम होती है तथा जिसके सदस्यों में घनिष्ठ एवं आमने–सामने का संबंध होता है। जैसे– परिवार, खिलाड़ियों का समूह आदि प्राथमिक समूह में सदस्यों की संख्या कम होती है अतः इनमें अधिक सहयोग, भाईचारा तथा सहानुभूति का गुण पाया जाता है। अतः इसका एक सदस्य ठीक वैसे ही मनोवृत्ति विकसित करता है जैसा कि अन्य सदस्यों की होती है। इस तरह से देखा जाता है कि प्राथमिक समूह के प्रभाव के कारण समूह के सदस्यों की मनोवृत्ति में एकरूपता (

Homogeneity) पायी जाती है। क्रेच, क्रेचफील्ड तथा बैलेची के अनुसार प्राथमिक समूह के प्रभाव के कारा मनोवृत्ति में जो एकरूपता आती है, उसके निम्न चार कारण हैं–

(i) प्राथमिक समूह के सदस्यों पर समूह की राय मानकों के लिये अर्थात् अनुरूपता (Conformity) के लिये अधिक सामूहिक दबाव होता है। इसके कारण ऐसे सदस्यों की मनोवृत्ति में एकरूपता पायी जाती है।

(ii) प्राथमिक समूह एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है जहाँ किसी सदस्य की मनोवृत्ति अन्य सदस्यों की मनोवृत्ति के अनुकूल होती है इससे भी सदस्यों की मनोवृत्ति में एकरूपता या समानता बढ़ती है।

(iii) किसी भी प्राथमिक समूह के सदस्यों का एक समान सूचनायें दी जाती हैं। फलतः उनकी मनोवृत्तियों में एकरूपता आती है।

(iv) प्राथमिक समूह का नय सदस्य अन्य सदस्यों की मनोवृत्ति को समूह स्वीकृति प्राप्त करने के उद्देश्य से अपनाता हैं।

संदर्भ समूह– (**Reference Group**)

मनोवृत्ति के निर्माण एवं विकास मे संदर्भ समूह (Reference Group) का भी महत्वपूर्ण योगदान है। संदर्भ समूह से तात्पर्य वैसे समूह से होता है जिसके साथ व्यक्ति आत्मीकरण (identification) कर लेता है। चाहे वह उस समूह का सदस्य औपचारिक रूप से हो या न हो प्रायः संदर्भ समूह के लक्ष्य मूल्य (Values) आदि को अपनाकर वह अपने व्यवहार एवं चरित्र में ठीक वैसा ही परिवर्तन लाता है जैसा कि इन लक्ष्यों एवं मूल्यों से अपेक्षित है। स्पष्ट है तब संदर्भ समूह का प्रभाव मनोवृत्ति के निर्माण के काफी अधिक होता है। उदाहरण के लिये जब मध्यम वर्गीय परिवार का व्यक्ति उच्चवर्गीय परिवार को अपना संदर्भ समूह मानता है तो उसकी मनोवृत्ति अनुकूल हो जाती है।

सांस्कृतिक कारक (**Cultural Factors**)

मनोवृत्ति के निर्माण एवं विकास में सांस्कृतिक कारकों का भी अधिक महत्वपूर्ण सथान है। प्रत्येक संस्कृति का अपना मानदंड, मूल्य, परंपरायें, धर्म आदि होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का पालन–पोषण किसी न किसी संस्कृति में ही होता है। फलतः उसका सामाजीकरण इन्हीं सांस्कृतिक कारकों द्वारा अधिक प्रभावित होता है। व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति इन्हीं सांस्कृतिक प्रारूप के अनुसार विकसित करता है। एक समाज की संस्कृति दूसरे समाज की संस्कृति से भिन्न होती है। इसी सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण भिन्न–भिन्न संस्कृति के व्यक्तियों की मनोवृत्ति करीब–करीब एक समान होती है। सबसे सटीक उदाहरण हमारे आस'पास पायी जाने वाली हिन्दू व मुस्लिम संस्कृति है। मुस्लिम संस्कृति में पले व्यक्तियों की मनोवृत्ति ममेरे, चचेर भाई–बहिनों में शादी के प्रति अनुकूल

होती है परन्तु हिन्दू संस्कृति में पले व्यक्तियों में इस तरह के वैवाहिक संबंध के प्रति मनोवृत्ति प्रतिकूल होती है। कुछ मानवशास्तियों ने अपने–अपने अध्ययनों के आधार पर इस बात की पुष्टि की है कि सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव मनोवृत्ति के विकास में काफी पड़ता है जैसे– मीड ने अपरो अध्ययन के आधार पर दिखलाया है कि सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण एरापेश जाति के लोगों की मनोवृत्ति में उदारता सहयोग की भावना तथा दयालुता आदि अधिक होती है जबकि मुण्डुमुरा जाति के लोगों की मनोवृत्ति टीक इसके विपरीत अर्थात आक्रमकता तथा कडवाहट अधिक पायी जाती है।

व्यक्तित्व कारक (**personality traits**)

मनावृत्ति के निर्माण एवं विकास में व्यक्तित्व शीलगुणें का भी अधिक प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति उन मनोवृत्तियों को जल्द सीख लेता है जो उनके व्यक्तित्व के शीलगुणों के अनुकूल होती है। फ्रेन्च ने अपने अध्ययन में पाया है कि अधिक संगठित धार्मिक मनोवृत्ति रखने वाले व्यक्तियों का शीलगुण कम संगठित धार्मिक मनोवृत्ति रखने वाले व्यक्तियों के शीलगुण से भिन्न होते है। अधिक संगठित मनोवृत्ति रखने वाले व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के गुण एवं दोषों को चेतना रूप में स्वीकार कर लिया करते थे। जबकि कम संगठित मनोवृत्ति रखने वाले व्यक्ति अपने व्यक्त्वि से संबंधित ऐसे तथ्यों को स्वीकार नहीं करते थे। अतः ऐसे लोगों में दमन करने की प्रवृत्ति अधिक थी।

मैकलोस्काई ने राजनैतिक मनोवृत्ति के व्यक्तित्व कारकों के महत्व को भी दिखया है कि इन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि कम पढ़े लिखे तथा मंद बुद्धि के लोगों में अनुदार मनोवृत्ति अधिक पायी जाती है। अधिक से अधिक अनुदार मनोवृत्ति रखने वाले व्यक्ति अधिक शक्की, अगडालू अपनी कमजोरी या गलती के लिये दूसरों पर आरोप लगाने वाले, बैरपूर्ण, आक्रांमक आदि होते है। ऐसे लोग अधिक चिंतित, दोषभाव तथा अपूर्णता भाव से भी ग्रस्त होते है। एडोरनो तथा उनके सहयोगियों ने संजातिवाद के आदि जैसी मनोवृत्ति के विकास में व्यक्तित्व शीलगुणों के महत्व का अध्ययन किया है। संजातिवाद एक ऐसी मनोवृत्ति है जिमें व्यक्ति अपने समूह या वर्ग को अन्य सभी समूहों या वर्गों की तुलना में श्रेष्ठ समझता है। इन्होंने अपने अध्ययन में संजातिकडंवाद को मापने के लिये मापनी बनायी जिसे F Scale कहा गया। इस स्केल पर आये प्राप्तांक के आधार पर इन्होंने प्रयोज्यों के दो अध्ययन करके यह प्राप्त किया कि अधिक संजाति केन्द्रवाद दिखाने वाले व्यक्ति सामाजिक रूप से अपांछनीय विचारों का खुलकर विरोध करते थे, सामाजिक व्यक्तिगत संबंधों में प्रभुत्व एवं शक्ति का प्रयोग अधिक पसंद करते थे तथा इनका व्यक्तित्व संगठन अधिक दृढ़ था।

रूढ़िकृतियॉ (**Stereotypes**)

प्रत्येक समाज में कुछ रूढ़िकृतियॉ होती हैं जिनसे भी व्यक्ति की मनोवृत्ति का विकास प्रभावित होता है। रूढ़िकृतियों से तात्पर्य किसी वर्ग या समुदाय के लोगों के बारे में स्थापित सामान्य प्रत्याशाओं तथा सामान्यीकरण

से होता है। जैसे– हमारे समाज में महिलाओं के प्रति एक रूढ़िकृति है कि वे पुरूषों की अपेक्षा अधिक धार्मिक होती हैं व अधिक परामर्श ग्रहण करने वाली होती है फलस्वरूप महिलाओं के प्रति एक विशेषकर की मनोवृत्ति सामान्य लोगों में पायी जाती है।

2.6 मनोवृत्ति –परिवर्तन

मनोवृत्ति एक अर्जित गुण है। अतः इसमें परिवर्तन होना स्वाभाविक है। पुरानी मनोवृत्ति का बदलना तथा नयी मनोवृत्ति का बनना सदा जारी रहता है। मनोवृत्ति में निम्नलिखित दो प्रकार के परिवर्तन होते हैं–

मात्रात्मक परिवर्तन – (Congruent Change)

जब किसी वर्तमान मनोवृत्ति की दिशा समान रहते हुये उसकी केवल मात्रा में परिवर्तन होता है तो उसको मात्रात्मक परिवर्तन कहते है जैसे– वर्तमान **सकारात्मक मनोवृत्ति**–(Positive Attitude) अथवा नकारात्मक मनोवृत्ति (Negative Attitude) की मात्रा या प्रबलता का घट जाना या बढ़ जाना। दैनिक जीवन के निरीक्षणों तथा आनुभाविक अध्ययनों से पता चलता है कि मनोवृत्तियों में अधिकांशतः इसी प्रकार का परिवर्तन होता है।

दिशात्मक परिवर्तन

जब मनोवृत्ति की दिशा में परिवर्तन घटित होता है जो उसे दिशात्मक परिवर्तन कहते है। जैसे–नकारात्मक मनोवृत्ति को बदलकर सकारात्मक हो जाना अथवा सकारात्मक मनोवृत्ति का बदलकर नकारात्मक हो जाना निरीक्षणों तथा अध्ययनों से ज्ञात होता है कि मनोवृत्ति का यह परिवर्तन अपेक्षाकृत कम होता है।

मनोवृत्ति परिवर्तन का अर्थ

उपरोक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि मनोवृत्ति परिवर्तन का अर्थ है वर्तमान मनोवृत्ति की दिशा या मात्रा अथवा दोनों में बदल जाना दूसरे शब्दों में इसका अर्थ है मात्रात्मक अथवा दिशात्मक परिवर्तन।

मनोवृत्ति परिवर्तन की क्या सार्थकता है

प्रभावपूर्ण अभियोजन को बनाये रखने के लिये मनोवृत्ति परिवर्तन बहुत जरूरी है। वैयक्तिक, सामाजिक तथा व्यवसायिक स्तरों पर प्रभावपूर्ण अभियोजन के लिये मनोवृत्ति में परिमार्जिन या परिवर्तन लाना आवश्यक है। बाहय

परिवर्तनों के आलोक में परिवार, समाज, संगठन या राष्ट्र में प्रगति लाने के लिये मनोवृत्ति परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है।

मनोवृत्ति परिवर्तन के कारण (Factors of Attitude Change)

मनोवृत्ति परिवर्तनों को प्रभावित करने वाले कारकों या परिस्थितियों की व्याख्या करने के पूर्व दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है।

(क) अन्य बातें समान रहने पर दिशात्मक परिवर्तन की अपेक्षा मात्रात्मक परिवर्तन की संभावना अधिक होती है।

(ख) मनोवृत्ति परिवर्तन शीलता वर्तमान तथा संबंधित व्यक्ति की विशेषताओं पर निर्भर करती है। किसी मनोवृत्ति में शक्ति, संगति, स्थिरता आदि विशेषताओं का अभाव जिस सीमा तक होता है उसी सीमा तक उसमें परिवर्तन की संभावना अधिक होती है। इसी प्रकार मनोवृत्ति रखने वाले व्यक्ति में बुद्धि, अहम, शक्ति, (Ego-Strenght) आत्म विश्वास, दृढ़ता, रूढ़िवाद आदि शीलगुण जिस हद तक कम होती है उसी हद तक मनोवृत्ति में परिवर्तन अधिक होने की संभावना रहती है।

निम्नलिखित परिस्थितियों में मनोवृत्ति परिवर्तन होता है –

अतिरिक्त सूचना (Additional Information)

मनोवृत्ति परिवर्तन में शिक्षा प्रचार आदि साधनों से प्राप्त औपचारिक सूचना तथा दूसरों के साथ बात–चीत, व्यक्तिगत प्रत्यक्ष अनुभव आदि से प्राप्त अनौपचारिक सूचना दोनों का हाथ होता है। जैसे समाचार पत्रों, रडियो, दूरदर्शन (टी.वी.) आदि साधनों से किये गये प्रचारों से प्राप्त सूचनाओं के परिणामस्वरूप परिवार नियोजन के प्रति हमारी मनोवृत्ति में दिशात्मक परिवर्तन हुये है। कुछ दिन पहले यह सूचना मिली कि सुअर तथा गया की चर्बी से डालडा बनाया जाता है। फलतः डालडा के प्रति वर्तमान अनुकूल मनोवृत्ति बदलकर प्रतिकूल हो गयी। फिर सूचना मिली कि यह अफवाह थी। इसलिये हमारी मनोवृत्ति डालडा के प्रति पुनःअनुकूल हो गयी।

मनोवृत्ति परिवर्तन पर सूचना की प्रभावशीलता कई बातों पर निर्भर करती है।

(1) संचारक (Communicaton) जितना ही अधिक विश्वययवीय होता है, संचार या सूचना उतनी ही अधिक प्रभावपूर्ण होती है।(Houland and Wecss 1951)

संचार जितना ही अधिक आकर्षक होता है, संचार उतना ही अधिकप्रभाव पूर्ण होता है। संचारक के साथ संबंधन का शोध अधिक होने से संचार का प्रभाव बढ़ जाता है।

सूचना या संचार की प्रभावशीलता इसके माध्यम पर भी निर्भर करती है। अन्य माध्यमों की अपेक्षा मौखिक

सूचना अधिक प्रभाव पूर्ण होती है।

सूचना के आकार तथा घटक पर भी इसकी प्रभावशीलता निर्भर करती है। प्राप्त सूचना से प्रत्याशित लक्ष्य उपलब्ध होने की संभावना अधिक होने पर उसकी प्रभावशीलता बढ़ जाती है।

संचारक जितना ही अधिक आकर्षक होता है मनोवृत्ति उतनी ही अधिक बदलती है।

समूह–संबंधन में परिवर्तन(Change in Group Affiliation)

जब व्यक्ति एक समूह को छोड़कर किसी दूसरे समूह के साथ संबंध स्थापित करता है तो उसकी मनोवृत्ति में परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। नये समूह में प्रवेश लेने का अर्थ यह होता है कि यह उस समूह के मूल्यों, मापदण्डों, विश्वासों आदि को स्वीकार करता है। पुराने समूह तथा नये समूह के मापदण्डों, मूल्यों आदि में अंतर होने के कारण उसकी मनोवृत्तियों में अंतर होना स्वाभाविक है। जैसे एक हरिजन हिन्दू समाज को छोड़कर मुस्लिम समाज का सदस्य बन जाता है। दोनों समुदायों के मूल्यों एवं मापदण्डों में अंतर होने के कारण दस हरिजन की मनोवृत्ति भगवान, मंदिर, मसिजद, गाय, गंगा आदि के प्रति बदल जाती हैं ऐसी स्थिति में दिषात्मक परिवर्तन अधिक देखे जाते हैं।

किसी नये समूह के साथ संबंधों के कारण सदा समान परिवर्तन नहीं होता है। यहाँ मनोवृत्ति की परिवर्तनशीलता दो बातों पर निर्भर करती है–

(i) समूह की विशेषता

(ii) समूह में व्यक्ति की सदस्यता की विशेषता। समूह की विशेषता का तात्पर्य समूह–मापदण्ड, समूह छोड़ने की स्वतंत्रता तथा मानीटर करने की प्रभावशीलता से है। व्यक्ति अपने नये समूह की जिस हद तक आकर्षण बना पाता है उसी हद तक वह अपनी वर्तमान मनोवृत्ति में परिवर्तन लाता है। इसी तरह मॉनीटर प्रणाली का अभाव भी मनोवृत्ति–परिवर्तन पर पड़ता है। जहाँ तक सदस्यता की विशेषता का प्रश्न है इसके अंतरर्गत सदस्य की स्थिति, सदस्यता का मूल्य आदि मुख्य हैं। नये समूह में व्यक्ति अपनी स्थिति जितनी ही अधिक सुरक्षित समझता है, उतना ही अधिक वह नये समूह के मापदण्डों का अनुपालन करता है और अपनी पुरानी मनोवृत्ति में परिवर्तन लाता है। इसी तरह वह अपनी सदस्यता का जिस सीमा तक मूल्यांकन महसूस करता है, उसी सीमा तक वह नये समूह के साथ अनुपालन करता है तथा अपनी वर्तमान मनोवृत्ति में परिवर्तन लाता है।

निकट संपर्क (Close Contact)

मनोवृत्ति परिवर्तन का एक प्रधान कारण निकट संपर्क है। इसके कारण मनोवृत्ति की मात्रा या दिशा अथवा दोनों में परिवर्तन हो सकता है। जैसे– भारत में स्वतंत्रता से पहले की अपेक्षा आज हरिजनों के प्रति ब्राह्मणों में नकारात्मक मनोवृत्ति बहुत हद तक बदल गयी है। इसका एक प्रधान कारण दोनों जातियों के बीच निकट संपर्क का घटित होना है।

निकट संपर्क के कारण मनोवृत्ति में परिवर्तन के दो आधार है–

(i) निकट संपर्क से भिन्न–भिन्न समूहों तथा समुदायों के लोगों को दूसरों को समझने तथा अपनी गलत फहमियों को सुधारने का अवसर मिलता है, जिसके कारण मनोवृत्ति में परिवर्तन होता है। जैसे– एक साथ रहने पर ब्राह्मणों को हरिजनों के संबंध में सही जानकारी प्राप्त करने तथा उनके संबंध में सुनी–सुनाई बातों को परखने एवं अपने गलत विश्वासों को सुधारने का मौका मिलता है, जिससे उनकी प्रतिकूल मनोवृत्ति अनुकूल बन जाती है अथवा कम से कम उसकी प्रबलता घट जाती है।

(ii) जब कई व्यक्ति एक साथ रहने लगते हैं तो स्वभावतः एक दूसरे के गणों या अनुकूल पक्षों को भी खोज निकालते हैं। जैसे– यदि एक ब्राह्मण को हरिजनों के साथ रहने पर बाध्य होना पड़े तो वह अहम् सुरक्षा (**Ego Defence**) के रूप में युक्त्याभास का उपयोग अपने वर्ग के लोगों को कह सकता है कि हरिजन उतने बुरे नहीं है जितना कि हम समझते हैं। वह अपने तर्क के पक्ष में दो–चार गुणों को गिना सकता है। शुरू में यह केवल उसका केवल मुक्त्याभ्यास हो सकता है, लेकिन बाद में वह हरिजनों के प्रति मनोवृत्ति के भावात्मक संघटक का अनिवार्य अंग बन सकता है।

प्रवर्तित संपर्क पर किये गये अध्ययनों से उपयुक्त विचारों का समर्थन होता है। स्मिथ ने गोरे छात्रों को शैक्षिक ड्रिप के बहाने निग्रो के साथ कुछ दिनों तक रखा उन्होंने पाया कि शारीरिक संपर्क के कारण विग्रो के प्रति गोरे छात्रों की नकारात्मक मनोवृत्ति में मात्रात्मक तथा दिशात्मक दोनों तरह के परिवर्तन हुये।

डियूश तथा कोलिन्स वे देखा कि पृथक आवासीय योजना की अपेक्षा संघटित आवासीय योजना के कारण निग्रो तथा संघटित योजना में 95% के प्रति गोरी स्त्रियों की मनोवृत्ति बहुत अंशों में अनुकूल बन गयी। पृथक योजना में 27 प्रतिशत स्त्रियों ने निग्रो के प्रति सहानुभूति दिखलाई। एक संघटित योजना में 27 प्रतिशत तथा दूसरी संघटित योजना में 62 प्रतिशत स्त्रियों ने कहा कि जिन लोगों से वे अच्छी तरह अवगत है, उनमें एक निग्रो भी है। लेकिन पृथक योजना में एक भी प्रयोज्य ने ऐसा विचार प्रकट नही किया। लेकिन कभी–कभी निकट संपर्क के कारण विपरीत परिणाम मिलता है।

मुसीन वे अपने अध्ययन में पाया कि एक कैंप में चार सप्ताह तक एक साथ रहने के कारण 73 प्रतिशत गोरे बच्चों की नकारात्मक मनोवृत्ति विग्रो के प्रति घट गयी और 26 प्रतिशत बच्चों में बढ़ गयी। वास्तव में मनोवृत्ति परिवर्तन पर संपर्क का प्रभाव कई बातों पर निर्भर कता है।

(i) अल्पसंख्यक वर्ग तथा प्राधिकृत वर्ग के लोग समान पद पर होते है तो संपर्क काफी प्रभावपूर्ण सिद्ध होता है।

(ii) जब अल्पसंख्यक वर्ग के लोगों का व्यवहार उस वर्ग पर आरोपित विश्वासों के विपरीत होता है तो मनोवृत्ति में अनुकूल दिशा में परिवर्तन होने की संभावना अधिक होती है। दोनों समूहों के बीच घनिष्ठता जिनती अधिक होती है, नकारात्मक मनोवृत्ति उतनी ही अधिक घट जाती है।

(iii) दोनों समूह के लोग जब एक दूसरे के साथ स्वतंत्र रूप से सहयोग करते हैं तो पूर्वधारणा या नकारात्मक मनोवृत्ति के बदलने की संभावना अधिक होती है।

स्कूल तथा कालेज –

मनोवृत्ति को बदलने में स्कूल तथा कॉलेज का भी बड़ा हाथ होता है। इसके कई कारण है–

(i) शिक्षालय में भिन्न–भिन्न जातियों, वर्गों तथा समुदायों के लड़के तथा लड़कियॉ होते हैं। उनके बीच निकट संपर्क स्थापित होते रहने के कारण उन्हें एक दूसरे के वास्तविक रूप को देखने और समझने का मौका मिलता है। अपने नये अनुभवों के आलोक में अपने आधार होने विश्वासों को छोड़ने तथा मनोवृत्ति को बदलने का अवसर मिलता है।

(ii) शिक्षालय में शिक्षकों तथा छात्रों के व्यवहारों के आलोक में नयी मनोवृत्तियों के निर्माण जथा वर्तमान मनोवृत्तियों में परिवर्तन की संभावना सदा बनी रहती है।

(iii) शिक्षालय में नये–नये ज्ञानों के अर्जन से भी वर्तमान मनोवृत्तियों बदलती है और नयी मनोवृत्तियॉ का निर्माण होता है। न्यूकोज के अध्ययन से इसका समर्थन होता है। स्टिम्बर ने अपने अध्ययन में पाया कि शिक्षा के स्तर के बढ़ने से पूर्वधारणा घटती है।

आनन्त वे कम शिक्षित की अपेक्षा अधिक शिक्षित पुरूषों तथा स्त्रियों में कम पूर्वधारणा पायी लेकिन कैम्पबेल के अध्ययन में विपरीत परिणाम मिले वास्तव में इस दिशा में व्यवस्थित अध्ययनों का बहुत अभाव है।

प्रत्यक्ष अनुभव – (Direct Experience)

व्यक्तिगत रूप से किसी वस्तु या व्यक्ति के संबंधों में अनुभव प्राप्त होने पर उसके प्रति वर्तमान मनोवृत्ति बदल सकती है। कारण, बहुत सी मनोवृत्तियों सुनी–सुनाई बातों अथवा अपर्याप्त सूचनायें पर आधारित होती है। अतः व्यक्तिगत अनुभव तथा पर्याप्त सूचना प्राप्त हो जाने पर ऐसी मनोवृत्तियॉ बदल सकती हैं। मैथिल ब्राह्मणों के प्रति हमारी प्रतिकूल मनोवृत्ति इस तथा कथित विश्वास पर आधारित है कि वे सर्प से भी अधिक खतनाक होते हैं। यदि हमारा व्यक्तिगत अनुभव दो–चार मैथिल ब्राह्मणों के संबंध में यह हो कि वे सच्चे तथा शरीफ, सहानुभूतिक सच्चे तथा मिलनसार होते हैं तो हमारी यह नकारात्मक मनोवृत्ति सकारात्मक बन सकती है। थर्सटन के अनुसार

व्यक्तिगत तथा स्पष्ट अनुभव के कारण मानव जातीय पूर्वधारणा घट जाती है। इन्होंने अपने अध्ययन में देखा कि चलचित्रों के माध्यम से गोरे प्रयोज्यों की विग्रो के जीवन–चक्र का स्पष्ट ज्ञान किस सीमा तक कराया गया, उनकी पर्वधारणा उसी सीमा तक घट गयी। अन्य अध्ययनों से इस विचार की पुष्टि होती है। (Allpord, 1954, Clore it al 1978)

रेगन तथा फाजियो के अनुसार प्रत्यक्ष अनुभव से केंडीय प्रवृत्तियों के प्रतिरोध को दूर करने में काफी मदद मिलती है। नये अनुभवों के आलोक में जब व्यक्ति के विश्वास एवं मनोवृत्ति गलत प्रमाणित होते है तो वह या तो अपने अनुभवों में परिवर्तन लाता है या अपने विश्वास या मनोवृत्ति में परिवर्तन लाता है। लेकिन प्रत्यक्ष अनुभवों में परिवर्तन लाना कठिन होता है, इसलिये वह अपने वर्तमान विश्वास या मनोवृत्ति में परिवर्तन लाता है।

प्रचार (Propaganda)

प्रचार के संबंध में मुख्य बात यह है कि यह स्वयं मनोवृत्ति परिवर्तन का कारण नहीं है बल्कि अतिरिक्त सूचना का मात्र एक साधन है। प्रचार की कई प्रविधियाँ तथा माध्यम हैं। जिनका उपयोग करके प्रचारक नई–नई सूचनायें प्रस्तुत करके लोगों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन का प्रयास करता है। लिखित प्रचार की अपेक्षा प्रत्यक्ष प्रचार अधिक प्रभाव पूर्ण होता है। भाषण, समाचार, पत्र, रेडियो, सिनेमा, दूरदर्शन आदि माध्यमों से प्रचार द्वारा परिवार–नियोजन या परिवार कल्याण गर्भपात आदि के प्रति जनता की मनोवृत्ति को अनुकूल बनाने में तत्कालीन भारतीय सरकार बहुत हद तक सफल रही। कई अध्ययनों से मनोवृत्ति के परिवर्तन एवं निर्माण में प्रचार का महत्व सिद्ध होता है। लेकिन फेल्डमैन के अनुसार यदि लोग पूर्वाग्राही हो तथा प्रचार से सहमत न हो तो व सूचना की गलत व्याख्या कर सकते हैं तथा प्रचार बेअसर सिद्ध हो सकता है।

(vii) सांस्कृतिक समीकारी – (Cultural Assimilation)

इस प्रविधि द्वारा भी मनोवृत्ति खासकर पूर्वधारणा में परिवर्तन लाया जा सकता है। भिन्न–भिन्न समूहों, समुदायों या सांस्कृतिक सदस्यों के बीच सामाजिक पारस्परिक क्रिया होने के कारण उनके बीच पूर्वधारणायें घटती हैं। यहाँ लोगों को प्रत्येक समूह या संस्कृति के संबंध में प्रत्यक्ष निर्देश दिया जाता है तथा सही सूचना देकर प्रचलित गलतफमियों को दूर किया जा सकता है परिणामतः उनकी मनोवृत्ति या पूर्वधारणा अनुकूल दिशा में बदल सकती है। लैंडिस आदि ने प्रजातीय पूर्वधारणा के आभास में इस विधि का सफल उपयोग किया।

(viii) अपेक्षित भूमिका निर्वाह– (Required role Playing)

प्रत्येक भूमिका से संबंधित विशेष अधिकार तथा कर्तव्य होते हैं। अतः भूमिका बदलने से व्यक्ति के अधिकार तथा कर्तव्य बदल जाते हैं। इस भूमिका–परिवर्तन के साथ उसकी वर्तमान मनोवृत्तियों में भी परिवर्तन हो सकता है। मान लीजिए कि एक ब्राह्मण की मनोवृत्ति हरिजनों के प्रति नकारात्मक है वहीं ब्राह्मण पंचायत का मुखिया, राज्य का मुख्यमंत्री या राष्ट्र के प्रधानमंत्री के रूप में निर्वाचित हो जाता है अब उसकी मनोवृत्ति हरिजनों के प्रति कम से कम ऊपर से बदल जायेगी।

प्रश्न उठता है कि क्या सचमुच भूमिका निर्वाह के कारण व्यक्ति की निजी मनोवृत्ति आम मनोवृत्ति के समरूप बन जाती है। कल्बर्टसन के अध्ययन से इस समस्या के समाधान में मदद मिलती है। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि भूमिका–निर्वाह के प्रभाव से किसी के प्रति विशिष्ट मनोवृत्ति तथा सामान्य मनोवृत्ति में संबंधित क्रमशः 66.7

प्रतिशत तथा 76.1 प्रतिशत गोरे प्रयोज्यों में वस्तुतः घनात्मक परिवर्तन घटित हुआ। अध्ययनों से पता चलता है कि भूमिका–निर्वाह के पक्ष में जब सामाजिक सहारा मिलता है तो निजी मनोवृत्ति वास्तव में आम मनोवृत्ति मे बदल जाती है।

व्यक्तित्व परिवर्तन प्रविधियाँ–(Personality Change Techniques)

वर्तमान समय में सामाजिक मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाने के लिये व्यक्तित्व में परिवर्तन लाने पर बल दिया जाता है। व्यक्तित्व संरचना में परिवर्तन लाने से व्यक्ति की मनोवृत्ति में स्थायी परिवर्तन संभव होता है। ऐक्सलाइर्न ने सात वर्ष के गोरे समस्यात्मक बालकों पर अध्ययन किया जो प्रजातीय मनोवृत्तियों से पीड़ित थे। खेल चिकित्सा द्वारा उनके व्यक्तित्व में परिवर्तन लाया गया जिससे विग्रो के प्रति उनकी प्रजातीय मनोवृत्तियों में परिवर्तन संभव हुआ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मनोवृत्ति परिवर्तन के अनेक निधारित विधियाँ या परिस्थितियॉ हैं। देखने में ये अलग–अलग लगती हैं परन्तु वास्तव में ये सभी आपस में संबंधित है और एक साथ मनोवृत्ति–परिवर्तन या मनोवृत्ति दृढ़ता पर प्रभाव डालते हैं।

2.7 मनोवृत्ति परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध

मनोवृत्ति–परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध का अर्थ यह है कि कुछ परिस्थितियों में नये अनुभवों, निकट संपर्क आदि कारकों के होते हुये भी वर्तमान मनोवृत्ति नहीं बदलती है। विशेष रूप् से ऐसी मनोवृत्तियों में परिवर्तन कठिन होता है यानी प्रतिरोध अधिक होता है, जिन मनोवृत्तियों से कई तरह के लाभ होते है, उन्हें मनोवृत्ति के कार्य कहते हैं।

(i) समायोजन कार्य–

मनोवृत्ति परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध का एक कारण यह कि मनोवृत्ति व्यक्ति के समायोजन में सहायक होती है। यह अपनी सकारात्मक तथा नकारात्मक मनोवृत्तियों के द्वारा क्रमशः वांछित लक्ष्य को प्राप्त कर तथा अवांछित लक्ष्यों से अपना बचाव कर दैनिक जीवन में समायोजन सथापित करना है। इसलिये वह ऐसी मनोवृत्ति में परिवर्तन नहीं लाता है।

(ii) अहम् रक्षा कार्य –

मनोवृत्ति का एक कार्य व्यक्ति की अहम् की रक्षा करता है। अतः जिस मनोवृत्ति से अहम् की रक्षा होती है, वह उसमें परिवर्तन नहीं लाता है।

(iii) मूल्य–अभिव्यक्ति कार्य–

मनोवृत्ति के माध्यम से व्यक्ति केंद्रीय जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति करता है। इसलिये मनोवृत्ति नहीं बदलती है।

(iv) ज्ञान कार्य –

अपनी विविध आवश्यकताओं की संस्तुति के लिये व्यक्ति ने केवल कुछ विश्वासों को अर्जित करता है, बल्कि ज्ञान भी हासिल करने का प्रयास करता है जो इसके जीवन में सार्थक बनाने में सहायक होता है। पेटकोविच (Vetkovich st al 1984) क अनुसार जिन मनोवृत्तियों में उपर्युक्त अविश्यकताओं की संतुष्टि जिस सीमा तक संभव होती है, उसी सीमा तक उनमें परिवर्तन होता है।

2.8 मनोवृत्ति के कार्य

हमारे मन, मस्तिष्क में विभिन्न तरह के उद्दीपकों व्यक्तित्व, घटनाओं आदि के बारे में किसी न किसी एक मनोवृत्ति का निर्माण करता है। इसलिये प्रश्न यह उठता है कि व्यक्ति मनोवृत्ति का निर्माण क्यों करता है।

शाभिह ने इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये संबधित अध्ययनों का एक विश्लेषण किया जिसके बाद में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मनोवृत्ति द्वारा कई तरह के लाभदायक कार्य होते हैं जिसके चलते व्यक्ति किसी वस्तु घटना तथा अन्य व्यक्तिके प्रति एक विशेष तरह की मनोवृत्ति विकसित करता है। ऐसे कार्य निम्न पाँच हैं–

(i) मनोवृत्ति द्वारा ज्ञान कार्य सम्पन्न होगा (Attitueds serves knowledge Functions)

मनोवृत्ति व्यक्ति को सामाजिक अतिक्रियाओं तथा उद्दीपकों की व्याख्या करने में तथा मनोवृत्ति संगत सूचना के प्रति तेजी से अनुक्रिया करने में मदद् करता है। इस तथ्य की पृष्टिकई मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से की जा चुकी है। मुनरो तथा डिट्टी ने अपने अध्ययन में पाया कि जिन नयी सूचनाओं में व्यक्ति की मनोवृत्ति को समर्थन मिलता है उसे व्यक्ति उन सूचनाओं की तुलना में अधिक सही व विश्वास पूर्ण मानता है जिक्वर्स उनकी मनोवृत्ति को समर्थन मिलता है।

(ii) मनोवृत्ति द्वारा आत्म सम्मान का कार्य भी होता है (Attitueds also serves self-esteem Functions)

मनोवृत्ति व्यक्ति के आत्म–सम्मान को भी संपोषित करता है या उसे मजबूत करता है। मैनस्टीड का (Manstead, 2000) का मत है कि जब व्यक्ति में किसी विशेष तरह के विश्वास या सिद्धांत के प्रति आस्था से कोई मनोवृत्ति बनती है और फिर व्यक्ति उस मनोवृत्ति के प्रति अडिग रहता है तो उसमें एक आत्म–सम्मान (Self-esdeem) का भाव उत्पन्न होता है। सच्चाई यह है कि व्यक्ति जब किसी विशेष मनोवृत्ति पर कायम रहता है तो उसमें विभिन्न तरह के संवेग का अनुभव होता है। जब व्यक्ति की मनोवृत्ति किसी नैतिक नियम (Moral Principals) पर आधारित होती है और यह वहाँ भी धोखा या छल नही करता है जहाँ उसे वैसा करने का पर्याप्त अवसर है तो उसमें स्वभावतः उसका आत्म–सम्मान तथा आत्म–उत्कर्षता (Self Worth) अधिक मजबूत हो जाती है।

(iii) मनोवृत्ति व्यक्ति की आत्म–अभिव्यक्ति या पहचान को सम्पन्न करती है.

मनोवृत्ति व्यक्ति को दसके तहत्वपूर्ण विश्वासों (Beliefs) एवं मूल्यों (Values) की अभिव्यक्ति करने में मदद करती है। दूसरे शब्दों में मनोवृत्ति व्यक्ति को पहचान या आत्म–अभिव्यक्ति कार्य में मदद करता है और इस तरह से व्यक्ति यह संचारित (Comunicate) करने में सक्षम होता है कि वह कौन है।

फ्लेमिंग एवं पेट्टी (2000) ने इस तथ्य का समर्थन अपने अध्ययन द्वारा किया। इस अध्ययन में यह पाया गया कि पुरूषों द्वारा किसी कंपनी के उत्पाद के प्रति उस समय अधिक धनात्मक एवं अनुकूल मनोवृत्ति दिखलायी गयी जब उनकी सोच या विश्वास यह था कि अन्य पुरूषों द्वारा उसे पसंद किया गया था तथा उसी तरह से महिलाओं द्वारा उत्पाद के प्रति धनात्मक मनोवृत्ति उस समय अधिक विकसित की गयी जब उनकी सोच या विश्वास यह था कि अन्य महिलाओं द्वारा भी उसे पसंद किया गया।

मनोवृत्ति व्यक्ति के लिये अहं रक्षात्मक कार्य भी करती है–

काज (Katz, 1960) ने यह दावा किया था कि मनोवृत्ति कभी–कभी व्यक्ति के लिये अहं–रक्षात्मक कार्य भी करती है। इसका मतलब यह हुआ कि कोई विशेष मनोवृत्ति विकसित करके अपने बारे में प्राप्त अवांछित सूचनाओं से अपने आपको बचाता है। जैसे जो लोग कट्टर धर्मपंथी होते हैं मानो वे किसी भी तरह के पूर्वाग्रह तथा विभेद के खिलाफ है इय तरह की मनोवृत्ति बनाकर सचमुच में अपने आप को इस तथ्य से पहचानने से बचा लेते है कि वे सचमुच में वे विभिन्न सामाजिक समूहों तथा पार्टियों के प्रति अत्यधिक पूर्वाग्रहित है। इसी तरह से व्यक्ति प्रायः यह चाहता है कि उसे दूसरों द्वारा स्वीकार किया जाये या सम्मान दिया जाये और ऐसा करने के लिये वह अन्य व्यक्तियों के प्रति उस हद तक एक स्वीकारात्मक एवं घनात्मक मनोवृत्ति दिखलाता है जितना कि सचमुच में उसमें रहता नहीं है।

मनोवृत्ति व्यक्ति के लिये छवि अभिप्रेरण कार्य भी संपन्न करता है

मनोवृत्ति व्यक्ति के लिये छवि अभिप्रेरण कार्य (**Impression motivation function**) भी करता है । प्रायः व्यक्ति दूसरों की बजाय अपने बारे में एक उत्तम छवि का निर्माण करना चाहता है और इसके लिये यह एक सही मनोवृत्ति विकसित करके एक उचित विचार को अभिव्यक्त करता है। शोधों से जो तथ्य सामने आये हैं वह इस बात का साक्षी है कि जिस सीमा तक मनोवृत्ति द्वारा यह कार्य किया जाता है उससे सामाजिक सूचना का (**Social indormation**) का संसोधन (**Processing**) प्रभावित होती है। इस तथ्य की पुष्टि नाइनहुईस, मैनस्टीड तथा स्पीयर्स (**Nienhuis, Manstead & Spears 2001**) के एक अध्ययन में हुआ है। इन शोधकताओं की प्राक्कल्पता यह थी कि जब मनोवृत्ति द्वारा छवि अभिप्रेरण कार्य (**Impression motivation function**) किया जाता है, तो व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति को समर्थन देने के ख्याल से अधिक से अधिक तर्क देता है और व्यक्ति में दूसरों को प्रभावित करने का अभिप्रेरण जितना ही अधिक होगा वह उतना ही अधिक से अधिक तर्क प्रस्तुत करेगा। इस प्राक्कल्पना की जाँच को उन्होंने कॉलेज छात्रों को एक संदेश जो कठोर औषध के पौधीकरण के पक्ष में था को पढ़ने के लिये कहा गया। इसके बाद छात्रों से कहा गया कि उन्हें अपने विचारों का बचाव करना होगा। छात्रों के तीन समूह द्वारा इस अध्ययन में हिस्सा लिया गया। छात्रों के एक समूह से यह कहा गया कि उनके निष्पादन का मूल्यांकन एक अन्य व्यक्ति से किया जायेगा तथा छात्रों के तीसरे से यह कहा गया कि उनका निष्पादन तीन अन्य व्यक्तियों द्वारा किया जायेगा। स्पष्टतः पहले समूह में प्रयोज्याया सहभागियों का छवि अभिप्रेरण कम था दूसरे में साधारण था तथा तीसरे में सबसे अधिक था। संदेश को पढ़ने तथा उक्त सूचना को प्राप्त करने के लिये आये सहभागियों ने अपनी–अपनी मनोवृत्तियों का इजहार किया और साथ ही साथ यह भी

बतलाया कि किस सीमा तक वे औषधी औषध के वैधीकरण के लिये नये–नये तर्क सोच रखे थे। प्राक्कल्पना के ही अनुरूप परिणाम में देखा गया कि उच्च अभिप्रेरण अवस्था (Hight Motivation Condition) मनोवृत्ति की माप अर्थात् तीसरे समूह के सहभागियों द्वारा अधिक से अधिक नये तर्क दिये गये और लोगों ने यह भी कहा कि वे इन तर्को को अधिक से अधिक उपयोग करके दूसरे लोगों को प्रभावित करगें । इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनोवृत्ति से छवि अभिप्रेरण का कार्य जितना ही अधिक सम्पन्न होता है , उतना ही अधिक व्यक्ति अपने विचारों को समर्थित करने के लिये अधिक से अधिक तर्क प्रदान करने की कोशिश करता है ।

2.9 मनोवृत्ति की माप

समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा मनोवृत्ति को मापनें के लिये विभिन्न तरह की विधियों का प्रतिपादन किया गया है । मनोवृत्ति मापन का अर्थ होता है व्यक्ति में मनोवृत्ति की दिशा एवं उसकी मात्रा का पता लगाना मनोवृत्ति की दिशा का तात्पर्य है कि मनोवृत्ति यदि धनात्मक या ऋणात्मक होना है तथा मनोवृत्ति की मात्रा से तात्पर्य है कि मनोवृत्ति यदि धनात्मक है तो कितनी मात्रा में तथा ऋणात्मक है तो कितनी मात्रा में ।

मनोवृत्ति मापन के विषय में समाज मनोवैज्ञानिकों के द्वारा दो महत्वपूर्ण पूर्वकल्पनायें की गयी है जो इस प्रकार है –

(1) मनोवृत्ति मापन में यह पूर्व कल्पना की गयी है कि व्यक्ति का व्यवहार मनोवृत्ति की वस्तु या घटना के प्रति एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में संगत होगा । उदाहरण स्वरूप यदि कोई व्यक्ति दहेज प्रथा को नापसंद करता है तो हर परिस्थिति में वह उसे नापसंद ही करेगाा । इस ढग की संगति न रहने पर मनोवृत्ति को मापना संभव नहीं है ।

(2) मनोवृत्ति का मापन सीधे संभव नहीं है। फलतः इसका मापन परोक्ष रूप से होता है। इसलिये उस बात की पूर्व कल्पना की जाती है कि व्यक्ति के व्यवहारों एवं कथनों द्वारा ही उसकी मनोवृत्ति के बारे में अंदाज लगाया जा सकता है। समाजशास्त्रियों द्वारा मनोवृत्ति मापन के लिये जितनी विधियों का प्रयोग किया गया है उसके कैंपबल (Campbell, 1950) ने निम्न चार विस्तृत भागों में विभाजित किया है।

(i) अप्रच्छन्न संरचित विधि (Non Disguised structured Methods)

(ii) अप्रच्छन्न असंरचित विधि (Non Disguised Non-structured Methods)

(iii) प्रच्छन्न असंरचित विधि (Disguised non structured Methods)

(iv) अप्रच्छन्न संरचित विधि (Disguised structured Methods)

मनावृत्ति मापन की विधियाँ

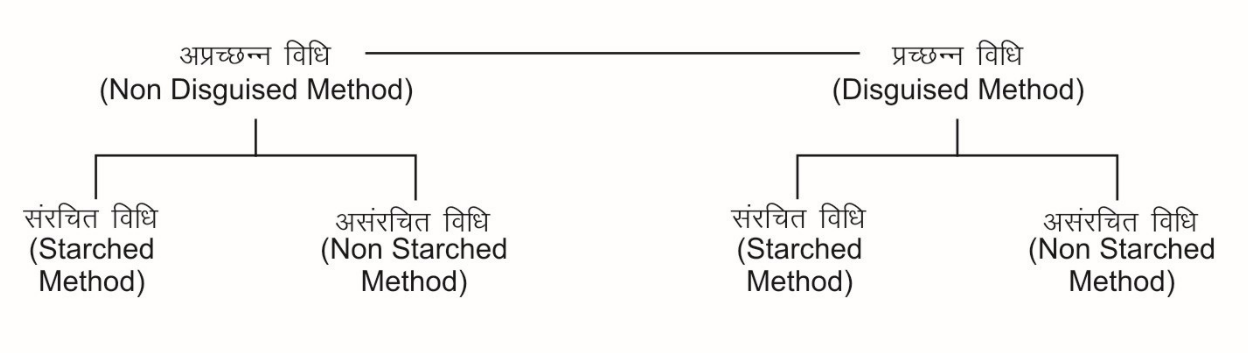

इन चारों तरह की विधियों का वर्णन इस प्रकार है–

1. अप्रच्छन्न संरचित विधि (**Non Disguised Structured Method**)

इस विधि में भिन्न प्रकार के आत्म–रिपोर्ट विधि आते है। आत्म रिपोर्ट वह विधि है जिसमें मनोवृत्ति मापन के लिये मनोवृत्ति पर वस्तु से संबंधित कुछ प्रश्न दिये होते हैं जिसे पढ़कर व्यक्ति स्वयं ही उसका उत्तर देता है। इस तरह की प्रश्नावली (**Questionnaine)** को मनोवृत्ति मापनी (**Attitude Scale**) मनोवृत्ति प्रश्नावली कहा जाता है। मनोवृत्ति मापनी में दिये गये प्रश्नों के आधार पर व्यक्ति की मनोवृत्ति मापी जाती है

मनोवृत्ति मापन के लिये मनोवृत्ति प्रश्नावली या मनोवृत्ति मापनी का प्रयोग समाजशास्त्रियों द्वारा काफी किया गया हैं। ऐसी मापनियों को निम्न 6 भागों में बाँटा गया है–

(i) थर्क्टन मापनी विधि (**Thurston Scaling Method**)

(ii) लिर्क्ट मापनी विधि (**Lickert's Scaling Method**)

(iii) बोगार्डस सामाजिक दूरी मापनी विधि (**Bogards Social Distance Scaling**)

(iv) गटमैन संचयी मापनी विधि (**Gutman Cumulative Scaling Merhod**)

(v) मापनी प्रभेदी विधि (**Scale Discrimination Techniqne**)

(vi) शब्दार्थ विभेदक मापनी विधि (**Semantic Different Scale Method**)

थर्स्टन मापनी विधि

(Thurstone's Scaling Method)

मनोवृत्ति मापने के लिये एल.एल. थर्स्टन (**L.L. Thurstone**) ने सबसे पहले मनोवृत्ति मापनी का प्रयोग किया। इन्होंने अपना एक महत्वपूर्ण शोध पत्र जिसका शीर्षक था ''मनोवृत्ति मापी जा सकती है (**Attitudes can be Measured**) सन् 1928 में प्रकाशित किया। उन्होंने उसमें एक विशेष मापनी विधि का विस्तृत वर्णन किया जिसे आज थर्स्टन मापनी विधि कहा जाता है। सामाजिक मनोवृत्ति के मापन के लिये थर्स्टन ने बहुत सारी मापनी प्रविधियों का प्रयोग किया है जिसमें समदृष्टि अंतराल विधि सबसे अधिक लोकप्रिय है।

समदृष्टि अंतराल विधि के द्वारा ही में 1929 में थर्स्टन व चेव (**Thustones Chove**) ने गिरिजाघर के प्रति मनोवृत्ति मापने के लिये एक मापनी भी तैयार की। इस मापनी विधि का प्रयोग का प्रयोग यह वीग्रो प्रजाति, जन्मविरोध आदि जैसी सामाजिक समस्याओं के प्रति मनोवृत्ति मापन में की गयी। थर्स्टन तथा चेव के अनुसार मनोवृत्ति मापन के लिये मापनी बनाने में निम्न चरण महत्वपूर्ण हैं–

(i) सबसे पहले मनोवृत्ति वस्तु से संबंधित महत्वपूर्ण कथनों की एक सूची तैयार की जाती है जो स्पष्ट मात्रा में लिखी होती है। इसमें अनुकूल कथन व प्रतिकूल कथन दोनों को समाहित किया जाता है। प्रारंभिक अवस्था में कथनों की कितनी संख्या होनी चाहिए इसके बारे में थर्स्टन ने कोई दिशा निर्देश नहीं दिये हैं परन्तु उन्होंने ज्यादातर 100–200 तक कथनों का ही प्रयोग किया है।

(ii) तैयार किये गये सभी कथनों को निर्णायकों के एक समूह को दे किया जाता है। निर्णायकों की संख्या कितनी है इसके बारे में कोई लिखित नियम नहीं है कथनों की सूची को निर्णायकों को देकर उनसे आग्रह किया जाता है कि वे प्रत्येक कथन को श्रेणी (**Interval**) में से किसी एक श्रेणी में रखते हुये छाँटते जाये इस श्रेणी में एक ओर अनुकूलता (**Favorableners**) तथा दूसरे छोर पर प्रतिकूलता तथ बीच में तटस्थता की बिंदुये है।

थर्स्टन द्वारा दो महत्वपूर्ण पूर्वकल्पनायें की गयी थीं जो इस प्रकार है–

(1) ये सभी श्रेणियों जिनमें कथनों को छाँटा जाता है मनोवैज्ञानिक रूप से समान होते है।

(2) निर्णायकों की अपनी मनोवृत्ति कथनों को छाँटने की प्रक्रिया को प्रभावित नहीं करती है। इसका मतलब यह हुआ कि जिस निर्णायक की अपनी मनोवृत्ति किसी कथन के प्रति अनुकूल है और जिस निर्णायक की अपनी मनोवृत्ति उसी कथन के प्रतिकूल व दोनों ही समान रूप से कथन की छाँटेंगे।

(3) तीसरे चरण में सभी कथनों को जब निर्णायकों द्वारा 11 श्रेणी में छाँट लिया जाता है तो प्रत्येक कथन की मापनी मूल्य ज्ञात किया जाता है। ग्यारह बिंदु मानी पर निर्णायकों द्वारा जो निर्णय या कोई (Rank) दिये जाते है उसकी माध्यिका अर्थात् एक तरह का औसत ज्ञात किया जाता है यही माध्यिका प्रत्येक कथन का मापनी मूल्य है।

(4) इसके बाद प्रत्येक कथन के लिये प्राप्त निर्णय या कोटि के आधार पर चतुर्थाकं मान ज्ञात किया जाता है। जिसे संक्षेप में कहा जाता है **Y Q** का मान अधिक होने से यह पता चलता है कि उस कथन को ग्यारह बिन्दु मापनी में छाँटने के संबंध में निर्णायकों में सहमति नही है फलतः ऐसे कथनों को रद्द कर दिया जाता है। **Q** का मान कम होने से यह पता चलता है कि करीब–करीब सभी निर्णायकों ने अमुक कथन की एक ही श्रेणी में रखा है।

(5) इसके बाद के चरण में कथनों की सशति ज्ञात की जाती है। इसके लिये बचे हुये सभी कथनों को प्रयोज्यों के एक समूह को दे दिया जाता है और उनसे यह कहा जाता है कि उन कथनों के आगे टिक (T) लगाते जायें। जिनसे वे सहमत हैं। कथन विशेष से सहमति प्रकट करने वाले प्रयोज्य यदि किसी ऐसे कथन के आगे भी टिक लगा देते हैं जिनका मापनी मूल्य सहमति प्रकट करने वाले कथन के मापनी मूल्य से काफी भिन्न होता है तो इस कथन विशेष को आंतरिक रूप से असंगत मानकर छाँट दिया जाता था परन्तु यदि किसी कथन विशेष से सहमति प्रकट करने का प्रयोज्य ने समान मूल्य के कथन को टिक किया या चिन्हित किया तो उस कथन को आंतरिक रूप से संगत मान लिया जाता है उसे मापनी में रखा जाता है।

(6) अंत में करीब 25 से 30 आंतरिक रूप से संगत कथनों को चुन लेता है और उसे अधिकतम सहमति से न्यूनतम सहमति के क्रम में सजा दिया जाता है।

थर्स्टन विधि द्वारा तैयार किये गये मनोवृत्ति में इस तरह से कुल 25 से 30 कथन लेते है जिस व्यक्ति की मनोवृत्ति की माप करनी है उसे इन सभी कथनों को दिया जाता है और जिन कथनों से वे सहमत हैं उन पर सही का चिन्ह (T) तथा जिन कथनों से वे असहमत हैं उन पर (X) का चिन्ह लगाने के लिये उनसे कहा जाता है सभी सहमत कथन के मापनी मूल्य का औसत ज्ञात किया जाता है जिसके आधार पर उस व्यक्ति की मनोवृत्ति की माप होती है। यह औसत मान जितना ही अधिक होता है (अधिकतम ग्यारह हो सकता है) व्यक्ति की मनोवत्ति उतनी ही अनुकूल मानी जाती है तथा जितना ही औसत मान कम होता है व्यक्ति की मनोवृत्ति प्रतिकूल मानी जाती है।

थर्स्टन तथा चेव विधि के गुण व दोष :–

गुण –

1. इस विधि में कथनों की छँटनी ग्यारह बिन्दु में रखकर की जाती है। फलसरूप , इससे बनने वाली मापनी में मनोंवृत्ति मापन की क्षमता अधिक तीव्र होती हैं।
2. यह विधि सरल व सुगम है। इस विधि द्वारा हम यह समझ लेते हैं कि व्यक्ति की मनोवृत्ति अध्ययन की जाने वाली विषय के अनुकूल है या प्रतिकूल।

अवगुण –

1. फ्रैन्सर्थ के अनुसार थर्स्टन की यह पूर्वकल्पना की निर्णायकों द्वारा सभी ग्यारह श्रेणियों को मनोवैज्ञानिक रूप से समान समझा जाता हैं सही नही है।
2. थर्स्टन विधि की दूसरी पूर्वकल्पना है कि निर्णायकों की अपनी मनोवृत्ति है। छॅटवी कार्य को नही प्रभावित करती है परन्तु होवलोंड तथा शेरीफ नें अपने –अपने अध्ययनों में यह स्पष्टतः पाया कि निर्णायकों की मनोवृत्ति द्वारा कथनों की छँटनी प्रभावित होती हैं।

3. कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे एडवर्डज का कहना है कि थर्स्टन नें अपने मापनों विधि में अत्यधिक भेदमूलक कथनों को चुनने का कोई वैधानिक तरीका नही बताया है।
4. कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों का यह है कि थर्स्टन विधि मनोवृत्ति मापनी बनाने में काफी समय व धन खर्च होता हैं।

लिकर्ट मापनी विधि

लिकर्ट **(Lickert] 1923) (Method of summated Rating)** ने एक मापनी विधि का निर्माण किया जिसको संचयी मूल्यांकन विधि कहते है। यह विधि लिकर्ट स्केल के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस विधि का निर्माण साम्राज्यवाद, अंर्तराष्ट्रीयता तथा निग्रो के **प्रतिवृत्ति** को मापने के लिये किया गया। बाद में इस प्रकार के स्केल द्वारा किसी भी वस्तु के प्रति मनोवृत्ति का मापन होने लगा।

लिकर्ट स्केल के निर्माण के चरण :– प्रथम चरण में मनोवृत्ति वस्तु से संगत कथन पर्याप्त संख्या में एकत्रित किये जाते है। कथनों का चयन करते समय सावधानी बरती जाती हैं। कि धनात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार के कथन हो और उनका संबंध वस्तुतः एस मनोवृत्ति से हो जिसको मापने के लिये उनका चयन किया जा रहा है। लिकर्ट नें इस प्रकार के 90 कथनों का निर्माण किया।

दूसरे चरण में सभी कथनों को प्रयोज्यों के एक समूह को दिया जाता है और उनसे यह बतलाने को कहा जाता है कि किन– किन कथनों को पूर्णतः स्वीकृत ,अनिश्चित अस्वीकृत तथा पूर्णतः अस्वीकृत करते हैं। इस प्रकार लिकर्ट ने प्रयोज्यों की एक प्र्याप्त संख्या में कुल 90 कथनों के प्रति 5 बिन्दुस्केल पर निर्णय लिया।

तीसरे चरण में प्रत्येक प्रयोज्य की प्रतिक्रियाओं के आधार पर अंक निर्धारित किये जाते है। अनुकूल कथनों के लिये 5, 4, 3, 2 तथा 1 के क्रम में और प्रतिकूल कथनों के लिये 1, 2, 3, 4 व 5 क्रम में अंक दिये जाते है। सभी कथनों के अंको को जोडकर कुल अंक प्राप्त किया जाता हैं।

चौथे चरण में एकांश विश्लेषण किया जाता है। इसके लिये प्रत्येक एकांश पर प्राप्त अंक तथा कुल एकांशों पर प्राप्त अंक के बीच सहसंबंध निकाला जाता है। उच्च सहसंबंध वाले को रखा जाता है और निम्न सहसंबंध वाले एकांशों को निकाल दिया जाता है। लिकर्ट नें एकांश विश्लेषण का उपयोग करके अपने विधि को थर्सटन स्केल से श्रेष्ठ बनाने का सफल प्रयास किया है।

पाँचवें चरण में असंगत कथनों को छाँटकर तथा संगत कथनों को मिलाकर स्केल को अंतिम रूप दिया जाता है। लिकर्ट स्केल द्वारा मनोवृत्ति मापने के लिये प्रयोज्य या उत्तरदाता से कहा जाता है कि वह प्रत्येक कि कथन के सामने अंकित 5 विकल्पी उत्तरों अर्थात पूर्णतः सहमत, असहमत, अनिश्चित, असहमत, पूर्णतः

असहमत में से चुनकर किसी एक उत्तर पर निशान लगा दे। अनुकूल कथन में पूर्णतः सहमत के लिये 5 है सहमत के लिये 4 अनिश्चित के लिये 3असहमत के लिये 2 तथा पूर्णतः असहमत के लिये अंक दिया जाता है। इसके विपरीत प्रतिकूल कथन में क्रमश 1,2,3,4 तथा 5 अंक दिया जाता हैं।

सभी कथनों पर प्राप्त अंकों के योगफलो प्रयोज्य की मनोवृत्ति का पता चल जाता हैं।

मूल्यांकन–

गुण –

1. लिकर्ट स्केल वास्तव में शोधकर्ता के दृष्टिकोण से बहुत सरल तथा आसान है। इस विधि के निर्माण में समय तथा श्रम की बचत होती है और कोई विशेष कठिनाई नही होती है। इसलिये शोधकर्ता थर्स्टन स्केल की अपेक्षा लिकर्ट स्केल का व्यवहार अधिक करते हैं।
2. इस विधि में निर्णायकों से निर्णय नही लिया जाता है बल्कि कथनों का सीधा व्यवहार प्रयाज्यों पर किया जाता है। अतः कथनों का चयन निर्णायको की मनोवृत्तियों के प्रभाव से मुक्त होता हैं। इसलिये कथनों के तटस्थ एवं निष्पक्ष होने की संभावना अधिक होती है। इस आधार पर भी यह विधि थर्सटन स्केल से बेहतर हैं।
3. क्रेच आदि के अनुसार इस विधि में एकांश विश्लेषण का प्रावधान है जिस कारण यह विधि थसर्टन विधि से श्रेष्ठ बन गयी है। यहॉ प्रत्येक एकांश पर प्राप्त अंक तथा कुल एकांशों पर प्राप्त अंको के बीच सहसंबंध निकाला जाता है। जिसके आधार पर अत्यधिक भेदां मूलक एंकांशो का चयन कर संभव होता हैं।

   यद्यपि थर्स्टन विधि की विश्वसनीयता असंतोषजनक नही है फिर भी लिकर्ट विधि की विश्वसनीयता अपेक्षाकृत अधिक है। थर्स्टन विधि की विश्वसनीयता 20 एकांश के प्रारूप में 0.52 से 0.80 तथा 40 एकांश के प्रारूप में 0.68 से 0.89 तक है। दूसरी ओर लिकर्ट विधि की विश्वसनीयता 14 एकांश के प्रारूप से 0.74 से 0.97 तथा 26 एकांशो के प्रारूप में 0.81 से 0.90 तक हैं।

   लिकर्ट विधि से मनोवृत्ति की दिशा तथा मात्रा दोनों का मापन संभव होता हैं जो थर्स्टन विधि से संभव नही है। इस विधि का यह एक बड़ा गुण है।

दोष –

थर्स्टन विधि की ही तरह लिकर्ट विधि भी आत्मनिष्ठ विधि है मनोवृत्ति मापते समय इस बात की संभावना बनी रहती है कि प्रयोज्य सही बात को छिपाकर गलत प्रतिक्रिया व्यक्त करे। ऐसी हालत में मनोवृत्ति का मापन नही हो पाता हैं।

लिकर्ट विधि पर एक आरोप यह भी लगाया जाता है कि इसमें निर्णायकों की मदद नहीं ली जाती है। इसलिये प्रयोज्यों द्वारा एकांशों के छूट जाने तथा असंगत एकांशों के चुने जाने की संभावना बढ़ जाती है। कारण, प्रयोज्य में अनुभव एवं प्रशिक्षण का अभाव रहता हैं इसके अलावा शोधकर्ता या स्केल बनाने वाले की मनोवृत्तियो तथा पक्षपातों के प्रभाव भी कथनों के चयन पर पड सकता है।

क्रेच आदि के अनुसार लिकर्ट स्केल का एक गंभीर दोष यह हे कि इसमें अधिक अंक पाने वाले व्यक्ति स्केल के एक छोर पर तथा कम इंक पाने वाले व्यक्ति दूसरे छोर पर होते है। मध्यम अंक पाने वाले व्यक्ति की मनोवृत्तियों का मूल्यांकन कठिन हो जाता है कारण, मध्य बिन्दु पर पडने वाला अंक दो परिस्थितियों में पाया जा सकता है। कुछ स्थानों पर पूर्णतः अनुकूल तथा कुछ स्थनों पर पूर्णतः प्रतिकूल स्थान प्राप्त होने की स्थिति में तथा सभी कथनों पर लगभग तट स्थान प्राप्त कर ने की स्थिति में इन दोनों अवस्थाओं में स्पष्टतः मध्य बिन्दु का मनोवैज्ञानिक अर्थ भिन्न होगा।

लिकर्ट स्केल की वैधता थर्स्टन स्केल की तरह सीमित है। क्रेच आदि के अनुसार लिकर्ट स्केल में भी केवल घटक वैधता पायी जाती है। इसमें भविष्यवाणी वैधता का अभाव हैं।

थर्स्टन तथा लिकर्ट विधि में तुलना

थर्स्टन स्केल तथा लिकर्ट स्केल मनोवृत्तियों को मापने की दो प्रधान मापनी प्रविधियाँ हैं। इन दोनो विधियाँ के बीच कुछ समानतायें और कई विभिन्नतायें हैं इनकी प्रमुख समानतायें निम्न है –

1. थर्स्टन तथा लिकर्ट विधियाँ दोनो वास्तव में मापनी – विधियाँ है।
2. दोनों विधियों में कथनों की संख्या लगभग बराबर रहती है। (20 से 25 तक)
3. दोनों विधियों में कथनों के चयन हेतु कुछ विशिष्ट सांख्यिकी पद्धतियों का व्यवहार किया जाता हैं।
4. दोनों विधियों में विश्वसनीयता संबंध बहुत कम अंतर हैं।
5. दोनों विधियों की वैधता सीमित है।
6. व्यवहारिक महत्व के दृष्टिकोण से दोनो में बहुत समानता पायी जाता है। दोनों के परिणाम लगभग समान होते हैं। अतः व्यवहारात्मक विज्ञानों में इन दोनों विधियों का उपयोग किया जाता हैं।

भिन्नतायें –

थर्स्टन स्केल तथा लिकर्ठ स्केल में उपर्युक्त समानताओं के बावजूद निम्नलिखित अंतर है।–

1. रचना संबंधी अंतर –

- थर्सटन विधि में 130 कथन तैयार किये जाते हैं, जिन में कुछ धनात्मक तथा कुछ नकारात्मक होते है। इनमें से 20 –27 संगत कथनों का चयन कर लिया जाता है। दूसरी ओर लिकर्ट विधि में 90 कथन बनाये जाते हैं लिमें कुछ अनुकूल तथा प्रतिकूल कथन होते है। इनमें से 20–25 संगत कथनों को चुन लिया जाता है।
- थर्सटन स्केल 11 बिन्दु स्केल है जबकि लिकर्ट स्केल केवल 5 बिन्दु स्केल है थर्सटन स्केल के कथनों का वर्गीकरण ग्यारह बिन्दु स्केल पर तथा लिकर्ट स्केल में पाँच बिन्दु स्केल पर किया जाता है।
- थर्स्टन विधि में कथनों के वर्गीकरण के लिये निर्णायकों की मदद ली जाती है परन्तु लिकर्ट विधि में निर्णायकों की आवश्यकता नही पड़ती है। बल्कि कथनों का सीधा उपयोग प्रयोज्यों पर किया जाता हैं।

2. **चयन कार्यविधि में अंतर –**

इन दोनों विधियों में कथनों के चयन की कार्य विधि में अंतर पाया जाता है।

- थर्स्टन विधि में कथनों का चयन स्केल – मूल्य तथा चतुर्थक मूल्य के आधार पर किया जाता है। दूसरी ओर लिकर्ट विधि में कथनों का चयन एकोश विश्लेषण अथवा E- value के आधार पर किया जाता हैं।
- थर्स्टन विधि में कथनों के निर्माण के साथ–साथ इनका चयन भी काफी कठिन है जिसमें अधिक समय लगता है अधिक परिश्रम करना होता है। अधिक खर्च पड़ता है। लेकिन लिकर्ट विधि के कथनों का निर्माण या चयन अपेक्षाकृत सरल है। इसमें समय, श्रम, तथा खर्च की बचत होती हैं।

3. **संचालन में अंतर** :– थर्स्टन विधि में प्रयोज्य से कहा जाता है कि यह प्रत्येक कथन के संबंध में अपनी प्रतिक्रिया हाँ, नहीं या अनिश्चित पर निशान लगाकर व्यक्त करें। दूसरी ओर लिकर्ट विधि में प्रयोज्य को अपकी प्रतिक्रिया पूर्णतः सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत, या पूर्णतः असहमत पर निशान लगाकर देना पड़ता है। अतः प्रयोज्य या सूचनादाता के दृष्टिकोण से लिकर्ट विधि अर्पक्षाकृत कठिन हैं।
4. **फलांक में अंतर** '– लिकर्ट स्केल में प्रयोज्य द्वारा स्वीकृत कथनों के औसत या मध्यांक के आधार पर फलांक प्राप्त किया जाता है। लेकिन लिकर्ट स्केल में अनुकूल कथनों में विकल्पी उत्तरों के क्रम में 5,4,3,2,तथा 1 और प्रतिकूल कथनों में क्रमशः 1, 2, 3, 4 तथा 5 अंक दिये जाते है और उनके योगफल को कुल फलांक माना जाता हैं।

उपयोगिता में अंतर :–

उपयोगिता के दृष्टिकोण से भी लिकर्ट तथा थर्स्टन विधियों में अंतर है। थर्स्टन विधि में निर्णायकों के उपयोग के काण कथनों के पक्षपातपूर्ण होने की संभावना अधिक रहती है। यह दोष लिकर्ट विधि में नही है। अतः थर्स्टन विधि की अपेक्षा लिकर्ट विधि अधिक वस्तुनिष्ठ तथा उपयोगी है।

लिकर्ट विधि में प्रत्येक कथन पर प्राप्त अंक तथा कुल कथनों पर प्राप्त अंक के बीच सहसंबंध निकालकर एकांश विश्लेषण किया जाता है। जिससे अत्यधिक भेदी मूलक उकांश को ढूँढ निकालना संभव होता है। इस आधार पर भी लिकार्ट विधि बेतिर है।

थर्स्टन विधि की अपेक्षा लिकर्ट विधि की विश्वसनीयता अधिक है। क्रेच नें भी इस विचार का समर्थन किया है।

थर्स्टन विधि से मनोवृत्ति की दिशा का मापन होता है जबकि जिकर्ट विधि से दिशा तथा मात्रा दोनों का मापन संभव होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इन दोनों विधियों में कई मौलिक अतर हैं।

बोगार्डस सामाजिक दूरी मापनी

बोगार्डस नें विभिन्न राष्ट्रीयता के लोगों के प्रति मनोवृत्ति मापने के लियें सर्वप्रथम एक स्केल का निर्माण किया, जिसको सामाजिक दूरी मापनी कहते है। यह बोगार्डस स्केल के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह मापनी इस विश्वास पर आधारित है कि कुछ राष्ट्रीयता के लोग एक दूसरे से घनिष्ठ संबंध रखते हैं। और सामाजिक दूरी कम होती है और कुछ राष्ट्रीयता के लोग एक दूसरे से थोडा संबंध रखते है। और सामाजिक दूरी अधिक होती है।

बोगार्डस नें स्केल बनाने के लिये राष्ट्रीयता विशेष के संबंध में कुछ ऐसे कथनों का कनर्माण किया जिनसे उस राष्ट्रीय के प्रति स्वीकृत की मात्रा का बोध होता था। स्वीकृत की मात्रा से अनुकूल मनोवृत्ति की मात्रा का बोध होगा ऐसा विश्वास किया जायेगां इस प्रकार के सात कथनों का निर्माण किया गया और प्रयोज्यों को विभिन्न प्रजातियों तथा देश को अपने मनोभावों (मित्रता तथा शत्रुता, प्रेम या घृणा) के आधार पर वर्गीकरण करने के लिये कहा गया। इसी वर्गीकरण से प्रयोज्य की प्रजाति विशेष या राष्ट्र विशेष के प्रति मनोवृत्ति की जानकारी होती है।

उदाहरण –

मान लिया जाये कि हम सिक्खों के प्रति हिन्दूओं की मनोवृत्ति मापना चाहते है। इसके लिये बोगार्डस स्केल पर निम्न कथन बनाये जायेगें तथा प्रयोज्य से यह कहा जायेबा कि ''मैं अपनी भावना तथा प्रथा प्रतिक्रिया स्वरूप अपनी इच्छा से सिक्खों को निम्न में से चिहित वर्गो में रखना चाहूँगा।''

- विवाह द्वारा निकट संबंधी के रूप में
- अपने क्लास में खास दोस्त के रूप में

- अपने मुहल्ले में पडोसी के रूप में
- अपने व्यवसाय में नौकरी देकर अपने देश में नागरिक के रूप में
- अपने देश में केवल अतिथि के रूप में
- अपने देश से निकाल बाहर करूँगा।

इस मापनी द्वारा प्रजाति या राष्ट्र के प्रति मनोवृत्ति को बहुत आसानी से मापा जा सकता है। प्रयोज्य की स्वीकृत से की संख्या सें उसकी मनोवृत्ति का बोध होता है। यदि प्रयोज्य सिक्ख प्रजाति को प्रथम वर्ग में स्वीकार करता है तो उससे उस प्रजाति के प्रति बहुत अधिक अनुकूल मनोवृत्ति का बोध होता है और यदि सातवें वर्ग में स्वीकार करता है तो बहुत अधिक प्रतिकूल मनोवृत्ति का बोध होता है।

गुण –

1. अन्य मापनी विधियों की सपेक्षा बोगार्डस मापनी विधि अधिक सरल, व्यवहारिक तथा रूचिकर है।
2. इसके द्वारा किसी एक प्रजाति या राष्ट्रों के प्रति विभिन्न प्रजातियों या राष्ट्रों की मनोवृत्ति को मापना संभव होता है।
3. इसके द्वारा विभिन्न प्रजातियों या राष्ट्रों के प्रति व्यक्ति विशेष की मनोवृत्तियों का तुलनात्मक मापन संभव होता है।
4. भारतीय संस्कृति में मानव जातिय पूर्वधारणा की समस्या बहुत गंभीर है। अतः विभिनन प्रजातियों, वर्गो तथ सप्रदायों के बीच पारस्परिक प्रतिक्रियाओं के अध्ययन में यह स्केल उपयोगी प्रतीत होता है।
5. इसकी विश्वसनीयता सामान्य सामाजिक दूरी के लिये काफी संतोषजनक हैं।

दोष –

- इस स्केल के सभी सात वर्गो के बीच समान दूरी नही है।
- इसकी मापनी में सांख्यिकीय शुद्धता की कमी है।
- इस मापनी की वैधता सीमित है।
- सभी परिस्थितियों में अथवा सभी प्रकार की मनोवृत्तियों का मापन इस विधि से संभव नहीं हैं।

गटमैन स्केलोग्राम विश्लेषण विधि

गटमैन (Gutmann, 1944) ने मनोवृति मानव के लिये एक मापनी विधि का निर्माण किया, जिसकी स्केलोग्राम विश्लेषण विधि कहते हैं। यह विधि थर्स्टन स्केल तथा लिकर्ट से बिल्कुल भिन्न है। लेकिन, बोगार्डस स्केल के बहुत कुछ समान हैं। में जब एक प्रयोज्य किसी दूसरी प्रजाति के किसी व्यक्ति को स्केल की एक श्रेणी में

स्वीकार कर लेता है। तो उसी तरह की दूसरी श्रेणियों पर भी उसकी स्वाभविक स्वीकृति समझा लिया जाता है। इसी तरह गेटमैन स्केल में क्रमानुसार व्यवस्थित कथनों में से क्रम संख्या 3 (अत्यधिक लोकप्रिय कथन) के प्रति जब प्रयोज्य अपनी सहमति दिखलाता है तो उसकी सहमति स्केल की क्रम संख्या 2 तथा 1 के प्रति भी स्वभाविक रूप से सहमति समझ लिया जाता है।

उदाहरण –

- मेरा वजन 100 पाउड से अधिक है।
- मेरा वजन 120 पाउंड से अधिक हैं।
- मेरा वजन 140 पाउंड से अधिक है।

यदि कोई प्रयोज्य इन कथनों में से तीसरे कथन से सहमति प्रकट करता है तो वह निश्चय ही दूसरे तथा पहले कथन से भी सहमति जाहिर करेगा। ठीक इसी तरह गटमैन स्केल से मनोवृत्ति की एक बिमा का मापन होता है, इसी कारण गटमैन स्केल को एक बिमात्मक मापनी कहते है।

मूल्यांकन –

इस विधि का गुण यह है कि यदि किसी व्यक्ति का संपूर्ण अंक मालूम हो तो सभी कथन को फिर से संरचित किया जा सकता है। क्रेच आदि के अनुसाद गटमैन स्केल की विश्वसनीयलगभग .85 है। फिर भी इस विधि की उपयोगीतायें काफी सीमित हैं।

1. यहॉ कथन के चयन में प्रतिनिधित्व की समस्या पर ध्यान नही दिया जाता है
2. इस विधि में पूर्ण पुनरूत्पादकता संभव नही है।
3. इस विधि में घटक वैधता संभव नही है।

मापनी – विभेदन प्रविधि

इस विधि का प्रतिपादन एडवार्डस तथा किलपैट्रिक ने किया। इस विधि में थर्स्टन ,लिकर्ट तथा गटमैन द्वारा बताये सोपान को मिलाकर नयी मापनी तैयार की जाती है। अतः इस विधि की मौलिकता उतनी अधिक नही इस विधि द्वारा मनोवृत्ति मापनी बनाने में कनहित प्रमुख सोपान निम्न है।

1. मनोवृत्ति वस्तु से संबंधित बहुत सारे एकांशा को तैयार कर लिया जाता है। जिसका उत्तर सहमत असहमत श्रेणियों में देना होता है।
2. थर्स्टन विधि के समान इन एकांशो को कुछ निणायकों को इस प्रार्थना के साथ दे दिया जाता है कि वे इन्हें अनुकूलता की मात्रा के अनुसार भिन्न– भिन्न श्रेणियों में छाँट दें।

3. संगत रूप से नही छाँट गये एकांशों को अस्पष्ट समझकर हटा दिया जाता हैं। बाकी बचे हुये एकांशें को अनुक्रिया विकल्प में तैयार किया जाता है। ये 6 श्रेणियॉ इस प्रकार की पूर्णतः सहमत, सहमत, थोडा सहमत, थोडा असहमत, असहमत तथा पूर्णतः असहमत।
4. इसके बाद इन सभी सैसे एकांशों को प्रयोज्यों के एक नये समूह पद क्रियान्वित किया जाता है। प्रत्येक प्रयोज्य अपनी मनोवृत्ति की अनुकूलता के अनुसार प्रत्येक एकांश पर अपनी प्रतिक्रिया इन 6 विकल्पों में से किसी एक विकल्प को चुनकर करता है। अनुक्रियाओं का अंकन करके उन्हें एक साथ का अंकन करके उन्हें एक साथ जोड़कर कुल प्राप्तांक ज्ञात कर लिया जाता है और इसी कुल प्राप्तांक के आधार पर लिकर्ट विधि के समान पद लिकर्ट विधि के समान एकांश विश्लेषण किया जाता है एकांश विश्लेषण के मूलभेदक एकांशों को चुन लिया जाता है।

चुन लिये गये एकांशों को गटमैन की संचयी मापनी विधि द्वारा एक विभीय बगया जाता है, इसके बाद मनोवृत्ति मापनी को तैयार माना जाता है। स्पष्ट है कि इस मापनी विभेदन प्रविधि में थर्स्टन विधि लिकर्ट विधि तथा गटमैन विधि का एक अनुपम संगम देखने को मिलता है। ऐसे तो यह विधि काफी व्यापक है परंन्तु मनोवृत्ति मापन के क्षेत्र में इसकी लोकप्रियता बहुत अधिक नहीं है।

शब्दार्थ–विभेदक मापनी

शब्दार्थ – विभंदक मापनी का प्रतिपादन औसगुड सुसी तथा टावेनवॉम द्वारा किया गया क्षा। इस मापनी का प्रतिपादन वस्तुओं के गुणार्थक अर्थ को मापने के लिये किया गया था। गुणात्मक अर्थ से तात्पर्य वस्तुओं द्वारा व्यक्ति में उत्पन्न की गयी संवेगात्मक प्रतिक्रिया से होता है। उदाहरणार्थ सॉप शब्द सुनकर यदि किसी व्यक्ति के मन में कुछ खास'खास संवेगात्मक प्रतिक्रियायें जैसे खतरनाक गंदा आदि उत्पन्न होती है, तो इसे सॉप का गुणार्थक अर्थ कहते हैं। औसगुड एवं उनके सहयोगियों का कहना था कि चूँकि किसी वस्तु के गुणात्मक अर्थ द्वारा उस व्यक्ति की मनोवृत्ति का भी पता चल जाता है। अतः गुणात्मक अर्थ को मापकर हम व्यक्ति की मनोवृत्ति को भाप कर सकते है।

शब्दार्थ– विभेदक मापनी में वस्तुओं के गुणार्थक अर्थ को मापने के द्विधुवीय विशेषण की एक श्रृंखला तैयार की जाती है जो प्रायः 7 बिन्दु मापनी द्वारा पृथक रहती है। इन विशेषणों द्वारा मनोवृत्ति वस्तु के प्रति मनोवृत्ति की तीन मूल विभाओं को बतलाया जाता है।

शक्ति (**Potency or P**)

मनोवृत्ति वस्तु में कितनी शक्ति या भौतिक आकर्षण है।

मूल्यांकन (**Evaluation or E**)

मनोवृत्ति वस्तु में कितनी अनुकूलता या प्रतिकूलता है।

क्रिया (**Activity or A**)

मनोवृत्ति वस्तु में गति होने की मात्रा कितनी है। शक्ति को कुछ खास–खास विशेषण युग्म जैसे मजबूत–कमजोर बड़ा–छोटा कड़–मुयायम आदि द्वारा शब्दार्थ विभेदक मापनी में दिखलाया जाता है। मूल्यांकन को इसी तरह कुछ खास विशेषण युग्म तैसे अच्छा–बुरा, साफ–गंदा, ईमानदार–बईमान आदि द्वारा मापनी में दिखलाया जाता है। क्रिया को कुछ अन्य विशेषण युग्मों जैसे सक्रिय–निष्क्रय, तेज–धीमा, गर्म–ठँडा द्वारा दिखलाया जाता है। इन तीनों तरह के विशेषण –युग्मों को मिलाकर करीब 40 से 50 युग्म तैयार कर लिये जाते है। मनोवृत्ति वस्तु को 7 बिन्दु मापनी के बीच में लिख दिया जाता है तथा प्रयोज्य जिसकी मनोवृत्ति मापी जा रही से यह कहा जाता है कि मनोवृत्ति वस्तु को ध्यान में दखकर दिये गये सात बिन्दु मापनी के किसी बिन्दु पर आप जहाँ आप ठीक समझते हैं चिन्ह लगाते जाये।
शब्दार्थ विभेदक मापनी का उदाहरण निम्न है–

पुलिस

अच्छा	बुरा
ईमानदार	बेईमान
निष्क्रिय	सक्रिय
मजबूत	कमजोर
तेज	धीमा
कड़ा	मुलायम

प्रत्येक विशेषण युग्म के बिंदु मापनी पर प्रयोज्य द्वारा रेटिंग का अंकन जो 1 से 7 तक का होता है कर उसे जोड़ दिया जाता है और उसका माध्य ज्ञात कर मनोवृत्ति वस्तु के प्रति व्यक्ति की मनोवृत्ति का पता लगाया जाता है।
शब्दार्थ विभेदक मापनी के कुछ गुण अवगुण निम्न है–

गुण –

(i) इस विधि द्वारा मनोवृत्ति वस्तु के प्रति व्यक्ति की मनोवृत्ति की माप करने में काफी समय नहीं लगता है।

(ii) किसी दो या दो से अधिक वस्तूुओं के प्रति एक ही व्यक्ति के मनोवृत्तियों की तुलना करने में इस विधि से आसान और उपयोगी कोई अन्य विधि नहीं है।

अवगुण–

शब्दार्थ विभेदक मापनी का सबसे बड़ा अवगुण यह है कि इसमें जा विशेषणों का युग्म तैयार किया जाता है, वह शत–प्रतिशत उपयुक्त नही होता है। फलतः इसके आधार पर मापी गयी मनोवृत्ति की वैधता पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता है। कुछ विशेषज्ञों का मत है कि इस मापनी पर प्रयोज्यों द्वारा दी यथा अनुक्रियायें मात्र सतही होती हैं।

मनोवृत्ति मापनी के बारे में सामान्य निष्कर्ष :– मनोवृत्ति मापन के लिये सामाजिक, मनोवैज्ञानिक , समाजशास्त्रियों एवं अन्य विशेषज्ञों ने भिन्न–भिन्न तरह की मनोवृत्ति मापने का निर्माण किया है। इन विभिन्न मापनियों में थर्स्टन विधि, लिकर्ट विधि तथा गटमैन विधि की उपयोगिता काफी अधिक है।

अप्रच्छन्न संरचित विधि

इस विधि द्वारा भी मनोवृत्ति की माप सीधे अर्थात अप्रच्छन्न रूप से होती है। इस विधि को अप्रच्छन्न संरचित विधि इसलिये कहा जाता है क्योंकि इसमें आने वाली प्रविधियों जैसें साक्षात्कार तथा जीवन संबंधी टिप्पणी या लेख विश्लेषण आदि कुछ ऐसी है जिनमें शोधकता को एक निश्चित औपचारिक नियम को नही मानना पड़ता है।

1. **सर्वे साक्षात्कार** :– कुछ समाज मनावैज्ञानिकों के अनुसार सभी मनोवृत्ति मापनियों का एक सामान्य दोष यह है कि उनके द्वारा मनोवृत्ति की माप तभी की जा सकती है जब व्यक्ति जिसकी मनोवृत्ति की माप की जाने वाली है सामने उपस्थित है। परन्तु सामाजिक विज्ञान में अनेक ऐसी परिस्थितियॉ आती है जिनमें शोधकर्ता व्यक्तियों से दूर–दराज होता है और उनकी मनोवृत्तियों को मापना भी आवश्यक होता हैं। इस तरह की मॉग की पूरा करने के लिये समाज मनीवैज्ञानिकों द्वारा सर्वे साक्षात्कार का प्रतिपादन किया गया हैं।

   सर्वे साक्षात्कार में शोधकर्ता बड़ी जनसंख्या से प्रतिनिधि प्रतिदर्श को चुनकर पहले से निमित प्रश्नों को एक–एक करके पूछता है। प्रायः ये प्रश्न दो तरह के होते हैं।

निश्चित – वैकल्पिक प्रश्न

मुक्त प्रश्न

निश्चित – वैकल्पिक प्रश्न मे व्यक्ति को दिये गयें निश्चित विकल्प में से प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देना होता है।

मुक्त प्रश्न में प्रश्नों का उत्तर व्यक्ति मुक्त शब्दों या वाक्यों में देता है।

जीवन संक्षिप्त टिप्पणीयाँ एवं लेख विश्लेषण – इस विधि में आत्ममकथा जीवनी, लिखित या मौखिक साक्षात्कार में व्यक्ति द्वारा किये गये मतों का विश्लेषण करके मनोवृत्ति की माप की जाती है। लिखित साक्षात्कार में व्यक्ति को मनोवृत्ति वस्तु से संबंधित लेख लिखने के लिये दिया जाता है जिसका विश्लेषण करके व्यक्ति की मनोवृत्ति की माप की जाती ।

प्रच्छन्न असंरचित विधि

प्रच्छन्न विधि में व्यक्ति को यह पता नही होता है कि उनकी अनुक्रियाओं द्वारा उसकी मनोवृत्ति की माप की जायेगी। अतः इस विधि में मनोवृत्ति की माप परोक्ष रूप से होती है।

अप्रच्छन्न असंरचित विधि में मनोवृत्ति मापन की उस विधियों को सम्मिलित किया गया है जो मनोवृत्ति की माप अस्पष्ट एवं असंरचित परिस्थिति के प्रति अनुक्रिया द्वारा परोक्ष रूप से करती है। प्रक्षेणी प्रविधि इसका सबसे प्रमुख उदाहरण है मूलतः इस विधि का प्रयोग व्यक्तित्व के शीलगुणों एवे आवश्यकताओं को मापने के लिये किया जाता है। T.A.T, रोशार्क परीक्षण, शब्द साहचर्य परीक्षण आदि प्रक्षेपी प्रविध के प्रमुख उदाहरण है इन प्रक्षेपी प्रविधियों के समान ही समाज मनोवैज्ञानिकों ने मनोवृत्ति मापने के लिये एक प्रक्षेपी परीक्षण का निर्माण किया जिसमें कई कार्ड पर ऐसी तस्वीरें बनायी गयी जिसमें ऐसा लगता है कि संघर्षात्मक परिस्थिति में व्यक्ति कुछ कर रहा है। प्रत्येक तस्वीर को देखकर व्यक्ति को एक कहानी लिखना होता है। इसके बाद, तीन निर्णयकों द्वारा प्रत्येक कहानी में मजदूरों के प्रति दिखलायी गयी मनोवृत्ति में अनुकूलता या प्रतिकूलता की मात्रा के अनुसार उसे विभिन्न श्रेणियों में छॉट दिया जाता है। अपने अध्ययन में प्रोशैन्सकी ने निर्णायको द्वारा व्यक्त की गयी मनोवृत्ति तथा तस्वीर के प्रति दी गयी अनुक्रियाओं में काफी सहमति पायी जिससे साबित होता है कि प्रोशेन्सकी की विधि द्वारा व्यक्ति की मनोवृत्ति की माप की जा रही है। हेर (Haire, 1940) ने इस विधि के सहारे कॉफी के प्रतिगृह पत्नियो की मनोवृत्तियों को सफलता पूर्वक मापा है।

प्रक्षेपी विधि द्वारा मनोवृत्ति मापन का सबसे बड़ा गुण यह है कि इसमें व्यक्ति द्वारा किसी प्रकार की नकली अनुक्रिया नहीं की जाती है क्योंकि व्यक्ति को यह पता ही नहीं होता कि उसकी अनुक्रिया द्वारा उसकी मनोवृत्ति की भी माप होगी। इसका पहला अवगुण यह है कि कभी–कभी व्यक्ति द्वारा तैयार की गयी कहानी इतनी अस्पष्ट होती है कि निर्णायकों के लिये किसी प्रकार का निर्णय लेना संभव नहीं हो पाता है। दूसरा अवगुण है कि कथनी के आधार पर मनोवृत्ति की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता के बारे में निर्णय करते समय निर्णायक अपने व्यक्तिगत पूर्वाग्रह द्वारा अत्यधिक प्रभावित हो जाते हैं फलस्वरूप उनके द्वारा मापी गयी मनोवृत्ति पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता है।

प्रच्छन्न संरचित विधि–

इस विधि में भी मनोवृत्ति की माप परोक्ष रूप से होती है फिर भी यह विधि प्रच्छन्न असंरचित विधि से एक महत्वपूर्ण अर्थ में भिन्न है। प्रच्छन्न संरचित विधि में मनोवृत्ति मापने के लिये जिस परिस्थिति का उपयोग किया जाता है वह स्पष्ट होती है तथा उसकी एक अर्थपूर्ण संरचना होती है जबकि प्रच्छन्न असंरचित विधि में परिस्थिति अस्पष्ट एवं अर्थहीन संरचना होती है। इस विधि का एक प्रमुख उदाहरण हेमोन्ड (Hammnd, 1948) की त्रुटि पसंद विधि है। इस विधि द्वारा उन्होंने मजदूर मालिक के संबंधों के प्रति मनोवृत्ति को मापा था। इस इस त्रुटि में कुछ ऐसे एकांश हो तैयार किये जाते हैं जो मनोवृत्ति वस्तु के संबंध में तथ्यपूर्ण ऑकड़ा देते है। परंतु वास्तव में ये सभी ऑकड़े गलत होते है। उस व्यक्ति को जिसकी मनोवृत्ति की माप करनी होती है उन गलत ऑकडों में से किसी एक को जिसे वह अधिक सही एवं उचित समझता हो, चुनकर उत्तर देता है दिये गये उत्तरों के आधार पर उसकी मनोवृत्ति की माप आधार पर उसकी मनोवृत्ति की माप की जाती है। राष्ट्रीयकरण के प्रति व्यक्ति की मनोवृत्ति को मापने के लिये इस प्रविधि के उदाहरण के रूप में एक दो एकांश इस प्रकार तैयार किये जा सकते हैं।

राष्ट्रीयकरण करने से भारत सरकार को प्रतिवर्ष घाटा होता है।20 करोड़ 15 करोड़ 8 करोड़ राष्ट्रीयकृत संस्था में उत्पादन की मात्रा प्रतिवर्ष कम होती जाती है। 5 प्रतिशत की दर से 8 प्रतिशत की दर से 10 प्रतिशत की दर से दस ढंग से कई एकांश तैयार कर लिये जाते हैं और प्रत्येक एकांश द्वारा तथ्यपूर्ण ऑकड़े प्रस्तुत किये जाते हैं जो वास्तव में सभी के सभी गलत होते हैं परंतु प्रयोज्य को इसका पता नहीं होता है और वह ऑकड़ों को सही समझकर जवाब देता है।

मनोवृत्ति मापन के बारे में सामान्य निष्कर्ष

समाज मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों ने मनोवृत्ति मापन के लिये दो प्रकार की विधियों का प्रतिपादन किया है अप्रच्छन्न विधि दोनों के अपने गुण तथा दोष हैं। फिर भी प्रच्छन्न विधि अप्रच्छन्न विधि से कुछ अर्थों में लाभदायक है प्रच्छन्न विधि कुछ खास परिस्थितियों जैसे यौन व्यवहार के प्रति मनोवृत्ति मापने में जहाँ व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति लोगों की नहीं बताना चाहता है, प्रच्छन्न विधि की वैद्यता अप्रच्छन्न विधि से अधिक होती है। इसका लाभ यह है कि मनोवृत्ति की माप करने में स्वयं मनोवृत्ति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। परन्तु अप्रच्छन्न विधि में मनोवृत्ति की माप करने में मनोवृत्ति पर काफी प्रभाव पड़ता है।

2.10 सारांश

सामाजिक मनोविज्ञान में मनोवृत्ति का अध्ययन एक केन्द्र बिन्दु के समान है। क्योंकि अभिवृत्ति हमारे अनुभव के प्रत्येक दृष्टिकोण को नियंत्रित करती है।मनावृत्ति तीन संघटकों अर्थात संज्ञानात्मक, भावात्मक व व्यवहारात्मक संघटकों का एक स्थायी तंत्र है। मनोवृत्ति की कई विशेषतायें होती हैं। जैसे– मनोवृत्ति का संबंध हमेशा किसी विषय, घटना या विचार आदि से होता है मनोवृत्ति अर्जित होती है, मनोवृत्ति व्यक्ति के व्यवहार को विशिष्ट दिशा में निर्देशित करती है।

मनोवृत्ति परिवर्तन होने का मुख्य कारण है–मनोवत्ति का समायोजन कार्य, अहम रक्षा कार्य मूल्य अभिव्यक्ति कार्य व ज्ञान कार्य।मनोवृत्ति के मुख्य कार्य है–मनोवृत्ति द्वारा ज्ञान कार्य संपन्न होते हैं। मनोवृत्ति द्वारा आत्म–सम्मान का भी कार्य होता है मनोवृत्ति व्यक्ति की आत्म अभिव्यक्ति या पहचान के कार्य भी सम्पन्न करती है।

मनोवृत्ति मापन के लिये कई विशेषज्ञों द्वारा कई तरह की विधियों का भी प्रतिपादन किया गया। कैंपबेल ने इन विधियों को चार विस्तृत भागों में बॉटा है–अप्रछन्न संरचित विधि, अप्रछन्न असंरचित विधि, अप्रछन्न असंरचित विधि, अप्रछन्न संरचित विधि इन चार विधियों में से अप्रछन्न संरचित विधि जिसमें मनोवृत्ति मापनी जैसे–थर्स्टन, लिकर्ट मापनी, गटमैन आदि आते हैं, अन्य विधियों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय है।

2.11 शब्दावली

मनोवृत्ति–मनोवृत्ति तीन संघटकों अर्थात संज्ञानात्मक संघटक, भावात्मक संघटक तथा व्यवहारात्मक संघटक का एक संगठित स्थायी तंत्र है।

प्राथमिक समूह–

प्राथमिक समूह वैसे समूह को कहा जाता है जिसमें सदस्यों की संख्या साधारणतः कम होती है तथा उनमें घनिष्ठ संबंध होता है।

संदर्भ समूह– संदर्भ समूह से तात्पर्य वैसे समूह से होता है जिके साथ व्यक्ति आत्मीकरण कर लेता है, चाहे वह समूह का औपचारिक सदस्य हो या न हो।

रूढ़िकृतियाँ–

रूढ़िकृतियों से तात्पर्य है किसी वर्ग या समुदाय के लोगों के बारे में स्थापित सामान्य प्रत्याशायें तथा सामान्यीकरण।

2.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Social Psychology 2015) Barm, R.A, & Bnanscomhe, N.R. Pearson Education Attitudes, 136 – 171
- समाजिक मनोविज्ञान (1995) बघेल, डी–एस सामाजिक मनोवृत्तियॉ, 188.191 उच्चतर समाज मनोविज्ञान (2001) सुलेमान, मोहम्मद अभिवृत्ति या मनोवृत्ति–182–177
- समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा (2003) मनोवृत्ति सिंह अरूण कुमार 117 अभिवृत्ति , 117–177

2.13 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

प्रश्नावली

मनोवृत्ति में कौन संघटक शामिल नहीं है –

1) संज्ञानात्मक संघटक

2) भावात्मक संघटक

3) व्यवहारात्मक संघटक

4) क्रियात्मक संघटक

मनोवृत्ति के संज्ञानात्मक संघटक से तात्पर्य –

1) मनोवृत्ति वस्तु के प्रति भाव (Feeling) से

2) मनोवृत्ति वस्तु के प्रति संवेग से

3) मनोवृत्ति वस्तु के प्रति भाव व संवेग से

4) मनोवृत्ति वस्तु के प्रति चिंतन से

मनोवृत्ति के किस संघटक में सबसे अधिक संगति होती है–

1) कर्षण शक्ति में

2) बहुविविधता

3) दोनों में

4) दोनों में से किसी में भी नहीं

मनोवृत्ति के भावात्मक संघटक से तात्पर्य है–

1) मनोवृत्ति वस्तु के प्रति भाव से

2) मनोवृत्ति वस्तु के प्रति संवेग से

3) मनोवृत्ति वस्तु के प्रति भाव तथा संवेग दोनों से

4) मनोवृत्ति वस्तु के प्रति चिंतन से

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

- मनोवृत्ति की परिभाषा दीजिये इसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
- मनोवृत्ति के निर्माण एवं विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन करें।
- मनोवृत्ति मापन में थर्स्टन विधि का मूल्यांकन करें।
- मनोवृत्ति मापन में लिकर्ट विधि व बोगार्डस विधि का मूल्यांकन करें।
- मनोवृत्ति मापन में गटमैन विधि की उपयोगिता बताइये।

इकाई 3

सामाजिक मनोविज्ञान अध्ययन पद्धति

(Social Psychology: Methods of study)

3.1 उददेश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 स्माज मनोविज्ञान की पद्वतिया
3.4 अंतःदर्शन विधि
3.5 बहिदर्शन या निरीक्षण विधि
3.6 सर्वे विधि
3.7 समाजमितीय विधि
3.8 प्रयोगात्मक विधि
3.9 सहसंबंध विधि
3.10 क्रास सांस्कृतिक विधि

3.11 व्यक्ति इतिहास विधि
3.12 इण्टरनेट विधि
3.13 सारांश
3.14 शब्दावली
3.15 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.16 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप–

- समाज मनोविज्ञान की अन्तदर्शन विधि को समझ सकेंगे।
- समाज मनोविज्ञान की वैज्ञानिक विधि को समझ सकेंगे।
- समाज मनोविज्ञान की समाजमिति विधि का अध्ययन कर सकेंगे।
- समाज मनोविज्ञान की व्यक्तिगत इतिहास विधि का अध्ययन कर सकेंगे।

समाज मनोविज्ञान के क्रॉस सांस्कृतिक विधि का अध्ययन कर सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

सामाजिक मनोविज्ञान समाज में व्यक्तियों के सभी प्रकार के व्यवहारों का अध्ययन करता है। मौलिक प्रश्न यह उठता है कि समाज मनोवैज्ञानिक समाज मनोविज्ञान के विस्तृत क्षेत्र का अध्ययन कैसे करता है। इसके उत्तर में सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि अन्य विज्ञानों की भाति समाज मनोविज्ञान भी एक विज्ञान है तथा यह समाज का विज्ञान है, इसकी प्रकृति वैज्ञानिक है। यह वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग कर मानव व्यवहार का अध्ययन करता है। इस प्रकार समाज मनोविज्ञान की पद्धति को समझने से पूर्व वैज्ञानिक पद्धति का वास्तविक ज्ञान होना अनिवार्य है, तभी समाज मनोविज्ञान की पद्धति को पूर्ण रूप से समझा जा सकेगा।

वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ :– वैज्ञानिक पद्धति से तात्पर्य इस विधि या तरीके से है जिसे अपना कर कोई भी विज्ञान अपने विषय क्षेत्र को प्रमाणित बनाने या प्रयोग सिद्ध ज्ञान को प्राप्त करने में सफल होता है। दूसरे शब्दों में इसे इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता हे कि विज्ञान एक विशिष्ट ज्ञान है। उस ज्ञान को प्राप्त करने का तरीका ही वैज्ञानिक पद्धति है। लेकिन पद्धति को मार्टिन्डेल और मोनाचेसी ने निम्न रूप से परिभाषित किया है, ''पद्धति से हमारा तात्पर्य उस विधि से है जिसके द्वारा विज्ञान अनुभव सिद्ध ज्ञान की प्राप्ति के लिये अपनी आधार व कार्य प्रणाली को व्यवहार में लाता है तथा अपने उपकरणों या विधियों का प्रयोग करता है।''

इस परिभाषा से पद्धति की निम्न विशेषतायें स्पष्ट होती है–

1. पद्धति का तात्पर्य विधि या तरीके से है।
2. इसमें कार्य प्रणाली का महत्व है अर्थात कार्य प्रणाली को व्यवहार में लाया जाता है

3. उपकरणों तथा विधियों का प्रयोग किया जाता है।

3.3 समाज मनोविज्ञान की पद्धतियॉ

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है समाज मनोविज्ञान समाज का विज्ञान है तथा इसकी प्रकृति वैज्ञानिक है। इस कारण दूसरे विज्ञानों की भॉति इसकी भी अध्ययन विधियॉ है। प्रारम्भिक व्यवस्था में जब इस विज्ञान का विकास पूर्ण रूपेण नही हुआ था उस समय इसकी अध्ययन पद्धति वास्तविकता से पहले केवल काल्पनिक मात्र की थी। इसके माध्यम से जो अध्ययन किये जाते थे और जो निष्कर्ष निकाले जाते थे वे पूर्णतः अवैज्ञानिक हुआ करते थे। वास्तविक निरीक्षण परीक्षण का अभाव था। मैकडूराल, टार्डेलीवों तथा रॉस ने अपने अध्ययन के दौरान में किसी वैज्ञानिक पद्धति को आरम्भिक अवस्था में नही अपनाया। समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र में ब्रेड को बड़े आदर के साथ देखा जाता है। इसका कारण यह है कि उन्होंने ही सर्वप्रथम समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रयोग का उपयोग किया। इसके पश्चात समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र में अन्य प्रमुख सामाजिक पद्धतियों का विकास हुआ है। जिनका प्रयोग कर समस्याओं का सर्वागींण वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है तथा वास्तविक तथ्यों की प्राप्ति होती है। समाज मनोविज्ञान की प्रमुख अध्ययन पद्धतियां निम्न है –

3.4 अन्तदर्शन पद्धति

इस पद्धति का प्रयोग प्रायः सामान्य मनोविज्ञान के अन्तर्गत होता है। समाज मनोविज्ञान मानव व्यवहार के सभी रूपों का अध्ययन करता है। अतः इस पद्धति के द्वारा समाज मनोविज्ञान वैयक्तिक रूप से कुछ महत्वपूर्ण विषयों का अध्ययन करने क लिये इस विधि को अपनाता है। एक व्यक्ति जब अपनें को अन्दर की ओर देखता है तथा वह विचारों, अनुभावों को स्पष्ट करता है तो उसे अन्तदर्शन पद्धति कहते है।

अन्तदर्शन पद्धति से लाभः–

सामाजिक मनोविज्ञान मनुष्य की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन सामाजिक परिस्थिति में करता है। मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन तब तक सम्भव नही जब तक व्यक्ति स्वयं अपने विचारों को न व्यक्त कर दे। अतः व्यक्ति अपने आप को अन्दर की ओर देखता है और अपने भावों, विचारों आदि को व्यक्त करता है।

इस प्रकार अन्तदर्शन पद्धति होने वाले प्रमुख लाभों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सका है–

1. **व्यक्तिगत विचारों को व्यक्त करना** :– इस पद्धति का सबसे प्रमुख लाभ यह है कि इसमें स्वयं व्यक्ति ही अपन विचारों, भावनाओं, आशाओं और मतों को व्यक्त करता है क्योंकि वह उनसे आंतरिक रूप से संबंधित होता है दूसरों को उसके बारे में ज्ञान नही होता। अतः चह व्यक्ति अपने को सरलतापूर्वक बता सकता है।
2. **तुलनात्मक अध्ययन** :– इस पद्धति की सहायता से तुलनात्मक अध्ययन संभव होता है अर्थात एक व्यक्ति जो अपने विचारों, मनोभावों को प्रस्तुत करता है उसका तुलनात्मक अध्ययन कर निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

3. **आत्म – निरीक्षण** :– इस पद्धति का तीसरा महत्वपूर्ण लाभ है कि यदि व्यक्ति किसी बाहय दबाव से दूर है तो यह अपने संबंध में ऐसे यथार्थ तथ्य प्रदान करने में सक्षम हो सकता है जो अन्य किसी दूसरे साधनों से प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार से प्राप्त तथ्यों से वास्तविक निष्कर्षो की प्राप्ति संभव हो सकती है।

अन्तदर्शन पद्धति के दोषः–

इस पद्धति के प्रमुख दोष निम्न है–

1. इस पद्धति का प्रमुख दोष यह है कि यह वास्तविकता से परे है। व्यक्ति अपनी बातों को इस प्रकार प्रस्तुत करता है जिसमें सत्यता की मात्रा बहुत कम होती हैं। अतः यह वास्तविकता से बहुत दूर है जो इस पद्धति की अपनी दुर्बलता है।
2. इस पद्धति का दूसरा महत्वपूर्ण दोष यह है कि इसमें किसी एक व्यक्ति की मानसिक प्रक्रिया का ही अध्ययन किया जाता है। अतः इसके द्वारा प्राप्त परिणाम सभी व्यक्तियों पर लागू हों यह आवश्यक नहीं है।
3. अंतदर्शन पद्धति का तीसरा महत्वपूर्ण दोष यह है कि यह अविश्वसनीय पद्धति है। व्यक्ति इस पद्धति के माध्यम से मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है।

अंतदर्शन पद्धति की सीमायेंः–

इस पद्धति की कुछ सीमायें है। अतः उन सीमाओं को निम्न रूपों में देखा जा सकता हैं–

अन्तदर्शन पद्धति की प्रमुख सीमा यह है कि इस पद्धति में व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर पूर्ण रूप से निर्भर होता है। उसे किसी अन्य तरीके से मतों, विचारों, इच्छाओं को नहीं जाना जा सकता है। अतः उसे दूसरे व्यक्ति पर आश्रित होना पड़ता है।

इस पद्धति के माध्यम से बालकों का अन्तदर्शन नहीं किया जा सकता है। इसी आधार पर अन्य जातियों का अध्ययन करना असंभव है क्योंकि भाषा को पूर्ण रूप से नही समझा जा सकता।

अन्तदर्शन की असली सीमा यह है कि व्यक्ति गोपनीय चीजों को सत्य बताये अतः उस सत्यता को असत्य रूप में प्रस्तुत करे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यह पद्धति अवास्तविक हैं।

इस पद्धति के दोष और सीमाओं का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि इस पद्धति का समाज मनोविज्ञान में कोई महत्व नही हैं। परन्तु ऐसा नही कहा जा सकता क्योकि व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं का ज्ञान इसी विधि द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

3.5 बहिदर्शन या निरीक्षण पद्धति

बहिदर्शन या निरीक्षण पद्धति को भौतिक व सामाजिक दोनो ही विज्ञानों में इसे स्वीकार किया गया है, विशेषकर समाज मनाविज्ञान में तो इसका महत्व और अधिक है। कुछ समय पूर्व मनोविज्ञान के क्षेत्र में मनोवृत्तियों, उद्‌देश्यों, भावों आदि के अध्ययन में अन्तदर्शन पद्धति को ही स्वीकार किया जाता रहा है। लेकिन वास्तविक रूप से अध्ययन न कर सकने के कारण समाज मनोविज्ञान के क्षेत्र में अन्य पद्धतियों का

विकास हुआ है। अतः बहिदर्शन या निरीक्षण पद्धति इसी विकास का परिणाम है। गुडे एवं हाठ ने परिभाषा देते हुये कहा है कि ''विज्ञान का आरम्भ निरीक्षण से होता है। उसके सत्यापन के लिये अंतिम रूप से निरीक्षण पर आना ही होगा।''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि निरीक्षण एक विधि है। इसके माध्यम से कार्य कारण संबंधों का पता लगाया जा सकता है तथा यह समस्या का सर्वांगीण एवं यथार्थ अध्ययन करता है।

प्रेक्षण विधि में प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहारों का प्रेक्षण प्रायः एक स्वाभाविक परिस्थिति में करता है। प्रेक्षण यह प्रक्रिया है जिसमें प्रेक्षक व्यक्ति के व्यवहारोंको एक खास समय तक कभी हल्का हस्तक्षेप करते हुये तथा कभी बिना किसी तरह के हस्तक्षेप किये ही देखता तथा सुनता है, उनका एक रिकार्ड तैयार करता है, जिसकी बाद में विश्लेषणात्मक व्याख्या की जाती है। सामाजिक मनोवैज्ञानीकों ने प्रेक्षण के कई प्रकार जैसे– क्रमबद्ध प्रेक्षण तथा अक्रमबद्ध प्रेक्षण और सहभागी प्रेक्षण तथा असहभागी प्रेक्षण। इन विभिन्न उपविधियों का वर्णन करने से पहले तीन पहलुओं (Dimensions) का वर्णन करना उचित होगा, जो सभी तरह के प्रेक्षण में पाये जाते है। (Bickman, 1976)

बिकमैन के अनुसार वे तीन पहलू निम्न है–

1. **छिपाव की मात्रा – (Degree of Concealment)** – किसी भी समाज मनोवैज्ञानिक को प्रेक्षण विधि द्वारा सामाजिक व्यवहार के अध्ययन करने में इस बात का निर्णय करना होता है कि प्रेक्षक का परिचय अन्य व्यक्तियों से जिनका प्रेक्षण किया जाने वाला है गुप्त रखा जाये या बता दिया जायें।
2. **प्रेक्षण की भूमिका :– (Roll of Observation)** समाज मनोर्वज्ञानिक को या शोधकर्ता को यह भी निर्णय करना पडता है कि प्रेक्षक को अन्य व्यक्तियों जिनका प्रेक्षण किया जाने वाला है, की सामाजिक अन्तः क्रियाओं के साथ हस्तक्षेप करना चाहियें या नही।
3. **प्रेक्षण प्रक्रियाओं में संगठन की मात्रा :–** शोधकर्ता को यह भी निर्णय लेना पडता है कि प्रेक्षण का स्वरूप संगठित होगा या असंगठित। असंगठित प्रेक्षण में प्रेक्षक के लिये अन्य व्यक्तियों जिनका प्रेक्षण किया जाने वाला है,के साथ हुये अनुभव द्वारा प्राप्त विचार ही काफी होते है। परन्तु संगठित पक्षण में व्यक्तियों के व्यवहारों की सार्थकता की जॉच प्रेक्षक अन्य ढंग से भी करता है।

रिस (Reess, 1971) ने प्रेक्षण को वैज्ञानिक सूचनायें उत्पन्न करने की क्षमता के आधार पर दो भागों में बॉटा ह– अक्रमबद्ध प्रेक्षण तथा क्रमबद्ध प्रेक्षण। अक्रमबद्ध प्रेक्षण में प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहारों का अध्ययन मात्र अपने प्रतिदिन के अनुभवों के आधार पर ही कर लेता है। प्रेक्षण करने में न तो वह कोई स्पष्ट नियम अपनाता है और न ही किसी वैज्ञानिक तार्किक क्रम पर अपने प्रेक्षण को आधारित करता है। जैसे– जब कोई शोधकर्ता बस में बैठ व्यक्तियों के भीड– व्यवहार का अचानक प्रेक्षण शुरू कर देता है तो यह अक्रमबद्ध प्रेक्षण का उदाहरण होगा। इस तरह का प्रेक्षण का उपयोग समाज मनोविज्ञान में बहुत कम किया जाता है।

क्रमबद्ध प्रेक्षण में, प्रेक्षण का आधार एक निश्चित तथा स्पष्ट नियम होता है ताकि इस तरह के प्रेक्षण की पुनरावृत्ति किया जा सके । इस तरह के प्रेक्षण की नियमावली एक वैज्ञानिक एवं तार्किक क्रम का अध्ययन करने के लिनेउन्हें एक खास जगह में ले जाया जाता है और अपने पूर्व नियोजित कार्यक्रम के अनुसार कुछ इस प्रकार

की क्रियाओं की शुरूआत करता है जिनमें बच्चे एक दूसरे के प्रति आक्रमणशीलता दिखा सके तो यह क्रमबद्ध प्रेक्षण का उदाहरण होगा। समाज मनोविज्ञान में क्रमबद्ध प्रेक्षण का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है।

प्रेक्षक द्वारा किये गये भूमिका के अनुसार समाज मनोवैज्ञानिकों वें प्रेक्षण विधि को दो भागों में बॉटा–

1. सहभागी प्रेक्षण
2. असहभागी प्रेक्षण

इन दोनो विधियों का वर्णन इस प्रकार है–

सहभागी निरीक्षण (Participant Observation) :– जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है कि सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता अध्ययन की जाने वाली परिस्थितियों में स्वय भाग लेता है और उस समूह का औपचारिक सदस्य बन जाता है । इस पद्धति का प्रयोग तब किया जाता है जब कि अनुसंधानकर्ता उस समूह से स्वयं घुल जाता है जिसका कि वह अध्ययन करना चाहता है।

सहभागी वलोकन की विशेषतायें निम्न है–

1. इसमें अवलोकनकर्ता अध्ययन की जाने वाली इकाईयों के जीवन और कार्यो में क्रियाशील सदस्य के रूप में भाग लेता है और घुल मिल जाता है।
2. अध्ययन की जाने वाली इकाईयों के अनुसार ही सुख और दुःख की अनुभूति करता है और समूह को अपना मानता है।

सहभागिता के साधन (Means of Participation) :– मौलिक प्रश्न यह है कि किस प्रकार समूह के साथ सहभागिता स्थापित की जाये? समूह के साथ निम्न प्रकार से सहभागिता की स्थापना की जा सकती है–

1. समूह में आत्मीयता पूर्ण संबंध स्थापित करके ।
2. समूह में सुख–दुखः की बराबर अनुभूति करके।
3. उत्सवों, त्योहारों में भाग लेकर के ।
4. सांस्कृतिक कार्यक्रमों में हिस्सा लेकर के।
5. उपहार देकर व लेकर।
6. शिकार, गपशप, ताश आदि में हिस्सा लेकर

सहभागी अवलोकन के लाभ :– समाज मनोविज्ञान में सहभागी अवलोकन का अधिक महत्व है। इस पद्धति के प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं–

प्रत्यक्ष अध्ययन :– यह समाज मनोविज्ञान की वह पद्धति है, जिसमें अनुसंधानकर्ता प्रत्यक्ष रूप से अपने क्षेत्रों की सहायता से समूह की क्रियाओं में भाग लेकर अध्ययन करता है।

विस्तृत अध्ययन :– सहभागी अवलोकन के माध्यम से सामाजिक घटनाओं का विस्तृत अध्ययन किया जाता है और विस्तृत सूचनायें एकत्रित की जाती है क्योंकि समाज मनोवैज्ञानिक जीवन के सभी पहलुओं का स्वयं अवलोकन करता है।

सरल अध्ययन :– समाज मनोविज्ञान की अनेक पद्धतियों में यह सरल है क्योंकि अनुसंधानकर्ता वहॉ जा कर बस जाता है, जिस समुदाय का उसे अध्ययन करना होता है। इस प्रकार तथ्यों के संकलन में सरलता रहती है।

अप्रभावित अध्ययन :– सहभागी अवलोकन में अनुसंधानकर्ता बिना प्रभावित हुये समुदाय के लोगों के व्यवहारों का प्राकृतिक अध्ययन करता है, इसलिये जो अध्ययन किया जाता है उसमें पक्षपात की गुंजाइश नही रहती है।

संग्रहीत सूचनाओं की परीक्षा – अवलोकन के द्वारा हम जो सूचनायें प्राप्त करते है उनकी पुनः परीक्षा कर सकते है। इसका कारण यह है कि अवलोकन घटनाओं की कभी भी जॉच की जा सकती है।

सहभागी प्रेक्षण के दोष (Demerits of Participant Observation) :– उपर्युक्त गुणों के साथ ही सहभागी अवलोकन के अनेक दोष है **उन्हीं** निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **सीमित क्षेत्र** :– सहभागी अवलोकन के द्वारा सीमित क्षेत्र का ही अध्ययन किया जाता है। ऐसा करने से सीमित क्षेत्र का ही अध्ययन संभव हो पाता है।
2. **सीमित ज्ञान** :– इस पद्धति का दोष है कि शक्ति द्वारा सीमित क्षेत्र का अध्ययन करने के कारण मनुष्य का अनुभव भी सीमित हो जाता है।
3. **वैयक्तिकता असंभव** :– अनुसंधानकर्ता स्वयं ही समूह का सदस्य हो जाने के कारण वह समूह के व्यवहार से अपने को प्रभावित कर लेता है इसीलिये अध्ययन में वैषयिकता नही आ पाती है।

4 **पूर्ण सहभागिता असंभव** :– सहभागी अवलोकन में समाज मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने वाले समुदाय के जीवन में पूर्ण रूप से भाग लेता है, परन्तु व्यवहारिक रूप से ऐसा संभव नहीं है। कोई भी अनुसंधानकर्ता स्वयं के सांस्कृतिक तत्वों और सामाजिक मूल्यों की उपेक्षा करके दूसरों के सोस्कृतिक जीवन के साथ सामंजस्य नही कर सकता है। इसके साथ ही अध्ययन समुदाय की कुछ ऐसी गोपनीय बातें होती है जिनमें सहभागिता असंभव है।

5 **सीमित उपयोग** :– सहभागी अवलोकन पद्धति का क्षेत्र सीमित होता है क्योंकि प्रत्येक परिस्थिति में इस पद्धति का प्रयोग नही किया जा सकता है।

2. **असहभागी प्रेक्षण (Non Participant Observation)** :– असहभागी अवलोकन में समाज मनोवैज्ञानिक समूह भाग नही लेता है। वह समुदाय में उपस्थित तो रहता है किन्तु समुदाय की क्रियाओं और व्यवहारों में हिस्सा नहीं बॅाटता है। समुदाय की क्रियाओं में भाग न लेते हुये भी उसकी गहराई में जाने का प्रयास करता है। इस प्रकार वह समुदाय का निष्पक्ष और स्वतंत्र अध्ययन करता है। सहभागी अवलोकन की निम्न विशेषतायें है –

1. इसमें अवलोकनकर्ता तटस्थदर्शक की भॉति समुदाय की घटनाओं की परीक्षा करता है।
2. इस अवलोकन में वह अपनी इंद्रियों का प्रयोग करता है।
3. समुदाय के बाहरी स्वरूप का अध्ययन किया जाता है।
4. अत्यंत सावधानी और सतर्कता रखी जाती है।
5. इसमें वैयक्तिकता लाने का प्रयास किया जाता है।
6. समूह क्रियाकलापों में भाग नहीं लेते हैं।

इस प्रकार के निरीक्षण में विश्वसवीय सूचनायें प्राप्त होती है तथा श्रम का निवारण किया जाता है व अनुसंधानकर्ता निष्पक्ष रूप से अध्ययन करता है इसके बावजूद भी इसके अंर्तगत विशुद्ध असहभागिता

असंभव है तथा इसमें सूचनादाताओं के मन में शंका उत्पन्न हो जाती है और उसे समूह का सहयोग वही मिल पाता है। अतः अध्ययन की वास्तविकता समाप्त हो जाती है।

3. **अर्धसीभागी अवलोकन (Quasi Participant Observation)** :– समुदाय के अध्ययन में न तो पूर्ण रूप से भाग लेना संभव है और न ही पूरी तरह से अलग रहना ही संभव है। इन दोनों माध्यमों से पूर्ण अध्ययन करने में कठिनाई होती है। इसके लिये तीसरा साधन यह है कि कुछ परिस्थितियों में समुदाय के जीवन मे भाग लिया जाय और कुछ में भाग न लिया जाये। इस पद्धति को अर्धसहभागी अवलोकन के नाम से जाना जाता है । समाज इतना जटिल है कि उसका अध्ययन न तो इसमें भाग लेकर कर सकते है और न ही उससे पृथक होकर ही करते है इसलिये अर्धतटस्थ की स्थिति बना कर ही समाज का अध्ययन किया जाता है इस प्रकार के अवलोकन द्वारा हमें सहभागी व असहभागी दोनो प्रकार की प्रणालियों का लाभ प्राप्त होता है।

3.6 सर्वे विधि

सर्वे दो शब्दों अर्थात सर तथा वियर से मिलकर बना है। 'सर' का अर्थ ऊपर तथा 'वियर' का अर्थ देखना है। इस प्रकार सर्वे का अर्थ निरीक्षण करना हुआ। समाज मनोविज्ञान में सर्वे या सर्वेक्षण का यही अर्थ विद्यमान है। भिन्न–भिन्न मानवशास्त्रियों समाजशास्त्रियों तथा समाज मनोवैज्ञानिक ने सर्वेक्षण की परिभाषा भिन्न – भिन्न रूपों में दी है परन्तु उनकी परिभाषाओं में काफी समानता दिखाया पडती है।

चैपलिन (Chaplin, 1978) – के अनुसार सर्वेक्षण शोध का तात्पर्य प्रतिदर्श तथा प्रश्नावली विधियों द्वारा जनमत के साधन से है।

मोहसिन (Mohsin] 1984) नें सर्वेक्षण विधि की परिभाषा देते हुये कहा है ''सर्वेक्षण शोध का तात्पर्य **वस्त्ओं** या व्यक्तियों की एसी विशेषताओं के अध्ययन से है जो अध्ययन की जाने वाली विशिष्ट परिस्थितियों से प्रभावित नही होता है।''

बर्शेल एवं कूपर (Worrchal and coopen, 1979) के अनुसारः– ''सर्वेक्षण शोध एक ऐसा शोध है जिसमें व्यक्तियों के प्रतिनिधिक समूह से उसके व्यवहार, **मनोवृत्तित** या विश्वास के संबंध में अनेक प्रश्न पूछे जाते है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सर्वेक्षण एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा किसी विशेष समस्या या घटना से संबंधित लोगों की मनोवृत्तियो उनके भावों तथा व्यवहारों की जानकारी प्राप्त की जाती है। अपने विशेष स्वरूप के कारण यह एक ओर प्रयोग विधि से तथा दूसरी ओर क्षेत्र अध्ययन भिन्न है। प्रयोग विधि या क्षेत्र अध्ययन में विश्वास किया जाता है कि निरीक्षण व्यवहार का गहरा संबंध उस विशेष परिस्थिति से है जिसमें वह व्यवहार होता है, जबकि सर्वेक्षण विधि विपरीत विश्वास पर आधारित है। फिर भी सर्वेक्षण विधि इस अर्थ में क्षेत्र विधि के समान है कि दोनो में अध्ययन परिस्थिति वास्तविक होती है लेकिन इस आधार पर भी यह विधि प्रयोगात्मक विधि से भिन्न है, जिस पर नियंत्रण के कारण अध्ययन परिस्थिति वास्तविक बन जाती है।

सर्वेक्षण विधि की एक मौलिक विशेषता है कि जब इसमें प्रतिदर्श का व्यवहार किया जाता है तो यह विश्वास कर लिया जाता है कि प्रतिदर्श के परिणाम जनसंख्या पर उसी पर रूप में, लागू होते है लेकिन, अन्य विधियों में (जहाँ / प्रतिदर्श का व्यवहार किया जाता है) ऐसा दावा नही किया जाता है।

सर्वेक्षण के प्रकार

1. **संगणना या यथापूर्ण सर्वेक्षण** :– इस प्रकार के सर्वेक्षण में पूरी जनसंख्या का अध्ययन किया जाता है और आवश्यक सूचनायें प्राप्त की जाती है। जैसे, किसी शहर में रहने वाले भंगियों का सर्वेक्षण किया जा सकता हे और पता लगाया जा सकता है कि उस शहर में कितने भंगी रहते है, उनमें पुरूष,स्त्री, बच्चे, बूढे तथा सयानों की संख्या अजग–अलग कितनी है उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति कैसी है, उनमें कितने लोग औषध का व्यवपार करते है, कितने लोग शिक्षित है आदि। लेकिन इस प्रकार के सर्वेक्षण का व्यवहार बहुत कम होता है अधिकोश परिस्थितियों में प्रतिनिधि प्रतिदर्श का व्यवहार किया जाता है कारण संगणना अध्ययन आथवा यथा पूर्व सर्वेक्षण में समय अधिक लगता है, श्रम अधिक करना पडता है और मुडा का खर्च अधिक होता है इसके अतिरिक्त सभी परिस्थितियों में इसका उपयोग काफी कठिन होता है।
2. **प्रतिदर्श सर्वेक्षण** :– इस प्रकार के सर्वेक्षण में समूचे विश्व या जनसंख्या का अध्ययन नही किया जाता है, बल्कि उसके किसी अंग या प्रतिदर्श का अध्ययन किया जाता है तथा आवश्यक सूचनायें प्राप्त की जाती है। प्राप्त सूचनाओं को पूरे विश्व या जनसंख्या पर लागू किया जाता है। प्रतिदर्श को यथा संभव प्रतिनिधिक (Representable) बनाने का प्रयास किया जाता है।

व्यवहारिक दृष्टिकोण से संगणना या यथा पूर्व सर्वेक्षण की अपेक्षा प्रतिदर्श सर्वेक्षण अधिक उपयोगी है। इस प्रकार के सर्वेक्षण में समय, श्रम तथा मुडा की बचत होती है। अतः इसका उपयोग सामाजिक मनाविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, राजनीति विज्ञान आदि में व्यापक रूप से होता है।

प्रतिदर्श परीक्षण को निम्न लिखित प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **समाज मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षण (Sociological) :-** इस प्रकार के सर्वेक्षण का संबध समाज वैज्ञानिक तथ्यों से होता है। इसके अंतर्गत शिक्षालय सर्वेक्षण जनमत आदि की गणना की जाती ।
2. **मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological Survey)** :– इस प्रकार के सर्वेक्षण का संबंध मनोवैज्ञानिक प्रश्नों से होता है। मनोवृत्ति पूर्वधारणा, विश्वास आदि के सर्वेक्षण को मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षण कहते है।
3. **सरकारी, अर्धसरकारी तथा निजी सर्वेक्षण (Official Semi Official and Private survey)** सरकारी सर्वेक्षण सरकारी अधिकारियों द्वारा संचालित होता है अर्धसरकारी सर्वेक्षण, अर्ध सरकारी संस्था जैसे विश्वविद्यालय कारपोरेशन आदि द्वारा संचालित होता है। इसी तरह निजी सर्वेक्षण गैर सरकारी संस्थाओं या व्यक्तियों द्वारा संचालित होता है।
4. **सार्वजनिक तथा गुप्त सर्वेक्षण (Public and Confidential Survey** :– सर्वाजनिक सर्वेक्षण का उद्देश्य स्पष्ट होता है और प्राप्त सूचनाओं विदित होती है परन्तु गुप्त सर्वक्षण की सूचनायें गुप्त रहती है।

सर्वेक्षण की विधियॉ या उपकरण

सर्वेक्षण या सामाजिक सर्वेक्षण द्वारा सूचना प्राप्त करने हेतु इन प्रविधियों या तकनीकियों का उपयो आवश्यक के अनुसार किया जाता है–

साक्षात्कार एवं अनुसूची (Interview and schedule)

डाक –प्रश्नावली (Mail Question aire)
टेलीफोन सर्वेक्षण Telephone Survey)
घटक विश्लेषण (Content Analysis)
सामाजिक सर्वेक्षण (Panel Survey)
निरीक्षण सर्वेक्षण (Observation Survey)

1. **साक्षात्कार एवं अनुसूची** :– साक्षात्कार सर्वे में प्रशिक्षित भेंटकर्ता होते है जो प्रायः याहच्छिक रूप से चुने गये व्यक्तियों के एक निश्चित समूह से किसी समस्या से संबंधित प्रश्न करते है। प्रत्येक व्यक्ति द्वारा दिये गये उत्तरों का सही –सही किार्ड कर उनका बाद में विश्लेषण करते है। कैनल ताथा कान के शब्दों में साक्षात्कार सर्वे को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है। ''साक्षात्मकार सर्वे दो व्यक्तिक वार्तालाप है जिसकी शुरूआत भेंटकर्ता शोध संगत सूचनार्थ प्राप्त करने के उद्देश्य से आरम्भ करता है और क्रमबद्ध वर्णन पूर्वकथन या व्याख्या करने के शोध उद्देश्य द्वारा उल्लेखित विषयों पर केन्द्री भूत करता है।'' इस परिभाषा से स्पष्ट है कि साक्षात्कार में भेटकर्ता परिस्थिति पर नियंत्रण रखते हुये शोध उद्देश्य के विषयों पर व्यक्तियों से कुछ सूचनायें प्राप्त करता है। समाज मनोविज्ञान में इस विधि का प्रयोग मनोवृत्ति, मूल्य व्यक्तियों के बीते हुये अनुभवों एवं व्यवहारों आदि के अध्ययन में किया जाता है।

जब किसी समस्या के प्रति व्यक्तियों की मनोवृत्ति, विचार, मत आदि जानने के लिये सामाजिक मनोवैज्ञानिक साक्षात्कार सर्वे का सहारा लेते है, तो उन्हें पहले उस समस्या से संबंधित प्रश्नों की एक मानक सूची तैसार करनी पडती। इन्ही प्रश्नों को वे व्यक्तियों से एक करके पूछते है। ऐसी सूची को समाज मनोविज्ञान में साक्षात्कार अनुसूची कहा जाता है। प्रश्नों की सूची कभी–कभी असंगठित होती है और कभी–कभी काफी संगठित होती है। पहले तरह के साक्षात्कार सर्वे को असंगठित साक्षात्कार तथा दूसरे तरह के साक्षात्कार सर्वे को संगठित साक्षात्कार कहा जाता है। असंगठित साक्षात्कार में भेंटकर्ता प्रश्न में आवश्यकतानुसार कुछ परिवर्तन कर लेता है परन्तु संगठित साक्षात्कार में भेंटकर्ता इस ढंग का परिवर्तन नहीं कर सकता है। और साथ ही सभी व्यक्तियों से प्रश्न पूछने का क्रम भी पहले से ही निश्चित कर रखता है। भेंटकर्ता प्रायः दो तरह के प्रश्नों का र्मिाण करते है। मुक्तोत्तर प्रश्न,बन्द प्रश्न

मुक्तोत्तर प्रश्न में व्यक्ति को प्रश्नों का उत्तर देने के तरीकों पर कोई प्रतिबंध नही होता है। वह एक शब्द या अनेक शब्दों में उत्तर दे सकता है अपनी इच्छानुसार वह उत्तर देने में किसी भी शब्द का प्रयोग कर सकता है। परन्तु बन्द प्रश्न के उत्तर देने के लिये व्यक्ति को पहले से किये गयें उत्तरों में से चुनकर अपना उत्तर देना होता है। इसमें वह अपनी इच्छानुसार किसी नये शब्द का प्रमाण नही कर सकता है प्रायः साक्षात्कार सर्वे में व्यक्तियों का ऐसा समूह चुना जाता है जो लगभग प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व कर सके। व्यक्तियों को चुनने की प्रक्रिया भी प्रायः यादृच्छिक ही हुआ करती है।

साक्षात्कार सर्वे के गुण तथा अवगुण निम्न है–

गुण :–

1. चूँकि साक्षात्कार सर्वे में व्यक्तियों को बोलकर (न कि लिखकर) अपने विचार प्रकट करना होता है अतः इस का प्रयोग करीब 2 सभी तरह के व्यक्तियों (गूंगो को छोड़कर) पर किया जा सकता है।
2. साक्षात्कार सर्वे में व्यक्तियो को प्रश्नों का उत्तर देने के लिये अधिक प्रात्साहित भी किया जा सकता है जहॉ व्यक्ति किसी कारण से प्रश्नों का जबाव छिपा लेना चाहता है। भेंटकर्ता कुशलता पूर्वक अपनी कुशलता का प्रयोग कर उसे अधिक प्रोत्साहित करता है और साथ ही उसे उत्तर देने में मदद करता है।

अवगुण

1. साक्षात्कार सर्वे में भेंटकर्ता को व्यक्तियों द्वारा दिये गये शाब्दिक अनुक्रियाओं पर निर्भर करना पड़ता है।
2. जब कई भेंटकर्ता मिलकर कोई अध्ययन करते हैं तो उनमें आपस में व्यक्तियों के व्यवहारों में बहुत अधिक विभिन्नतायें पायी जाती है कि उसके आधार पर किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुॅचना कठिन हो जाता है।
3. साक्षात्कार सर्वे में समय भी अधिक लगता है।
4. सर्वेक्षक तथा सूचनादाता के बीच रागात्मक संबंध स्थापित नही ले पाते है।

डाक प्रश्नावली – **(mail Questionnaire)**

सर्वेक्षण सूचना प्राप्त करने के लिये प्रश्नावाली सूचनादाताओं के पास डाक द्वारा भेज दी जाती है। और उनसे अनुरोध किया जाता है कि वे इसे यथासंभव जल्दी वापस कर दें। वात्सायन के शब्दों में ''डाक प्रश्नावली प्रश्नों की एक मुडित सूची है जिसे डाक उत्तरदाता को भेजा जाता है और वे इसे वे भरने के बाद वापस भेज देते है। इसमें बन्द प्रश्नावली, खुली प्रश्नावली चित्रित प्रश्नावली तथा मिश्रित प्रश्नावली सभी का प्रयोग किया जाता है।

टेलीफोन सर्वेक्षण – यहॉ सूचनादाताओं से टेलीफोन पर संपर्क स्थापित किया जाता है और सर्वेक्षण की समस्या के अनुकूल व्यक्तिगत तथा समाज वैज्ञानिक तथ्यों के संबंध में सूचना देने के लिये उनसे अनुरोध किया जाता है लेकिन इसकी उपयोगीतायें बहुत सीमित हैं।

इसके प्रमुख दोष निम्न है–

1. कुछ लोग टेलीफोन पर उत्तर देना पसन्द नही करते है।
2. टेलीफोन सर्वेक्षण द्वारा दिये गये उत्तर सही होते है।
3. सूचनाओं की जॉच करना संभव नही होता है
4. सर्वेक्षक तथा सूचनादाता के बीच रागात्मक संबंध स्थापित नही ले पाते है।

1– **निरीक्षण –सर्वेक्षण (Observation Survey)**– यहॉ निरीक्षण के आधार पर सर्वेक्षण ऑकड़े प्राप्त किये जाते है। इसमें सहभागी तथा असहभागी दोनो प्रकार के निरीक्षण करते हैं।

5. **घटक विश्लेषण** – सर्वेक्षण की इस तकनीक के द्वारा संचार के व्यक्त घटक का वस्तुगत, क्रमबद्ध तथा परिमाणात्मक अध्ययन किया जाता है। इस तकनीक या विधि को आलेख विश्लेषण, सूचना विश्लेषण संचार

विश्लेषण आदि भी कहते हैं। सर्वेक्षण की यह विधि जटिल सामाजिक, राजनैतिक, या राष्ट्रों के व्यक्तियों की मनोवृत्तियों विश्वासों, मूल्यों आदि के अध्ययन में यह विधि उपयोगी है।

इस विधि का सबसे बडा दोष यह है कि घटकों के विश्लेषण पर सर्वेक्षक के पक्षपातों का प्रभाव पडता है जिससे इसकी विश्वसनीयता घट जाती है।

6. **पैनल सर्वेक्षण (Panel survey)** :– इस सर्वेक्षण तकनीक से उत्तरदाताओं के एक प्रतिदर्श का चुनाव कर लिया जाता है। इस प्रतिदर्श का सर्वेक्षण कई बार किया जाता है तथा सूचनायें प्राप्त की जाती है। इस विधि का उपयोग समाज मनोविज्ञान में मनोवृत्तियों, व्यवहारों तथा आवश्यकताओं में घटित परिवर्तनों में किया जाता हैं।

समाज मनोविज्ञान की विधि के रूप में सर्वेक्षण का मूल्यांकन :–सर्वेक्षण विधि के विभिन्न उपकरणों की जानकारी तथा उनके प्रकारों के अध्ययन के पश्चात यह जानकारी रखना आवश्यक है कि समाज मनोविज्ञान की इस विधि के गुण व दोष क्या है –

लाभ (Merits or Advantages)

1. **विस्तृत क्षेत्र (Wider Scope)** :– सर्वेक्षण विधि का क्षेत्र काफी व्यापक तथा विस्तृत है। इसमें अनेक ऐसे सामाजिक विज्ञान आते है जिसका क्षेत्र अत्यंत विस्तृत हैं। इसका उपयोग राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि सामाजिक विज्ञानों में किया जाता है। कैंपबेल तथा कैटोना के अनुसार इसका उपयोग व्यवहारिक विज्ञान के सभी क्षेत्रों में विशेषज्ञों द्वारा किसी क्षेत्र की आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है।
2. **बड़ी जनसंख्या के लिये उपयुक्त (Appropriate for large Population)** – सर्वेक्षण विधि बड़ी जनसंख्या के अध्ययन के लिये प्रयोगशाला प्रयोग क्षेत्र प्रयोग अथवा क्षेत्र अध्ययन से अधिक उपयुक्त तथा उपयोगी है। करलिंगर के अनुसार बड़ी जनसंख्या के मूल्यों, मनोवृत्तियों तथा विश्वासों के विषय में सही सूचना प्राप्त करने के लिये यह विधि अत्यंत उपयोगी है। ऐसी हालत में 600 से 700 व्यक्तियों के ऊपर इस विधि का उपयोग किया जा सकता है।
3. **मात्रात्मक तथा गुणात्मक सूचनाओं की प्राप्ति** :– मात्राात्मक सूनाओं से तात्पर्य प्रश्नावली पर प्राप्त आंकित सूचनाओं से है तथा गुणात्मक सूचनाओं से तात्पर्य मात्रात्मक सूचनाओ से इतर की सूचनाओं से है। अतः इस विधि में मात्रात्मक तथा गुणात्मक सूचनाओं दोनों का मिश्रण होता है।

4 **सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक शोध** :–

सर्वेक्षण विधि का उपयोग समान रूप से सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक शोध के लिये संभाव होता है। भिन्न–भिन्न सामाजिक घटनाओं के संबंध में परिकल्पनों की जॉच के लिये मौलिक शोध अर्थात सैद्धान्तिक शोध संभव है। जैसे मानव जाति पूर्व धारणा धार्मिकता के प्रभाव के संबंध में परिकल्पना बना कर सर्वेक्षण विधि के द्वारा उसकी जॉच की जा सकती है इस तरह इस विधि के द्वारा व्यवहारिक शोध करके व्यवहारिक लाभ उठाया जा सकता है। जैसे सर्वेक्षण केआधार पर सांप्रदायिक दंगे के कारणों की खोज करके इसे रोका जा सकता है और मानवता को रक्तपात से बचाया जा सकता है, जो हर सभ्य समाज का कर्तव्य है।

5 सामाजिक कल्याण के लिये सहायक :–

सर्वेक्षण से सामाजिक कल्याण तथा सुधार में बडी सहाता मिलती है। भिन्न –भिन्न प्रविधियों तथा विधियों के द्वारा समाज के विभिन्न पक्षों के बारे में सर्वेक्षण करके प्राप्त सूचनाओं के आलोक में समाज सुधारकों तथा अधिकारियों को समाज के उत्थान एवं उन्नति के लिये आवश्यक कदम उठाने में सुविधा होती है।

6 सरकारी योजना के लिये सहायक :–

सरकारी योजनाओं के निर्माण में सर्वेक्षण सहायक होता है। भिन्न – भिन्न सर्वेक्षणों का उपयोग करके सरकार जनमत की जानकारी प्राप्त करके किसी योजना का निर्माण करती है। जैसे– हरिजनों के लिये आरक्षण की योजना को कायम रखा जायेगा या समाप्त कर दिया जायेगा, इसके लिये सर्वेक्षण इस समस्या के संबंध में जनमत की जानकारी आवश्यक होगी। प्रजातान्त्रिक सरकार की सुरक्षा के लिये यह जरूरी है।

7 लचीलापन :– सर्वेक्षण विधि में लचीलापन का गुण र्प्याप्त मात्रा में पाया जाता है। अध्ययन करने वाला या सर्वेक्षक अपनी आवश्यकता के अनुसार अध्ययन प्रणाली में परिवर्तन ला सकता है या अपनी सुविधा के अनुसार प्रश्नावली साक्षात्कार या आविष्कारिका का उपयोग करके संगत सूचनायें प्राप्त कर सकता है।

दोष या सीमायें :–

सर्वेक्षण विधि के कई गुणों तथा लाभों का उल्लेख किया गया फिर भी इसके कई दोष है, जिनके कारण इसकी उपयोगितायें सीमित हो गयी है।

1. **गहन अध्ययन का अभाव :–** सर्वेक्षण विधि का एक दोष यह है कि इसके आध्धर पर किसी सामाजिक घटना या विषय का गहन अध्ययन संभव नही होता है। यहॉ बडी जनसंख्या के लिये बड़े प्रतिदर्श का व्यवहार करना पडता है। अतः इतने बडे प्रतिदर्श का गहन अध्ययन बहुत कठिन बन जाता है। करलिंगर के अनुसार ''सर्वेक्षण गहन शोध के लिये नही बल्कि विस्तृत शोध के लिये उत्तम प्रतीत होता है।''
2. **व्यवहारिक कठिनाइयॉ :–** सर्वेक्षण प्रविधि में दूसरी विधियों की अपेक्षा अधिक समय लगता है। श्रम अधिक करना पड़ता है, तथा लागत अधिक लगती है। रैनडम प्रतिदर्श का निर्माण करने साक्षात्कार अनुसूची की तैयारी करने, उत्तरदाताओं से साक्षात्कार करने तथा प्राप्त ऑकड़ों के विश्लेषण तथा निरूपण करने में काफी खर्च होता हे तथा एक लंबे समय तक श्रम करना पड़ता है।
3. **सर्वेक्षण के संचालन की कठिनाइयॉ :–** सर्वक्षण – प्रविधि को समुचितरूप से उपयोग करने के लिये अनुभव तथा कौशल की आवश्यकता होती है। वही व्यक्ति इसका समुचित रूप से उपयोग कर सकता है जो अध्ययन के अभिकल्प बनाने, प्रतिदर्श का चयन करने, प्रश्नावली के निर्माण, साक्षात्कार के संचालन तथा ऑकड़े के सांख्यिकीय विश्लेषण एवं निरूपण में निपुण हैं। इसके अभाव में प्राप्त करना कठिन बन जाता है।
4. **आत्मनिष्ठता (Subjectivity) :–** सर्वेक्षण विधि में सूचनाओं को प्राप्त करने के लिये प्रश्नावली साक्षात्कार आविष्कारिका आदि विधियों का उपयोग किया जाता है। लेकिन ये सभी विधियॉ वस्तुतः सदा बनी रहती है कि सूचनादाताया प्रयोज्य सही बात को छिपा ले तथा गलत समचना दे देता है ऐसी हालत में प्राप्त सूचनाओं के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष संदिग्ध अवश्य बन जाते है।

5. **नियंत्रण का अभाव (Lack of control)** :– सर्वेक्षण विधि में क्षेत्र अध्ययन अथवा प्रयोगात्मक अध्ययन की तरह नियंत्रण का पूर्ण अभाव रहता है। इस कारण इस विधि की विश्वसनीयता घट जाती है। कार्टराइट के अनुसार क्षेत्र प्रयोग अथवा प्रयोगशाला प्रयोग की तुलना में सर्वेक्षण प्रविधि की विश्वसनीयता काफी सीमित हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि सर्वेक्षण विधि में कई गुणों के होते हुये भी कुछ दोष हैं। लेकिन इन दोष के होते हुये भी इस विधि का उपयोग बडे पैमाने पर सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिये किया जाता है।

3.7 समाजमिति या समाजमितिक

इस विधि का प्रतिपादन जे एल मोरेनो ने 1934 में किया। इस विधि या प्रविधि का प्रतिपादन किसी समूह के भिन्न–2 सदस्यों के पारस्परिक संबंधों के अध्ययन के लिये किया। आगे चलकर इस विधि का उपयोग दूसरी सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में भी होने लगा। अतः समाजमिति वह प्रविधि है जिसके द्वारा समाज या समूह के सदस्यों के बीच पारस्परिक क्रियाओं, पारस्परिक संबंधों आदि का अध्ययन किया जाता है।

भिन्न– भिन्न मनोविज्ञानिकों ने समाजमिति अथवा समाजमितिक विधि की परिभाषा भिन्न– 2 रूपों में दी है। सेकर्ड तथा बैकमैन के अनुसार ''समाजमितिक परीक्षण के माध्यम से समूह सदस्य की एक दूसरे के प्रति पसंदो से संबंधित मात्रात्मक प्रदत्त किये जाते हैं।''

करलिंगर (Kerlingr, 2002) नें भी इसी अर्थ में समाजमिति की परिशाषा दी है। उनकी परिभाषा अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है। उनके अनुसार ''समाजमिति एक व्यापक पद है जिसमें समूहों में व्यक्तियों की पसंद उनके संचार एवं परिस्परिक क्रियायें प्रतिरूपों से संबंधित ऑकड़ों के संग्रह तथा विश्लेषण की अनेक विधियों का बोध होता है।'' यह परिभाषा समाजमिति के स्वरूप की व्याख्या करने में काफी सरल है।

चैपलिंन नें भी इसी तरह से समाजमिति को परिभाषित किया है, ''समाजमिति वह प्रविधि है, जिसके द्वारा समूह के सदस्यों के बीच आकर्षण अस्वीकरण के संबंधों का मानचित्रण किया जाता है।'' मोहसिन वें भी समाजमिति को इसी अर्थ में परिभाषित किया है।'' ''समाजमिति वह प्रविधि है, जिसके द्वारा आकर्षण विकर्षण या उदासीनता के रूप में अभिव्यक्त समूह के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन किया जाता है।''

इन परिभाषाओं के विश्लेषण से निम्न बाते स्पष्ट होती है–

1. समाजमिति सामाजिक घटनाओं के अध्ययन की एक विधि या प्रविधि हैं।
2. समाजमितिक प्रविधि के द्वारा समूह के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन किया जाता हैं। उनके स्वीकरण अस्वीकरण, पसंद नापसंद को चित्र के रूप में अभिव्यक्त किया जाता हैं। इस चित्र को समाजमितिक रेखाचित्र कहते हैं।
3. एक विशेष तरीके के सदस्यों के संबंधों के ढॉचे को स्थापित किया जाता है। इस कार्यप्रणाली को समाजमितिक परीक्षण कहते हैं।
4. समाजमिति का उपयोग समूह की संरचना तथा उनके संगठन का अध्ययन करने के लिये किया जाता हैं।
5. इसका उपयोग समूहो की समग्रता तथा गतिकत के अध्ययन के लिये भी किया जाता हैं।

समाजमिति से प्राप्त ऑकड़ों विश्लेषण निम्न तीन प्रविधियों द्वारा जाता हैं–

1. समाजमितिय मैट्रीक्स
2. समाज आलेख
3. समाजमितिय सूचकोंक

समाजमितीय मैट्रीक्स '– मैट्रीक्स संख्याओं या अन्य वस्तुओं का एक आयताकार प्रदर्शन को कहा जाता है। समाजमितीय मैट्रीक्स वह मैट्रीक्स होता है जो वर्गाकार अर्थात NXN होता है। यहॉ n से तात्पर्य समूह में सदस्यों की संख्या से होता है जिससे मैट्रीक्स के दो एवं कोलम बराबर –2 होते है। इसका एक उदाहरण निम्न है–

मान लिया जायें कि ''छात्रों का एक समूह है। प्रत्येक छात्र नें इस प्रश्न पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त किया है'' तुम किन अन्य छात्रों के साथ खेलना पसंद करोगें।'' छात्र जब किसी अन्य छात्र को खेलने के लिये साथी बनाने के लिये पसंद करता है तो उसकी इस पसंद को 1 देकर समाजमितीय मैट्रीक्स में खिया जाता है औरयदि किसी अन्य छात्र को पसंद नही करता है तो उसे 0 देकर दिखलाया जाता है। तालिका में छात्रों द्वारा किये गयें पक्ष दो के आधार पर एक समाजमितीय मैट्रीक्स बनाया गया है।

किसी भी समाजमितीय मैट्रीक्स विश्लेषण यह देखते हुये कहा जाता है कि कौन किसे चुनता है या पसंद करता है। सामान्यता तीन तरह की पसंद देखने को मिलती है–

- साधारण या एक तरफा पसंद
- पारस्परिक पसंद
- कोई पसंद नही।

साधारण या एक तरफाा पसंद वह है जिसमें एक सदस्य दूसरे सदस्य को पसंद करता है परन्तु दूसरा पहले वाले को पसंद नही करता है।

पारस्परिक पसंद में दोनों ही एक दूसरे को पसंद करते है। जैसे B छात्र D को पसंद करता है तथा D भी B को पसंद करता है।

इस पालिका में G एक ऐसा छात्र है जिसे कोई पसंद नही करता और वह भी किसी को पसंद नही करता है। अतः यह कोई पसंद नही का उदाहरण ह।

समाजमितीय मैट्रीक्स के विश्लेषण से समूह के बारे में सामान्यतः निम्नांकित तरह की सूचनायें मिलती है–

1. समूह में कुछ छात्र या व्यक्ति ऐसे होते है जिन्हें अधिकतर छात्र पसंद करते हैं ऐसे छात्र समूह में सबसे अधिक लोकप्रिय होते है। ऐसे छात्र के समाजमितीय मैट्रीक्स के कॉलम का योग सबसे अधिक होता है तालिका –1 में ऐसा ही एक छात्र होता है जिनका कॉलम का योग 40 है।
2. समूह में कुछ व्यक्ति ऐसे होते है जो दूसरों को पसंद करते है परन्तु उन्हें कोई पसंद नही करता है। ऐसे व्यक्ति को बहिष्कृत व्यक्ति कहा जाता है। तालिका –1 में A एक बहिष्कृत छात्र का उदाहरण है।

3. समूह में कूछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो तीन को एक समूह बना लेते ह जिसमें वे सभी एक दूसरे को पसंद करते हैं किसी अन्य को नही और न तो कोई दूसरा ही इन तीनों को पसंद करता है। इस तरह के समूह को गुट कहा जाता है।
4. कुछ व्यक्ति समूह में दो दो का समूह बना लेते हैं जिसमें सिर्फ वें ही दोनों एक–दूसरे को पसंद करते है। इस तरह के ग्रुप को पारस्परिक ग्रुप कहा जाता है।
5. समूह में कुछ सदस्य ऐसे भी होते हैं जो किसी भी अन्य सदस्य को पसंद नही करते है और न तो कोई दूसरा व्यक्ति ही उन्हें पसंद करता है। इस तरह के सदस्य को अकेला सदस्य कहा जाता है।

2. **समाज आलेख (Sociogram)** :– समाज आलेख दूसरी विधि है जिसके द्वारा समाजमितीय ऑकड़ों का विश्लेषण किया जाता है। इस विधि में समूह के सदस्यों द्वारा एक दूसरे के प्रति किये पसंदों को एक आलेख पर सादें कागज पर चित्र बनाकर दिखलाते है। चित्र पर एक तरफा पसंद को ऐसी रेखा से दिखलाते है जिसके एक छोर पर तीर बना होता है। जैसे यदि छात्र A छात्र B को पसंद करता है परन्तु छात्र B छात्र A को नही पसंद करता है तो इसे आलेख पर से खिलाया जायेगा। पारस्परिक युग्म को ऐसी सीधी रेखा से दिखलाते हैं जिसके दोनों छोरों पर तीर बना होता है। जैसे – यदि छात्र C छात्र F को पसंद करता है और F छात्र C को पसंद करता है तो इसे समाज आलेख पर C F से दिखलाया जाता है।

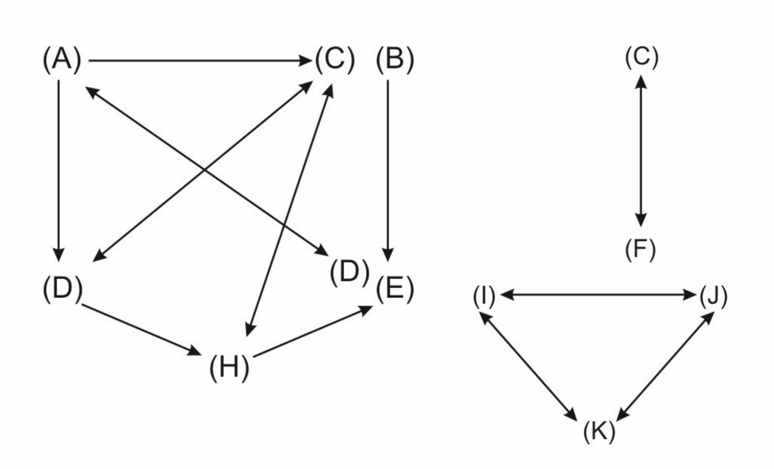

छात्रों की पसंद पर आधारित समाज आलेख चित्र से स्पष्ट है कि B पर सबसे अधिक तीर पडा है। अर्थात 'B' को अधिक लोगों ने पसंद किया है। अतः यह समूह का सबसे लोकप्रिय छात्र है। । समूह का एक अस्वीकृत सदस्य है क्योंकि इसका एक भी तीर नही है जबकि इसनें B , D एवं F को पसंद किया है। छात्र C तथा F एक पारस्परिक युग्म के उदाहरण है तथा छात्र I, J एवं R का एक गुट तथा छात्र G एक अकेला छात्र है।

स्पष्ट हुआ कि समाज आलेख के माध्यम से भी हम उसी निष्कर्ष पर समाजमितीय मैट्रीक्स के आधार पर पहुॅचे थें।

समाज आलेख को साजमितीय मैट्रीक्स की तुलना में अधिक लाभदाय माना जाता है। क्योंकि इसे मात्र देखने से देखते ही समूह के सदस्यों को अंतरवैयक्ति संबंधों का पता चल जाता है। परन्तु समाज आलेख का दोष यह बतलाता है कि इसकी उपयोगिता वैसे ही समूह तक सीमित है जिसमें सदस्यों की संख्या 20 से नीचे होती है। समाज में सदस्यों की संख्या अधिक होने से समाज आलेख को पढकर कोई अर्थ निकालना अत्यन्त कठिन है।

समाजमितीय सूचकांक :– समाजमितीय के कुछ सूचकांक ज्ञात करके समूह उके सदस्यों के अन्तरवैयक्तिव संबंधों का अंदाज मिलता है। इस तरह के सूचकांक ज्ञात करने के लिये अलग–अलग सूत्र है। सामान्यतः इन सूचकांको के द्वारा व्यक्ति के पसंद स्तर एवं समूह समग्रता को अनुपात में व्यक्त किया जात है। यह अनुपात जितना ही अधिक होता है व्यक्ति का पसन्द स्तर या समूह समग्रता उतनी ही अधिक होती है।

लाभ –

1. समाजमिति समूह की संरचना एवं सदस्यों के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन करने की एक सरल किफायती एवं स्वाभावि विधि है। सरल इसलिये है क्योंकि इसका प्रयोग समाज मनोवैज्ञानिक आसानी से कर सकते किफायती इसलिये है क्योंकि इसमें समय व धन दोनों की बचत होती है तथा स्वभाविक इसलिए इसमें व्यक्ति को यह महसूस नही होता है कि उसे किसी प्रयोगात्मक परिस्थिति में रखकर कोई असाधारण अनुक्रिया करने को कहा जा रहा है।
2. समाजमिति में लचीलापन का गुण होता है। इसके परिणाम स्वरूप इसका प्रयोग विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न उद्देश्य के लिये आसानी से किया जाता हैं।
3. लिंडर्ज एवं पर्व के अनुसार समाजमिति समूह के सदस्यों में एक दूसरे के प्रति आकर्षण विकर्षण, पसंद, नापसंद आदि का अध्ययन करने की एक अद्वितीय विधि हैं।
4. समाजमिति की उपयोगिता समूह संरचना, समूह समग्रता, समूह प्रभावशीलता, समूह मनोबल एवं समूह नेतृत्व के अध्ययन में काफी उपयोग हैं।
5. कुछ विद्वानों के अनुसार समाजमिति विधि की विश्वसनीयता तथा वैधता समूह संरचनाओं एवे समूह के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन करने के लिये समाजमिति विधि विश्वसमय व वैध है न कि अन्य विधियॉ।

अवगुण या सीमायें :–

1. समाजमिति के लिये समूह के सदस्यों की संख्या कम होनी चाहिए अर्थात 20 से कम हो।
2. समाजमिति में अन्तरशोधकर्ता सहमति की कमी पायी जाती है अगर एक ही समूह पर किसी एक विषय को लेकर विभिन्न शोधकर्ताओं द्वारा इस विधि द्वारा प्रेक्षण किया जाता है तो इन सब के परिणाम में उतनी सहमति नही रहती है। जितनी रहनी चाहिये। परिणामस्वरूप समाजमिति पर निर्भरता अधिक सही नही रहती है।
3. सेकर्ड तथा क्रचफील्ड के अनुसार समाजमिति विधि द्वारा समूह के सदस्यो के पारस्परिक संबंधों तथा समूह संरचना आदि का अध्ययन मात्र सतही ढंग से होता है, गहन रूप से नही इसका कारण यह है कि समूह में सदस्य कई कारणों से अपन वास्तविक पसंद व नापसंद को खुलकर व्यक्त नही कर पाते है।

इन परिसीमाओं के बाद भी समाजमिति विधि समाज मनोविज्ञान में अत्यंत व लोकप्रिय विधि है। इसका आयोग समूह संरचना, समूह मनोबल, समूह नेतृत्व, समूह समग्रता तथा, समूह सदस्यों के पारस्परिक संबंधो का अध्ययन करने में किया जाता हैं।

3.8 प्रयोगात्मक विधि

समाज– मनोविज्ञान की एक महत्वपूर्ण विधि प्रयोग – विधि है। प्रयोगात्मक विधि का अर्थ वह क्रिया विधि है जिसमें प्रयाग द्वारा सूचनायें प्राप्त की जाती हैं और प्रयोग का अर्थ वह निरीक्षण है जो नियंत्रित परिस्थितियों में किसी परिकल्पना की जॉच के लिये किया जाता है। चैपलिन वें प्रयोग विधि की परिभाषा देते हुये कहा है कि – प्रयोगात्मक विधि वह प्रविधि है जिसमें प्रयोग द्वारा सूचना की खोज की जाती है।

उन्होंने प्रयोग की परिभाषा देते हुये कहा है कि ''प्रयोग निरीक्षणों की एक श्रृंखला है जो किसी परिकल्पना की जॉच के लिये नियंत्रित परिस्थितियों में किया जाता है।''

समाज मनोविज्ञान में व्यवहार होने वाली प्रयोगात्मक विधि के तीन प्रकार है–

1. प्रयोगशाला प्रयोग विधि
2. क्षेत्र प्रयोग विधि
3. स्वाभाविक प्रयोग विधि

1. **प्रयोगशाला प्रयोग विधि (Laboratory experiment method)** :– प्रयोगशाला प्रयोग विधि वह है जिसमे समाज मनोवैज्ञानिक किसी सामाजिक व्यवहार का अध्ययन प्रयोग शाला में प्रयोग करके करते है। इस विधि में वे प्रायः प्रयोज्यों की एक सीमित संख्या का याहच्छिक रूप से चयन करके उसे आवश्यकतानुसार भिन्न – भिन्न समूहों जैसे प्रयोगात्मक समूह तथा नियंत्रित समूह में बॉटकर प्रयोग करते है। स्वतंत्र चर में जोड़– तोड़ या होर–फेर कर उसका प्रभाव आश्रित चर पर देखा जाता है। अन्य चरों को जिसका प्रभाव आश्रित चर पर पड़ रह हो सकता है परन्तु उसके प्रभाव के अध्ययन में प्रयोगकर्ता की कोई रूचि नही होती है नियंत्रित करके रखा जाता है इसे बहिरंग चर कहा जाता है। यदि स्वतंत्र चर में जोड़ तोड़ करने से आश्रित चर में भी कुछ परिवर्तन आ जाता है, तो समाज मनोवैज्ञानिक दोनों चरों कारण परिणाम के संबंध में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहॅुचते है। इस तरह से समाज मनोवज्ञानिक जब प्रयोगशाला विधि द्वारा किसी सामाजिक व्यवहार का अध्ययन करते है, तो वे एक सीमित प्रयोज्यों का याहच्छिक रूप से चयन करके प्रयोगशाला में एक कृत्रिम परिस्थिति सृजन करते हैं और फिर स्वतंत्र चर तथा आश्रित चर में कारण परिणाम संबंध स्थापित करते है। समाज मनोविज्ञान में किये गयें इस विधि द्वारा किये गये। शोध को उड़ी पत्र अनुक्रिया शोध भी कहा जाता है। यहॉ उद्दीपक से मतलब स्वतंत्र चर तथा अनुक्रिया से मतलब आश्रित चर से होता है।

समाज मनोविज्ञान में प्रयोगशाला प्रयोग विधि के उपयोग को एक मशहूर प्रयोग जिसे लाइबर्ट तथा बेरोन ने किया है। इस प्रकार दिखला सकते है।इस प्रयोग का उद्‌देश्य यह देखना था कि टेलीविजन पर लड़ाई झगडा तथा हिंसा की बहुलता वाले दृश्य देखकर बच्चों में आक्रमणशीलता के स्तर में वृद्धि हो जाती है। इस प्रयोग में दोनो यौन के बच्चों ने भाग लिया। बच्चों को यादृच्छिक रूप से दो समूहो में बॉट दिया गया आक्रमणशीलता दृश्य दिखया जाने वाला समूह तथा तटस्थदृश्य दिखाया जाने वाला समूह। टेलीविजन देखने के बाद दोनों समूह के बच्चों को एक जैसी परिस्थिति में रखा जाता है जिससे प्रत्येक बच्चे को दूसरे बच्चों को हानि या आधार पहॅुचाने का पर्याप्त अवसर था। परिणाम में देखा गया कि आक्रमण दृश्य देखने वाले बच्चों में तटस्थ दृश्य देखने वाले बच्चों की अपेक्षा आक्रमणशीलता स्तर काफी अधिक था। अस प्रयोग से साबित हो जाता है कि जब बच्चों को आक्रमणशीलता दृश्य (स्वतंत्र चर) दिखलाया जाता है तो इसे देखकर उनमे आक्रमणशीलता का बढ़ जाती है।

प्रयोगशाला विधि के गुण :– प्रयोगशाला विधि में चूँकि प्रयोग एक काफी नियंत्रित अवस्था में किया जाता है अतः इसके परिणाम की आंतरिक वैधता काफी अधिक होती है। इसके फलस्वरूप परिणाम अधिक निर्भर योग्य होता है।

चूँकि प्रयोग की अवस्था काफी नियंत्रित होती है, अतः चाहकर भी शोधकर्ता किसी प्रकार का पक्षपात तथा पूर्वाग्रह आदि नही दिखला पाता है। फलस्वरूप प्रयोगशाला प्रयोग में आत्मनिष्ठता नही होती है। प्रयोगकर्ता वैज्ञानिक प्रयोगात्मक डिजादन का उपयोग कर भिन्न– भिन्न तरह के पक्षपात जैसे प्रयोगकर्ता से संबंधित पक्षपात प्रयोज्य से संबंधित आदि को पूर्णतः नियंत्रित कर लेता है।

प्रयोगशाला प्रयोग शोध में चूँकि चरों का जोड़–तोड़ संभव है, अतः प्रयोगकर्ता हर तरह से अपने आपको संतुष्टकर प्रयोग को अधिक विश्वसनीय बना लेता है। इस विधि में चूँकि प्रयोगकर्ता एक निश्चित डिजाइनविधि, सांख्यिकीय विश्लेषण आदि को अपनाता है। अतः कोई भी प्रयोगकर्ता यदि बाद में उस प्रयोग को दोहराना चाहे तो उसे वह आसानी से दोहरा सकता है।

1. अवगुण –
   - इस विधि में सामाजिक व्यवहार का अध्ययन एक कृत्रिम अवस्था में किया जाता है। चूँकि प्रयोगशाला की परिस्थिति कृत्रिम होती है जिसका संबंध वास्तविक परिस्थितिसे न के बराबर होता है अतःइससे प्राप्त परिणाम जीवन के वास्तविक हालातों पर नही लागू नही हो पाते है।
   - प्रयोगशाला प्रयोग विधि में बाहय वैधता की कमी का एक दूसरा कारण प्रयोज्यों की एक सीमित संख्या होती है। इसमें अध्ययन तो बहुत थोडे व्यक्तियों पर किया जाता है परन्तु प्राप्त परिणाम सभी अन्य व्यक्तियों के लिये सही ठहराया जाता है।
   - प्रयोगशाला प्रयोग विधि द्वारा सभी तरह के सामाजिक व्यवहारों का अध्ययन करनाप संभव नही है। जैसे यदि भीड़ ,क्रांति, युद्ध का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहारों पर देखना चाहे तो शायद वह ऐसा करने में समर्थ नही हो पायेगा क्योकि प्रयोगशाला में ऐसी परिस्थिति पैदा नही की जा सकती।
2. **क्षेत्र प्रयोग विधि :–** क्षेत्र प्रयोग विधि प्रयोगात्मक विधि की दूसरी उपविधि है जिसका प्रयोग मनोवैज्ञानिक द्वारा अधिक किया गया है। इस विधि की आवश्यकता कुछ ऐसे सामाजिक व्यवहार के अध्ययन में महसूस की गयी है जिसका प्रयोगशाला द्वारा अध्ययन सामान्यता नही किया जा सकता था। भीड, क्राति, राजनैतिक, आंदोलन कुछ एसी सामाजिक समस्यायें हैं जिन्हे प्रयोगशाला में अध्ययन नही किया जा सकता है फिर भी समाज मनोवैज्ञानिक इनका अध्ययन करना चाहते है। फलतः समाज मनोवैज्ञानिको ने क्षेत्र प्रयोग विधि का प्रतिपादन किया है। इस विधि में किसी सामाजिक व्यवहार का अध्ययन प्रयोगशाला में न करके वास्तविक परिस्थिति में जिसे समाज मनोवैज्ञानिकों नें क्षेत्र कहा है में किया जाता है। प्रयोगकर्ता किसी वास्तविक परिस्थिति में स्वतंत्र चर में जोड–तोड़ करता है तथा उसका प्रभाव आश्रित चर पर देखता है।

   ''क्षेत्र प्रयोग शोध में शोधकर्ता वास्तविक सेटिंग में स्वतंत्र चर को देकर या उसमें जोड़–तोड़ कर एक तरह से हस्तक्षेप करता है और बाद में आश्रित चर पर पड़ने वाले प्रभावों की माप करता है।'' फिशर

   क्षेत्र प्रयोग विधि तथा प्रयोगशाला प्रयोग विधि बहुत कुछ एक दूसरे के समान है। जैसे – दोनों विधियों में ही प्रयोग नियंत्रित अवस्थाओं में किया जाता है तथा दोनों ही विधियों में प्रयोगकर्ता स्वतंत्र

चर में जोड़–तोड़ करता है और उसका प्रभाव आश्रित चर पर देखता है। इतना होते हुये भी क्षेत्र प्रयोग विधि में चूँकि प्रयोग एक स्वाभाविक परिस्थिति में न कि प्रयोगशाला की कृत्रित परिस्थिति में किया जाता है। अतः प्रयोज्य को यह पता नही रहता है कि उन पर किसी प्रकार का प्रयोग किया जा रहा है इससे एक लाभ यह होता है कि प्रयोज्य प्रयोगात्मक परिस्थिति में वास्तविक अनुक्रिया करता है न कि किसी तरह की बनावटी अनुक्रिया। इससे क्षेत्र प्रयोग विधि पर निर्भरता थोड़ी बढ़ जाती है।

मान लिया जाये कि कोई समाज मनोवैज्ञानिक क्षेत्र प्रयोग करके यह दिखलाना चाहता है कि क्या डर से व्यक्ति में संबंधन अभिप्रेरणा बढ़ जाती है? इस प्रयोग में डर स्वतंत्र चर है तथा संबंधत एक आश्रित चर है। प्रयोगकर्ता यह निश्चित करता है कि वह प्रयोग में स्वतंत्र चर के दो स्तर रखगा। अधिक डर को उत्पन्न करने वाली परिस्थिति तथा कम दर्द उत्पन्न करने वाली परिस्थिति प्रयोगकर्ता की कॉलेज के 30 छात्र इस प्रयोग के लिये उपलब्ध होते है। प्रयोगकर्ता यादृच्छिक रूप से इन सभी छात्रों को दो भागों में बॉट देगा। एक समूह को अधिक डर उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में रखा जायेगा तथा दूसरे समूह को कम डर उत्पन्न करने वाली परिस्थिति में रखा जायेगा। चूँकि यह एक क्षेत्र प्रयोग है अतः दन दोनों समूह को वास्तविक परिस्थिति में रखा जायेगा। मान लिया जाये कि अधिक डर की परिस्थिति में काम करने वाले समूह को किसी मकान की तीसरी मंजिल में रख दिया जाता है और इनसे यह कहा जाता हे कि मकान के प्रथम दो मंजिलों में भयानक आग लग गयी है। कम डर की परिस्थिति में काम करने वाले समूह को वैसे ही मकान की तीसरी मंजिल में रखा जाता है और उनसे यह कहा जाता है कि बगल में मकान में तेज आग लग गयी है। प्रयोगकर्ता दोनो समूहों के व्यवहार का निरीक्षण करने के पश्चात इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि अधिक डर की परिस्थिति में रहने वाले समूह के अधिकतर सदस्य एक साथ दूसरे के साथ होकर इंतजार करते है या भागने की राह ढूढ़ते है। जबकि कम डर की परिस्थिति में रहने वाले सदस्यों में इस ढंग का व्यवहार न के बराबर होता है। यदि सचमुच में ऐसा ही निष्कर्ष प्राप्त होता है तो स्पष्टता यह कहा जा सकता है कि डर से व्यक्तियों में संबंध अभिप्रेरण बढ़ जाती है।

क्षेत्र प्रयोग विधि के गुण :–

1. इस विधि में प्रयोग चूँकि वास्तविक परिस्थिति जैस बस रेलवे स्टेशन आदि मे किया जाता है। अतः दससे प्राप्त परिणाम जीवन के वास्तविक हालातों के लिये अधिक सही होता है तथा उसका सामान्यीकरण बहुत ही विश्वास के साथ अधिकतर व्यक्तियों के लिये किया जाता है।
2. इस विधि में प्रयोगशाला प्रयोग विधि के ही समान स्वतंत्र चरों में जोड–तोड़ किया जाता है तथा यथा संभव बहिरंग चरों को नियंत्रित करके रखा जाता है अतः इसमें आंतरिक वैधता रहती है।

क्षेत्र प्रयोग विधि के दोष :–

करलिंगर के अनुसार क्षेत्र प्रयोग में यथार्थता का अभाव पाया जाता है। इसका कारण यह है कि इसमें केवल आंशिक व ठीला – ढाला नियंत्रण ही पाया जाता है। इसलिये परिचालित चर तथा नियत चर में विचलन अधिक उत्पन्न हो जाता है। पर पडने वाले प्रभावों का अध्ययन कर सके तथा उससे संबंधित ऑकडों का संकलन कर सकें। इसे ही स्वाभाविक प्रयोग विधि की संज्ञा दी जाती है।

दोष :–

- इस विधि में प्रयोग कही को एक खास समय के लिये इंतजार करना पड़ता है। जब तक कोई स्वाभाविक घटना व घट नही जाती वे वह प्रयोग नही कर सकता है दूसरे समय की र्बबादी होती है।
- क्षेत्र प्रयोग में कभी तो परिचालन संभव होता है और कभी संभव नही होता है। कुछ सामाजिक परिस्थितियॉ ऐसी होती है जहॉ व्यवहार रूप से स्वतंत्र चरों को परिचालित करना संभव नही होता है। जैसे अंत वैर्थक्ति व्यवहारों पर प्रभाव देखने के लिये एक चर को परिचालित करना सिंद्धात के रूप में संभव हो सकता है परन्तु सभाविक रूप से नही।
- यह सही है कि सिद्धात के दृष्किोण के नही होने का कोई प्रश्न नही है लेकिन व्यवहारिक रूप से यह बहुत कठिन है। सामाजिक समस्याये इतनी जटिल होती है कि याहच्छिक प्रतिदर्श बनाते समय बहुत कठिनाई महसूस होती है और सही रूप में याहच्छीकरण संभव नही हो पाता है।
- क्षेत्र प्रयोग की यह एक मौलिक कमजोरी हैं। इसी कमजोरी के कारण न तो पूर्ण रूप से परिचालन संभव होता है और न याहच्छीकरण ही।

उपर्युक्त दोषों के कारण इस विधि की विश्वसनीयता प्रयोगशाला विधि की तुलना में कॉी सीमित है।

क्षेत्र प्रयोग विधि के गुण दोष का अध्ययन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुॅचते है कि क्षेत्र प्रयोग से प्राप्त परिणाम में सामान्यीरकण का गुण बहुत अधिक होता है परन्तु यह गुण बहिरंग चरों पर नियंत्रण की कुरवानी की कीमत से प्राप्त होता है।

3. स्वाभाविक प्रयोग विधि :— समाज मनोविज्ञान में स्वाभाविक प्रयोग विधि का भी प्रयोग किया जाता है इस विधि का भी प्रयोग प्रथम दो विधियों के समान बहुत नही हुआ है। कभी — कभी समाज मनोवैज्ञानिकों को कुछ इस प्रकार के सामाजिक व्यवहारों का भी अध्ययन करना पडता है जिसमे स्वतंत्र चर तो होते है परन्तु कुछ नैतिक तथा कानून प्रतिबंध के कारण उसमें जोड—तोड न तो प्रयोगशाला में किया जा सकता है और न ही क्षेत्र में जैसे —महामारी महत्वपूर्ण सदस्य की मृत्यु, बाढ़, भूकम्प है जिन्हें कोई भी प्रयोगकर्ता व्यक्तियों के व्यवहारों पर पडने वाले प्रभावों का अध्ययन करने के लिये अपनी और से उत्पन्न नही कर सकता है। अतः वह एक ऐसे समय तक इंतजार करता है जब इस प्रकार के प्राकृतिक कारक अपने आप उत्पन्न हो जाये ताकि उस समय वह व्यक्तियों के सामाजिक व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन कर सके तथा उससे संबंधित ऑकडों का संकलन कर सके। इस ही स्वाभाविक प्रयोग विधि कहते हैं।

गुण :—

1. इस विधि में प्रयोग बिल्कुल वास्तविक परिस्थिति में किया जाता है। अतः इसके परिणाम की वैधता पर कोई शक नही।
2. इस विधि में प्रयोगकर्ता को न तो कोई परियोजना बनानी पड़ती है व न ही कोई विशेष नियंत्रण करना होता हैं।

दोषः—

1. इस तरह के प्रयोग में प्रयोज्यों का चयन किसी वैज्ञानिक विधि द्वारा नही होता है। इसमें परिणाम दोषपूर्ण हो जोते है और उस पर निर्भरता भी कम हो जाती है।
2. इस तरह के प्रयोग में अनिश्चितता अधिक होती है। प्रयोगकर्ता को यह पहले से मालूम नही होता है कि अमुक स्वाभाविक परिस्थिति कब उत्पन्न होगी।

इस तरह से समाज मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक विधि का उपयोग तीन उपविधियों के रूप में किया गया है। तीनों उपविधियों के अपने–अपने गुण दोष है, फिर भी आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगशाला प्रयोग को सबसे ज्यादा पसंद करते हैं। जहॉ इस विधि का प्रयोग करने में असमर्थता होती है। वहॉ वे क्षेत्र प्रयोग का सहारा लेते हैं।

3.9 सहसंबंध विधि

समाज मनोविज्ञान में कुछ विशेष सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के लिये सहसंबंध विधि का उपयोग करना आवश्यक बन जाता है। क्रुक्स के अनुसार ''सहसंबंध विधि का तात्पर्य उन सांख्यिकीय विधियों से है जिनका उपयोग अपनी रूचि के दो चरों के बीच संबंध के प्रकार से मात्रा के मापन तथा वर्णन के लिये किया जाता है।'' कुछ समस्यायें या प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका समाधान प्रयोगात्मक विधि सर्वेक्षण विधि, प्रत्यक्ष प्रेक्षण विधि अथवा व्यक्ति अध्ययन विधि से संभव नही होता है। जैसे – एक सामाजिक समस्या यह हो सकती है कि सांप्रदायिकता तथा बुद्धि के बीच क्या संबंध है। इस समस्या के समाधान हेतु सबसे उत्तम एवं उपयुक्त सहसंबंध उपागम होगा। प्रतिदर्श के सदस्यों पर बृद्धि परीक्षण तथा सांप्रदायिकता परीक्षण का उपयोग करके अलग– अलग प्राप्तांक एकत्र किये जायेंगें फिर प्राप्तांको के दोनो सेटों के बीच सहसंबंध गुणो को निकाला जायेगा, जिससे पता चलेगा कि उनके बीच धनात्मक सहसंबंध है, ऋणात्मक सहसंबंण है अथवा शून्य संहसंबंध है।

धनात्मक सहसंबंध का अर्थ यह है कि एक चर में वृद्धि होने पर दूसरे चर में भी वृद्धि होगी और एक चर में ह्यस होने पर दूसरे चर मे भी ह्यस होगा। जैसे बृद्धि के बढनें पर सांप्रदायिकता भी बढे अथवा बृद्धि के घटने पर सांप्रदायिकता भी घटे तो इसे धनात्मक सहसंबंध होगा। इसका प्रसार +00.00 से +1.00 तक होता है।

ऋणात्मक सहसंबंध का अर्थ यह है कि एक चर में वृद्धि होने पर दूसरे चर में ह्यसहोगा अथवा एक चर में ह्यस होने पर दूसरे चर में वृद्धि होगी। जैसे – यदि बुद्धि अधिक होने पर सांप्रदायिकता कम हो अथवा बुद्धि कम होने पर सांप्रदायिकता अधिक हो तो ऐसे संबंध को ऋणात्मक सहसंबंध कहते है। ऋणात्मक सहसंबंध का एक उदाहरण यह है कि आयु तथा शारीरिक शक्ति के बीच ऋणात्मक सहसंबंध पाया जाता है। व्यस्कों की बढती हुयी आयु के साथ शारीरिक शक्ति घटती जाती है। ऋणात्मक सहसंबंध का प्रसार –0.00 से – 1.00 तक होता है।

शून्य सहसंबंध का अर्थ यह है कि दोनों चरों के बीच कोई निश्चित संबंध नही है अर्थात दोनो चर एक दूसरे से स्वतंत्र है। जैसे – यदि सांप्रदायिकता तथा बुद्धि के बीच शून्य सहसंबंध गुणांक है तो इसका अर्थ यह है कि सांप्रदायिकता तीव्र बुद्धि के लोगों में अधिक होगी अथवा मंद बुद्धि के लोगों में यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता है। इसे और भी स्पष्ट करते हुये कहा जा सकता है कि सिक्का उछालने के प्रशिक्षण तथा पठन– योग्यता के बीच सहसंबंध होगा। इसे शून्य के रूप में व्यक्त किया जाता है।

सहसंबंध गुणांक को पूर्ण धनात्मक सहसंबंध कहते है। – 0.00 से + .20 तक के धनात्मक सहसंबंध को +.21 से – 40 तक के सहसंबंध को मध्यम + .41 से .70 तक के सहसंबंध को मध्यम उच्च तथा + . 71 से +.

90 तक के सहसंबंध को बहुत उच्च सहसंबंध कहते है। इसी तरह से – 1.00 को पूर्ण ऋणात्मक सहसंबंध – 0. 00 से –.20 तक नगण्य सहसंबंध – .21 से – .40 के मध्य, – .41 से –.70 तक मध्यम उच्च तथा –.71 से – .90 तक बहुत उच्च सहसंबंध कहते है।

गुण या लाभ :–

1. सहसंबंध विधि या यह संबंध उपागम का एक गुण यह है कि इसके द्वारा दो चरों के बीच संबंध की दिशा की निश्चित जानकारी मिल जाती है। जैसे– जब हमें इस विधि के उपयोग से जानकारी मिलती है कि सांप्रदायिकता तथा बौद्धिक योग्यता के बीच धनात्मक सहसंबंध है तो हमें ज्ञात हो जाता है कि मंद बुद्धि की अपेक्षा तीव्र बुद्धि के लोगों में सांप्रदायिक अधिक पायी जायेगी।
2. इस विधि का एक गुण यह भी है कि इसके आधार पर दोनों चरों के बीच संबंध की मात्रा की जानकारी भी मिल जाती है। इस विधि से जहॉ एक ओर दो चरों के बीच धनात्मक या ऋणात्मक सहसंबंध का पता चलता है, वहीं दूसरी ओर धनात्मक या ऋणात्मक सहसंबंध की मात्रा का भी बोध होता है। यह मात्रा + 1.00 से लेकर + 0.00 अथवा – 1.00 से – 0.00 के बीच कुछ भी हो सकती है।

क्रुक्स ने इस विधि के गुणो की चर्चा करते हुये कहा है कि इस विधि में प्राप्त परिणाम के आलोक में भविष्यवाणी करना सहज रूप से संभव होता है। जैसे – इस विधि से यदि सांप्रदायिकता तथा बौद्धिक योग्यता के बीच उच्च धनात्मक सहसंबंध प्राप्त हो तो इस आधार पर भविष्यवाणी की जा सकती है कि तीव्र बुद्धि के लोग अधिक सांप्रदायिक होंगे अतः उनसे सावधान रहना चाहिये।

क्रुक्स के अनुसार इस विधि में गणितीय मूल्य पाया जाता है। इस गणितीय मूल्य पर आधारित सूचनायें अधिक विश्वसनीय तथा वैध होती है।,

इस विधि में यथार्थता तथा परिशुद्धता का गुण पाया जाता हैं इस दृष्टिकोण से भी यह विधि अन्य विधियों की तुलना में अधिक वैज्ञानिक हैं।

अवगुण या सीमायें :– कई गुणों के होते हुये भी इस विधि के कुछ दोष या अवगुण भी है, जो इस प्रकार है –

- क्रुक्स के अनुसार इस विधि की सबसे बडा दोष यह है कि इसके आधार पर प्राप्त परिणामों की व्याख्या करते समय यह भूल हो जा सकती है कि दो चरों के बीच प्राप्त संबंध से एक चर के कारण और दूसरे चर को प्रभाव भाव लिया जाय कारण, दोनों चरों के बीच धनात्मक तथा ऋणात्मक संबंध की स्थिति में कभी तो उनके बीच कारण प्रभाव संबंध होता है और कभी नही होता हैं। जैसे – जब कोई चालक नशे की हालत में गाड़ी चलाता है तो वह भूले अधिक करता है। यहॉ नशा तथा भूल के बीच धनात्मक सहसंबंध ह, जिसमें सचमुच में एक चर (नशा) कारण है और दूसरा चर (भूल) प्रभाव है। अतः दोनों में कारण प्रभाव संबंध होता है। लेकिन हमेशा ऐसा नही होता है। कभी दोनों चरों के बीच धनात्मक या ऋणात्मक चर होने का कारण कोई तीसरा चर होता है। ऐसी स्थिति में किसी गलत निष्कर्ष पर पहुॅचने की पूरी संभावना बन जाती है। ऐसी भूल की संभावना किसी दूसरी विधि में नही रहती है। जैसे – जीवन–बीमा का एजेंट समाज के लोगो से प्रायःमिलता रहता है तथा मिलते समय प्रसन्नता का प्रदर्शन करता है। इसका अर्थ यह नही है कि जीवन–बीमा की एजेंसी सामाजिक संबधंता के बीच कारण प्रभाव का संबंध है दूसरे शब्दों में, जीवन बीमा की एजेंसी के कारण तथा

सामाजिक संबंधता को प्रभाव समझना गलत है। वास्तव में यहॉ एक तीसरा कारक सक्रिय है जो उस एजेंट का स्वार्थ।

- इस विधि का उपयोंग सीमित क्षेत्र में ही संभव होता हैं। समाज मनोविज्ञान की अधिकांश समस्यायें ऐसी है जिनका समाधान सहसंबंध विधि से संभव नही है।
- इस विधि में लचीलापन का अभाव पाया जाता हैं। अतः लचीलापन वाली समस्याओं का समाधान सहसंबंध विधि से सभव नहीं हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि समाज मनोविज्ञान की एक विधि के रूप में सहसंबंध विधि अथवा सहसंबंधात्मक विधि की उपयोगिता सीमित है।

3.10 क्रांस सांस्कृतिक विधि

क्रांस सांस्कृतिक विधि अथवा क्रॉस सांस्कृतिक उपागम समाज मनोविज्ञान की वह विधि है, जिसमें कुछ निश्चित नियम मापदंडो के आधार पर विभिन्न संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। रेबर ने इसकी परिभाषा दते हुये स्पष्ट कहा है कि –''क्रॉस सांस्कृतिक विधि समाज मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र आदि में उपयोग होने वाली एक प्रयोगात्मक विधि है जिसमें विभिन्न संस्कृतियों का आकलन अनेक सांस्कृतिक विधि बिमाओं यथा शिशुपालन –पोषण पद्धति, साक्षरता भाषा उपयोग आदि के आधार पर किया जाता है। तत्पश्चात विभिन्न संस्कृतियों के प्राप्तांकों के प्रतिरूपों की तुलना की जाती हैं।

विशेषतायें–

रेबर द्वारा दी गयी उपर्युक्त परिभाषा के विश्लेषण से क्रॉस सांस्कृतिक विधि की निम्नलिखित विशेषतायें स्पष्ट होती है–

1. क्रॉस सांस्कृतिक विधि में एक मुख्य विशेषता यह है कि यह एक प्रयोगात्मक विधि है। कारण प्रयोग विधि की तरह क्रॉस सांस्कृतिक विधि का उपयोग एक नियंत्रित परिस्थिति में किया जाता है। प्रयोगात्मक चरों को छोड़कर अन्य सभी संभावित स्वतंत्र चरों को यथा संभव नियंत्रित कर लिया जाता है।
2. इस विधि की एक विशेषता यह है कि इसके द्वारा विभिन्न संस्कृतियों का मूल्यांकन किया जाता है।
3. इस विधि की एक विशेषता यह है कि यहॉ विभिन्न संस्कृतियों का आकलन सांस्कृतिक विमानों के आधार पर किया जाता हैं।
4. यहॉ सांस्कृतिक बिमाओं के रूप में शिशु पालन–पोषण, साक्षरता, भाषा आदि का उपयोग किया जाता हैं।
5. रेबर के अनुसार इस विधि की एक मुख्य विशेषता यह है कि इस प्रकार के शोध का प्राथमिक उद्देश्य विभिन्न संस्कृतियों की तुलना करना उतना महत्वपूर्ण नही हैं जितना कि विभिन्न सांस्कृतिक परिवेश में विभिन्न आचरणों एवं पद्धतियों की तुलना करना हैं।
6. क्रॉस सांस्कृतिक विधि अपनी एक्कालिक नही होती हैं। अपनी इस विशेषता के कारण यह विधि क्रॉस वर्गीय विधि से भिन्न होती है। क्रॉस वर्गीय विधि वस्तुतः एक्कालिंक होती हैं इसलिये यह विधि एक्कालिक विधि कहलाती हैं।

गुण या लाभ :–

1. यह विधि समाज मनोविज्ञान की अन्य विधियों से इस अर्थ में अधिक उपयोगी है क्योंकि इसके द्वारा विभिन्न संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन संभव होता है। किसी निश्चित मापदंड के आधार पर दो या अधिक संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन इसके द्वारा सहज रूप से किया जा सकता है। यह गुण किसी दूसरी विधि में नहीं है।
2. क्रॉस सांस्कृतिक विधि इस अर्थ में भी काफी लाभप्रद है कि इसकी सहायता से विभिन्न संस्कृतियों के शिशु के पालन पोषण पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन संभव होता है। इस संबंध में मारगेट भीड का अध्ययन महत्वपूर्ण है।
3. क्रॉस सांस्कृतिक विधि का एक गुण यह भी है कि इसके आधार पर विभिन्न सिद्धातों का परीक्षण करना संभव होता है। जेनसेन ने इस विधि का उपयोगे करते हुये यह परिणाम पाया कि गोरे तथा काले में क्रमशः बौद्धिक योग्यता तीव्र तथा मंद वेशागत होती है। इस आधार पर उन्होंने बुद्धि के जननिक सिद्धात का प्रतिपादन किया अतः इस सिद्धात का परीक्षण क्रॉस सांस्कृतिक उपागम के आधार पर विभिन्न संस्कृतियों के संदर्भ में किया जा सकता हैं।
4. इस विधि का एक गुण यह भी है कि इसके आधार पर किसी नये सिद्धांत को प्रतिपादित करना संभव होता है। मोहसिंन नें कहा है कि क्रॉस सांस्कृतिक उपागम की सहायता से नये सिद्धांत की स्थापना में मदद मिलती हैं।
5. यौन भिन्नता के प्रभाव को निर्धारित करने मे क्रॅास सांस्कृतिक उपागम से काफी मदद मिलती है। विशेष रूप से बच्चों के व्यक्तित्व एवं चरित्र के विकास पर यौन भिन्नता का प्रभव किस रूप में पड़ता है इसका निर्धारण इस शोध उपागम से यथार्थ रूप में करना संभव होता हैं।

सीमायें (Limitations) :– क्रॉस सांस्कृतिक विधि या उपागम के कई गुणों का उल्लेख किया गया है, फिर भी इसकी उपयोगिता सीमित हैं।

1. **प्रतिदर्श चयन में कठिनाई–** क्रॉस सांस्कृतिक उपागम में उपयुक्त प्रतिदर्श के चयन में काफी कठिनाई होती हैं। भिन्न–भिन्न संस्कृतियों में विविधता अधिक होने के कारण सभी स्वतंत्र चरों को नियंत्रित करना बहुत कठिन होता हैं। इस कारण समुद्रल्य प्रतिदर्शो का निर्माण करना बहुत कठिन बन जाता हैं।
2. **एकांश निर्धारण की कठिनाई** – व्हाइटिंग के अनुसार, '' क्रॉस सांस्कृतिक उपागम का एक दोष यह है कि इसमें संबंधित संस्कृतियों के अध्ययन हेतु विभिन्न एकांशों को निर्धारित करना होता है तथा समरूप एवं विषमरूप एकोशों को निश्चित करना होता है। यह एक कठिन तथा जटिल कार्य है। इसमें चूक होने पर प्राप्त परिणाम संदिग्ध बन जाते हैं।
3. **विषमता की समस्या** :– इस विधि की एक कठिनाई यह भी है कि विभिन्न संस्कृतियों के बीच विषमता अधिक होने के कारण सही परिणाम प्राप्त करना कठिन हो जाता है।
4. **शब्दों तथा मूल्यों की स्पष्टता** :– व्हाइटिंग ने द्वारा शोध उपागम की आलोचना करते हुये कहा है कि विभिन्न शब्दों के अर्थ सभी संस्कृतियों में निश्चित तथा समान नही होते है। इसी तरह विभिन्न संस्कृतियों में प्रचलित मूल्य अस्पष्ट होतो है। परिणामतः उपयुक्त प्रतिदर्श चयन में कठिनाई होती है और सही परिणाम प्राप्त करना कठिन बन जाता है।

5. **समय, श्रम तथा मुडा का व्यय** – क्रॉस सांस्कृतिक विधि में एक व्यवहारिक कठिनाई यह है कि इसमें समय अधिक लगता है अधिक श्रम करना पड़ता हैं और अधिक मुडा का खर्च होता है। कारण यहा अध्ययनकर्ता या शोधकर्ता को विभिन्न सांस्कृतिक के एकांशों को पहचान करने उपयुक्त प्रतिदर्श को बनाने या शोधकर्ता का विभिन्न संस्कृतिय आदि कार्यो को पूरा करने में अधिक समय तथा कठिन परिश्रम करना होता है तथा अधिक मुडा खर्च करनी होती हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि क्रॉस सांस्कृतिक विधि के कई दोष है परन्तु फिर भी यह विधि विशेष परिस्थितियों में सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु एक उपयोगी विधि है।

3.11 व्यक्ति इतिहास विधि

व्यक्ति इतिहास लेखन विधि जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, में समाज मनोवैज्ञानिक व्यक्ति या समूह या किसी संख्या के जीवन की घटनाओं से संबंधित तथ्यों का एक इतिहास तैयार करता हैं और बाद में उसका विश्लेषण करके उसके जटिल व्यवहार पैटर्न की व्याख्या करता है। इस तरह से इस विधि में शोधकर्ता किसी व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के समूह के जीवन की प्रमुख घटनाओं का एक लेखा जोखा तैयार करता हैं। लेखा तैयार करने में वह घटना विशेष से संबंधित कुछ प्रश्नों को पूछता हैं, ताकि उसे इस निष्कर्ष पर पहुॅचने की सुविधा है कि कौन–कौन सामाजिक कारकों तथा किन–किन सामाजिक परस्थितियों के कारण व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को अमुक व्यवहार करना पड़ा। इस विधि की सफलता बहुत हद तक शोधकर्ता की व्यक्तिगत कार्यकुशलता तथा बुद्धिमत्ता पर अधिक निर्भर करती हैं।

उदाहरण – मान लिया जाये कि कोई अनुसंधानकर्ता इस विधि द्वारा तलाक संबंधी व्यवहार का अध्ययन करना चाहता हैं। इसके लिये वह कुछ ऐसे व्यक्तियों का एक समूह तैयार करेगा जिन्हें कोर्ट द्वारा तलाक करने या देने की अनुमति प्राप्त हो गयी है। एक सौहादूपूर्ण संबंध स्थापित करने के बाद इन तरह के महत्वपूर्ण प्रश्नों को पूछेगा जिनसे उस व्यक्ति के तलाक से पहले के जीवन घटनाओं का एक स्पष्टतैयार हो सके। इस तरह का लेखा–जोखा या इतिहास तैयार करने में अनुसंधानकर्ता को व्यक्तियों से कितनी मदद मिलेगी यह उसकी बुद्धिमत्ता, वाक्पटुता तथा सामाजिक कुशलता पर निर्भर करती है। साथ ही साथ यह इस बात पर निर्भर करती है कि अनुसंधान कितना और कैसा सौहादपूर्ण संबंध स्थापित किया हैं। बाद में अनुसंधानकर्ता इस इतिहास का विश्लेषण करगा और तलाक से संबंधित कारणों का पता लगायेगा।

इस तरह से अंत में वह तलाक की घटना से संबंधित कुछ परिकल्पना बना सकने में समर्थ हो पायेगाा जिसको सत्यता की जॉच फिर किसी अन्य विधि जैसे प्रयोगात्मक विधि द्वारा यदि अनुसंधानकर्ता चाहे, तो कर सकता है।

गुण :–

1. इस विधि में अनुसंधानकर्ता को जीवन के वास्तविक तथ्यों का पता चलता है जिससे प्राप्त निष्कर्ष काफी विश्वसनीय व ठोस होता है। दूसरा यह है कि इन तथ्यों से अवगत होने पर स्वयं अनुसंधानकर्ता की संज्ञानात्मक क्षमता में वृद्धि होती हैं।

2. वर्केल तथा कूपर ने कहा कि ''इस विधि द्वारा प्राप्त तथ्यों के आधार पर किसी भी सामाजिक व्यवहार से संबंधित परीक्षणीय परिकल्पना बनाने में काफी सुविधा होती हैं।

दोष :–

1. प्रायः यह देखा गया है कि व्यक्ति अपने जीवन की घटनाओं के बारे में सही विवरण नही देता हैं। कुछ तथ्यों को छिपाता है तथा कुछ को बढ़ा–चढ़ाकर बता देता हैं। स्वभावतः तब इससे जिस निष्कर्ष पर अनुसंधानकर्ता पहुॅचेगा वह बहुत सत्य व वैध नही होगा।
2. वर्केल तथा कूपर के अनुसार इस विधि का प्रयोग अन्य विधियों के समान (प्रयोगात्मक विधि के समान) किसी प्राक्कल्पना की जॉच करने में नही किया जा सकता है।

व्यक्ति इतिहास लेखन विधि में कुछ अवगुण होते हुये भी इसकी लोकप्रियता समाप्त नही हुई हैं। इसका उपयोग समाज मनोवैज्ञानिकों तथा समाजशास्त्रियों द्वारा अब भी किया जाता हैं।

3.12 इंटरनेट शोध

आजकल समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा अपने विषय वस्तु का अध्ययन करने के लिये इंटरनेट का उपयोग किया जाता हैं। इस तरह के शोध में समाज– मनोवैज्ञानिक अपने विषय–वस्तु से संबंधित अध्ययनों की खोज करके उनका उपयोग अपने शोध में करते है और फिर अपने शोध को इंटरनेट पर डालकर अन्य लोगों को उस क्षेत्र में शोध करने के लिये प्रोत्साहित करते हैं।

गासलिंग, वाजैर, श्रीवास्तव तथा जॉन के अनुसार ''इंटरनेट शोध के मुख्य चार लाभ हैं जो निम्न हैं –

1. इंटरनेट शोध उन शोधों की तुलना में कम खर्चीली होती है जिसमें शोधकर्ताओं द्वारा पौराणिक विधियॉ जैसे प्रेक्षण विधि, प्रयोगात्मक विधि सर्वे विधि आदि का उपयोग किया जाता हैं।
2. इंटरनेट शोध में सहभागी ऑन लाइन सर्वे या शोध कार्य को पूरा करते है जिससे ऑकडों या प्रदत्त संग्रहण की दक्षता काफी बढ़ जाती है तथा समय की भी बचत होती हैं।
3. इंटरनेट चैट तथा बुलेटिन बोर्ड द्वारा मानव सामाजिक व्यवहार का एक बडा प्रतिदर्श उपलब्ध हो जाता है जहॉ वर्तमान सामाजिक समस्याओं या शौक के बारे में विचार विमर्श किया जाता है।
4. इंटरनेट के आधार पर उन व्यक्तियों का सामाजिक विश्लेषण करना संभव हो पाता है जो कालेज के छात्र नही हैं परन्तु दूर–दराज के भौगोलिक क्षेत्रों में विभिन्न सामाजिक वर्गो से आते हैं।

दोष :–

1. यदि विशेष सावधानी न बरती जाये तो कुछ व्यक्ति एक ही अध्ययन में आसानी से एक बार से अधिक सहभागी बन सकते हैं जिससे विश्वसनीयता कम हो जाती हैं।
2. इंटरनेट शोध में प्रदत्त संग्रहण परिस्थिति में पूर्वाग्रह उत्पन्न हो सकता है। जब अध्ययन किसी प्रयोगशाला में होता है तो व्यक्ति का उस पर नियंत्रण होता है परन्तु जब सहभागी कम्प्यूटर पर इपने घर से कार्य करता है तों शोधकर्ता का उस पर नियंत्रण रखना संभव नही हो पाता हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुये इंटरनेट शोध का फायदा उठाया जा सकता हैं।

3.13सारांश

समाज मनोविज्ञान समाज में व्यक्तियों के सभी प्रकार के व्यवहारों का अध्ययन करता हैं।

अन्य विज्ञानों की तरह सामाजिक मनोविज्ञान भी एक विज्ञान है तथ इसका अध्ययन वैज्ञानिक विधि द्वारा किया जा सकता हैं।

वैज्ञानिक पद्धति से तात्पर्य उस विधि या तरीके से है जिसे अपनाकर कोई भी विज्ञान अपने विषय क्षेत्र को प्रामाणिक बनाने या प्रयोग सिद्ध ज्ञान प्राप्त कर सकने में सफल हो सकता हैं।

समाज मनोविज्ञान की अध्ययन पद्धतियों अनेक विधियों को समाहित करती हैं जिनमें प्रमुख है – अन्तदर्शन विधि निरीक्षण विधि, समाजमिति विधि, सर्वेक्षण विधि आदि ।

समाजमिति विधि इस विज्ञान की एक महत्वपूर्ण विधि है का प्रयोग समाज के विभिन्न सदस्यों के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन करने के लिये किया जाता हैं।

इंटरनेट विधि भी सामाजिक मनोविज्ञान का अध्ययन करने की एक महत्वपूर्ण विधि हैं।

3.14 शब्दावली

प्रेक्षण विधि :– प्रेक्षण विधि में प्रेक्षक व्यक्ति के व्यवहारां का प्रेक्षण प्रायः एक स्वाभाविक परिस्थिति में करता हैं।

आत्मनिष्ठता :– इसमें व्यक्ति जो सूचना देता है वह प्रत्येक व्यक्ति का अलग –अलग होता हैं।

समाजमिति :– समाजमिति वह विधि है जिसमें समूह के सदस्यों के बीच पारस्परिक संबंध का अध्ययन किया जाता हैं।

प्रयोगात्मक विधि :– प्रयोगात्मक विधि वह विधि है जिसमें प्रयोग के द्वारा अध्ययन किया जाता हैं।

सहसंबंध विधि :– सहसंबंध विधि से तात्पर्य दो चरों के बीच संबंध ज्ञात करने की विधि से होता हैं।

व्यक्तिगत इतिहास विधि :– इस विधि में व्यक्ति के जीवन इतिहास से संबंधित सूचनाओं को संकलित किया जाता हैं।

3.15 संदर्भ ग्रंथ सूची

डा डी एस बथेल (1995) सामाजिक मनोविज्ञान मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी

अरूण कुमार सिंह (2003) सामाजिक मनोविज्ञान की रूपरेखा,मोतीलाल बनारसी दास

Baron & Byren (2015) Introduction to Social Psychology

3.16 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये–

- प्रेक्षण विधि में प्रेक्षण .... परिस्थिति में किया जाता हैं।
- प्रयोगात्मक विधि वह क्रियविधि है जिसमें .... विधि द्वारा सूचनाओं का संकलन किया जाता हैं।
- .... विधि में प्रयोग वास्तविक स्वाभाविक परिस्थिति में किया जाता हैं।
- .... विधि में प्रयोगकर्ता व्यक्ति के जीवन के इतिहास के तथ्यों का संकलन करता हैं।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

प्र0: 1– समाज मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक विधि का विश्लेषण कीजिये।

प्र0: 2– समाज मनोविज्ञान में क्रॉस सांस्कृतिक विधि का वर्णन कीजियें।

प्र0: 3– समाज मनोविज्ञान में सहसंबंध विधि का उल्लेख कीजियें।

प्र: 4– सर्वे विधि का मूल्यांकन कीजिये।

इकाई 4

अभिप्रेरणा तथा सामाजिक अभिप्रेरक(**Motivation And Social Motives**)

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 प्रेरक की परिभाषा
4.4 सामाजिक प्रेरक
4.5 सामाजिक अभिप्रेरक के प्रकार
4.6 उपलब्धि अभिप्रेरक के सिद्वांत
4.7 प्रेरक के सिद्वांत
4.8 मानव सामाजिक प्रेरकों को मापने की विधियां

4.9 सारांश
4.10 शब्दावली
4.11 वस्तुनिष्ठ प्रश्न
4.12 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
4.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद–

i) प्रेरक क्या है, ये समझ सकेंगे

ii) व्यक्तिगत व सामाजिक अभिप्रेरक को समझ सकेंगे।

iii) उपलब्धि प्रेरक के सिद्धांत का अध्ययन कर सकेंगे।

iv) सामाजिक अभिप्रेरक के सिद्धांतों का अध्ययन कर सकेगे।

v) सामाजिक अभिप्रेरक को माप सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना

व्यवहार के तीन पक्ष लेते है– संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक। प्रेरक या प्रेरणा का संबंध व्यवहार के तीसरे पक्ष से है। प्रेरक या प्रेरणा वह आंतरिक स्थिति है जो प्राणी को व्यवहार या क्रिया करने के लिये बाध्य करती है। जैसे प्राणी प्यास से बाध्य होकर पानी की तलाश करता है। अतः भूख या प्यास एक प्रेरक या प्रेरणा है।

4.3 प्रेरक की परिभाषा

भिन्न–भिन्न मनोवैज्ञानिकों वें प्रेरणा की परिभाषा भिन्न–भिन्न रूपों में देने का प्रयास किया है–

''प्रेरक वह आंतरिक कारक या स्थिति है जिसमें क्रिया को उत्पन्न करने तथा बनाये रखने की प्रवृत्ति होती है। –गिल्फोर्ड

" A Motive is a particular internal factor or condation that tends to"

Initiate and sustain activity", Guilford, 1956

प्रेरक एक सामान्य पद है, जिसका अर्थ वे सभी आंतरिक कारक हैं जो लक्ष्य निर्देशित (उत्प्रेरित) व्यवहार के भिन्न–भिन्न प्रकारों की अगुआई करते हैं –शेरिफ तथा शेरिफ

"Motive is a general term to cover all of the internal factors which led different kinds of goal derided (motivated) behavior. Sherif and Sherif,1986

'' प्रेरक उत्तेजन की वह अवस्था है, जो प्राणी की क्रिया की ओर बढ़ाती है''–रेबर

"Motive is a state of arousal that impels an organism to action"-Reber. 1995

इस प्रकार स्पष्ट है कि उपर्युक्त परिभाषाओं में काफी समानता है। इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्रेरक वह अवस्था है जो प्राणी को एक निश्चित दिशा में लक्ष्य प्राप्ति तक सक्रिय रखती है।

आवश्यकता–प्रणोदन–प्रोत्साहन– (Need Drme Inanduy)

4.4 सामाजिक प्रेरक

प्रेरणा या प्रेरक के तीन प्रमुख पक्ष हैं' आवश्यकता (Need) प्रणोदन (Drive) तथा प्रोत्साहन (Incentive) मनोवैज्ञानिकों में प्रेरक के दो प्रकार बताये हैं जैविक प्रेरक, सामाजिक प्रेरक।

जैविक प्रेरक उन कारकों को कहा जाता है जो प्राणी में जन्म से ही मौजूद होते हैं। जैसे– भूख, प्यास, काम आदि। इन कारकों के प्रेरकों के अध्ययन में प्रयोगात्मक मनोविज्ञानिकों ने अधिक रूचि दिखलाया है। समाज मनोवैज्ञानिकों का ध्यान सामाजिक प्रेरक के अध्ययन पर अधिक गया है। सामाजिक प्रेरक अर्जित होते है, अर्थात–वे जन्मजात नहीं होते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और जन्म से वह समाज में रहता है उसे समाज के नियमों के अनुसार वह कुछ नये–नये अभिप्रेरकों को अर्जित करता है ऐसे अभिप्रेरकों को सामाजिक अभिप्रेरक कहा जाता है। सामाजिक अभिप्रेरक की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसका कोई दैहिक आधार नहीं होता है। सामाजिक अभिप्रेरक के उदाहरण है–सामूहिकता , उपलब्धि, अभिप्रेरक, समूहन अभिप्रेरक आदि। सामाजिक अभिप्रेरक की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं–

1. समाजिक अभिप्रेरक भूख, प्यास आदि अभिप्रेरकों के समान जन्मजात नहीं होते हैं बल्कि इन्हें व्यक्ति अपने जीवन काल में समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सीखता है।
2. समाजिक अभिप्रेरक का कोई दैहिक आधर नहीं होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि सामाजिक अभिप्रेरक शुरूआत किसी प्रकार की जैविक आवश्यकता से नहीं होती है। इन सामाजिक अभिप्रेरकों का संबंध परिस्थिति या वातावरण से होता है।
3. समाजिक अभिप्रेरक व्यक्ति को एक सफल सामाजिक जीवन व्यतीत करने में मदद करता है।

4.5 समाजिक अभिप्रेरक के प्रकार

सामाजिक अभिप्रेरक केवल मनुष्यों में ही पाये जाते हैं क्योंकि यह अभिप्रेरक व्यक्ति द्वारा सामाजिक समूहों तथा परिवार के साथ अंतक्रिया करने पर प्राप्त होता है इसी कारण से सामाजिक अभिप्रेरक की शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में अलग–अलग होता है।

सामाजिक अभिप्रेरक हमारे विकास के लिये अति आवश्यक हैं परन्तु सामाजिक अभिप्रेरक की अभिव्यक्ति प्रत्येक समाज में अलग–अलग होती है। इस कठिनाई के बाद भी समाज मनोवैज्ञानिकों ने सामाजिक

अभिप्रेरकों के मुख्य प्रकारों की सूची तैयार की है, जैसे–मर्रे ने सामाजिक अभिप्रेरकों के प्रमुख 28 प्रकार बताये हैं थामस के अनुसार प्रमुख सामाजिक अभिप्रेरकों को मूलतः चार भागों में बाँटा जा सकता है। आलपोर्ट तथा क्लाइनवर्ग के अनुसार सामाजिक अभिप्रेरकों की संख्या अनंत है, अतःइनका सूचीकरण नहीं किया जा सकता है। इन विवादों के बावजूद भी सामाजिक अभिप्रेरकों को दो भागों में बाँटा गया है–

व्यक्तिगत सामाजिक अभिप्रेरक

सामान्य सामाजिक अभिप्रेरक

व्यक्तिगत सामाजिक अभिप्रेरक (Presonal social Motives)

व्यक्तिगत सामाजिक अभिप्रेरक उस अभिप्रेरक को कहा जाता है जिसे व्यक्ति अपने जीवन काल में सीखता है तथा वह व्यक्ति विशेष के निजी व्यक्तित्व का एक अंश होता है। एक ही समाज के भिन्न व्यक्तियों में व्यक्तित्व सामाजिक अभिप्रेरक भिन्न–भिन्न होते हैं। अतः व्यक्तिगत सामाजिक अभिप्रेरक प्रत्येक व्यक्ति में अलग–अलग होता है। प्रमुख व्यक्तिगत सामाजिक अभिप्रेरक निम्न हैं –

1. आकाक्षा स्तर – (Levels of Aspiration)

इवान्स (Evans, 1978) के अनुसार आकांक्षा–स्तर से तातर्पय उन सामान्य लक्ष्यों से होता है जिनहें व्यक्ति अपने जीवन में निर्धारित करता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी कुछ न कुछ आकांक्षायें होती है जैसे– ऊँचा पद प्राप्त करना, अपना सफलव्यवसाय करना, बड़ा मकान बनवाना आदि। इन आकांक्षाओं से व्यक्ति का व्यवहार काफी हद तक निर्धारित होता है। अतः सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों से यह प्रदर्शित कर दिया है कि व्यक्ति का आकांक्षा–स्तर अपने आप में एक प्रमुख व्यक्तिगत सामाजिक अभिप्रेरक है जो दो कारकों से प्रभावित होती है पूर्व अनुभूति (Past Experience) तथा समूह का प्रभाव (Group Experience) सामाजिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति की जैसी पूर्व अनुभूति होती है उसी के अनुसार व्यक्ति का आकांक्षा स्तर निर्धारित होता है। व्यक्ति का आकांक्षा–स्तर समूह के प्रभाव द्वारा भी प्रभावित होता है अर्थात– व्यक्ति अपने आकांक्षा सतर का निर्धारण उन व्यक्तियों के समूह प्रभाव द्वारा भी करता है जिनसे वह अपनी तुलना करता है।

जीवन लक्ष्य – (Life Gols) व्यक्ति का जीवन–लक्ष्य एक महत्वपूर्ण व्यक्तिगत सामाजिक अभिप्रेरक है जिससे उसका व्यवहार निर्देशित होता है। जीवन–लक्ष्य में व्यक्ति को कार्य करने के लिये प्रेरित करने की शक्ति होती है। उदाहरण के लिये किसी व्यक्ति का जीवन–लक्ष्य प्रोफेसर बनना है तो वह विषय की पढ़ाई में अभिरूचि दिखायेंगा, प्रोफसरों की संगति में समय बितायेगा, नेट जे.आर.एफ. (J.R.F.) व पी.एच.डी. करेगा आदि। कई व्यक्यिों का जीवन–लक्ष्य एक होता है परंतु इस समानता का करण अलग–अलग होता है। उदाहरण के लिये कोई व्यक्ति प्रोफेसर पैसे कमाने व आराम का जीवन बिताने के लिये बनना चाहता है, वहीं कोई कोई व्यक्ति प्रोफेसर युवा छात्रों का मार्गदर्शन करने के लिये व समाज में योगदान करने के लिये बनना चाहता है।

अभिरूचि (Interest) व्यक्ति अपने बहुत से व्यवहारों को अपनी अभिरूचि के कारण भी करता है। कुछ महिलाओं की अभिरूचि टी.वी. पर सीरियल देखने की अधिक होती है। परिणाम स्वरूप वह सीरियल के समय

अपना सारा काम स्थगित करके टी.वी. के सामने बैछ जाती हैं। उसी तरह से कुछ पुरूष क्रिकेट मैंच को देखने के लिये अपना सब काम छोड़कर टी.वी. के सामने बैठ जाते हैंइस तरह से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति का व्यवहार उनकी अभिरूचिओं द्वारा काफी प्रभावित होता है।

मनोवृत्ति (**Attitudes**)

मनोवृत्ति भी व्यक्ति को किसी प्रकार का व्यवहार करने के लिये बाध्य करती है प्रत्येक व्यक्ति की मनोवृत्ति भिन्न–भिन्न परिस्थितियों वस्तुओं एवं व्यक्तियों के प्रति भिन्न–भिन्न होती है। इस तरह की मनोवृत्तियॉ अनुकूल एवं प्रतिकूल दोनों हो सकती हैं। इन्हीं अनुकूल एवं प्रतिकूल मनोवृत्त्यिों के कारण व्यक्ति का व्यवहार प्रभावित होता है। उदाहरण स्वरूप यदि किसी व्यक्ति की मनोवृत्ति दहेज प्रथा के प्रतिकूल है तो वह हर तरह से विवाह के दहेज प्रथा का विरोध करता है तथा ऐसे व्यक्ति का जो इस प्रथा का उपयोग करते है, उन्हें घृणा की नजर से देखता है। इन उदाहरर्णा से स्पष्ट है कि व्यक्ति की मनोवृत्ति का भी प्रभाव सामाजिक व्यवहार पर पड़ता है।

आदत (Habits)

आदत भी एक प्रमुख व्यक्तिगत सामाजिक अभिप्रेरक है। आदतें प्रत्येक व्यक्ति की अलग–अलग हो सकती है। आदतें व्यक्ति के व्यवहार को दिशा प्रदान करती हैं। जहाँ एक तरफ इनसे हमारे जीवन का निर्माण होता है, वहीं दूसरी तरफ हमारे जीवन का विनाश होता है। जैसे एक तरफ यदि व्यक्ति अच्छी किताबों को पढ़कर अपने ज्ञान में वृद्धि करेगा। वहीं दूसरी तरफ यदि व्यक्ति को मादक–द्रव्यों का सेवन करने की आदत पढ़ जाती है तो वह हर तरह से अपनी इस आदत को पूरा करने की कोशिश करेगा। वह घर से पैसे की चोरी करेगा, बाहर भी चोरी करेगा। तथा इससे वह अपराधी बनने की ओर अग्रसर हो जाता है। इस प्रकार आदतें भी हमारे व्यवहार के लिये एक अभिप्रेरक है का कार्य करती है।

अचेतन अभिप्रेरक (Unconscious Motives)

फ्रायड ने अचेतन मन पर बहुत अधिक बल डाला है। फ्रायड के अनुसार अचेतन अभिप्रेरक मनुष्य के चेतन क्रियाओं को नियंत्रित व संचालित करता है। अचेतन अभिप्रेरक हमारे व्यक्तित्व को संचालित करने में बहुत बड़ी भूमिका निभाता है। फ्रायड के अनुसार अचेतन मन हमारे व्यक्तित्व का बहुत बड़ा हिस्स होता है। अतः यह हमारे जीवन में महत्वपूर्ण अभिप्रेरक की भूमिका निभाता है।

सामान्य सामाजिक अभिप्रेरक –

(Genral Social Motivate)

समान्य सामाजिक अभिप्रेरक वे हैं जो समान्य रूप से समाज विशेष के सभी सदस्यों में पाये जाते हैं। ये अभिप्रेरक चूँकि समाज के प्रत्येक सदस्य में पाये जाते हैं, अतः इनके आधार पर तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। प्रमुख समान्य सामाजिक अभिप्रेरक इस प्रकार हैं–

सामुदायिकता या संबंधन अभिप्रेरक –

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसका कारण यह है कि उसे अनेक प्रकार के सामाजिक, जैविक, सांस्कृतिक कार्य करने पडते हैं। ये कार्य वह अकेले नहीं कर सकता है। इसके लिये उसे अन्य व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। इसे सामुदायिकता या संबंधन अभिप्रेरक कहते हैं। स्कैक्टर ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बताया है कि व्यक्ति में सामुदायिकता या संबंधन व्यवहार उस समय बढ़ जाता है जब उसके इर्दनगिर्द किसी प्रकार का खतरा उत्पन्न हो जाता है। इस प्रयोग में कॉलेज छात्राओं के दो समूह लिये गये थे। एक समूह को मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में लाकर उन्हें एक बड़ी इलैक्ट्रानिक मशीन दिखलायी गयी और कहा गया कि अभी जो प्रयोग किया जाने वाला है, उसमें मशीन का उपयोग किया जायेगा जिसको चलाने पर सेभव है कि उन्हें बिजली का झटका या शॉक लग जाये। दूसरे समूह की छात्राओं को सिर्फ मशीन दिखलायी गयी और उसे चलाने की विधि समझा दी गयी। इसके बाद इन दोनों समूहों की छात्राओं को एक उेसे कमरे में इंतजार करने को कहा गया जहाँ उन्हें इस बात की छूट थी कि वे चाहे तो अकेले प्रतीक्षा कर सकते हैं या झुंड बनाकर भी प्रतीक्षा कर सकते हैं। परिणाम में देखा गया कि पहले समूह की छात्राओं ने झुंड बनाकर प्रतीक्षा करना पसंद किया जबकि डूसरे समूह की छात्राओं में इस तरह की प्रवृत्ति नहीं देखी गयी। परिणाम से पता चलता है कि वातावरण में किसी प्रकार के खतरे से उत्पन्न डर या चिंता की अवस्था में लोगों में सामुदायिकता बढ़ जाती है।

उपलब्धि अभिप्रेरक –

उपलब्धि अभिप्रेरक एक प्रमुख सामान्य सामाजिक अभिप्रेरक है। उपलब्धि अभिप्रेरक से तात्पर्य एक ऐसे अभिप्रेरक से होता है जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति अपने कार्य को इस ढंग से करने की कोशिश करता है कि उसे अधिक से अधिक सफलता प्राप्त हो सके। मन, फर्नल्ड तथा फर्नल्ड ने उपलब्धि अभिप्रेरक को परिभाषितकरते हुये कहा है, ''उपलब्धि अभिप्रेरक से तात्पर्य श्रेष्ठता के एक खास स्तर प्राप्त करने की इच्छा से होता है।'' जिन व्यक्तियों में उपलब्धि अभिप्रेरक अधिक होता है वे सफलता के उच्चतम स्तर पर पहुँचने का हर संभव प्रयास करते हैं। उपलब्धि अभिप्रेरक के बारे में एक बात और स्पष्ठ है कि यह सभी सदस्यों में एक समान नहीं होता है प्रत्येक व्यक्ति में यह अभिप्रेरक अलग–अलग मात्रा में होता है। इसके कई कारण होते हैं– इनमें से एक कारण माता–पिता द्वारा बचपन में दिया गया स्वतंत्रता प्रशिक्षण (Independence Training) है। इसको इस उदाहरण से समझ सकते हैं–कुछ माता–पिता ऐसे होते हैं जो अपने बच्चों को काफी छोटा समझकर उन्हें अधिकतर कार्य नहीं करने देते हैं और स्वयं ही कर लिया करते हैं। परंतु इसके विपरीत कुछ माता–पिता ऐसे भी होते हैं जो अपने बच्चों को प्रत्येक कार्य स्वयं ही कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता देते हैं। प्रथम प्रकार के बच्चों को स्वतंत्रता प्रशिक्षण नहीं प्राप्त हुआजबकि दूसरे प्रकार के बच्चों को स्वतंत्रता प्रशिक्षण प्राप्त हुआ है। अध्ययनों से यह प्राप्त होता है कि जिन बच्चों को स्वतंत्रता प्रशिक्षण प्राप्त दिया जाता है, व्यस्क होने पर उनमें उपलब्धि अभिप्रेरक भी अधिक होता है।

उपलब्धि अभिप्रेरक का अध्ययन मैक्लीलैंड तथा उनके सहयोगियों ने प्रारंभ किया जिसके अध्ययन के लिये इन्होंने T.A.T. (Thematic Apperception Test) जैसी प्रक्षेपी परीक्षण का भी निर्माण किया। बाद में एटकिन्सन तथा होयेन्गर ने भी इस अभिप्रेरक से संबंधितअनेक अध्ययन किये ।इन अध्ययनों से जो सामान्य निष्कर्षप्राप्त हुये हैं वे इस प्रकार हैं–

i) ऐसे व्यक्ति जिनमें उपलब्धि अभिप्रेरक अधिक होता है, साधारण कठिनाई वाले कार्य को करना अधिक पसंद करते हैं क्योंकि ऐसे कार्यों को करने में सफलता करीब–करीब निश्चित होती है।

ii) अधिक उपलब्धि प्रेरक वाले व्यक्ति उन कार्यों को अधिक पसंद करते हैं जिनके आधार पर उनकी तुलना अन्य व्यक्तियों के साथ की जाती है।

iii) अधिक उपलब्धि प्रेरक वाले व्यक्ति उन कार्यों को करना अधिक पसंद करते हैं जिनके द्वारा व्यक्तिगत गुणों जैसे बुद्धि, अभिक्षमता आदि की जानकारी होती है।

iv) जैसे–जैसे अधिक उपलब्धि अभिप्रेरक वाले व्यक्ति किसी कार्य में सफलता प्राप्त करते जाते हैं वैसे–वैसे उनकी आकांक्षा का स्तर भी ऊँचा होता जाता है।

v) ऐसे व्यक्ति जिनमें उपलब्धि अभिप्रेरक अधिक होता है उन परिस्थितियों में कार्य करना अधिक पसंद करते हैं जहाँ परिणाम पर उनका नियंत्रण रहता है।

उपलब्धि अभिप्रेरक के बारे में कुछ अनुसंधानकर्ताओं ने मौन–भिन्नता का अध्ययन करते हुये यह बताया है कि पुरूषों में महिलाओं की अपेक्षा उपलब्धि अभिप्रेरक अधिक होता है। परंतु कुछ अध्ययनों में महिलाओं में उपलब्धि अभिप्रेरक पुरूषों के बराबर या उनसे अधिक पाया है।

सत्ता अभिप्रेरक –

अधिकतर लोगों में सत्ता या पद–प्राप्ति का प्रेरक पाया जाता है। व्यक्ति अपने साथियों के बीच सत्ता एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करने की इच्छा या प्रवृत्ति रखता है। व्यक्ति की इसी इच्छा या प्रवृत्ति को सत्ता–प्रेरक अथवा पद–प्राप्ति प्रेरक की संज्ञा दी जाती है। वह अपने जाने–पहचाने लोगों के बीच एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करने की इच्छा रखता है।

मार्गन तथा किंग के अनुसार, पद–प्राप्ति की आवश्यकता का तात्पर्य एक समूह में दूसरे लोगों के बीच सामाजिक प्रतिष्ठा अर्जित करने की आवश्यकता से है। इसके अंतर्गत प्रतिष्ठा, सत्ता तथा सुरक्षा की आवश्यकतायें शामिल है।

सत्ता–प्रेरक या प्रतिष्ठा प्रेरक के कई रूप हो सकते हैं। इसका एक अर्थ समूह में ऊँचा स्थान या श्रेणी प्राप्त करने की इच्छा है। व्यक्ति अपने समूह में ऊँचा स्थान प्राप्त करने का प्रयास करता है ताकि उसे अधिक से अधिक मर्यादा प्राप्त हो सके। यह इच्छा जानवरों में भी पायी जाती है। खेल के मैदान में कुछ बच्चे ऊँची श्रेणी प्राप्त करने के लिये लगातार कोशिश करते हैं। मित्रों की मंडली में कुछ लोग अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। कुछ लोग प्रतिष्ठा प्राप्त करने के उद्देश्य से अधिक धन जमा करते हैं। कुछ लो ऊँचे–ऊँचे मकान बनाकर, मोटर गाड़ी या आधुनिक मँहगा मोबाइल खरीदकर अपनी प्रतिष्ठा की आवश्यकता की संतुष्टि करते हैं और बेहतर साधनों को हासिल कर अपने आपकी अधिक प्रतिष्ठित समझते हैं।

पद–प्रेरक में प्रतिष्ठाकी आवश्यकता के साथ–साथ सत्ता की आवश्यकता भी शामिल होती है। कुछ लोग प्रतिष्ठा की खातिर सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं तो कुछ ऐसे भी है, जो प्रतिष्ठा की उपेक्षा करके सत्ता प्राप्त

करने का प्रयास करते हैं। पद–प्राप्ति का प्रेरक न केवल व्यक्ति के अपने व्यक्तित्व पर पिर्भर करता है बल्कि उस समूह के स्वरूप पर भी निर्भर करता है, जिसका वह सदस्य होता है।

पद–प्राप्ति का प्रेरक भी कई प्राथमिक प्रेरकों की संतृष्टि का एक माध्यम है। कुछ लोग इसे लक्ष्य मानते हैं, परंतु गंभीरता पूर्वक सोचने से यह पता चलता है के पद–प्राप्ति वास्तव में एक साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति एक विशेष ढंग से जीना चाहता है और दूसरों से एक विशेष ढंग से बरताव चाहता है। पद–प्राप्ति की एक विशेषता यह भी है कि उपलब्धि –प्रेरक की तरह इसकी संतुष्टि की कोई सीमा नहीं होती है। कुछ पद–प्राप्त होने के बाद व्यक्ति संतुष्ट भेल हो जाये परंतु बाद में वह उनस भी ऊँचे पद को प्राप्त करने के लिये सक्रिय हो जाता है।

आक्रमणशीलता–प्रेरक –

आक्रमणशीलता–प्रेरक का तात्पर्य लड़ने–झगड़ने आक्रमण करने की प्रवृत्ति से है। सैन्फोर्ड ने कहा है कि ''आक्रमण एक सामान्य पद है जिससे आक्रमणकारी व्यवहार अथवा इस प्रकार के व्यवहार की प्रवृत्तियों का बोध होता है। आक्रमणशीलता प्रेरक पशुओं व मनुष्यों दोनों में पाया जाता है। हम यह देखते हैकि छोटे–छोटे पशु भी एक दूसरे पर आक्रमण करते हैं। मनुष्यों में यह प्रवृत्ति कई रूपों में देखी जा सकती है एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को नुकसान पहुँचाने की कोशिश करता है, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को गंदे शब्दों द्वारा तकलीफ पहुँचाने का प्रयास करता है। इस प्रकार के व्यवहार के पीछे यही प्रेरक सक्रिय रहता है। कभी–कभी यह प्रेरक उग्र रूप धारण कर लेता है।ऐसी हालत में व्यक्ति दूसरों पर घातक आक्रमण करता है और हत्या तक कर देता है। इसी आक्रमणशीलता की प्रवृत्ति ने मावन को बड़े–बड़े युद्धों के लिये बाध्य किया। यह बात लंबे समय से चली आ रही है। जैसे–सभ्यता का विकास होता गया , आक्रमणशीलता का प्रेरक सूक्ष्म रूप धारण करता गया। पहले मनुष्य शारीरिक रूप से लड़ाई करता था, परंतु अब हमने ऐसे–ऐसे खतरनाकहथियार बना लिये हैं कि इस स्तर पर एक आक्रमणकारी पूरी सृष्टि का विनाश कर सकता है।

परोपकारी व्यवहार –

(Altruistic behavior)

व्यक्ति का व्यवहार आत्म केन्द्रित तथा पर केन्द्रित दोनों होता है। व्यक्ति कभी अपने हित का काम करता है और कभी दूसरों के हित का करता है। इस प्रकार, व्यक्ति में दूसरों की सहायता की इच्छा पायी जाती है। इसी इच्छा को परोपकारी आवश्यकता अथवा दूसरों की सहायता करने की इच्छा कहते हैं। बच्चों में यह प्रेरक अधिक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्रायःदेखा जाता है कि खेल के मैदान में एक बच्चे को चोट लगने पर दूसरे बच्चे उसकी सहायता करने लगते हैं। इस तरह के व्यवहार के पीछे अपना कोई स्वार्थ नहीं होता है। अतः परोपकारी प्रेरक का अर्थ उस इच्छा से है जो व्यक्ति को बिना किसी स्वार्थ के दुसरों की मदद करने के लिये बाध्य करती है। दूसरों की सहायता करते समय कभी–कभी व्यक्ति को थोड़ा नुक्सान भी उठाना पड़ता है। इसी लिये ताजफेल तथा फ्रेजर ने कहा है कि ''जब कभी एक व्यक्ति एकतरफा दूसरे व्यक्ति की सहायता करता है और कभी–कभी कुछ नुक्सान भी उठाता है तो इसे परोपकार संबंधी व्यवहार कहते हैं।

अनुमोदन अभिप्रेरक या आवश्यकता–

(Approval Moteive os Need)

अनुमोदन अभिप्रेरक या अनुमोदन की आवश्यकता से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों से धनात्मक मूल्यांकन यानी प्रतिष्ठा प्रशंसा आदि पाने की उम्मीद से होता है। प्रायः देखा जाता है कि इस तरह का अभिप्रेरक बच्चों एवं किशोरों में व्यस्क लोगों की अपेक्षा अधिक तीव्र होता है। क्राउनी तथा मारलो द्वारा इस तरह अभिप्रेरक का विशेष रूप से अध्ययन किया गया। इन लोगों ने इस अभिप्रेरक की शक्ति को मापने के लिये कुछ विशेष मापनी तैयार किया गया है जिसे अनुमोदन की आवश्यकता की मापनी की संज्ञा दी गयी है। इस मानी में 33 कथन हैं जिनका उत्तर व्यक्ति को 'सही' तथा 'गलत' में देना होता है। यदि प्रयोज्य अधिकतम कथनों का उत्तर सही के रूप में देता है तो समझा जाता है कि उस व्यक्ति में अनुमोदन अभिप्रेरक अधिक तीव्र है। क्राउनी तथा मालो ने अनुमोदन अभिप्रेरक का विस्तृत अध्ययन करके निम्न तथ्यों को प्राप्त किया–

i) ऐस लोग जिनमें अनुमोदन अभिप्रेरक अधिक होता है वे समूह के नियमों एवं आदर्शों के समरूप अधिक व्यवहार करते पाये जाते हैं।

ii) व्यक्ति में अधिक तीव्र अनुमोदन अभिप्रेरक की उत्पत्ति अपने आत्म–सम्मान के निम्न–स्तर को ऊँचा करने की इच्छा के फलस्वरूप होता है। ऐसे लोग जिनमें आत्म–सम्मान का स्तर नीचा होता है। अपनी कमजोरियों को स्वीकार नहीं करते है। इसके अतिरिक्त ऐसे लोग स्वतंत्र रूप से न तो कुछ निर्णय ही लेते हैं और न तो कोई कार्य ही स्वतंत्र रूप से करते हैं क्योंकि ऐसे लोगों के दूसरे व्यक्तियों से अनुमोदन न मिलने का डर बना रहता है।

vi) संग्रहणषीलता

संग्रहणशीलता भी एक प्रमुख सामाजिक अभिप्रेरक है जिसके कारण व्यक्ति समाज में भिन्न–भिन्न प्रकार की क्रियायें करता है। संग्रहणशीलता अभिप्रेरक से तात्पर्य मूल्यांकन वस्तु या पसंद की चीजों को अपने उपयोग के लिये संग्रह या इकट्ठा करने से होता है। इस अभिप्रेरक को व्यक्ति बचपन से ही सीखता है। बच्चा परिवार के बड़े सदस्यों को मूल्यवान वस्तुओं का संग्रहण करते हुये देखते है। इस तरह से उनमें संग्रहणशीलता अभिप्रेरक का विकास होता है लेविस के अनुसार संग्रहणशीलाता को अभिप्रेरक सामान्यता स्त्रियों में पुरूषों की अपेक्षा अधिक पाया जाता है। यह अभिप्रेरक संसार की सभी सम्य जातियों में पाया जाता है। परंतु कुछ जातियों ऐसी भी है जिनमें इस तरह का अभिप्रेरक नहीं होता है। पाउडर एवं कर के अनुसार लेशु जाति के लोगों में इस तरह का अभिप्रेरक नहीं पाया जाता है क्योंकि इस समाज में आंशिक या पूर्णतः साम्यवाद होता है। ऊपर किये गये वर्णन से स्पष्ट है कि व्यक्ति के जीवन में सामाजिक अभिप्रेरक का बहुत महत्व है तथा इसके कई प्रकार हैं।

4.6 उपलब्धि अभिप्रेरक का सिद्धांत

उपलब्धि अभिप्रेरक की व्याख्या करने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने कुछ सिद्धांतों का प्रतिवादन किया है जिनमें निम्न सिद्धांत प्रमुख हैं–

क) एटकिन्सन का सिद्धांत

ख) गुणारोपण सिद्धांत

एटकिन्सन का सिद्धांत

एटकिन्सन द्वारा उपलब्धि अभिप्रेरक का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रतिपादित किया गया। इस सिद्धांत का संक्षेप में वर्णन यह है कि सफलता प्राप्त करने की प्रवृत्ति दो अलग–अलग अभिप्रेरकों पर आधारित होता है– सफलता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति असफलता से दूर हटने की प्रवृत्ति ये दोनों प्रवृत्तियों उस समय सबसे अधिक होती हैं जब सफलता की संभावना 0.5 होती है।

इस सिद्धांत के मुख्य तीन पहलू जो इस प्रकार है–

i) सफलता प्राप्त करने का अभिप्रेरक

(Motive to seek success)

ii) असफलता से दूर रहने का अभिप्रेरक

(Motive to avoid failure)

iii) उपलब्धि अभिप्रेरक

(Achievement Motivation)

i) सफलता प्राप्त करने का अभिप्रेरक –

इस सिद्धांत की पहली मान्यता यह है कि सफलता प्राप्त करने की प्रवृत्ति तीन तरह के कारकों अर्थात उपलब्धि प्राप्ति के लिये टिकाऊ अभिप्रेरक कार्य पर सफलता प्राप्त करने की व्यक्ति की अपनी प्रसंभाव्यता तथा लक्ष्य का प्रोत्साहन मूल्रू का प्रतिफल होता है। इस सूत्र रूप में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

$Ts = Ms \times Ps \times Is$

Ts = सफलता प्राप्त करने की प्रवृत्ति

(Tendency to seek success)

Ms = उपलब्धि के लिये टिकाऊ अभिप्रेरक

(Enduring motive for achivement)

Ps = सफलता प्राप्ति के लिये आत्मानिष्ठ प्रत्याषा

(Subjective expectation of success) जैसा कि मर्रे को TAT द्वारा मापा जाता है।

Is = लक्ष्य का प्रोत्साहन मूल्य

(Incentive Valur of goal)

एटकिंसन के इस सिद्धांत में **Ms** उपलब्धि अभिप्रेरक (n Ach) है जिसे T A T द्वारा मापा जा सकता है। प्रोत्साहन (Incentive) की तुलना आत्मभिमान (Pride) से की जाती है। किसी कार्य में सफलता की उम्मीद जैसे–जैसे कम होती है, उस कार्य में सफलता मिलने पर आत्माभिमान वैसे–वैसे बढ़ता है। इसका अर्थ यह हुआ कि सफलता की प्रसंमाव्यता तथा प्रोत्साहन में विपरीत संबंध है जिसे इस प्रकार लिखा जा सकता है–

$$Is = 1 - Ps$$

यदि कार्य का स्वरूप कुछ ऐसा है कि उसमें सफलता प्राप्त करने की संभावना काफी अधिक है, तो ऐसे कार्य में सफलता मिलने से आत्माभिमान (Pride) कम होगा। ऐसा इसलिये होता है कि कार्य आसान होता है। दूसरी तरफ यदि कार्य का स्वरूप ऐसा होता है कि सफलता प्राप्त करने की संभावना कम होती है, परंतु उसे सफलता किसी तरह मिल जाती है तो उससे आत्माभिमान अधिक होता है।

इस तथ्य का सूत्र निम्न है–

$$\mathbf{Ts = Ms \times Ps \times (I - Ps)}$$

इस सूत्र पर ध्यान देने से निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं –

a) इस सूत्र में Is को 1-Is के रूप में दिखलाया गया है जो इस बात का संकेत देता है कि सफलता प्राप्त करने की संभावना तथा उस सफलता की उपलब्धि से उत्पन्न आत्माभिमन में विपरीत संबंध होता है।

b) चूकि Ms, व्यक्ति का एक टिकाऊ विशेषता होती है, मात्र कारक जो एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति तक परिवर्तित होता है, वह है -Ps

इस तरह से उक्त सूत्र समग्र रूप से यह संकेत देता है कि किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त करने की प्रवृत्ति व्यक्ति की उपलब्धि आवश्यकता कार्य पर सफलता प्राप्त करने की संभावना से तथा उस कार्य पर सफलता प्राप्त करने से उत्पन्न आत्माभिमान का प्रतिफल है। चूँकि इन तीनों कारकों में गुणात्मक संबंध है। इसलिये किसी एक कारक के शून्य होने पर Ts शून्य हो जायेगा। सूत्र की गणितीय विशेषताओं के कारण जब Ps=.5 होता है, तो व्यक्ति में संबंधित कार्य करने की प्रवृत्ति अधिकतम होती है। जब कार्य कठिन होता है (निम्नPs) तो व्यक्ति उस कार्य को करना ही नहीं चाहता है। यद्यपि ऐसे कार्य का प्रोत्साहन मूल्य अधिक होता है लक्ष्य को प्राप्त करने की संभावना काफी निम्न होती है। दूसरी तरफ यदि कार्य आसान होता हैं (उच्च Ps)तो व्यक्ति ऐसे कार्य को नहीं करना चाहता क्योंकि इस कार्य में प्राप्त उपलब्धि से उत्पन्न आत्माभिमान कम होता है। स्पष्ट हुआ कि Ts उच्च Ps तथा निम्न Ps दोनों में कम होता है परंतु Ps अर्थात कार्य पर सफलता प्राप्त करने की उम्मीद न बहुत अधिक है और न बहुत कम है। (यानी Ps+s) तो ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति में इस कार्य को करने की प्रवृत्ति (Ts) अधिक होती है।

ii) असफलता से दूर रहने का अभिप्रेरक –

(Motive to avoid failure)

एटकिन्सन के सिद्धांत का दूसरा प्रमुख पहलू असफलता से दूर रहने का अभिप्रेरक है। जब भी व्यक्ति किसी ऐसी परिस्थिति में होता है जहाँ वह कार्य में उपलब्धि प्राप्त नहीं कर सकता है तो उसमें असफलता से दूर रहने की अभिप्रेरण उत्पनन होती है। इस अभिप्रेरण को परीक्षण चिंता प्रश्नावली (**Test Anxiety Questionnaire ot TAQ**) द्वारा मापा जाता है। इस प्रश्नावली पर अधिक प्राप्तांक आने से यह समझा जाता है कि व्यक्ति में असफलता का डर अधिक है। असफलता के डर से व्यक्ति में उस कार्य को न करने की प्रवृत्ति का पता चलता है। सफलता प्राप्त करने की प्रवृत्ति के समान ही असफलता से दूर रहने का या अभिप्रेरण तीन कारकों अर्थात असफलता से दूर रहने का अभिप्रेरक असफलता प्राप्त करने की संभावना तथा असफलता से संबद्ध शरम का प्रतिफल है।

$T_F = M_{AF} \times P_F \times I_F$

T_F= असफलता से दूर रहने की प्रवृत्ति

M_{AF} = असफलता से डर जैसा कि TAQ द्वारा मापन होता है ।

P_F = असफलता की संभावना

P_{FT} = T_F असफलता से उत्पन्न शरम । इस सूत्र में शरम का ठीक वही स्थान है जो ऊपर के सूत्र में आत्माभिमान का था। शरम असफलता की संभावना से नकारात्मक रूप से संबंधित होता है।

व्यक्ति को उस कार्य में असफल होने पर भी शरम नहीं होती है जिसमें असफलता की संभावना कम होती है। ठीक इसके विपरीत व्यक्ति उस परिस्थिति में असफल होने पर अधिक परम का अनुभव करता है जहाँ कार्य आसान होता है अर्थात असफल होने की संभावना कम रहती है। इसे सूत्र में निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है।

$T_F = M_{AF} \times P_F \times (1-P_F)$

उपरोक्त सूत्र में T_F को I-PF के रूप में शरम तथा असफलताकी संभावना के बीच विपरीत संबंध को दिखाने के लिये लिखा जाता है। जिस तरह से सफलता की प्राप्ति का अभिप्रेरक उस परिस्थिति में सर्वाधिक होता है जहाँ सफलता की संभावना .5 होती है, ठीक उसी तरह असफलता के डर से असफलता से दूर रहने का अभिप्रेरक समय अधिक होता है जब P_F का मान लगभग बीच .5 का होता है।

उपलब्धि अभिप्रेरक –

एटकिंसन के सिद्धांत का तीसरा पहलू उपलब्धि अभिप्रेरक है। उपलब्धि उनमुखी व्यवहार (T_A) में लिप्त होने की प्रवृत्ति T_S में से T_Fको घटा लेने के बाद बचे मूल्य पर आधारित होता है।

सूत्र – $T_A = T_S - T_F$

इस सूत्र में के पूर्व पदों में रूप में प्रतिस्थापित करने पर T_A के सूत्र में इस प्रकार लिखा जा सकता है–

$$T_A = [(M_S - M_{AF})\ (P_S x\ (I - P_S)]$$

इस सूत्र से जो निष्कर्ष प्राप्त होता है, वो इस प्रकार है–

A) सभी व्यक्ति सफलता प्राप्त करने तथा असफलता से दूर रहने की प्रवृत्ति से अभिप्रेरित होते हैं।
B) प्रत्येक उपलब्धि – उन्मुखी परिस्थिति द्वारा उक्त दोनों तरह के अभिप्रेरक की उत्पत्ति होती है।
C) कोई भी व्यक्ति उपलब्धि संबद्ध क्रियाओं में सचमुच में अपने आपको लिप्त करेगा या नहीं यह दो कारकों पर आधारित होता है–परिणामी – उपलब्धि अभिप्रेरण अर्थात -$(M_S - M_{AF})$ तथा कार्य की कठिनाई [PS x (I-PS)] टकिंसन के सिद्धांत की सीमायें–

i) एटकिंसन के सिद्धांत में व्यक्ति का MS प्राप्तांक जो व्यक्ति के टिकाऊ शीलगुण को मापता है, एक परिस्थिति में दूसरी परिस्थिति में संगत नहीं होती।

ii) कुछ विद्वानों के अनुसार MS एकांकी अ द्वारा अन्य अभिप्रेरकों का भी मापन किया जाता है जो आपस में भिन्न होते हैं।

iii) यौन भूमिका का सामाजीकरण के कारण महिलाओं तथा पुरूषों के लक्ष्य अलग–अलग होते हैं। चूँकि एटकिंसन मॉडल में Is का संबंध उन वैयक्तिक लक्ष्यों की प्राप्ति से उत्पन्न आत्माभिमान से है जो पुरूषों के लिये महिलाओं की तुलना में अधिक उपयुक्त है। अतः उनका सिद्धांत महिलाओं के लिये उतना सार्थक नहीं है।

iv) कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति की उपलब्धि प्रवृत्तियों पर वैसे कारकों का भी प्रभाव पड़ता है जिसकी कल्पना एटकिंसन मॉडल में नहीं की गयी है। जैसे–व्यक्ति में उच्च डै प्राप्तांक नहीं होने पर भी उसका दीर्घकालिन लक्ष्य से उसकी उपलब्धि व्यवहार प्रभावित हो सकता है। ऐसे कारकों को इस सिद्वांत में शामिल नहीं किया गया है । इन परिसीमाओं के बावजूद एटकिंसन का सिद्धांत एक महत्वपूर्ण सिद्वांत माना गया है क्योंकि इसके द्वारा उन कारकों पर बल डाला गया है जो उपलब्धि व्यवहार के होने में महत्वपूण भूमिका निभाते हैं।

गुणारोपण सिद्धांत –

यह सिद्धांत वाईनर के शोधों पर आधारित है। इस सिद्धांत की प्रमुख मान्यता यह है कि लाग अपने व्यवहार को समझने या उसकी व्याख्या करने के लिये प्रेरित है। वे ऐसा अंशतः विभिन्न कारकों के रूप में गुणारोपण करके करते हैं वाईनर के अनुसार जिन कारकों जिन कारकों के रूप में व्यक्ति अपनी उपलब्धि व्यवहार का गुणारोपण करता है उसके दो मुख्य आयाम या विमा होते है जो कि निम्नलिखित हैं–

i) पहले आयाम का संबंध संभावित कारण के स्रोत होता है। आंतरिक स्रोत में व्यक्ति अपनी योग्यता क्षमता या प्रयास को रखता है तथा वाह्य कारक में व्यक्ति कार्य की कठिनाई तथा भाग्य आदि का रखता है। वाईनर तथा उनके सहयोगियों के अनुसार यह आयाम उपलब्धि संबद्ध–परिणाम के लिये अधिक संगत है।

इस सिद्धांत के अनुसार जो व्यक्ति उपलब्धि अभप्रेरण में अत्यधिक उच्च होता है वे अपनी सफलता का गुणारोपण आंतरिक कारणों के रूप में करते हैं तथा असफलता का गुणारोपण वाह्य कारकों के रूप में करते हैं। दूसरी तरफ जो व्यक्ति उपलब्धि अभिप्रेरण में निम्न होते है, वे अपनी सफलता का करण वाह्य कारक मानते हैं तथा असफलता का कारण आंतरिक मानते हैं।

ii) इस दूसरे आयाम का संबंध कारण की स्थिरता से है। इस आयाम का संबंध उन कारकों के सापेक्ष स्थायित्व से है जिनसे परिणाम प्रभावित होता है ।

इस सिद्धांत का प्रमुख गुण यह है कि उसमें उपलब्धि अभिप्रेरक की व्याख्या कुछ कारकों के रूप में गुणारोपण करके किया जाता है। इस सिद्धांत का दोष यह है कि इसमें बतलाये गये सभी कारकों को वस्तुनिष्ठढंग से मापना संभव नहीं है। अतः इस सिद्धांत की व्यवहारिकता में कुछ संदेह है।

मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत

प्रेरणा या प्रेरक के संबंध में निम्नलिखित सिवंत महत्वपूर्ण हैं–

1) इस सिद्धांत का प्रतिपादन फ्रायड ने किया अतः इसे फ्रायड का सिद्धांत भी कहते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार मन के तीन आकारात्मक पक्ष हैं। इन्हें चेतन, अद्धग्चेतन तथा अचेतन कहते हैं। चेतन मन का वह भाग होता है जिसमें ऐसे विचार या इच्छायें होती हैं जिनका प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ता है और जिनकी तात्कालिक जानकारी उसे रहती है। अर्द्धचेतन मन का वह भाग है जिसमें ऐसे विचार या इच्छायें होती है जिनका प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ता है और जिसकी तात्कालिक जानकारी उसे नहीं रहती है। थोड़ा प्रयास करने के बाद इनकी जानकारी संभव होती है। अचेतन मन का वह भाग होता है जिसमें ऐसे विचार या इच्छायें रहती है जो व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करती है। किंतु व्यक्ति को इसकी जानकारी न तो तात्कालिक होती है और न थोड़ा प्रयास करने पर ही प्राप्त होती है। इसके लिये सम्मोहन आदि मनोवैज्ञानिक प्रविधियों की आवश्यकता होती है।

इस सिद्धांत के अनुसार मन के गत्यात्मक पक्ष के तीन भाग हैं– इड, ईगी तथा सुपर ईगो।

इड जन्मजात होता है व अचेतन होता है अतार्किक होता है, अनैतिक होता है तथा सुख के नियम के आधार पर कार्य करता है। इसके विपरीत सुपर ईगो अर्जित होता है, चेतन होता है नैतिक होता है तथा नैतिक नियम पर काम करता है इन दोनों के बीच ईगो होता है, जो तार्किक होता है, चेतन तथा अचेतन दोनों होता है तथा वास्तविकता के नियम के आधार पर काम करता है। इड तथा सुपर ईगो के विरोधी स्वरूप होने के कारण व्यक्ति मानसिक संघर्षों से पीड़ित हो जाता है। और उसका संतुलन बिगड़ने लगता है लेकिन ईगो इन दोनों के बीच समझौता कराकर मानसिक संघर्षों का समाधान करता है जिससे व्यक्ति का मानसिक संतुलन कायम रहाता है। यह मानसिक संततुलन ईगो की शक्ति पर निर्भर करता है। यह जितना अधिक शक्तिशाली होगा, व्यक्ति में उतना ही अधिक संतुलन तथा अभियोजन होगा।

इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार दो मूल प्रवृत्तियों पर आधारित है– जीवन–मूल प्रवृत्ति (Life Instinct) तथा मृत्यु मूल प्रवत्ति (Death Instinct) जीवन मूल प्रवृत्तिसे प्रभावित होकर व्यक्ति रचनात्मक

कार्यों को करता है। इसलिये इसे रचनात्मक मूल प्रवृत्ति भी कहते हैं। अपने आप से प्रेम करना आत्म–प्रेम कहलाता है। इसके विपरीत मृत्यु–मूल प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति ध्वंसात्मक व्यवहार करता है अतः इसे ध्वंसात्मक मूल प्रवृत्ति भी कहते हैं। इसी कारण व्यक्ति दूसरों से या अपने आप से घृणा करता है। अतः इसे घृणा मूल–प्रवृत्ति भी कहते हैं। इन दोनों प्रकार की मूलप्रवृत्ति वस्तुगत व कभी आत्मगत होती है। इन दोनों प्रकार की अभिव्यक्तियों में जितना अधिक संतुलन होता है व्यक्ति में मानसिक खण्डन या अभियोजन उतना ही संभव होता है।

यह सिद्धांत प्रेरणा की व्याख्या करने में काफी सफल है लेविन व युग के सिद्धांत के आलोक में फ्रायड के सिद्धात में सामूहिक अचेतन अथवा जातीय अचेतन के प्रेरकों की व्याख्या करने में यह सिद्धांत सक्षम नहीं है। इस तरह से सभी चेतन प्रेरकों की व्याख्या इस सिद्धांत से संभव नहीं है।

2) क्षेत्र–सिद्धांत – (**Field Theory**)

ठस सिद्धांत का प्रतिपादन लेविन ने किया। ये गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक थे। इसलिये इस सिद्धांत को गेस्टाल्टवादी सिद्धांत भी कहते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करने में भौतिक वातावरण तथा मनोवैज्ञानिक वातावरण दोनों का हाथ होता है। भौतिक वातावरण का तात्पर्य किसी निश्चित समय में उपस्थित भौतिक उत्तेजनाओं के समूह से है। मनोवैज्ञानिक वातावरण का तात्पर्य व्यक्ति के मानस पर उपस्थित स्मृतियों, प्रतिभा, अनुभव आदि से है। स्पष्टतया भौतिक वातावरण की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक वातावरण का हाथ अधिक होता है। मनोवैज्ञानिक वातावरण को जीवन–क्षेत्र (Life Space) का कहा जाता है।

यह सिद्धांत मानव व्यवहार की व्याख्याकरने में आंशिक रूप से असफल है क्योंकि इस ाि़द्धांत में केवल अतीत पर बल दिया गया है। कोई भी सिद्धांत तभी सफल होगा जब उसमें अतीत के साथ–साथ वर्तमान का भी अध्ययन किया जाये। इसका कारण यह है कि मानव व्यवहार की व्याख्या में अतीत व वर्तमान दोनों की आवश्यकता होती है।

कार्यात्मक स्वतंत्रता– सिद्धांत–

(**Theory of Functional Autonomy**)

मानव–व्यवहार की व्याख्या करने में इस सिद्धांत का महत्वपूर्ण योगदान है। कार्यात्मक स्वतंत्रता की व्याख्या सर्वप्रथम आलपोर्ट ने की थी। व्यक्ति पहले किसी उद्देश्य को प्राप्त को प्राप्त करने के लिये कोई व्यवहार करता है लेकिन बाद में उदेदश्य प्राप्त हो जाने पर के बाद भी उस व्यवहार को जारी रखता है। उसका यह व्यवहार साधन से साध्य बन जाता है। जैसे–एक शिकारी मांस हासिल करके अपनी भूख मिटाने के लिये शिकार करता है लेकिन बाद में उसके पास प्शुओं के ढेर सा मांस होते हुये भी वह शिकार करता है। पहले शिकार का उद्देश्य भोजन प्राप्त करना था। भोजन लक्ष्य था और शिकार साधन था। लेकिन अब शिकार ही लक्ष्य बन गया। इसे कार्यात्मक स्वतंत्रता कहते हैं। यह सिद्धांत मानव व्यवहार के निर्धारण में आदतों के महत्व की व्याख्या करने में आंशिक रूप से सफल है।

आत्म–कार्यान्वयन सिद्धांत–

(Self Actualization Theory)

मैसलो (Masluva, 1943, 1968) ने मनुष्य की आवश्यकताओं की व्याख्या एक श्रृंखला के रूप में की है। उनके अनुसार मनुष्य की आवश्यकताओं का विकास होता है और तब उच्च आवश्यकताओं का विकास होता है। इसें अनुसार आवश्यकताओं के विकास की श्रृंखला निम्नलिखित है–

क) शारीरिक आवष्यकतायें – मैसलो के अनुसार सबसे पहले भूख प्यास आदि शारीरिक आवश्यकताओं का विकास होता है। व्यक्ति अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की संतुष्टि का प्रयास सबसे पहले करता है।

ख) सुरक्षा आवष्यकतायें (Safety Needs)

शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने के बाद व्यक्ति में सुरक्षा, स्वास्थ्य आदि से संबंधित आवश्यकताओं का विकास होता हैं। जब वुनियादी आवश्यकताओं की संतृष्टि हो जाती है तो व्यक्ति अपनी सुरक्षा की संतुष्टि चाहता है।

ग) सम्बद्धता एवं प्यार–आवष्यकता–

(Bilongingress and love Needs)

आवश्यकताओं की श्रृंखलाओं में सम्बद्धता–आवश्यकता तथा प्रेम–आवश्यकता का विकास होता है। इस अवस्था में आत्मीकरण (Identification) स्नेह (Affection) आदि आवश्यकताओं का विकास होता है

घ) सम्मान आवश्यकता – (Esteem Needs) इस अवस्था में प्रतिष्ठा आत्मा–सम्मान, सफलता आदि आवश्यकताओं का विकास होता है।

3) आत्म–कार्यान्वयन आवष्यकता–

आवश्यकताओं की श्रृंखला में दस प्रेरक या आवश्यकता का विकास सबसे बाद में होता है। आत्म–कार्यान्वयन की आवश्यकता का अर्थ व्यक्तिगत विकास आत्म–इच्छापूर्ति, योग्यता पूर्ति आदि से है।

इससे स्पष्ट होता है कि आवश्यकताओं का विकास नीचे से ऊपर की ओर होता है। सबसे पहले व्यक्ति अपनी भूख की आवश्यकता की संतुष्ठि करता है। तब तक उसकी भूख शांत नहीं होगी, वह अन्य कोई कार्य नहीं कर सकेगा। इसके पश्चातउसे अपनी सुरक्षा की चिंता होती है। इसके लिये वह अपने लिये घ बनवाता है तथा आ–पास सुरक्षित वातावरण का निर्माण करता है। सुरक्षा की आवश्यकता की संतुष्टि के पश्चात व्यक्ति में प्रतिष्ठा एवं आत्म–सम्मान की आवश्यकता जन्म लेती है। इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने पर आत्म–कार्यान्वयन की आवश्यकता जन्म लेती है।

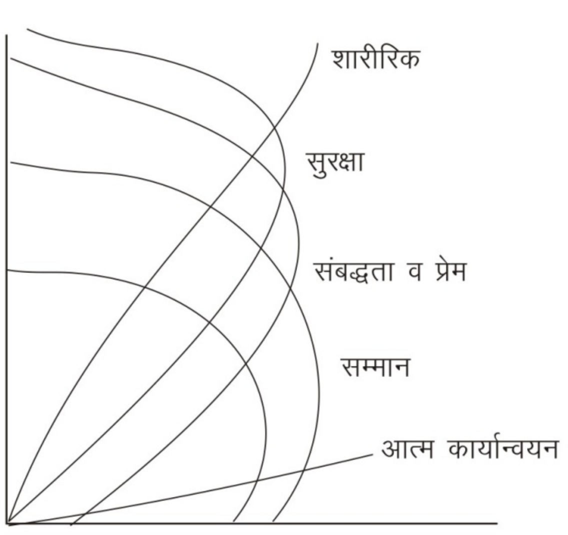

इस चित्र से स्पष्ट है कि कोई उच्च आवश्यकता तभी विकसित होगी जब उसके नीचे वाली आवश्यकता पूरी हो गयी हो। दूसरी बात यह है कि जैसे–जैसेमनोवैज्ञानिक विकास बढ़ता जाता है आवश्यकताओं की संख्या भी बढ़ती जाती है।प्रेरक या प्रेरणा के संबंध में आत्म–कार्यान्वयन को लेकर मनोवैज्ञानिकों के बीच काफी मतभेद हैं।

4.7 मानव सामाजिक प्रेरकों को मापने की विधियाँ

मनुष्य के सामाजिक प्रेरकों को शुद्ध रूप में मापना कठिन कार्य है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मनुष्य के व्यवहार पर सामाजिक प्रेरकों का अधिक प्रभाव पड़ता है। अतः मानव–व्यवहार को समझने तथा उसकी भविष्यवाणी करने के लिये सामाजिक प्रेरकों को मापना आवश्यक है इसके लिये निम्नलिखित विधियों का उपयोग किया जाता है–

व्यवहार–निरीक्षण विधि –

मनुष्य के सामाजिक प्रेरकों को मापने के लिये व्यवहार–निरीक्षण विधि का उपयोग अक्सर किया जाता है। भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में व्यवहार का निरीक्षण किया जाता है। जिससे यह पता चलता है कि उसमें कौन सा सामाजिक प्रेरक, कितना सबल या दुर्बल है। यदि कोई प्रत्येक परिस्थिति में दूसरों के साथ ही रहना पसंद करता है अकेला रहना उसे पसंद नहीं है तो उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस व्यक्ति में संबंध आवश्यकता अधिक प्रबल है। इस विधि के प्रमुख लाभ निम्न हैं–

i) इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसके द्वारा लगभग सभी तरह के सामाजिक प्रेरकों का मापन किया जा सकता है।

ii) इस विधि में प्रेरकों का मापन बहुत स्वाभाविक होता है। क्योंकि स्वाभाविक परिस्थिति में ही प्रेरकों का अध्ययन किया जा सकता है।

iii) इस विधि द्वारा प्रेरकों के अध्ययन में बड़ी आसानी होती है। भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में व्यवहार का निरीक्षण किया जाता है और पता लगाया जाता है कि किसी व्यक्ति में अमुक सामाजिक प्रेरक कितना कम या अधिक प्रबल है।

iv) इस विधि के उपयोग के लिये किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है।

दोष–

इस विधि के प्रमुख दोष निम्नवत हैं–

i) कभी–कभी एक ही व्यवहार के पीछे दो या अधिक प्रेरक हो सकते हैं। ऐसी हालत में व्यवहार को देखकर कोई निष्कर्ष निकालना गलत हो सकता है जैसे–जीवन बीमा का एजेंट अक्सर लोगों से मिलता –जुलता है। बस, ट्रेन का सफर हो वह हमेशा लोगों से संबंध बनाने का प्रयास करता है।उसके इस व्यवहार से इनुमान लगाया जा सकता है कि उसमें संबंधन की आवश्यकता अधिक है। लेकिन बात ऐसी नहीं है सच्चाई यह है कि वह उपलब्धि प्रेरणा से प्रभावित होकर ऐसा व्यवहार करता है। इस प्रकार अनियंत्रित वातावरण होने से इस विधि के आधार पर जो निष्कर्ष निकाला जाता है, वह गलत भी हो सकता है। किस चर का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ रहा है, निश्चित रूप से कहना कठिन है।

ii) निरीक्षक के निर्णय पर उसके पूर्व अनुभव, पूर्वधारणा आदि का भी प्रभाव पड़ता है, जिससे निष्कर्ष के गलत होने की संभावना बढ़ जाती है।

iii) कभी–कभी देखी –अनदेखी का भी दोष उत्पन्न हो जाता है। व्यवहार के संगत अंश छूट जाते हैं और असंगत अंशों का निरीक्षण किया जाता है। अतः सामाजिक प्रेरकों का सही मापन इस विधि से संभव नहीं है।

आत्मनिष्ठ रिपोर्ट विधि –(Self Report Method)

मनुष्य के सामजिक प्रेरकों को मापने के लिये आत्मनिष्ठ रिपोर्ट विधि का भी उपयोग किया जाता है इस विधि में प्रयोज्यों से कुछ प्रश्न पूछे जाते हैंऔर उनके द्वारा दिये गये उत्तरों के आधार पर सामाजिक प्रेरकों का मापन कर लिया जाता है। यह प्रश्न प्रत्यक्ष भी हो सकता है और अप्रत्यक्ष भी।

प्रश्नावली भी इसी तरह की एक विधि है जिसके द्वारा सामाजिक प्रेरकों की प्रबलता की जाँच की जाती है। कथन प्रश्नावली में अनेक छोटे–छोटे कथन या प्रश्न होते हैंप्रत्येक कथन या प्रश्न के विकल्पी उत्तर पहले से अंकित होते हैं प्रयोज्य से यह कहा जाता है कि वह विकल्पी उत्तरों में से किसी एक उत्तर को चुनें। प्रयोज्य द्वारा चुनें गये उत्तरों के आधार पर उसके प्रेरकों की शक्ति का पता लगाया जाता है। भिन्न–भिन्न सामाजिक प्रेरकों की प्रबलता को मापने के लिये अलग–अलग प्रश्नावली या आत्म–मूल्यांकन मापी का निर्माण किया जाता है। गैश्टर ने संबंधन आवश्यकता की शक्ति को मापने के लिये निम्नलिखित आत्म–मूल्यांकन मापनी का निर्माण किया–

– मैं अकेले रहना पसंद करता हूँ (–3)

– मैं अकेले रहना पसंद करता हूँ (–2)

– मैं अकेले रहना बहुत कम पसंद करता हूँ (–1)

–मैं दूसरों के साथ रहना बहुत कम पसंद करता हूँ (1)

– मैं देसरों के साथ रहना पसंद करता हू (2)

– मैं दूसरों के साथ रहना अधिक पसंद करता हूँ (3)

इस मापनी के आधर पर व्यक्ति जितना अधिक अंक प्राप्त करता है, उसमें सबंधन आवश्यकता उतनी ही अधिक होती है।

अनुमोदन – आवश्यकता को मापने के लिये एक तरह के स्केल का व्यवहार किया जाता है, जिसमें मार्लो तथा क्राउने द्वारा बनाया गया । सामाजिक वांछनीयता स्केल (Social Desirability Scale) अधिक महत्वपूर्ण है। इस स्केल पर जो लोग अधिक अंक प्राप्तकरते हैं, उनमें अनुमोदन–आवश्यकता को अधिक शक्तिशाली माना जाता है। उपलब्धि आवश्यकता को मापने के लिये भी कई तरह की प्रश्नावली का निर्माण किया गया, इसमें हिंदी भाषा में मुखर्जी द्वारा बनायी गयी प्रश्नावली अधिक प्रचलित है।

इस विधि की जितनी उपयोगिता है, उतनी ही इस विधि की सीमायें भी हैं। इस विधि में हो सकता है कि उत्तरदाता प्रश्न का सही उत्तर न बताये या कुछ चीजों को छुपा ले। हो सकता है कि प्रयोज्य अध्ययनकर्ता को प्रसन्न रखने के लिये या सामाजिक मर्यादा को कायम रखने के लिये सही बात को छिपा कर गलत बोल दे। ऐसी हालत में प्रयोज्य के प्रेरक या आवश्यकता का सही मापन नहीं हो सकेगा।

घटक विष्लेषण विधि–

(Content Analyses Method)

मानव प्रेरकों को मापने के लिये कभी–कभी घटक विश्लेषण विधि का भी उपयोग होता है। इस विधि द्वारा व्यक्ति समूह, समुदाय या संस्कृति के प्रेरकों के अध्ययन का प्रयास किया जाता है। व्यक्ति के कला एवं साहित्य का विश्लेषण किया जाता है और इस आधार पर उसके प्रेरकों को जानने का प्रयास किया जाता है।यह विधि इस विश्वास पर आधारित है कि लेखक के व्यक्तित्व एवं प्रेरक की अभिव्यक्ति उसके लेख द्वारा होती है। किसी व्यक्ति द्वारा लिखी गयी कहानी, उपन्यास, नाटक आदि का विश्लेषण किया जाये तो इससे उस व्यक्ति की प्रेरणाओं, आवश्यकताओं एवं मूल्यों की जानकारी अवश्य प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त किसी समाज में कौन सा प्रेरक कब प्रबल रहा, इसकी जानकारी भी उस समय के साहित्य को पढ़कर प्राप्त होती है। इस संबंध में मैक्लीलैंड का अध्ययन उल्लेखनीय है।

बेरेल्सन न इस विधि का उपयोग भिन्न–भिन्न संस्कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये किया था। लेकिन इस विधि द्वारा भिन्न–भिन्न मानव प्रेरकों का सही मापन संभव नहीं है। कारण यह है कि प्रत्येक समुदाय में व्यक्ति प्रत्येक व्यक्ति के सभी रचनाओं को जमा करना और उनका विश्लेषण करना कठिन है इसके अतिरिक्त कला तथा साहित्य के विश्लेषण पर शीलगुण का प्रभाव पड़ सकता है। बेरेल्सन ने इस विधि की वैधता को स्वीकार न करते हुये कहा कि इसके द्वारा किसी समाज समुदाय या संस्कृति की आवश्यकताओं, प्रेरणाओं और मूल्यों को बिल्कुल सही तरीके से मापना कठिन है। अतः मनुष्य के प्रेरकों का अध्ययन करने के लिये यह विधि एक सहायक विधि में प्रयुक्त की जा सकती है।

प्रक्षेपण–विधियाँ – (Projective Methods)

मानव–प्रेरक के अध्ययन के लिये प्रक्षेपण विधि का प्रयोग करना अति आवश्यक है। इस विधि के अंतर्गत परिस्थिति जितनी ही अस्पष्ट होती है, व्यक्ति उसका प्रत्यक्षीकरण करते समय अपनी आवश्यकताआके या

प्रेरणाओं की अभिव्यक्ति उतनी ही अधिक करेगा। इस तरह के प्रक्षेपण मापक हैं T.A.T. तथा Rorschach आदि।

T.A.T. में प्रयोज्य को कुछ अस्पष्ट घटनाओं के के संबंध में छोटी–छोटी कहानियाँ लिखते समय अपनी चेतना अथवा अचेतन प्रेरणाओं की अभव्यक्ति करेगा। प्रयोज्य द्वारा लिखी हुयी कहानियों का विश्लेषण करके पता लगाया जाता है कि व्यक्ति में कौन–कौन से प्रेरक प्रबल मात्रा में है। रोशार्क परीक्षण में प्रयोज्य को कुछ अस्पष्ट धब्बे दिये जाते हैं और उससे कहा जाता है कि कहा जाता है कि धब्बे को देखकर जो आपके मन में उत्पन्न हो, उसे उसी रूप में व्यक्त करे। इस प्रकार उसकी प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण किया जाता है और पता लगाया जाता है कि उसमें कौन–कौन सा प्रेरक महत्वपूर्ण है।

अन्य विधियों के समान ही इस विधि की भी अपनी सीमायें हैं T.A.T तथा I.B.T में भविष्यवाणी वैधता (Predictive Validity) की कमी होती है। T.A.T. की विश्वसनीयता अधिक होती जटिल है। इस प्रकार मानव अभिप्रेरकों को मापने के लिये अनेक विधियां है तथा प्रत्येक विधि के अपने गुण दोष है । अतः किसी एक विधि द्वारा प्रेरकों का सही मापन संभव नहीं है अतः आवश्यकता अनुसार विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिये ।

4.8 सारांश

अभिप्रेरक व्यक्ति या पशुके भीतर की अवसथा होती है।

अभिप्रेरक दो प्रकार के होते हैं– जैविका तथा सामाजिक

जैविक अभिप्रेरक व्यक्ति में जन्म से ही मौजूद रहते है जैसे–भूख, प्यास आदि।

सामाजिक अभिप्रेरक वे अर्जित अभिप्रेरक होते है जिन्हें व्यक्ति अपने जीवन काल में एक सामाजिक प्राणी होने के कारण सामाजिकरण के दौरान सीखता है।

सामाजिक अभिप्रेरक के अन्तर्गत आने वाले अभिप्रेरक हैं– सामुइायिकता, उपलब्धि, अभिप्रेरक, सत्ता अभिप्रेरक आक्रमणशीलता की आवश्यकता, संगहणशीलता, अनुमोदन अभिप्रेरक।

उपलब्धि अभिप्रेरक की दो सिद्धांतों द्वारा व्याख्या की गयी है– एटकिंसन का सिद्धांत तथा गुणारोपण सिद्धांत।

प्रेरणा के प्रमुख सिद्धांत हैं–

मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत, दोष सिद्धांत, कयत्मिक स्वतंत्रता सिद्धांत, आत्म–कार्यान्वयन सिद्धांत।

व्यवाहर –निरीक्षण विधि, आत्मशिष्ट रिपोर्ट विधि, घटक विश्लेषण विधि व प्रक्षेपण–विधि।

4.9 शब्दावली

अभिप्रेरणा –

अभिप्रेरणा व्यक्ति या प्शु के भीतर की अवस्था है जो उनके व्यवहारों को लक्ष्य की ओर प्रेरित करती है।

प्रेरक–प्रणीद़–

आवश्यकता प्राणी में एक विशेष शक्ति पैदा करती है जिससे वह लक्ष्य (ळवक़) पर पहुँच कर आवश्यकता की संतुष्टि करने का प्रयास करता है इसे शक्ति प्रणोद कहते है।

सामाजिक अभिप्रेरक –

सामाजिक अभिप्रेरक से तात्पर्यएक ऐसेस अर्जित अभिप्रेरक से है जिसे व्यक्ति अपनक सामाजीकरण के दौरान सीखता है।

व्यक्तिगत सामाजिक अभिप्रेरक –

व्यक्तिगत सामाजिक अभिप्रेरक उस अभिप्रेरक को कब जाता है जिसेव्यक्ति अपने जीवन काल में सीखता है। तथा वह व्यक्ति विशेष के निजी व्यक्तित्व का एक विशेष अंश होता है।

आकांक्षा

आकांक्षा–स्तर से तात्पर्य उन सामान्य लक्ष्यों से होता है जिन्हें व्यक्ति अपने जीवन में निर्धारित करता है।

मनोवृत्ति–

मनोवृत्ति व्यक्ति के मन की एक विशिष्ट दशा होती है जिसके द्वारा वह समाज की विभिन्न परिस्थितियों, व्यक्तियों, वस्तुओं आदि के प्रति अपने विचार या मनोभाव रखता है।

सामुदायिकता या संबंधन अभिप्रेरक –

सामाज में एक दूसरे के साथ रहने की प्रवृत्ति को सामुदायिकता या संबंधन अभिप्रेरक कहते है।

उपलब्धि अभिप्रेरक – उपलब्धि अभिप्रेरक से तात्पर्य एक ऐसे अभिप्रेरक से होता है जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति अपने कार्य को इस ढंग से करने की कोशिश करता है कि उसे अधिक से अधिक सफलता मिल सके।

अनुमोदन अभिप्रेरक या आवष्यकता–

अनुमोदन अभिप्रेरक या अनुमोदन की आवश्यकता से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों से धनात्मक मूल्योकन प्राप्त करने की उम्मीद से होता है।

संग्रहणशीलता – संग्रहणशीलता अभिप्रेरक से तात्पर्य मूल्यावान वस्तु या पसंद की चीजों को अपने उपयोग के लिये संग्रह या इकट्ठा करने से होता है।

4.10 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. मनोवैज्ञानिकों ने प्रेरक के प्रकार बताये हैं–

i) दो

ii) चार

iii) छः

iv) आठ

2. भूख, प्यास, काम आदि हैं–

i) समाजिक अभिप्रेरक

ii) जैविक अभिप्रेरक

iii) दोनों में से कोई नहीं

iv) दोनों

3. सामाजिक अभिप्रेरक के प्रकार हैं–

i) व्यक्तिगत सामाजिक अभिप्रेरक

ii) सामान्य सामाजिक अभिप्रेरक

iii) उपरोक्त दोनों

iv) दोनों में से कोई नहीं

4. वह अभिप्रेरक जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति अपने कार्य को इस ढंग से करने की कोशिश करता है, कि उसे अधिक से अधिक सफलता मिल सके–

i) सामुदायिकता या संबंधन अभिप्रेरक

ii) उपलब्धि अभिप्रेरक

iii) सत्ता अभिप्रेरक

iv) आक्रमणशीलता अभिप्रेरक

4.11 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सामाजिक अभिप्रेरक से आप क्या समझते हैं? किन्हीं तीन प्रमुख सामाजिक अभिप्रेरकों का वर्णन कीजिये।

प्र.2. निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखे?

अ) उपलब्धि अभिप्रेरक

ब) सामुदायिकता

स) आक्रमण अभिप्रेरक

प्र.3. उदाहरण के साथ मनुष्य की अभिप्रेरणाओं की व्याख्या कीजिये।

प्र.4. मनुष्य में सहयोग आक्रामकता तथा उपलब्धि काले व्यवहारों के विकास का वर्णन करें।

4.12 संदर्भग्रंथ सूची

सुलेमान, मोहम्मद ,2005, सामाजिक तथा सहचारी प्रेरणा, उच्चतर समाज मनोवृत्ति 155—186

समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा (2003) सिंह अरूण कुमार सामाजिक प्रेरणा , 87—105

इकाई 5

प्रत्यक्षीकरण, विश्वास तथा पूर्वग्रस्तता

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 सामाजिक प्रत्यक्षण
5.4 प्रत्यक्षणात्मक रक्षा
5.5 प्रत्यक्षणात्मक बलाघात
5.6 अवचेतन प्रत्यक्षीकरण
5.7 व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण या धारणा निर्माण
5.8 व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण का स्वरूप या विशेषतायें
5.9 व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण व वस्तु प्रत्यक्षीकरण में अंतर
5.10 व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण में अशाब्दिक संकेत का महत्व

5.11 प्रत्यक्षणकर्ता के गुणों का महत्व
5.12 आत्म प्रत्यक्षीकरण की विशेषतायें
5.13 आत्म प्रत्यक्षीकरण का महत्व
5.14 विश्वास
5.15 पूर्वधारणा या पूर्वग्रस्तता का अर्थ
5.16 पूर्वधारणा का स्वरूप या विशेषतायें
5.17 पूर्वाग्रह के प्रकार
5.18 पूर्वाग्रह के कारण या स्रोत
5.19 पूर्वधारणा को दूर करने की विधियां
5.20 पूर्वाग्रह की माप
5.21 पूर्वाग्रह का प्रभाव
5.22 सारांश
5.23 शब्दावली
5.24 वस्तुनिष्ठ प्रश्न
5.25 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
5.26 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप–

i) सामाजिक प्रत्यक्षण क्या है, यह जान सकेंगे।

ii) प्रत्यक्षणात्मक रक्षा को समझ सकेंगे।

iii) प्रत्यक्षणात्मक बलाघात को समझ सकेंगे।

iv) व्यक्ति प्रत्यक्षण का अर्थ व स्वरूप जान सकेंगे।

v) आत्म–प्रत्यक्षण को समझ सकेंगे।

vi) विश्वास तंत्र क्या है समझ सकेंगे।

vii) पूर्वाग्रह क्या है इसे समझ सकेंगे।

viii) पूर्वाग्रह की विशेषता को समझ सकेंगे।

ix) पूर्वाग्रह के प्रकार को समझ सकेंगे।

x) पूर्वाग्रह के विकास एवं संपोषण के कारण को समझ सकेंगे।

xi) पूर्वाग्रह एवं विभेद को कम करने की विधियाँ समझ सकेंगे।

xii) पूर्वाग्रह को मापने की विधियों को समझ सकेंगे।

xiii) पूर्वाग्रह के प्रभाव को समझ सकेंगे।

5.2प्रस्तावना

जब हम किसी वस्तु को देखते हैं तो हम अपने समाज के मानकों से तथा जिस संस्कृति में हम रहते हैं उस संस्कृति के मूल्यों से प्रभावित होते हैं। इस ही प्रक्रिया को ही सामाजिक प्रत्यक्षण कहते हैं। हम किसी व्यक्ति की वेश–भूषा, उसके रहन–सहन, बोल–चाल के ढंग आदि के आधार पर किसी व्यक्ति का प्रत्यक्षण कर यह कहते हैं कि अमुक व्यक्ति किस संस्कृति का है, किस परिवेश का है, शैक्षिक–स्तर क्या है आदि। इससे यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक प्रत्यक्षीकरण हमारे दिन प्रतिदिन के जीवन में काफी महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

5.3 सामाजिक प्रत्यक्षण

सामाजिक मनाकविज्ञान में सामाजिक प्रत्यक्षण का प्रयोग मुख्यता दो अर्थों में किया जाता है–

1) पहले अर्थ में उन सभी व्यक्तिगत एवं सामाजिक कारकों का अध्ययन किया जाता है जिनसे व्यक्ति का प्रत्यक्षण प्रभावित होता है इसमें व्यक्ति की आवश्यकताओं, अभिप्रेरक मूल्य तथा सावेगिक अवस्थाओं द्वारा व्यक्ति का प्रत्यक्षण कैसे प्रभावित होता है का अध्ययन किया जाता है।

2) दूसरे अर्थ में सामाजिक प्रत्यक्षण में इस बात का अध्ययन किया जाता है, कि प्रत्यक्षणकर्ता किस तरह से दूसरे व्यक्तियों के बारे में एक खास विचार या राय बनाता है और किस तरह से वह विचार उद्दीपक व्यक्ति के गुणों, समाज में उसका स्तर या पद तथा प्रत्यक्षण के साथ उसका संबंध आदि द्वारा प्रभावित होता है।

समाजिक प्रत्यक्षण की विषेषतायें –

समाजिक प्रत्यक्षण की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं–

i) सामाजिक प्रत्यक्षण में उन प्रक्रमों का अध्ययन किया जाता है जिसके सहारे आवश्यकता, मूल्य तथा सांवेगिक कारकों का प्रत्यक्षण पर पढ़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। अतः इसमें प्रत्यक्षणात्मक सुरक्षा प्रत्यक्षणात्म्क बलाघात तथा अवचेतना प्रत्यचण आदि का अध्ययन किया जाता है।

i) सामाजिक प्रत्यक्षण में व्यक्ति प्रत्यक्षण सम्मिलित होता है।

ii) सामाजिक प्रत्यक्षण में मूलतः एक सामाजिक संज्ञान की प्रक्रिया होती है।

5.4 प्रत्यक्षणात्मक रक्षा

सामाजिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रत्यक्षणात्मक क्षेत्र एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिसके अध्ययन से सामाजिक प्रत्यक्षण के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। सामज मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रत्यक्षणात्मक रक्षा एक ऐसा संप्रत्यय है जिसमें निम्न तीन प्रक्रियायें सम्मिलित होती हैं–

i) सांवेगिक रूप से चिंता उत्पन्न करने वाले उद्वीपक की पहचान देहली तटस्थ उद्वीपकों की पहचान देहली की अपेक्षा अधिक होती है।

ii) ऐसे सांवेगिक उद्वीपक व्यक्ति में एक ऐसा प्रत्यक्षण उत्पन्न करते हैं, जिसका स्वरूप इतना परिवर्तित होता है कि उससे उपस्थित किये उद्वीपकों की सही पहचान से बाधा पहुँचती है।

iii) ऐसे सांवेगिक उद्वीपक की पहचान नहीं होने पर भी वे व्यक्ति में सांवेगिक प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं।

प्रयोगात्मक अध्ययन –

प्रत्यक्षणात्मक रक्षा का प्रयोगात्मक अध्ययन मैकगिन्निज द्वारा किया गया, इस प्रयोग में तटस्थ शब्द तथा 7 सांवेगिक शब्द हैं। 'किताब' 'आकाश' शिक्षक आदि तटस्थशब्द के उदाहरण हैं तथा बलात्कार, हत्या, आदि कुछ सांवेगिक शब्द के उदाहरण इन शब्दों को एक–एक करके टैचिस्टोस्कोप के सहारे दिखलाया जाता है।

प्रत्येक शब्द को प्रत्यक्षणात्मक देहली से नीचे दिखलाना प्रारंभ किया जाता था और तब दिखलाया जाता था तब तक कि उसकी सही पहचान न कर सके।

प्रयोज्य से गलवैनिक त्वचा अनुक्रिया या GRS भी प्रत्येक बारी में मापा जाता था । परिणाम में देखा गया कि वर्जित या संवेगात्मक शब्दों की तटस्थ शब्दों की पहचान देहली से अधिक थी। साथ ही संवोगात्मक उद्वीपक व्यक्ति में अच्छी तरह पहचान जाने के पहले ही संवेगात्मक अनुक्रियायें उत्पन्न करना प्रारंभ कर देता था जिससे प्रयोज्य का GSR बढ़ जाता था। यह भी पाया गया कि संवेगात्मक शब्दों की गलत पहचान कर प्रयोज्य जो अनुक्रिया शब्द बताता था वह उद्वीपक शब्द से बिल्कुल भिन्न था। परंतु तटस्थ शब्दों की गलत पहचान करने पर भी प्रयोज्य जो अनुचित शब्द बताता था वह उद्वीपक शब्द से काफी मिलता–जुलता था।

इस संबंध में एक विरोधाभास भी था जो यह था कि ऐसे सांवेगिक उद्वीपकों का वास्तविक प्रत्यक्षण करने से पहले ही प्रयोज्य उससे बचने अर्थात उसका प्रत्यक्षण न करने का प्रयास कैसे कर सकता है? इस विरोधाभास के कारण कुछ समाज मनौवैज्ञानिकों ने सांवेगिक शब्दों की तथाकथित पहचानदेहली में वृद्धि पर प्रकाश डालते हुये कहा कि वास्तव में प्रयोज्य ऐसे शब्दों की पहचान पहले ही कर लेते हैं परंतु इसे बाद में बतलाते थे। कुछ सांवेगिक शब्द या वर्जित शब्द सामान्य भाषा में तटस्थ शब्दों की अपेक्षा कम व्यवहार में लाये जाते हैं यानीउसके उपयोग की आवृत्ति कम होती है। ऐसे शब्दों की पहचान देहली तटस्थ शब्दों की पहचान देहली से अधिक होती है।

प्रत्यक्षणात्मक रक्षा में वैयक्तिक विभिन्नता होती है। एक उद्वीपक शब्द जो एक व्यक्ति के लिये वर्जित होता है या संवेग तथा चिंता उत्पन्न करता है वह सभी व्यक्तियों के लिये भी वैसे ही वर्जित होगा ऐसा नहीं कहा जा सकता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति के लिये सांवेगिक उद्वीपक या वर्जित का चयन अलग–अलग किया जाना चाहिए।

प्रत्यक्षात्मक रक्षा के क्षेत्र में किये गये भिन्न–भिन्न तरह के प्रयोग से यह ज्ञात हुआ है कि इन वर्जित या सांवेगिक उद्दीपकों के प्रति भिन्न–भिन्न व्यक्ति भिन्न–भिन्न ढंग से अनुक्रिया करते है। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, जो लोग संवेदनशील तथा चौकस प्रकृति के होते हैं उनकी पहचान देहली (सांवेगिक शब्दों का) नीचा होता है परंतु जो लोग दमन का प्रयोग अधिक करने वाले होते हैं, ऐसे शब्दों की उनकी पहचान दंहली ऊँची होती है। पहले तरह के लोगों को सुग्राहक तथा दूसरे तरह के व्यक्ति को निराधक कहा जाता है।

5.5 प्रत्यक्षणात्मक बलाघात

इसका अर्थ यह है कि वतावरण में उपस्थित कुछ वस्तुओं या व्यक्तियों जिनसे हमारे Ego (अहम्) को अधिक संतुष्टि मिलती है, उनका प्रत्यक्षीकरण अधिक बल या तेजी के साथ होता है। अर्थात् ऐसी वस्तुयें जिनका व्यक्ति प्रत्यक्षण में बलाघात (Accentuation) करता है वे व्यक्ति के लिये अधिक मूल्य के होते हैं।प्रत्यक्षणात्मक बलाघात की संपुष्टि मूनर तथा गुडमैन द्वारा किये गये प्रयोग से होती है। इस प्रयोग में 10 साल के बालाकों का दो समूह तैया किया गया। एक समूह को विभिन्न मूल्यवर्ग के सिक्के के आकार का आकलन एक प्रोजेक्टर द्वारा रोशनी के वृत्तीय आकर में समायोजन करते हुये करना था। प्रयोज्यों का दूसरा समूह जो नियंत्रित समूह का था को विभिन्न आकारों के कार्ड बोर्ड डिस्क को आकलन ठीक उसी ढंग से उसी प्रोजेक्टर से करता था। परिणाम में देखा गया कि प्रत्येक सिक्का का आकलित आकार उसके वास्तविक आकार से बड़ा था परन्तु कार्ड बोर्ड डिस्क का आकलित आकर उसके वास्तविक के लगभग समान था। इस परिणाम से प्रत्यक्षणात्मक बलाघात की घटक की पुष्टि होती है क्योंकि प्रयोज्य सिक्कों के आधार को वास्तविक आकार से हमेशा बड़ा बताता था।

5.6 अवचेतना प्रत्यक्षीकरण

इसका अर्थ यह है कि हमें ऐसी उत्तेजनाओं का भी प्रत्यक्षीकरण होता हैजिनका परिणाम या मूल्य चेतना के स्तर से नीचे होता है। (सबलाईमीनल) का अर्थ है उत्तेजना–अवसीमा से नीचे। अतः यदि किसी उत्तेजना का परिमाण निरपेक्ष अवसीमा अर्थात उत्तेजना–अवसीमा से नीचे हो फिर भी उसकी चेतना या बाेध संभव हो तो उसे अवचेतन प्रत्यक्षीकण कहेंगे।

''अवचेतन प्रत्यक्षीकरण का तात्पर्य चेतन रूप से बोधयमय नहीं होने वाली उत्तेजनाओं द्वारा प्रभावित होने वाली अवस्था से है।'' चैपलिन

दैनिक जीवन में बहुत सारी उत्तेजनायें इतनी कमजोर होती हैं कि उनकी चेतना हमें नहीं हो पाती है। लेकिन उनका प्रभाव हमारे व्यवहार या मनोवृत्ति पर पड़ सकता है। इस प्रकार की उत्तेजनाओं को अवचेतना उत्तेजना तथा इनसे उत्पन्न होने वाले प्रभाव को अवचेतना प्रत्यक्षीकरण कहते हैं। कुछ परिस्थितियों में केवल एक या दो अवचेतना उत्तेजनायें प्रभावहीन हो सकती है।, लेकिन कई उत्तेजनायें मिलकर प्रभाव उत्पन्न कर सकती हैं। लाइबनीज ने इसे ठिगनी प्रत्यक्षीकरण (Petite Perception) कहा है।

कई प्रयोगात्मक अध्ययनों से भी अवचेतन प्रत्यक्षीकरण का प्रभाव मिलता है। सीडिस का प्रयोग क्लासिकी प्रयोग माना जाता है। प्रयोज्य को ऐसे कई कार्ड दिखलाये गये जिन पर संख्या अथवा अक्षर अंकित थे। कार्ड तथा प्रयोज्य की दूरी इतनी अधिक थी कि वह संख्याओं या अक्षरों को नहीं पढ़ सकता था। जब उसे अनुमान से संख्याओं या अक्षरों को बताने को कहा गया तो उसने संयोग से कम भूल की । ग्रिट ने कहा

कि इस प्रकार हम अपने व्यवहार में पारस्परिक परिमार्जनों से अवगत हुये बिना एक दूसरे को प्रभावित कर सकते हैं।

5.7 व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण या धारणा निर्माण

व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के संबंध में कोई धारणा बनाता है या निर्णय करता है। इस अर्थ में व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण का अर्थ है धारणा निर्माण (Impression Formation) यह क्रिया पारस्परिक होती है। एक व्यक्ति (P) किसी दूसरे व्यक्ति (O) के संबंध में कोई धारणा बनाता है या निर्णय करता है और दूसरा व्यक्ति पहले व्यक्ति के संबंध में कोई धारणा बनाता है वह निर्णय करता है। इसलिये व्यक्ति प्रत्यक्षकरण को अन्तव्यैक्तिक प्रत्यक्षीकरण भी कहते हैं।

सियर्स के अनुसार ''व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा दूसरे लोगों के प्रति धारणा का निर्माण किया जाता है उनके व्यक्तित्व–शीलगुणों के संबंध में निर्णय लिया जाता है तथा वे किस तरह के लोग है इससे संबंधित परिकल्पनायें बनायी जाती हैं।

लिप्पा के अनुसार ''व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा लोग दूसरों के शीलगुणों एवं विशेषताओं का आकलन करते हें।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि कई मनावैज्ञानिकों ने व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण को अपने–अपने दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। परंतु इन सभी परिभाषाओं में दो बातों पर सहमति है क) व्यक्ति प्रत्यक्षकरण एक प्रक्रिया है। ख) इसके द्वारा व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या व्यक्यिों के संबंध में कोई धारणा बनाता है तथा आकलन करता है।

5.8 व्यक्ति प्रत्यक्षकरण का स्वरूप या विशेषतायें

1) व्यक्ति–प्रत्यक्षीरण एक प्रकार का प्रत्यक्षीकरण है। इस अर्थ में यह वस्तु–प्रत्यक्षीकरण से भिन्न है। वस्तु प्रत्यक्षीकरण में व्यक्ति का नहीं बल्कि निर्जीव वस्तु का ज्ञान होता है।

2) व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण में एक व्यक्ति (P) दूसरे व्यक्ति (O) के संबंध में कोई धारणा बनाता है या निर्णय देता है। इसलिये च्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण को धारणा निर्माण या निर्णय'–प्रक्रिया भी कहते हैं।

3) व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण में पारस्परिक क्रिया घटित होती है । एक व्यक्ति (P) दूसरे व्यक्ति (O) का प्रत्यक्षकरण करता है तथा कोई धारणा बनाता है या निर्णय देता है, और दूसरा व्यक्ति (O) पहले पहले व्यक्ति (P) का प्रत्यक्षीकरण करता है तथा कोई धारणा बनाता ह तथा निर्णय देता। इसलिये व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण को पारस्परिक या अन्तर्वैयक्तिक प्रत्यक्षीकरण कहते है यह विशेषता भी वस्तु–प्रत्यक्षकरण में नहीं पायी जाती है।

4) वस्तु–प्रत्यक्षीकरण की अपेक्षा व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण में परिवर्तन की संभावना अधिक होती है। कारण प्रत्यक्षीकरण करने वाले व्यक्ति की मनोवृत्ति, आवश्यकता, पूर्व अनुभव आदि व्यक्तिगत कारको में में परिवर्तन होने पर किसी व्यक्ति (O) से संबंधित उसका प्रत्यक्षीकरण धारणा या निर्णय बदल जाता है। ऐसा इसलिये

भी होता है के यहाँदूसरे व्यक्ति (O) की प्रतिक्रिया या व्यवहार का अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पहले व्यक्ति (P) के प्रत्यक्षीकरण पर पड़ता है।

5) वस्तु–प्रत्यक्षीकरण की तुलना में व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण अधिक जटिल होता है। कारण, वस्तु–प्रत्यक्षीकरण का निर्धारण मुख्यतः भौतिक वातावरण से होता है, जबकि व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण का निर्धारण प्रधानता मनोवैज्ञानिक वातावरण या जीवन–क्षेत्र से होता है। भौतिक वातावरण का तात्पर्य प्रत्यक्षीकरण होते समय उपस्थित वस्तुओं घटनाओं या उत्तेजनाओं की समष्टि से है। मनोवैज्ञानिक वातावरण अथवा जीवन –क्षेत्र का तात्पर्य समय विशेष में व्यक्ति को प्रभावित करने वाली अतीत वर्तमान तथा भविष्य की सभी संभव घटनाओं की समष्टि से है। भौतिक वातावरण समान रहने पर भी दो व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक वातावरण या जीवन क्षेत्र में अंतर होने के कारण किसी दूसरे व्यक्ति से संबंधित दोनों के प्रत्यक्षीकरण धारणा या निर्णय में भिन्नता होगी। अतः वस्तु–प्रत्यक्षीकरण प्रधानता संवेदी घटनाओं पर आधारित होता है जबकि व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण मुख्यतः इतर–संवेदी घटनाओं (Extra Sensory Events) पर।

6) मनोवैज्ञानिक वातावरण या जीवन–क्षेत्र में परिवर्तन के कारण व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण निरंतर परिवर्तनशील रहता है। जीवन–क्षेत्र की कालिक–विभा तथा अवास्तविकता वास्तविकता विभा में हमेशा परिवर्तन होते रहते हैं। आयु में वृद्धि के साथ जैसे–2 ज्ञान तथा अनुभव बढ़ता है अवास्तविकता विभा घटती जाती है तथा वास्तविकता विभा बढ़ती जाती है। इस परिवर्तन का सीधा प्रभाव व्यक्ति के संज्ञानात्मक संरचना (Cognitive Structure) तथा संज्ञानात्मक प्रकार पर पड़ता है, जिससे उसके प्रत्यक्षीकरण में परिवर्तन घटित होता है।

7) व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण अर्थात् किसी इसके दूसरे के संबंध में पहले व्यक्ति (P) की धारणा या उनका निर्णय कहाँ तक सही होगा, यह कई बातों पर निर्भर करता है। मुख्य रूप से प्रत्यक्षीकरण करने वाले व्यक्ति की योग्यता तथा तटसथ मनोवृत्ति जिस सीमा तक अधिक होती है, उसी सीमा तक उसकी धारणा या निर्णय के सही होने की संभावना अधिक होती है। इसके अलावा जिस व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण किया जाता है (O) उसका स्वभाव जितना ही अधिक जटिल होता है, उसके संबंध में पहले व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण, निर्णय या धारणा के गलत होने की संभावना अधिक होती है। वस्तु–प्रत्यक्षीकरण की अपेक्षा व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण के सही होने की संभावना कम होती है।

8) व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण की एक विशेषता यह है कि इससे प्रत्यक्षीकरण करने वाले च्यक्ति (P) की मनोवृत्ति मानसिक झुकावों , मूल्य तंत्रों आदि का स्पष्टीकरण होता है। इसका कारण यह है कि दूसरे व्यक्ति से संबंधित प्रत्यक्षीकरण करते समय धारणा बनाते समय अथवा निर्णय करते समय (P) अपने विश्वासों, पूर्वधारणाओं, स्थितियों आदि व्यक्तिगत कारकों से प्रभावित होता है। इससे स्पष्ट होता है कि वस्तु–प्रत्यक्षीकरण में ऐसे व्यक्तिगत कारकों का हाथ कम होता है।

9) वस्तु–प्रत्यक्षीकरण की तुलना में व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण में अस्पष्टता में संरचनात्मक कारक अधिक सक्रिय होते है जबकि व्यक्ति'प्रत्यक्षीकरण में कार्यात्मक कारक अधिक सक्रिय होते है। यह एक वास्तविकता है कि जहाँ संरचनात्मक कारक को सक्रिय होने का अवसर मिलता है वहाँ परिस्थिति अधिक संरचित तथा स्पष्ट होती हैं जबकि कार्यात्मक कारकों को सक्रिय होने पर वहाँ परिस्थिति अधिक असंरचित तथा अस्पष्ट होती हैं।

5.9 व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण तथा वस्तु–प्रत्यक्षीकरण में अंतर

लिप्पा (Lippa 1990) ने व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण तथा वस्तु–प्रत्यक्षीकरण के स्वरूप की व्यवाख्या करते हुये इन दोनों के बीच निम्न अंतरों का उललेख किया है–

1) व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण का संबंध अमूर्त विशेषताओं जैसे–शीलगुण, प्रेरणा, मनोवृत्ति, बुद्धि आदि से होता है। यहाँ एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की इन सभी अमूर्त विशेषताओं का प्रत्यक्षीकरण करता है। इसके विपरीत वस्तु–प्रत्यक्षकरण का संबंध मूर्त विषय या उत्तेजना से होता हैं। इसमें एक व्यक्ति किसी मूर्त वस्तु का प्रत्यक्षीकरण प्रत्यक्ष रूप से करता हैं।

2) व्यक्ति– प्रत्यक्षीकरण में अशुद्धियों तथा पक्षपातों के घटित होने की संभावना अधिक रहती है क्योंकि इसमें ऐसी अमूर्त विशेषतायें रहती हैं जो व्यक्ति के व्यवहारों से अनुमानित की जाती हैं। इसके विपरीत वस्तु–प्रत्यक्षीकरण में त्रृटियों एवं पक्षपातों के घटित होने की संभावना कम होती है क्योंकि इसमें प्रत्यक्षीकरण अनुमान पर आधारित नहीं होता है।

3) व्यक्ति– प्रत्यक्षीकरण अपेक्षाकृत अधिक जटिल होता है क्योंकि इसमें व्यक्ति के व्यवहार के साथ–साथ उसमें अन्तनिर्हित अभिाप्रायों तथा प्रेरकों को भी समझने का प्रयास करते हैं। इसके विपरीत वस्तु– प्रत्यक्षीकरण अपेक्षाकृत सरल होता है क्योंकि इसमें वस्तु के मात्र सतही मूल्य का प्रत्यक्षीकरण किया जाता है।

4) व्यक्ति– प्रत्यक्षीकरण में एक समस्या यह है कि यहाँ व्यक्ति भ्रामक सतही सूचनाओं को भंग करके किसी अन्य व्यक्ति के संबंध में वास्तविक तथ्य को ढूँढ निकालते हैं। लेकिन, वस्तु प्रत्यक्षीकरण में ऐसी कोई समस्या नहीं होती है।

5) व्यक्ति– प्रत्यक्षीकरण में हमारे व्यवहार कभी–कभी उस व्यक्ति के व्यवहार को बदल सकते हैं परंतु वस्तु–प्रत्यक्षीकरण में यह संभव नहीं है।

6) व्यक्ति– प्रत्यक्षीकरण में विभिन्न और कभी–कभी परस्परावदी प्रक्रियायें शामिल होहै परंतु वस्तु– प्रत्यक्षीकरण में ऐसा नहीं होता है। इस प्रकार, स्पष्ट है कि व्यक्ति– प्रत्यक्षीकरण तथा वस्तु– प्रत्यक्षीकरण में कई अंतर हैं।

5.10 व्यक्ति प्रत्यक्षण में अशाब्दिक संकेत का महत्व

समाज–मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण जिसे छवि–निर्माण ाीि कहा जाता है में लक्ष्य व्यक्ति (Target Person) से मिलने वाला अशाब्दिक संकेत का महत्व काफी होता है। अशाब्दिक संकेत या अशाब्दिक सूचनाओं में वे सारी सूचनायें आती हैं जो लक्ष्य व्यक्ति के चेहरे की अभव्यक्ति शारीरिक डील–डौल आदि से संबंधित होते हैं। अशाब्दिक व्यवहारों में मुख्य रू से निम्न व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है–

1) शारीरिक डील–डौल एवं रूप–रंग –

व्यक्ति के शारीरिक डील–डौल को देखकर उसमें कुछ खास–खास शीलगुणों के होन का अंदाजा लगाया जाता है। इस संदर्भ में क्रेशम तथा शेल्डन के कार्य काफी महत्वपूर्ण हैं इन लोगों के अध्ययन के अनुसार नाटे–मोटे

व्यक्ति प्रायः आराम पसंद व सुस्त प्रवृत्ति के होते हैं। गठीले सांसपेशी वाले व्यक्ति अधिक फुर्तीले एवं कर्मठ समझे जाते हैं। दूबले–पतले डील–डौल वाले व्यक्ति लज्जालु एवं शंकालु प्रकृति के होते हैं। इन लोगों के विचार से यह स्पष्ट हो जाता है कि छवि के निर्माण में शारीरिक डील–डौल का महत्व बहुत अधिक होता है।

2) आनन अभिव्यक्ति, संवेग एवं मनास्थिति–

(Facial Expressions, Emotions and Mood)

समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये शोधों के आधार पर स्पष्ट हो गया है कि हम अन्य लोगों के द्वारा दिखायी गई आनन अभिव्यक्ति के आधार पर उस व्यक्ति के बारे में एक छवि या विचार बना लेते हैं। आनन अभिव्यक्ति द्वारा संबंध को प्रकट करना एक सार्वजनिक कार्य माना जाता है। इन प्रदर्शित संवेगों के आधार पर व्यक्ति को लजालु, क्रोधी, संकोचशील आदि समझा जा सकता है।

आनन–अभिव्यक्ति द्वारा व्यक्ति के संवेग तथा मनोदशा को समझकर उसके बारे में धारणा बनाने में कठिनाई यह है कि प्रायः व्यक्ति अपने चेहरे से संवेग का प्रकट करने न करने में सफल रहता है। क्योंकि उसे लगता है कि ऐसा संवेग प्रकट करके वह अपने लिये खतरा उत्पन्न कर सकता है। अतः वह उस संवेग को प्रकट न करके दूसरा संवेग प्रदर्शित करता है जो उसके लिये लाभकारी होता है।

नेत्र संपर्क (Eye Contact)

नेत्र संपर्क के आधार पर भी छवि का निर्माण होता है नेत्र संपर्क से प्रेम/दोस्ती का छवि निर्माण होता है या धमकी का दोनों में अधिकाधिक आवेष्टन तथा उच्च आंवेगिक अंश का पता चलता है। जब प्रत्यक्षणकर्ता से लक्ष्य व्यक्ति बातचीत करते समय नेत्र संपर्क हटा लेता है तो उससे यह पता चलता है, कि लक्ष्य व्यक्ति की अभिरूचि प्रत्यक्षणकर्ता में न के बराबर है। जब प्रत्यक्षणकर्ता लक्ष्य व्यक्ति से अपना नेत्र संपर्क हटाकर बातचीत करता है तो इससे भी प्रत्यक्षणकर्ता व लक्ष्य व्यक्ति में संपर्क न के बराबर पता चलता है। परंतु कभी–कभी ऐसा भी होता है कि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को बुरी खबर सुनाता है तो वह बिना नेत्र संपर्क के सुनाता है।

हाव–भाव–मुडा तथा गति–विधि (Gestures ,Postures And Movemnts) –

कुछ समाज–मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि हाव–भाव, मुडा तथा उसकी गतिविधि से व्यक्ति के बारे में छावि–निर्माण करने में विशेष मदद मिलती है। जब व्यक्ति की चाल–ढाल ऐसी होती है तो वह झुककर, धीरे–धीरे चलता है। तो वह एक सुस्त जीवन हीन मंदित व्यक्ति माना जाता है। जब कोई व्यक्ति गर्मजोशी से हाथ मिलाता है तो उसे हार्दिकता से परिपूर्ण माना जाता है। इस तरह से व्यक्ति के हाव–भाव, मुडा तथा गतिविधि से व्यक्ति के बारे में काफी अनुमान लगाया जा सकता है।

वाचिक गुण तथा पोषाक (Voice Quality And Dress) –

कुछ अध्ययनों के अनुसार व्यक्ति की आवाज तथा गुण के आधार पर उसके बारे में एक विशेष विचार या छवि का निर्माझा होता है। लक्ष्य व्यक्ति की आवाज को सुनकर उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों के बारे में आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता है। इन आवाजों के आधार पर व्यक्ति द्वारा अभिव्यक्त किये गये संवेगों के बारे में ठीक से अंदाजा लगाया जा सकता है। इसी प्रकार व्यक्ति द्वारा पहनी गयी पोशाक भी बताती है कि व्यक्ति में कौन से मुख्य शीलगुण हैं।

6) स्पर्श (Touch)

स्पर्श या दैहिक संपर्क से भी व्यक्ति के विचार एवं आगे किये जाने वाले संभावित व्यवहार के बारे में अनुमान लगाया जाता है। जब व्यक्ति सुदृढ़ तरीके से हाथ मिलाता है तो वह स्वभावतः उत्तम छवि की छाप दूसरे व्यक्ति पर छोड़ता है। चैपलिन तथा उनके सहयोगियों के अनुसार जब कोई व्यक्ति थोड़ा अधिक समय देते हुये सुदृढ़ तरीके से हाथ मिलाता है तो उसे बहिमुखी माना जाता है। स्पष्ट हुआ कि व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण में अशाब्दिक सूचनाओं का काफी महत्व होता ळें

5.11 व्यक्ति प्रत्यक्षण में प्रत्यक्षणकर्ता के गुणों का महत्व

प्रत्येक प्रत्यक्षणकर्ता की अपनी–अपनी कुछ विशेषतायें होती है जिनका सीधा प्रभाव व्यक्ति के प्रत्यक्षण पर पड़ता है। इन विशेषताओं से प्रभावित होकर लक्ष्य व्यक्ति का प्रत्यक्षण एक खास ढंग से करता है। इन विशेषताओं में निम्न महत्वपूर्ण हैं–

1) अव्यक्त व्यक्तित्त –

समाज मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रत्यक्षणकर्ता दूसरों के बारे में विचार बलाते समय अपने निश्चित पूर्वाग्रह से अधिक प्रीाावित होते हैं। इसे ब्रूनर तथा टागिउरी ने अव्यक्त व्यक्तित्व सिद्धांत कहा है। इसके अनुसार बिना किसी तरह के अनुभव के ही प्रत्यणकर्ता में दूसरे लोगों के बारे में एक खास तरह का पूर्वाग्रह होता है जिसके आधार पर वह दूसरों के बारे में एक छवि या राय बनाते हैं।

2) संज्ञान –

व्यक्ति प्रत्यक्षण पर प्रत्यक्षणकर्ता की संज्ञानात्मक शैली का भी प्रभाव पड़ता है। संज्ञानात्मक शैली की एक महत्वपूर्ण सीमा मूतर्तता–अमूर्तता है। मूतर्ता प्रधान व्यक्ति अधिक सीमांत निर्णय जैसे–सही–गलत, अच्छा–बुरा निर्णय लेने में समर्थ हो पाते हैं। ऐसे लोग व्यवहार में अस्पष्टता बिल्कुल भी बर्दाश्त नहीं कर पाते हैं। अमूर्तता प्रधान व्यक्ति इसके ठीक विपरीत होते हैं।

संवेगिक स्थिति –

व्यक्ति की अपनी सांवेगिक स्थिति का प्रभाव छवि निर्माण पर काफी पड़ता है। जब व्यक्ति स्यवं उत्तम संवेगात्मक स्थिति का होता है तो वह दुसरों के बारे में धनात्मक छवि तथा जब वह उत्तम मनोदशा में नहीं होता है तो वह दूसरों के बारे में कम धनात्मक छवि का निर्माण करता है।

सत्तापादी व्यक्तित्व –

व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण पर अपने सत्तावादी शीलगुण का प्रभाव पड़ता है। अध्ययनों के अनुसार यह ज्ञात होता है कि –(i) निरीक्षक अनुमान लगाता है कि दूसरा व्यक्ति समकक्षी है । वह उसमें किसी विशिष्ट गुण की कल्पना नहीं करता है जो उसे भिन्न बना सके। (ii) अधिक सत्तवादी शीलगुण वाले लोग दूसरे को भी अधिक सत्तावादी शीलगुण वाला समझते है। (iii) निम्न सत्तावदी शीलगुण वाले लोग दूसरे लोगों को भी निम्न सत्तावादी शीलगुण नहीं समझते हैं, बल्कि इस शीलगुण पर औसत समझते हैं। उच्च सत्तावादिता की अपेक्षा निम्न सत्तावादिता वाले लोग दूसरों का प्रत्यक्षीकरण अधिक सही करते हैं और अधिक ठीक निर्णय देते हैं।

यौन–भिन्नता –

कुछ अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि व्यक्ति–प्रत्यक्षकरण पर यौन–भिन्नता का प्रभाव पड़ता है। अध्ययनों के अनुसार पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं के प्रत्यक्षीकरण पर स्थिराकृति (Stereotype) का प्रभाव अधिक पड़ता है। सिन्हा एवं सिन्हा के अनुसार व्यक्ति मं समान लिंग के लोगों में वांछित शीलगुण देखने की प्रवृत्ति होती है। इनके अनुसार पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं के प्रत्यक्षीकरण पर मानवजातीय पूर्व धारणा का प्रभाव अधिक पड़ता है। लेकिन कुछ अध्ययनों के अनुसार प्रत्यक्षीकरण पर यौन का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

आयु–

अध्ययनों से यह ज्ञात होता है के व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण पर प्रत्यक्षीकरण करने वाले व्यक्ति की आयु का भी प्रभाव पड़ता है। कम आयु के व्यक्ति की मनोवृत्ति आवश्यकता तथा इच्छा, आकांक्षा अधिक आयु के व्यक्ति से अलग होती है। अनेक अध्ययनों से यह प्रभावित होता है कि कम उग्र कीं अपेक्षा अधिक उम्र के लोग मानव जातीय पूर्वधारणाओं तथा पक्षपातों से अधिक पीड़ित होते हैं।

संज्ञानात्मक संरचना –

व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करने वाले कारकों में संज्ञानात्मक संरचना भी काफी महत्वपूर्ण है। ऐसी संरचनाओं में अपरिवेशगत प्रभाव (Halo Effect) तथा स्थिराकृति (Stereotype) महत्वपूर्ण हैं।

i) परिवेषगत –प्रभाव – (Halo Sffect)

परिवेश–प्रभाव का अर्थ व्यक्ति की वह प्रवृत्ति है, जिसके कारण वह दूसरे व्यक्ति को किसी विशिष्ट शीलगुण के आधार पर उच्च भी निम्न श्रेणी में रखता है। जैसे–जिस व्यक्ति के प्रति हमारी मनोवृत्ति अनुकूल होती है, या उसे सभी वांछित शीलगुणों में उच्च तथा अवांछित शीलगुणें में निम्न समझते हैं। इसके विपरीत जिस व्यक्ति की धारणा के प्रति हमारी मानोवृत्ति प्रतिकूल होती है उस व्यक्ति को अवांछित शीलगुणों में उच्च तथा वांछित शीलगुणों में निम्न समझते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण प्रत्यक्षणकर्ता की धारणा या निर्णय गलत बन जाते हैं।

ii) विरोध तथा समानता अशुद्धियाँ –

विरोध अशुद्धि का अर्थ यह है कि कुछ लोग जिस ढंग से अपने आप का मूल्यांकन करते हैं, ठीक उसके विपरीत ढंग से दूसरों का मूल्यांकन करते हैं। दूसरी ओर समानता अशुद्धि का अर्थ यह है कि लोग दूसरों का मूल्यांकन उसी ढंग से करते हैं । जिस ढंग से अपना मूल्यांकन करते हैं। इन दोनों अवस्थाओं में प्रत्यक्षणकर्ता का निर्णय पक्षपाती बन जाता है।

iii) केंद्रीय प्रवृत्ति अशुद्धि –

कुछ लोग दूसरों के प्रति अति–निर्णयकरने से बचने की प्रवृत्ति रखते हैं। वे किसी व्यक्ति को किसी शीलगुण पर न तो बहुत ऊँचा और न अधिक नीचा रखते हैं, बल्कि केन्द्र में रखने का प्रयास करते हैं। इस कारण भी व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण धारणा या निर्णय आत्मगत तथा पक्षपाती बन जाता है।

iv) स्थिराकृतियाँ –(Stereotypes) व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण पर स्थिराकृति का भी प्रभाव पड़ता है। किसी दूसरे व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण करते समय उसके संबंध में धारणा बनाते समय या निर्णय करते समय हम विभिन्न स्थिराकृतियों से प्रभावित होते है। संज्ञानात्मक संरचना का यह एक ऐसा पक्ष है जो हमें किसी समूह के सदस्यों के बीच भिन्नताओं के प्रति अंधा बना देता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि धारणा निर्माण या निर्णय पर प्रत्यक्षीकरण से संबंधित कई कारकों का प्रभाव पड़ता है।

सामाजिक संदर्भ –

व्यक्ति–प्रत्यक्षीकरण अथवा धारणा–निर्माण पर सामाजिक संदर्भ का भी प्रभाव पड़ता है। सामाजिक संदर्भ का अर्थ सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों से है। किसी व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण या मूल्यांकन करते समय हम इस बात से प्रभावित हो जाते है है कि वह कौन है तथा किस समुदाय जाति या सामाजिक–आर्थिक स्थिति से संबंध रखता है। अतः किसी व्यक्ति के संबंध में एक विशेष भूमिका को ध्यान में रखकर ही धारणा बनाते हैं प्रत्येक भूमिका से संबंधित विशेष प्रत्याशायें होती हैं, जो हमारे प्रत्यक्षकरण धारणा या निर्णय का आधार बनती हैं। इसह आधार पर हम एक सैनिक , शिक्षक तथा न्यायाधीश का प्रत्यक्षीकरण करते है या कोई निर्णय लेते हैं।

व्यक्ति –प्रत्यक्सीकरण या धारणा निर्माण वास्तव में लक्ष्य व्यक्ति प्रत्यक्षीकरणकर्ता तथा प्रत्यक्षीकरणमें घटित होने वाली सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थिति से संबंधित कारकों चरों या निर्धारिकों का संयुक्त परिणाम होता है।

अन्तर्पयक्तिक प्रत्यक्षीकरण की परिशुद्धता

(Accuracy of Interpersonal Perception)

दैनिक जीवन में एक–दूसरे के साथ कार्य–संपादन में लोग एक–दूसरे के संबंध में सही निर्णय लेने का प्रयास करते हैं। यदि एक दूसरे के प्रति लोगों की समझदारी या निर्णय पर्याप्त मात्रा में सही न हो तो समूहों, संगठनों तथा समाजों में सदस्यों की हैसियत से एक साथ रहना तथा कार्य करना संभव नहीं होगा। लेकिन पारस्परिक निर्णयों की परिशुद्धता में वैयक्तिक भिन्नता होती है। किसी व्यक्ति का निर्णय अधिक सही होता है और किसी का कम। एक ही व्यक्ति के निर्णय की परिशुद्धता की मात्रा भिन्न–भिन्न समय तथा परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न हो सकती है।

अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि अन्तवैयक्तिक प्रत्यक्षीकरण या निर्णय की परिशुद्धता पर इन निम्न कारकों का प्रभाव पड़ता है–

i) अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार का स्वरूप –

(Nature of interpersonal Behavior)

अन्तवैयक्तिक प्रत्यक्षीकरण या निर्णरू की परिशुद्धता पर अन्तवैयक्तिक व्यवहार के स्परूप का प्रभाव पड़ता है। केली के अनुसार जब प्रत्यक्षीकरणकर्ता या निर्णायक किसी विशेष भूमिका में होता है तो इसका प्रभाव दूसरे भूमिका–साथी के मूल्यांकन या निर्णय पर पडता हैं। जिससे मूल्यांकन या निर्णय के गलत होने की संभावना बढ़ जाती है। जैसे– यदि एक शिक्षक किसी छात्र का मूल्यांकन कर रहा है तो वह उसके केवल ऐसे पक्षों पर ध्यान देगा जो उसकी शिक्षा से संगत होंगे। वह विश्वास करेगा कि विद्यार्थी अपनी शिक्षा से संबंधित बातों को स्पष्टतया प्रस्तुत करेगा। रोगी के अन्य पक्ष (जैसे–राजनीतिक या धार्मिक मनोवृत्तयों) के प्रति वह ध्यान नहीं देगा। इसके अतिरिक्त छात्र केवल एक छात्र की हैसियत से ही शिक्षक से बात करेगा। अतः छात्र की शिक्षा के संबंध में शिक्षक का मूल्यांकन अधिक सही सिद्ध होगा।

ii) अन्तर्वैयक्तिक प्रत्यक्षीकरण की परिशुद्धता की मात्रा प्रत्यक्षीकरण करने वाले या निर्णरू करने वाले की योग्यता पर निर्भर करती है। अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि योग्य निर्णायक या अच्छे निर्णायक वास्वत में अधिक बुद्धिमान तथा साहसी होते हैं। उनका चित्त स्थिर होता है। तथा ध्यान को केन्द्रितकरने की योग्यता अधिक होती है।

iii) लक्ष्य व्यक्ति की विशेषतायें –

अन्तर्वैयक्तिक प्रत्यक्षीकरण अथवा धारणा की परिशुद्धता उस व्यक्ति की विशेषताओं पर निर्भर करती है, जिसका प्रत्यक्षीकरण किया जाता है या जिसका संबंध में कोई धारणा बनायी जाती है तथा निर्णय लिया जाता है। नौसवर्थी के अनुसार कुछ लोगों का मूल्यांकन करना आसान होता है और दूसरे लोगों का मूल्यांकन करना कठिन होता है।

iv) सूचना की मात्रा–

किसी व्यक्ति के संबंध में सूचना की मात्रा अधिक होने पर उसके संबंध में किये गये निर्णय के सही होने की संभावना अधिक रहती है। होलैण्डर तथा क्रेच ने इसइस तथ्य की पुष्टि की है।

सूचना का क्रम –

लक्ष्य–व्यक्ति के संबंध में जिस क्रम में सूचना प्राप्त होती है, उसका प्रभाव भी निर्णायक की धारणा पर पड़ता है। जो सूचना पहले प्राप्त होती है उसका प्रभाव अधिक पड़ता है और जो सूचना अंत में प्राप्त होती है उसका प्रभाव अपेक्षाकृत कम होता है। लूचिल्स के अध्ययन से प्रमुख्ता सिद्धांत की सार्थकता सिद्ध होती है।

स्पष्ट होता है कि अन्तवैयक्तिक प्रत्यक्षीकरण की परिशुद्धता पर कई कारकों का प्रभाव पड़ता है। इस संबंध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि दूसरों के मूल्यांकन की योग्यता का समुचित मापन भी कठिन है। इस कठिनाई के कई कारण है जिनमें निर्णायक की अव्यक्त व्यक्तित्व अपनी ओर से सामान्यीकरण की प्रवृत्ति तथा सामान्य मूल्यांकन झुकाव मुख्य हैं।

स्व–प्रत्यक्षीकरण या आत्म–मूल्यांकन

समाज–मनोवैज्ञानिकों ने एक इस प्रश्न में दिलचस्पी दिखाना शुरू किया है कि व्यक्ति किस तरह से अपने आपको जान सकता है या समझ सकता है । जिस प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति अपने–आपकी समझ पाता है या अपने बारे में ज्ञान प्राप्त करता है, उसे आत्म–प्रत्यक्षण कहा जाता है। सामान्यता व्यक्ति अपने व्यवहारों ,मापों आदि का प्रत्यक्षण कर यह अनुमान लगाता है कि वह पहले से अधिक मोटा हो गया है, तो यह आत्म–प्रत्यक्षीकरण का उदाहरण है। बरोन तथा बर्न के अनुसार जिस प्रक्रिया द्वारा हम लोग अपने भावों शीलगुणों तथा अभिप्रेरकों को समझते हैं, उसे आत्म–प्रत्यक्षण कहा जाता है। हम लोग इसे अपने स्पष्ट व्यवहार के प्रेक्षण के आधार पर अनुमान लगाते है।

5.12 आत्म–प्रत्यक्षीकरण की विशेषताये

i) आत्म–प्रत्यक्षीकरण एक मानसिक प्रक्रिया है जिसमें आत्म–गुणारोपण की विशेषता होती है।

ii) आत्म–प्रत्यक्षीकरण में व्यक्ति अपने भावों, शीलगुणों एवं अभिप्रेरकों को समझने की कोशिश करता है।

iii) आत्म–प्रत्यक्षीकरण का आधार व्यक्ति द्वारा किये गये स्पष्ट व्यवहार का प्रेक्षण होता है।

5.13 आत्म–प्रत्यक्षीकरण या स्व–प्रत्यक्षीकरण का महत्व

अन्तवैक्तिक संबंध की सफलता के लिये पर–प्रत्यक्षीकरण के साथ–साथ स्व–प्रत्यक्षीकरण भी आवश्यक है। यह एक सामान्य विश्वास है कि अपने आपको जानना आसान है कि और प्रत्येक व्यक्ति अपने–आपको अच्छे से जानता है। लेकिन यह विश्वास गलत है क्योंकि दूसरों को जानने की अपेक्षा खुद को जानना कठिन है। जो व्यक्ति जिस हद तक स्व–मूल्यांकन में सफल होता है, वह उसी हद तक दूसरों के साथ समायोजन स्थापित करने में सफल सहता है।

मैकडूगल के अनुसार व्यक्ति को मानसिक रूप से स्वस्थ होने के लिये अपने आपको जानना आवश्यकत होता है। ऐसा व्यक्ति ही स्वस्थ समायोजन स्थापित कर सकता है। पर स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिये स्व–प्रत्यक्षीकरण का तटस्थ तथा वस्तुनिष्ठ होना आवश्यक है।

5.14 विश्वास

विश्वास व्यक्ति की एक ऐसी मानसिक अवस्था है जिसमें व्यक्ति बिना किसी आनुभाविक साक्ष्य के भी किसी भी बात को सच मान लेते हैं। समाज–मनोविज्ञान के संदर्भ में विश्वास को मानसिक प्रतितिधित्व का साधारणतम रूप माना जाता है।

विश्वास का संप्रत्यय यह मानता है कि विश्वासकर्ता विषय होता है तथा विषय को विश्वास कहा जाता है।

विश्वास का अर्थ उस ज्ञान से होता है जिसे व्यक्ति प्राप्त करता है, जैसे– पृथ्वी, सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाता है, या एक व्यक्तिगत ज्ञान होता है (कल रात की पार्टी मेरे लिये सबसे ज्यादा मजेदार रात थी) विश्वास को शक्ति भिन्न–भिन्न हो सकती है। इसके अर्न्तगत वस्तुयें तथा घटनायें जो भूतकाल में घट चुकी हैं वो भी

आते हैं (फेसबुक की स्थापना 4 फरवरी 2004) वर्तमान (मेरी पत्नी की लम्बाई 6′0) या (15 साल में सभी कारें बिना ड्राईवर के चलेंगी) भविष्य के बारे में निर्मित किये गये विश्वास को उम्मीद कहा जाता है। विश्वास ''व्यक्त'' भी हो सकता है तथा ''अव्यक्त'' भी।

व्यक्त विश्वास का अर्थ यह होता है कि वह विश्वास होता है जिसके बारे में उसे ज्ञात होता है। उदाहरण के लिये मेरा बहुत प्रत्यक्ष विश्वास है कि मैंने सुबह नाश्ते के लिये काफी अंडे को फेंटा था। दूसरी तरफ जब तक चेतना में नहीं लाया जाता तब तक व्यक्ति को अपने उस विश्वास के बारे में पता नहीं चलता है। प्रायः ये विश्वास शरीर व मन के बारे में उपयोगी होता है। व्यक्त तथा अव्यक्त विश्वास कि अव्यक्त विश्वास में एक महत्वपूर्ण अंतर यह है कि अव्यक्त विश्वास हमारे निर्णय व्यवहार तथा जागरूकता को प्रभावित कर सकता है। विश्वास संज्ञान अथवा अभिप्रेरणा पर आधारित होते हैं। ज्यादातर विश्वास संज्ञानात्मक प्रकृति के ही होते हैं। इसके द्वारा ये संभावना व्यक्त की जाती है कि व्यक्ति द्वारा अपने बारे में या दूसरों में घटनाओं, व्यक्तियों या वस्तुओं के बारे में जो अनुभव रखता है वह सही होता है।

व्यक्ति विश्वास को इस लिये भी रखते हैं क्योंकि वे ऐसा करने के लिये अभिप्रेरित होते हैं हालाकि व्यक्ति के पास अनेक प्रकार की अभिप्रेरणायें हो सकती है मनोवैज्ञानिक शोधों के द्वारा कुछ ही ऐसी प्रेरणाओं की पहचान की गयी है। व्यक्ति विश्वास रखते हैं क्योंकि वे ऐसा करने के लिये प्रेरित होते हैं। उदाहरण के लिये, व्यक्ति अन्य लोगों के साथ अर्थपूर्ण ढंग से अंतः क्रिया करना चाहता है (संवाद की इच्छा) दूसरों पर प्रभाव डालना चाहता है। (स्थान बनाने की प्रेरणा अपने जीवन पर नियंत्रण करना चाहता है (स्वायत्ता की इच्छा) तथा योग्य बनना चाहता है (उपलब्धि की इच्छा) इसके अतिरिक्त लोगों को ऐसा महसूस करना होता है कि संसार निष्पक्ष है, प्रत्येक व्यक्ति में आवश्यकतायें अलग–अलग मात्राओं में प्राप्त की जाती हैं। उदाहरण के लिये किसी व्यक्ति में संबंधता की आवश्यकता कम हो सकती है परंतु उपलब्धि की आवश्यकता अधिक हो सकती है।

5.15 पूर्वधारणा

पूर्व धारणा या पूर्वाग्रह अंग्रेजी भाषा के Prejudice का हिन्दी अनुवाद है जो स्वयं लैटिन भाषा के Prejudicium से बना है। Pre का अर्थ है पहले (Prior) और Judicium का अर्थ है निर्णय। इस दृष्टिकोण से पूर्वधारणा का शाब्दिक अर्थ हुआ पूर्णनिर्णय

इस दृष्टिकोण से पूर्वधारणायें (Prejudgment) पूर्वधारणा का तात्पर्य व्यक्तियों या वस्तुओं के प्रति पूर्व निर्णय, भाव या प्रतिक्रिया से है जो पूर्व निर्धारित होने के कारण वास्तविक अनुभव पर आधारित नहीं होती है परंतु यह परिभाषा पूर्वधारणा का स्वरूप स्पष्ट नहीं करती है।

बेब्सटर के अनुसार "पूर्वधारणा का तात्पर्य ऐसी मनोवृत्ति से है जो असंगत, अतर्क, प्रतिकूल तथा नकारात्मक होती है।"

''पूर्वधारणा का तात्पर्य किसी व्यक्ति, समूह, प्रजाति या उनके कल्पित अभिलक्षणों के विरूद्ध संचालित बैर की असंगत मनोवृत्ति से है।

''पूर्वधारणा एक प्रतिकूल मनोवृत्तिा और इसे उन तरीकों से प्रत्यक्षीकरण करने, सोचने, अनुभव करने तथा क्रिया करने की पूर्ववृत्ति माना जा सकता है जो दूसरे व्यक्तियों विशेष रूप से दूसरे समूहों के सदस्यों के विपक्ष में होते हैं।

न्यूकोब ,टरनर तथा कन्वर्स

लेकिन कुछ मनोवैज्ञानिकों ने पूर्वधारएणा का व्यवहार प्रतिकूल मनोवृत्ति के साथ–साथ अनुकूल मनोवृत्ति के अर्थ में भी किया है। उनके अनुसार पूर्वधारणा वह पूर्ववृत्ति (Predisposition) है जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों या समूहों के सदस्यों के प्रति एक विशेष ढंग से अनुकूल या प्रतिकूल प्रत्यक्षीकरण, चिंतन तथा क्रिया के लिये बाध्य करती हैं।

''पूर्वधारणा एक मनोवृत्ति है जो व्यक्ति को किसी समूह या उसके सदस्यों के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल ढंग से सोचने, प्रत्यक्षीकरण करने अनुमान करने तथा क्रिया करने के लिये पहले से ही तत्पर बना देती है।

संकर्ड एवं बैकमैन

''सामज–मनोविज्ञान में पूर्वाग्रह (पूर्वधारणा) का तात्पर्य एक व्यक्ति के ऐसे निर्णय से है जो एक सामाजिक समूह में दूसरे व्यक्ति की सदस्यता पर आधारित होता है।

आर.ए. लिप्या

वर्तमान समय में मनोवैज्ञानिकों का एक बड़ी संख्या इस विचार से सहमत है कि पूर्वाग्रह या पूर्वधारणा एक ऐसा निर्णय या मनोवृत्ति है जो प्रायः नकारात्मक तथा अनुमानित होती है। इसका उदाहरण हम दैनिक जीवन में देख सकते हैं। गोरों की नजर में काले व्यक्ति मात्र इसलिये अशक्त तथा अकुलीन हो सकते हैं क्योंकि उनका जन्म काले समुदाय में हुआ है। इस उदाहरण से पूर्वधारणा के नकारात्मक या प्रतिकूल पक्ष का बोध होता है। लेकिन दसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि पूर्वधारणा केवल नकारात्मक ही होती है। कभी–कभी इसका सकारात्मक या अनुकूल पक्ष भी हमारे सामने आता है। हमारा यह मत कि नेपाली नौकर अधिक विश्वासी होता है, इस विश्वास पर आधारित है कि इस प्रजाति में वफादारी अधिक है।

इन उदाहरणों से इतना स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वधारणा एक ऐसी असंगत एवं अतार्किक मनोवृत्ति है जो अधिकांश परिस्थितियों में प्रतिकूल तथा कुछ परिस्थितियों में अनुकूल होती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से पूर्वधारणा के संबंध में निम्न बातें स्पष्ट होती हैं–

i) पूर्वधारणा एक प्रकार का पूर्व निर्णय है। यह एक ऐसा विश्वास या मत है जो तथ्यों पर आधारित नहीं होता है।

ii) पूर्वधारणा एक ऐसी मनोवृत्ति है, जो कभी सकारात्मक तथा कभी नकारात्मक होती है। अधिकांश परिस्थितियों में यह नकारात्मक या प्रतिकूल होती है तथा कुछ परिस्थितियों में सकारात्मक या अनुकूल।

iii) पूर्वधारणा में संवेगात्मक रंग पाया जाता है। इसमें संवेगात्मक दृढ़ता तथा असंगति पायी जाती है।

iv) पूर्वधारणा में परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध अधिक पाया जाता है । इसमें कठोरता अधिक तथा लचीलापन कम पाया जाता है।

v) पूर्वधारणा में अति सामान्यीकरण की विशेषता पायी जाती है। समूह या समुदाय के बहुत थोड़े से व्यक्तियों के अनुभव के आधार पर समूचे समूह या समुदाय के संबंध में समान धारणा बना ली जाती है।

vi) पूर्वधारणा का प्रभाव व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण, चिंतन भाव तथा व्यवहार पर पड़ता है।

5.16 पूर्वधारणा का स्वरूप या विषेषतायें

पूर्वधारणा शब्द की व्याख्या भिन्न–भिन्न अर्थों में की गयी है कारण मनोवैज्ञानिक ने इस शब्द का व्यवहार भिन्न–भिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गयी परिभाषाओं एवं व्याख्याओं से पूर्वधारणा के स्वरूप में जो विशेषतायें प्रकट होती हैं, वे इस प्रकार हैं–

पूर्वाग्रह विवेकहीन होता है–

पूर्वाग्रह का स्वरूप कुछ ऐसा होता है कि इसमें विवके तर्क एवं संगति का कोई स्थान नहीं होता है। अनेक प्रकार के विरोधी तथ्य एवं सूचनाओं को व्यक्ति के सामने प्रस्तुत करने पर भी वह अपने पूर्वाग्रह पर अडिग रहता है।

पूर्वाग्रह अर्जित होता है–

चूँकि पूर्वाग्रह एक तरह की मनोवृत्ति है अतः इसे आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों ने एक अर्जित प्रक्रिया माना है। बच्चा जब जन्म लेता है, तो उसमें दूसरी जाति के लोगों के प्रति न तो सकारात्मक पूर्व्राग्रह होता है और न नकारात्मक वह अपने आस–पास जो देखता है, वही सीखता हैं। इसी कारण वश पूर्वाग्रह को अर्जित प्रक्रिया कहा गया है।

पूर्वाग्रह में संवेगात्मकता भी होती है–

पूर्वाग्रह में संवेगात्मकता भी होती है और वह किसी समूह, धर्म, जाति के लोगों के लिये या तो अनुकूल होती है या प्रतिकूल होती है। यदि पूर्वाग्रह अनुकूल हुयी तो व्यक्ति दूसरे समूह, धर्म या जाति के लोगों के प्रति अधिक स्नेह एवं प्रेम दिखाता है। परंतु यदि पूर्वाग्रह प्रतिकूल हुआ तो व्यक्ति दूसरी जाति, धर्म या समूह के व्यक्तिके प्रति घृणा, विद्वेष आदि संवेग मुख्य रूप से दिखलाता है जैसे भारत में उच्च जाति का निम्न जाति के प्रति प्रतिकूल संवेगात्मक प्रक्रिया देखने को मिलती हैं। स्पष्ट है कि पूर्वाग्रह अनुकूल हो या प्रतिकूल उसमें संवेगात्मक रंग निश्चित रूप से होता है।

पूर्वाग्रह पूर्णरूपेण किसी समूह की ओर संचालित होती है–

पूर्वाग्रह में दृढ़ता पायी जाती है तथा वह स्थिर सामान्यीकरण पर आधारित होती है। पूर्वाग्रहीत व्यक्ति के सामने उसके विश्वास एवं विचार के विरोधी विचार भी यदि प्रस्तुत किये जाते है तो वह अपने पूर्वाग्रह में परिवर्तन लाने की तैयार नहीं होता। इसका कारण यह है कि पूर्वाग्रह का संबंध कुछ हद तक स्थिर विचारों अंधविश्वासों एवं सामाजिक रीति–रिवाजों से होता है, न कि विवके तर्क व बुद्धि से।

पूर्वाग्रह का कार्यात्मक स्वरूप होता है–

क्रेच, क्रेचफील्ड एवं वैलेची के अनुसार, पूर्वाग्रह का स्वरूप कार्यात्मक होता है क्योंकि इसमें व्यक्ति को कुछ फायदा होता है। पूर्वाग्रह विद्वेष को उचित ठहराने में संतुष्टि प्रदान करता है। इसके द्वारा दमित इच्छाओं की संतुष्टि के भाव को मजबूत करने में मदद मिलती है तथा कुण्ठा एवं आक्रमणकारी व्यवहार को विद्वेषपूर्ण कार्यों द्वारा व्यक्त करने का मौका मिलता है।

पूर्वाग्रह का संबंध वास्तविकाता से नहीं होता है–

पूर्वाग्रह चाहे अनुकूल हो या प्रतिकूल इसका संबंध वास्तविकता से नहीं होता है। यह सुनी–सुनाई बातें एवं रीति–रिवाजों पर ही आधारित होती है। इसका संबंध वास्तविक हालातों से नहीं होता है। ऐसे लोगों के पास इसका कोई वैज्ञाानिक कारण नहीं होता है। स्पष्ट है कि पूर्वाग्रह का संबंध रीति–रिवाजों एवं पूर्वजों द्वारा किये विश्वासों से होता है न कि वैज्ञानिक चिंतन से।

5.17 पूर्वाग्रह के प्रकार

समाज मनोवैज्ञानिकों ने पूर्वाग्रह के कई प्रकार बताये है। पश्चिमी सामज मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रजातीय पूर्वाग्रह, यौन पूर्वाग्रह उम्र पूर्वाग्रह अधिक प्रमुख है। भारतीय मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इन पूर्वाग्रहों के अलावा कुछ अन्य तरह के विशिष्ठ पूर्वाग्रह भी पाये जाते हैं, जिनमें जाति पूर्वाग्रह, भाषा पूर्वाग्रह, सांप्रदायिक पूर्वाग्रह धर्म से संबंधित पूर्वाग्रह तथा क्षेत्रीय पूर्वाग्रह अधिक महत्वपूर्ण इन सभी का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

प्रजातीय पूर्वाग्रह– प्रजातीय पूर्वाग्रह में व्यक्ति दूसरी प्रजाति के लोगों के प्रति पूर्वाग्रहित होता है। अतः प्रजातीय पूर्वाग्रह में पूर्वाग्रह का आधार एक चाहत होता है जैसे अमेरिका में गोर लोग काले लोगों को कम पसंद करते हैं। भारत में भी प्रजातीय पूर्वाग्रह के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्रायः लोग समझते है कि बंगाली लोग डरपोक होते हैं सिक्ख लोग धूर्त होते हैं। तथा बिहारी लोग अगड़ालू होते हैं। यदि इन प्रजातीय पूर्वाग्रह को गहराई से देखा जाये तो इसमें सच्चाई कम है।

उम्र पूर्वाग्रह– (Age Prejudice) उम्र पूर्वाग्रह का आधार उम्र होता है। भारतीय समाज में बूढ़े लोगों को निष्क्रिय, असामाजिक तथा बीमार समझते हैं। बटलर ने इसे उग्रवाद (Ageism) कहा है। जिसमें वयक्ति बुढ़े लोगों के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति दिखलाता है। भारत में भी उम्र पूर्वाग्रह दिखलायी पड़ती है।

जाति पूर्वाग्रह –(Caste Prejudice) भारत एक ऐसा देश है जिसमें बहुत जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों को अपने से निम्न समझते हैं। जहाँ एक तरफ जाति पूर्वाग्रह को लाभ यह होता है कि एक जाति के लोगों के साथ अच्छा संबंध बनाकर रखते है वहीं दोष यह है कि दूसरी जाति के लोगों के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति रखते है।

भाषा पूर्वाग्रह–(Language Prejudice) इस पूर्वधारणा का आधार भाषा है। एक तरह की भाषा बोलने वाले चाहे वे किसी भी क्षेत्र, धर्म या समुदाय के हो, एक–दूसरे को एक ही समूह का सदस्य मानते हैं और दूसरी भाषा बोलने वालों को उस समूह से अलग किसी दूसरे समूह का सदस्य समझते हैं। इसके अतिरिक्त एक तरह की भाषा बोलने वाले दूसरी तरह की भाषा बोलने वाले दूसरी तरह की भाषा बोलने वाले के प्रति बैर–भाव भी रखते हैं। जैसे– दक्षिण भारत में हिन्दी भाषियों के विरोध में पूर्वग्रस्तता देखी जा सकती है।

धार्मिक पूर्वधारणा – (Religious Prejudice) इस पूर्वधारणा का आधार धर्म है। एक प्रकार के धर्म को मानने वाले आपस में एक–दूसरे को एक ही समूह का सदस्य समझते हैं। दूसरे धर्म के लोगों को वो भिन्न समूह का सदस्य मानते है। फलतः उनकी मनोवृत्ति अपने धर्म के लोगों के प्रति सकारात्मक तथा दूसरे धर्म के लोगों के प्रति नकारात्मक हो जाती है।

यौन भिन्नता – (Sex Difference) भारत में लड़कों तथा लड़कियों को उनकी यौन–भूमिका के अनुसार अलग–अलग विशेष प्रशिक्षण किया जाता है। इस कारण उनमें भिन्न व्यक्तित्व शीलगुणों का निर्माण होता है। अतः पूर्वधारणा के निर्माण पर यौन–कारक का भी प्रभाव पड़ता है। सिन्हा तथा सिन्हा ने हरिजनों के प्रति स्त्रियों में नकारात्मक मनोवृत्ति अधिक पायी। इसका व सरकार ने स्त्रियों की अपेक्षा पुरूषों में जातिगत पूर्वधारणा कम पायी। पूर्वघारणा के विकास पर यौन–भिन्नता का प्रभाव सार्थक रूप से पड़ता है।

यौनवाद – यौनवाद अर्थात् यौन पर आधारित पूर्वाग्रह वर्तमान समय में समाज–मनोवैज्ञानिकों का केंद्र है। यद्यपि संसार की कुल जनसंख्या में स्त्रियों को बहुसंख्यक होने का श्रेय प्राप्त है फिर भी अधिकांश संस्कृतियों में अनके साथ अल्पसंख्यक जैसा व्यवहार होता है। आर्थिक तथा राजनैतिक अधिकार से उन्हें वंचित रखा जाता है। यहाँ तक कि विशेष प्रकार के व्यवसायों, प्रशिक्षणों तथा सामाजिक संगठनों में सहभागिता की अनुमति नहीं दी जाती है। अधिकांश संस्कृतियों में पुरूषों के लिये आधिपत्य, संस्थापन (Assertiveness) आत्म–विश्वास, अभिलाषा, निर्णयात्मकता एवं निश्चयात्मकता आदि शीलगुणों को अपेक्षित समझा जाता है। जबकि स्त्रियों के लिये विनम्रता निर्भरता, संवेगशीलता, निष्क्रियता, आधाकारिक आदि शीलगुणों को अपेक्षित माना जाता है। पुरूषों तथा स्त्रियों के शीलगुणों में इस अंतर का मौलिक अधार स्थिराकृतियाँ (Stereotype) हैं। परिवार तथा समाज में पुरूषों तथा स्त्रियों की विभिन्न भूमिकाओं तथा भूमिका–अपेक्षाओं के कारण ये स्थिराकृतियाँ अनेक सामाजिक परिवर्तनों के बावजूद आज भी जारी है।

क्षेत्रीय पूर्वाग्रह –

भारत जैसे देश में हमें क्षेत्रीय पूर्वाग्रह का भी उदाहरण मिलता है। प्रायः देखा जाता है कि शहर में रहने वाले अपने आपको अधिक बुद्धिमान, चतुर एवं आधुनिक समझते है तथा देहात व गाँव में रहने वाले व्यक्ति अपने आप को मंदबुद्धि एवं नासमझ तथा बवकूफ समझते हैं।

राजनीति संबंधित पूर्वाग्रह –

अपने देश में राजनीति से संबंधित पूर्वाग्रह का चमत्कार काफी देखने को मिलता है। एक राजनीतिक दल के सदस्य अपने दल के सिद्धांत, नियमों एवं आदर्शो को श्रेष्ठ समझकर आपस में काफी एकता दिखाते हैं और एक दूसरे के प्रति स्वीकारात्मक मनोवृत्ति बना लेते है। परंतु अन्य दल के सदस्यों के प्रति नकारात्मक तनोवृत्ति रखकर बैर–भाव रखते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि पूर्वधारणा के अनेक प्रकार हैं जिनमें जातिगत पूर्वधारणा अधिक बहुचर्चित हे। इनके अलावा प्रांतीय पूर्वधारणा अंतराष्ट्रीय पूर्वधारणा आदि भी उल्लेखनीय है।

5.18 पूर्वधारणा (पूर्वाग्रह) के कारण या स्रोत

पूर्वधारणा या पूर्वाग्रह से संबंधित किये अध्ययनों से इसके कई कारणों या स्रोतों का पता चलता है, जिन्हें निम्न लिखित भागों में विभाजित किया जाता है–

क) सामाजिक कारक –

आधुनिक समाजशास्त्री तथा समाज मनोवैज्ञानिक इस विचार से सहमत है कि पूर्वधारणा या अन्तर्समूह मनोवृत्ति के विकास पर सामाजिक कारकों का गहरा प्रभाव पड़ता है। सामजीकरण प्रक्रिया द्वारा पूर्वधारणायें समूह या संप्रदाय के सदस्यों में संचालित होती है। इस संदर्भ में निम्नलिखित कारक महत्वपूर्ण है।

1) सामाजिक शिक्षण –

पूर्वाग्रह या धारणा के विकास में सामाजिक शिक्षण का बहुत बड़ा हाथ होता है। सामाजिक शिक्षण का अर्थ वह शिक्षण हैं जो परिवार, स्कूल आदि सामाजिक परिवेश में घटता है। परिवार बच्चों के लिये प्रथम पाठशाला होता है। बच्चे अपनी सबसे पहली शिक्षा परिवार से ही लेते हैं। अतः वे अपने माता–पिता तथा अन्य सदस्यों के संपर्क में रहकर भिन्न–भिन्न प्रकार के पूर्वाग्रहों को सीख लेते हैं।

सामाजिक शिक्षण की भूमिका तीन रूपों में अर्थात् क्लासिकी अनुबंधन, नैमेत्तिक अनुबंधन जथा प्रतिरूपण (Modilling) के रूप में देखी जाती है। बच्चे कभी क्लासिकी अनुबंधन के आधार पर और कभी प्रवर्तन अनुपालन के आधार पर अपने समूह से भिन्न समूहों के प्रति बैर–भाव रखना सीख जाते हैं। इसी प्रकार प्रतिरूपण के सिद्धांतों के आधार पर उनमें ये सभी पूर्वाग्रह विकसित हो जाते है। जो उनके माता–पिता में होते है। कभी–कभी माता–पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यगण बच्चों को अपने समूह के मानदंडों, मूल्यों, विश्वासों तथा परंपराओं को श्रेष्ठ समझते है तथा उनको स्वीकार करने तथा अपने समूह से भिन्न समूहों के मानस्तरों, मूल्यों विश्वासों तथा परंपराओं को घटिया समझने तथा उनसे अलग रहने की शिक्षा प्रत्यक्ष रूप से लेते है। फलतः बच्चों में दूसरे भिन्न समूह के लोगों के प्रति बिना व्यक्तिगत अनुभव के ही नकारात्मक मनोवृत्ति विकसित हो जाती है।

2) औपचारिक शिक्षा –

औपचारिक शिक्षा का तात्पर्य उस शिखा से है जो बच्चों को शिक्षकों द्वारा पाठशालाओं में पढ़ने को दी जाती है। स्कूल में शिक्षक की भूमिका का अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। मानवजातीय पूर्वधारणा से पीड़ित शिक्षकों के विचारों तथा व्यवहारों के अनुकरण तथा अनुकूलन के कारण भी छात्र भी इस रोग से पीड़ित हो जाते है। अध्ययनों से यह पता चलता है कि शैक्षिक सतर तथा पूर्वधारणा के बीच नकारात्मक संबंध है। स्टेम्बर ने अपने अध्ययन में पाया कि शिक्षा के स्तर के बढ़ने से पूर्वधारणा की मात्रा घटती है। आवन्त ने कम शिक्षित की अपेक्षा अधिक शिक्षित पुरूष तथा स्त्री में पूर्वाग्रह कम पाया।

3) धार्मिक विश्वास तथा अंधविश्वास –

प्रत्येक समूह तथा संप्रदाय के प्रति दसके सदस्यों के लिये कुछ निश्चित अधिकर तथा कर्तव्य होते हैं। इन कर्तव्यों में समूह या संप्रदायों के धार्मिक विश्वासों तथा अंधविश्वासों को स्वीकार करना भी शामिल है। भिन्न–भिन्न समूहों या संप्रदायों के ऐसे विश्वासों तथा अंधविश्वासों में विरोध होने के कारण पूर्वधारणा विकसित होती है। भारतीय संस्कृति में सांप्रदायिक पूर्वधारणा, जातिगत पूर्वधारणा, प्रजातीय पूर्वधारणा आदि के निर्माण में

धार्मिक विश्वास तथा अंधविश्वास का बहुत बड़ा हाथ है। कई अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि धार्मिकता तथा पूर्वधारणा में धनात्मक संबंध है।

4) सामाजिक आर्थिक स्थिति–

पूर्वधारणा के निर्माण पर सामाजिक कारक का कोई निश्चित प्रभाव नहीं पड़ता प्रमाणित नही हो सका है। फिर भी कुछ अध्ययनों से यह पता चलता है कि इन दोनों चरों के बीच नकारात्मक यह संबंध है। भारतीय संस्कृति में निरीक्षणों के आधार पर यह कह सकते हैं कि लाभान्वित समूह की अपेक्षा अलाभान्वित समूह में मानवजातीय पूर्वधारणा अधिक है। इसका कारण यह भी है कि अलाभान्वित या वांचित समूह का शैक्षिक स्तर काफी नीचा है।

देहाती –शहरी क्षेत्र –

मानवजातीय पूर्वधारणा के के निर्माण पर शहरी तथा देहाती वातावरण का प्रभाव किस रूप में पड़ता है, इसके संबंध में परस्पर विरोधी परिणाम मिले है। सिंह एवं सिंह ने हरिजनों के प्रति देहाती बच्चों में अधिक पूर्वधारणा पायी। चटर्जी ने देहाती छात्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों में धार्मिक तथा यौन पूर्वधारणायें अधिक पायी।

यौन– भिन्नता –

भारत में लड़कों तथा लड़कियों की यौन–भूमिका में काफी अंतर है। इसका एक कारण यह भी है कि उनकी यौन–भूमिका के आधार पर उन्हें अलग–अलग विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है। इस कारण उनमें भिन्न–भिन्न व्यक्तित्व शीलगुणें का निर्माण होता है। अतः पूर्वधारणा के निर्माण पर यौल–कारक का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। सिन्हा तथा सिन्हा ने हरिजनों के प्रति स्त्रियों में नकारात्मक मनोवृत्ति अधिक पायी। दत्ता (D1965) ने विश्वविद्यालय के छात्रों की अपेक्षा छात्राओं में धार्मिक पूर्वधारणा कम पाया।

7) सामाजिक वातावरण संबंधी सहारा–

पूर्वधारणा को विकसित होने के साथ कायम रखने में सामातिक वातावरण से संबंधित भिन्न–भिन्न सहारों (Supparts) का महत्वपूर्ण हाथ होता है। इनमें सामाजिक अलगाव तथा राजनीतिक अलगाव अधिक महत्वपूर्ण है। इस अलगाववादी नीति से न केवल यह धारणा बनती है कि भिन्न–भिन्न मानवजातीय समूह एक दूसरे से भिन्न हैं बल्कि यह भी कि अमुक समूह श्रेष्ठ है और अमुक मिन्म है।

8) सामाजिक श्रेणीकरण–

पूर्वाग्रह या पूर्वाधारणा के विकास में सामाजिक श्रेणीकरण का भी हाथ होता है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति सामाजिक जगत को दो भागों में विभाजित कर देता है। एक यह भाव जिसे वह अपना समझता है। इसे अतः समूह(Ingroup) कहते हैं दूसरा यह भाग जिसे वह अपनोंसे भिन्न समझता है इसे बाह्य समूह (Outgroup) कहते हैं। व्यक्ति में अतः समूह के प्रति सकारात्मक मलोवृत्ति का विकास होता है। जबकि बाह्य समूह के प्रति

नकारात्मक मनोवृत्ति का विकास होता है। अंत समूह के प्रति आकर्षण एवं प्रेम का विकास होता है जबकि के प्रति निकर्षण एवं घृणा या बैर–भाव का विकास होता है।

ताजफेल के अनुसार सामाजिक श्रेणीकरण से व्यक्ति के आत्म–सम्मान की आवश्यकता की संतुष्टि होती है।

अंत समूह माध्यम –

पूर्वधारणा के विकास तथा संपोषण पर जनसमूह के बीच संपर्क स्थापित करने वाले साधनों का प्रभाव पड़ता है पुस्तकों, पत्रिकाओं, रेडियों, सिनेमा, टी.वी. आदि द्वारा संचालित सूचनाओं, कहानियों, नाटकों आदि का प्रभाव तानवजातीय पूर्वधारणाओं के संपोषण पर पड़ता है।

मनोवैज्ञानिक कारक –

मानवजीतीय पूर्वधारणा के विकास तथा संपोषण में मनोवैज्ञानिक कारकों तथा व्यक्तिगत शीलगुणों का बहुत बड़ा हाथ होता है। इस संदर्भ में निम्नलिखित कारक उल्लेखनीय है–

1) कुंठा तथा आक्रमण –

पूर्वधारणा का आक्रमण सिद्धांत फ्रायड के मूलप्रवृत्ति सिद्धांत पर आधारित है। मुख्य रूप से इसका आधार ध्वंसात्मक मूलप्रवृत्ति या मृत्यु है। जब व्यक्ति की आवश्यकता की संतुष्टि में कोई बाधा है तो उसे कुंठा महसूस होती है और वह बाधा डालने वोल व्यक्ति या यमूह के प्रति आक्रमणकारी व्यवहार करके अपनी कुंठा को दूर करता है। परंतु जब बाधा डालने वाला व्यक्ति या समूह सबल होता है। तो अपने से कमजोर लोगों पर वह गुस्सा उतारता है। सिंपसन एवं इंगर के अनुसार अल्पसंख्यक को अक्सर इसका निशाना बनाया जाता है कि पूर्वधारणा अर्थात् अल्पसंख्यक समूहों तथा इनके सदस्यों के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति का एक महत्वपूर्ण कारण विस्थापित बैर–भाव है।

2) सामाजिक–आर्थिक प्रतियोगिता –

दलित वर्ग, निम्न जाति या अल्पसंख्यक समूह द्वारा सामाजिक आर्थिक प्रगति की स्थिति में उनके प्रति उन्नत वर्ग उच्च जाति या प्रधान समूह में बैर–भाव उत्पन्न होता है। कारण, इससे प्राधिकृत समूह में लोग अपनी सामाजिक तथा आर्थिक सिथति पर खतरा महसूस करने लगते हैं और असुरक्षा के भाव से पीड़ित हो जाते है। जोशी के अनुसार भारत में जातिवाद पूर्वधारणा का एक प्रधान कारण विधान द्वारा अप्राधिकृत जातियॉ की सामाजिक आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाया जाता है। हारडिंग न अपने अध्ययन में पाया कि हब्शियों को ऐसे व्यवसाय में लगाया जाये जो पहले से केवल शीरों तक ही सीमित थे जो उनके प्रति गोरे कर्मचारियों का बैर–भाव बढ़ गया। इसके अतिरिक्त यह भी सत्य है कि उपलब्धि–प्रेरक के बढ़ने से आर्थिक प्रतियोगिता बढ़ती है और इसके परिणाम स्वरूप सामाजिक पूर्वधारणायें विकसित होती हे।

बेरोन तथा बर्न के अनुसार भिन्न–भिन्न सामाजिक समूहों के बीच व्यवसाय, मुड़ा, पद आदि से संबंधित प्रतियोगिता के कारण पूर्वाग्रह का विकास होता है। उनमें एक –दूसरे के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति का विकास हो जाता है।

3) सामाजिक संज्ञान–

पूर्वाग्रह या पूर्वधारणा के विकास पर सामाजिक संज्ञानात्मक प्रक्रिया का प्रभाव तीन रूपों में पड़ता है जिसमें स्थिराकृतियॉ (Stereotype) भ्रामक सहसंबंध तथा बाह्‍य समूह एकरूपता होती हैं। किसी विशिष्ट सामाजिक समूह के संबंध में जो हमारा ज्ञान या विश्वास होता है, उसे स्थिराकृति कहते है। इसका निश्चित प्रभाव पूर्वाग्रह के विकास पर पड़ता है। किसी स्थिराकृति से संबद्ध सूचना का संसाधन जल्दी होता है। तो किसी का देर से। स्थिराकृति का प्रभाव स्मृति पर भी पड़ता है। जब व्यक्ति किसी स्थिराकृति को अर्जित कर लेता है तो वह उसी सूचना पर ध्यान देने लगता है। जो उसकी स्थिराकृति के अनुकूल होती है।

पूर्वाग्रह के विकास पर सामाजिक संज्ञान का प्रभाव भ्रामक सहसंबंध के रूप में भी पड़ता है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति को ऐसे संबंधों का बोध होने लगता है। जैसे–यह विश्वास किया जाता है कि मानव जातीय विशिष्ठता तथा हिंसक अपराध के पीछे गहरा संबंध होता है। यद्यपि यह विश्वास आधारहीन है फिर भी इसका प्रभाव पूर्वाग्रह पर पड़ता है।

सामाजिक संज्ञान का प्रभाव पूर्वाग्रह के विकास पर बाह्‍य समूह सकरूपता के भ्रम के रूप में भी पड़ता है। मनुष्यों में एक प्रवृत्ति होती है कि वह अपने समूह के सदस्यों की अपेक्षा दूसरों के समूह के सदस्यों में अधिक एकरूपता देखता है। जो वास्तव में एक भ्रम होता है। इस प्रवृत्ति के कारण व्यक्ति का निर्णय, ज्ञान, विश्वास, पक्षापात पूर्ण बन जाता है।, जो एक प्रकार का पूर्वाग्रह है। यह पूर्वाग्रह ऐसे समूहों के साथ भी घनिष्ठ संपर्क रखते हैं जैसे–पुरूषों का विश्वास है कि स्त्रियों में एकरूपता अधिक होती है। जबकि स्त्रियों का मान्यता होती है। कि पुरूषों में एकरूपता अधिक होती है। वास्तविकता यह है कि यह एक यौन–पूर्वाग्रह है, जो बाह्‍य समूह एकरूपता के भ्रम पर आधारित है।

4) व्यवहारिक लाभ –

पूर्वधारणा तथा विभेदीकरण को कायम रखने में प्राधिकृत समूह को कई तरह के व्यवहारिक लाभ होते हैं।

i) इससे प्राधिकृत समूह के लोग अपनी प्रतिष्ठा–आवश्यकता तथा श्रेष्ठता भाव की संतृष्टि करते है।

ii) समाज द्वारा अस्वीकृत आवश्यकताओं की संतृष्टि के लिये सबल समूह के सदस्यों को सहारा मिलता है।

iii) प्रजातीय पूर्वधारणा से दमित इच्छाओं की संतुष्टि में सहायता मिलती है।

5) व्यक्तित्व–कारक–

पूर्वधारणा के निर्माण पर व्यक्तित्व कारकों का भी सहारा व प्रभाव पड़ता है। मफी एवं लिकर्ट के अनुसार दकियानुसी लोगों में उदार लोगों की अपेक्षा अधिक पूर्वधारणा पायी जाती है। हार्टलेस के अनुसार सहनशील व्यक्यिों की अपेक्षा अप्रयत्नशील व्यक्तियों में पूर्वधारणा की प्रवतित्त अधिक पायी जाती है। आलपोर्ट क्रेमन तथा एकरमैन एवं जहोदा के अनुसार अनुपालन तथा पूर्वधारणा के बीच उच्च घनात्मक सहसंबंध पाया जाता है। चैपलिन के अनुसार सामाजिकता तथा पूर्वधारणा के बीच नकारात्मक सहसंबंध पाया जाता है। आलपोर्ट ने असुरक्षा की भावना से पीड़ित व्यक्तियों में अधिक पूर्वधारणा पायी।

आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तित्व कारकों के महत्व को अध्ययनों से यह पता चलता है कि चिंता से भरा व्यक्ति पूर्वधारणा को अधिक ग्राह्य करता है। अंतर्मुखीव्यक्तियों की अपेक्षा बाल्यउन्मुखी लोागों में पूर्वधारणा अधिक पायी जाती है।

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि मानव जातीय पूर्वधारणा के उद्भव, विकास तथा संवोषण में भिन्न–भिन्न सामाजिक मनोवैज्ञानिक कारकों का हाथ होता है।

5.19 पूर्वधारणा को दूर करने की विधियाँ या उपाय

पूर्वाग्रह एक ऐसी मनोवृत्ति है जिसका सामाजिक कुप्रभाव स्पष्ट रूप से हमें देखने को मिलती है। पूर्वाग्रह के कारण अन्तर वैयक्तिक संघर्ष जातीय दंगे आदि प्रायः देखने को मिलते हैं। अतः समाज मनोवैज्ञानिकों ने कुछ वैसी विधियों एवं तरीकों का वर्णन किया है। हजसके द्वारा पूर्वाग्रह और उससे उत्पन्न भेद–भाव को आसानी से कम किया जा सकें। ऐसी प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित है।–

i) अन्तर समूह संपर्क (Intergroup Contact)

आलपोर्ट पहले ऐसे मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने पूर्वामुखी व्यक्ति तथा पूर्वाग्रह के लक्ष्य व्यक्ति के बीच उचित संपर्क द्वारा पूर्वाग्रह को कम करने की विधि पर बल डाला है। जअ पूर्वाग्रही व्यक्ति द्वारा लक्ष्य व्यक्ति जो पूर्वाग्रह का निशाना बनता है, एक दूसरे के निकट संपर्क में आते हैं, तो पूर्वाग्रही व्यक्ति को उनके बारे में समझने का अधिक मौका मिलता है। इससे व्यक्ति के बारे में गलतफहमियाँ दूर हो जाती हैं और व्यक्ति में पूर्वाग्रह कम हो जाती है। विभिन्न समाज मनोवैज्ञानिकों ने इस तरह के अन्तरवैयक्तिक संपर्क या अंतर समूह संपर्क को निम्न तीन परिस्थितियों में अधिक प्रभावकारी बताया है।

i) पूर्वाग्रह कम करने में अंतर समूह संपर्क उस परिस्थिति में प्रभावकारी होता है जहाँ दोनों समूहों के सदस्यों को समान स्तर प्राप्त होता है।

ii) पूर्वाग्रह को कम करने के लिये अंतर समूह संपर्क विधि भी प्रभावकारी होगी जब दोनों समूहों (या व्यक्तियों) के बीच संपर्क सतही न होकर वास्तविक एवं घनिष्ठ हो। वास्तविक एवं घनिष्ठ संबंध होने से व्यक्ति नापसंद समूह के सदस्यों को एक व्यक्ति के रूप में अधिक और रूढ़ीकृतियों के रूप में कम देखता है। फलस्वरूप पूर्वाग्रह में कमी आती है।

iii) अंतर समूह संपर्क उस परिस्थिति में पूर्वाग्रह कम करने में अधिक प्रभावकारी होता है। जब दोनों समूहों की सफलता पारस्परिक क्रियाओं पर निर्भर करता है। दूसरे शब्दों में जग लक्ष्य ऐसा होता है जिसकी प्राप्ति दोनों समूहों की संयुक्त क्रियाओं पर निर्भर करता है, तो ऐसी परिस्थिति में इस ढंग के संपर्क से पूर्वाग्रह में कमी तेजी से आती है।

शिक्षा–

पूर्वाग्रह को कम करने के लिये समाज मनोवैज्ञानिकों ने उचित शिक्षा देने की भी सिफारिश की है। इन लोगों के अनुसार शिक्षा औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ढंग से दी जानी चाहिये। औपचारिक शिक्षा माता–पिता, परिवार के अन्य सदस्यों एवं पास–पडौस से मिल सकती है।

द्वारा बच्चों को दी जाती है । इन लोगों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बच्चों के सामने किसी प्रकार की पूर्वग्रस्तता से संबंधित बाते न करें । बच्चों के लिये ऐसा पाठ्यक्रम बनाया जाना चाहिये जिनको पढकर बच्चों का मानसिक स्वास्थ्य विकसित हो न कि उनमें किसी प्रकार की पूर्वग्रस्तता विकसित हो सके । मनोवैज्ञानिकों के अनुसार शिक्षा का स्तर उचा होने से व्यक्ति में पूर्वाग्रह की मात्रा कम हो जाती है क्योंकि शिक्षा से उदारता बढ जाती है ।

(3) पूर्वाग्रह – विरोधी प्रचार – पूर्वाग्रह के विरोध में रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा आदि से किया गया प्रचार पूर्वाग्रह को कम करने में सहायक है । मेयर्स के अनुसार प्रजातीय पूर्वाग्रह को कम करने के ख्याल से बनायी गयी फिल्मों को देखने से पूर्वाग्रही व्यक्तियों की ऐसी पूर्वाग्रहों में करीब 60% तक कमी होती है ।

(4) असंगत भूमिका – कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार जब व्यक्ति को ऐसी भूमिका दी जाती है जो उसकी पूर्वाग्रह से मिलती जुलती न हो कर उसके विपरीत होती है तो कुछ समय बाद व्यक्ति की मनोवृत्ति बदल जाती है और पूर्वाग्रह में कमी आ जाती है ।

(5) सामाजिक विज्ञान – पूर्वाग्रह को कम करने में तरह तरह के सामाजिक विज्ञान की भूमिका भी सराहनीय होती है । जब सरकार पूर्वाग्रह नियंत्रण संबंधी कोई विशेष विधान या कानून बनाती है तो इससे सामाजिक वातावरण में कुछ परिवर्तन आ जाता है जिससे पूर्वाग्रह में कमी आ जाती है । भारत में दलितों से संबंधित अनेक प्रकार के पूर्वाग्रह मौजूद थी जिनमें प्रमुख पूर्वाग्रह छुआछूत की थी । भारत सरकार ने सामाजिक विधान बनाकर छुआछूत को गैर कानूनी घोषित किया जिसके परिणामस्वरूप दलितों से छुआछूत संबंधी पूर्वाग्रह अब करीब करीब समाप्त हो गया है । इसी तरह महिलाओं व दिव्यागों के प्रति पूर्वाग्रह को कम करने के लिये भारत सरकार ने अनेक विधान बनाये है जिसके कारण इनके प्रति पूर्वाग्रह लगभग समाप्त हो गया है ।

(6) अलगाव विरोधी नीति – सरकार एवं समाज सेवी संस्थानों को चाहिये कि समाज में अलगाव विरोधी नीति का अधिक से अधिक क्रियान्वन किया जाये ताकि समाज में व्यापत भिन्न भिन्न तरह के पूर्वाग्रह में काफी कमी आ जाये ।

(7) व्यक्तित्व परिवर्तन प्रविधियां – सैम्पसन एवं स्मिथ के अनुसार पूर्वाग्रह को कम करने के लिये एक संतुलित , परिपक्व एवं खुला विचार रखने वाले व्यक्ति का होना अनिवार्य है । समाज मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व में परिवर्तन मनोचिकित्सा की विभिन्न विधियों एवं विरेचन द्वारा उनमें व्यापत पूर्वाग्रह को कम करने पर बल डाला जाता है । इन प्रविधियों द्वारा जब व्यक्ति के व्यक्तित्व में परिवर्तन आ जाते है तो वह अन्य जाति , धर्म व प्रजाति के व्यक्तियों के बारे में इस ढंग से सोचना प्रारम्भ कर देता है जिससे उसमें चली आ रही गलतफहमियां दूर हो जाती है , फलतः पूर्वाग्रह में कमी आ जाती है ।

इस प्रकार विवरण से स्पष्ट है कि पूर्वाग्रह कम करने के लिये समाज मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों ने सराहनीय उपायों को बढाया है । इनके आधार पर पूर्वाग्रह को कम कर सकते है ।

5.20 पूर्वाग्रह की माप

चूकि पूर्वाग्रह मूलतः एक तरह की नकारात्मक मनोवृत्ति है , अतः उसे मापने के लिये उन तमाम विधियों का प्रयोग किया जा सकता है जिसके सहारे मनोवृत्ति को मापा जाता है । इसके लिये थर्स्टन विधि , लिकर्ट विधि ,

गटमैन विधि , बोगार्टस विधि तथा अन्य विधियों द्वारा भी पूर्वाग्रह की माप कर सकते है , परन्तु आम समाज वैज्ञानिकों का मानना है कि इन विधियों के प्रयोग से पूर्वाग्रह की यथोचित एवं वैज्ञानिक माप नहीं की जा सकती है । इसका कारण यह है कि प्रायः व्यक्ति अपनी पूर्वाग्रह या नकारात्मक मनोवृत्ति को सीधे आसानी से व्यक्त नहीं करता है । फलस्वरूप समाज मनोवैज्ञानिकों ने पूर्वाग्रह को मापने के लिये कुछ विशेष प्रविधियों का वर्णन किया है जो इस प्रकार है –

(1) अशाब्दिक व्यवहारक माप – पूर्वाग्रह के लक्ष्य व्यक्ति के साथ जब कोई पूर्वाग्रही व्यक्ति अंतःक्रिया करता है तो कुछ अशाब्दिक व्यवहार जैसे खास ढंग से चेहरा बनाना , हाथ की अंगुलियों व कंधों की भाव भंगिमा बनाना आदि जिसके आधार पर हम उसकी पूर्वाग्रह के बारे में अंदाज लगा सकते है । इन अशाब्दिक मापों से हमें जो पूर्वाग्रह के बारे में पता चलता है वह व्यक्ति द्वारा लिखित या मौखिक सूचनाओं की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होता है । इसका कारण यह है कि अशाब्दिक व्यवहार को व्यक्ति छुपा नहीं सकता है ।

(2) अन्य व्यवहारों के आधार पर – कुछ मनोवैज्ञानिकों ने बतलाया है कि पूर्वाग्रह की माप अशाब्दिक व्यवहारों के अलावा कुछ अन्य तरह के व्यवहार जैसे विभेदी मदद तथा आक्रमणकारी व्यवहार से भी होता है ।

(3) आत्म – प्रतिवेदन विधियां – मनोवृत्ति को मापने के समान पूर्वाग्रह को मापने के लिये आत्म प्रतिवेदन की कई विधियों का प्रयोग किया जाता है । इसके अर्न्तगत लिकर्ट का संकलित रेंटिग थर्स्टन की समदृष्टि अंतराल विधि गटमैन तथा स्केलोग्राम विश्लेषण तथा आसगुड एवं उनके सहयोगियों का शब्दार्थ विभेदक विशेष रूप से लिकर्ट का संकलित रेटिग का प्रयोग तुलनात्मक रूप से अधिक होता है । पूर्वाग्रह को मापने में आत्म – प्रतिवेदन की ये सारी विधियां उन सभी समस्याओं से ग्रसित होती है जिन समस्याओं से मनोवृत्ति का मापन ग्रसित होता है ।

(4) दैहिक प्रतिक्रियायें – कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अपने अपने अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया है कि पूर्वाग्रह को मापने के लिये अनेक प्रकार के दैहिक माप जैसे ह्दय गति में परिवर्तन , पुतलियों का फैलाव , गैल्वनी त्वक अनुक्रियां का उपयोग किया जा सकता है । इन दैहिक प्रतिक्रियाओं का विशेष गुण होता है कि इसके द्वारा पूर्वाग्रह की अभिव्यक्ति करने में व्यक्ति चाह कर भी किसी प्रकार का दमन नहीं कर पाता है । फलस्वरूप इसके आधार पर पूर्वाग्रह की माप स्पष्ट ढग से हो जाती है । इस विधि में कठिनाइ यह

है कि इन प्रतिक्रियाओं का अभिलेखन में विशेष कुशलता की जरूरत होती है ।

स्पष्ट है कि पूर्वाग्रह की माप हम मनोवृत्ति के समान करने में समर्थ है । हालाकि पूर्वाग्रह की सही सही माप मनोवृत्ति की माप की अपेक्षा अधिक कठिन है क्योंकि कई लोग अपनी पूर्वग्रस्तता को खुलकर व्यक्त नहीं करना चाहते है ।

5.21 पूर्वाग्रह का प्रभाव

पूर्वाग्रह एक ऐसी मनोवृत्ति है जो स्वीकारात्मक भी होती है तथा नकारात्मक भी होती है परन्तु अधिकतर मनोवैज्ञानिकों ने इसमें नकारात्मक प्रवृत्ति की प्रधानता को ही स्वीकार किया है । इसलिये इन लोगों ने नकारात्मक मनोवृत्ति को ही पूर्वाग्रह मान लिया है । जैसे किसी चीज के दो पक्ष होते है उसी ढंग से पूर्वाग्रह के भी दो पक्ष है । दूसरे शब्दों में पूर्वाग्रह के धनात्मक या लाभकर प्रभाव तथा नकारात्मक या हानिकारक प्रभाव दोनों ही होते है ।

इसके प्रमुख धनात्मक प्रभाव इस प्रकार है –

(1) पूर्वाग्रह द्वारा व्यक्ति की दमित इच्छाओं की संतुष्टि होती है ।

(2) पूर्वाग्रह द्वारा समाज के लाभान्वित समूह को अपनी निराशा तथा कुंठा को दूर करने में सहायता मिलती है । प्रायः ऐसे समूह के सदस्य निर्बल समूह या अलाभान्वित समूह के सदस्यों पर आक्रमणकारी व्यवहार कर अपने अंदर की निराशा व कुंठा को दूर करते है ।

(3) पूर्वाग्रह से संबल समूह के सदस्यों में श्रेष्ठता की भावना उत्पन्न होती है तथा प्रतिष्ठा आवश्यक की संतुष्टि होती है ।

(4) पूर्वाग्रह में संबल समूह के सदस्यों में एक दूसरे के प्रति स्वीकारात्मक मनोवृत्ति होती है परन्तु अलभान्वित समूह के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति होती है । इसका एक लाभ यह होता है कि समूह के सदस्यों में भाई चारा उत्पन्न होता है ।

पूर्वाग्रह से आर्थिक लाभ होता है ।

पूर्वाग्रह के नकारात्मक पक्ष –

(1) पूर्वाग्रह से सामाजिक संघर्ष में वृद्धि होती है । पूर्वाग्रह के कारण ही भिन्न भिन्न जाति , धर्म के लोग एक दूसरे को नफरत से देखते है । इसका एक परिणाम यह होता है कि ये नफरत इतनी बढ जाती है कि दंगे का रूप ले लेता है ।

(2) पूर्वाग्रह से सामाजिक विघटन होता है । भिन्न भिन्न तरह के पूर्वाग्रहों जैसे जातीय , सांप्रदायिक पूर्वाग्रह , धर्म से संबंधित पूर्वाग्रह के कारण समाज उत्तरोत्तर खंडित होता चला जाता है और प्रत्येक खंड में सामाजिक दूरी बढती जाती है । इससे कभी कभी गृह युद्ध की संभावना बढ जाती है ।

(3) पूर्वाग्रह से राष्ट्रीय समकलन के मार्ग में काफी कठिनाई होती है । विभिन्न तरह के पूर्वाग्रहों के कारण विभिन्न संप्रदाय के लोग आपस में घनिष्ठ संबंध स्थापित नहीं कर पाते है । फलतः राष्ट्रीय अखंडता के अंर्तगत चलायी गयी परियोजनायें सफल नहीं हो पाती ।

(4) पूर्वाग्रह के कारण समाज एवं समाज सेवी संस्थाओं द्वारा चलाये गये मानव कल्याण प्रोग्राम अभी तक अपने लक्ष्य तक नहीं पहुच पाये है ।

इस प्रकार पूर्वाग्रह के स्वीकारात्मक प्रभाव तथा नकारात्मक प्रभाव दोनों ही होते है परन्तु इनका नकारात्मक प्रभाव स्वीकारात्मक प्रभाव अधिक है । अतः इसे सही तरीके से रोकना अनिवार्य है ।

5.22 सारांश

सामाजिक प्रत्यक्षण एक व्यापक शब्द है । इसका प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है । पहले अर्थ में अभी व्यक्तिगत एवं सामाजिक कारणों का अध्ययन किया जाता है जिससे व्यक्ति का प्रत्यक्षण प्रभावित होता । दूसरे अर्थ में ,सामाजिक प्रत्यक्षण में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि प्रत्यक्षणकर्ता किस तरह दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के बारे में एक खास विचार या राय बनाता है । इस प्रक्रिया को प्रत्यक्षण कहा जाता है ।

सामाजिक प्रत्यक्षण का दूसरा महत्वपूर्ण भाग व्यक्ति प्रत्यक्षण है । जब हम किसी दूसरे व्यक्ति के संपर्क में आते है तो उसके बारे में एक छवि बनाते है । इस प्रक्रिया को छवि निर्माण या व्यक्ति प्रत्यक्षण कहा जाता है ।

पूर्वाग्रह एक प्रकार की मनोवृत्ति है जो तथ्यों पर आधारित नहीं होती है । पूर्वाग्रह अधिकतर नकारात्मक मनोवृत्ति ही होती है । पूर्वाग्रह में मनोवृत्ति के तीनों संघटक अर्थात संज्ञानात्मक , भावात्मक तथा व्यवहारात्मक तीनों पाये जाते है ।

5.23 शब्दावली

प्रत्यक्षीकरण – प्रत्यक्षीकरण एक ज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है । प्रत्यक्षीकरण का अर्थ वह मध्यवर्ती चर है जो संवेदी उत्तेजना तथा परिणामी संवेदना के बीच घटित होता है ।

सामाजिक प्रत्यक्षीकरण – सामाजिक प्रत्यक्षीकरण का तात्पर्य दूसरे व्यक्ति के ऐसे व्यवहार की चेतना से है , जिससे उसकी मनोवृत्तियों , प्रवृत्तियों तथा नियमों की अभिव्यक्ति होती है ।

व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण – व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के संबंध में कोई धारणा बनाता है या निर्णय करता है ।

प्रत्यक्षणात्मक रक्षा – प्रत्यक्षीकरण रक्षा का अर्थ वह प्रक्रिया है जिसके कारण व्यक्ति को किसी उपस्थित वस्तु की चेतना नहीं हो पाता है । प्रायः व्यक्ति ऐसी उपस्थित वस्तु जो प्रत्यक्षीकरण नहीं कर पाता है जो उसके लिये असहनीय होते है ।

प्रत्यक्षीकरण बलाघाट – वातावरण में उपस्थित कुछ वस्तुओं या व्यक्तियों जिनसे हमारे EGO को अधिक संतुष्टि मिलती है उनका प्रत्यक्षीकरण अधिक तेजी से होता है ।

अवचेतन प्रत्यक्षीकरण – अवचेतन प्रत्यक्षीकरण का तात्पर्य चेतन रूप से बोधगम्य नहीं होने वाली उत्तेजनाओं द्वारा प्रभावित होने वाली अवस्था से है ।

पूर्वाग्रह – समाज मनोविज्ञान में पूर्वाग्रह का तात्पर्य एक व्यक्ति के ऐसे निर्णय से है , जो एक सामाजिक समूह में दूसरे व्यक्ति की सदस्यता पर निर्भद करता है ।

5.24 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) व्यक्ति वातावरण में उपस्थित उन वस्तुओं का प्रत्यक्षण अधिक तेजी से या अधिक बल के साथ करता है , जिससे उसे अधिक संतुष्टि मिलती है इस प्रक्रिया को कहते है –

(क) प्रत्यक्षणात्मक रक्षा

(ख)प्रत्यक्षणात्मक बलाघाट

(ग) अवचेतन प्रत्यक्षण

(घ) इनमें से कोई नहीं

(2) किस प्रक्रिया के द्वारा वर्जित या संवेगात्मक शब्दों की पहचान देहली तटस्थ शब्दों की पहचान देहली से अधिक होती है , का ज्ञान होता है

(क)प्रत्यक्षणात्मक रक्षा

(ख) प्रत्यक्षणात्मक बलाधान

(ग) अवचेतन प्रत्यक्षण

(घ) इनमें से कोई नही

(3) एक मनोवृत्ति है , जो व्यक्ति को किसी समूह या व्यक्ति के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल ढग से सोचने , प्रत्यक्षण करने के लिये पहले से ही तत्पर बना देती है ।

(4)पूर्वाग्रह का संबंध वास्तविकता से नहीं होता है ।(सत्य / असत्य)

5.25 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

पूर्वाग्रह की एक उपयुक्त परिभाषायें तथा इसके प्रमुख गुणों की विवेचना करें ।

पूर्वाग्रह के विकास के कारणों को बताइये ।

व्यक्ति प्रत्यक्षण क्या है ? धारणा निर्माण में सूचना संसाधन के महत्व का वर्णन करें ।

प्रत्यक्षणात्मक बलाघात से क्या समझते है ? आप किस तरह से इसका मूल्यांकन एवं व्याख्या करेंगे ।

5.26 संदर्भ ग्रंथ सूची

अरूण कुमार सिह (2009) सामाजिक प्रत्यक्षण , व्यक्ति प्रत्यक्षण , आत्म प्रत्यक्षण तथा सामाजिक संज्ञान , समाल मनोविज्ञान की रूपरेखा ; मोतीलाल बनारसी दास

अरूण कुमार सिह (2003) पूर्वाग्रह ,विभेद तथा सांप्रदायिकता , समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, 203–232 मोतीलाल बनारसी दास

Baron, R.A. , & Branschomber, N.R. (2015).Social Perception, Social Psychology. Pearson Publication.

Baron, R.A. , & Branschomber, N.R. (2015).The Causes , Effects and Causes of Stereotyping , Prejudice and Discrimination. Pearson Publication.

इकाई- 6

मानव व्यवहार : अवधारणा, निर्धारक तत्व एवं सिद्धांत

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 मानव व्यवहार का अर्थ

6.3.1 अवस्था एवं मानव व्यवहार

6.3.2 मानव व्यवहार के प्रकार

6.3.3 सामान्य एवं असामान्य मानव व्यवहार में अंतर

6.4 मानव व्यवहार के निर्धारक तत्व

6.5. मानव व्यवहार के आधारभूत सिद्धांत

6.6. व्यवहारवाद एवं उत्तर व्यवहारवाद

6.7. समाजशास्त्र में मानव व्यवहार की व्याख्या

6.8. सारांश

6.9. बोध प्रश्न के उत्तर

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.11. सहायक उपयोगी पाठ्य सामाग्री

6.12. निबंधात्मक प्रश्न

6.1 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात

1– मानव व्यवहार के अर्थ को समझ पायेगें।

2– सामान्य एवं असमान्य व्यवहार में अन्तर को समझेगें।

3.– मानव व्यवहार को निर्धारित करने वाले तत्वों को जानेगें।

4– मानव व्यवहार के आधारभूत सिद्धांत को बता सकेगें।

5– मानव व्यवहार सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों को जान पायेगें।

6– मानव व्यवहार से सम्बन्धित समाजशास्त्रीय सिद्धातों का विश्लेषण कर सकेगें।

6.2 प्रस्तावना–

मानव व्यवहार सामाजिक मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण विषय वस्तु है जिसका अध्ययन विविध मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों के द्वारा किया जाता रहा है। मानव व्यवहार पूर्णतः स्थायी नहीं होता है, यह देश काल परिस्थिति के अनुरूप बदलता रहता है। मानव व्यवहार एक प्रेक्षणीय तत्व है, जो व्यक्ति के भावात्मक दशाओं एवं क्रिया कलापों के समूह को कहा जाता है। समाज में किसी व्यक्ति का व्यवहार दूसरे व्यक्ति के व्यवहार के पूर्णतः अनुरूप हो, यह द्रष्टव्य नहीं होता है। मानव व्यवहार के निर्धारण में आनुवंशिक विरासत के साथ–साथ वाह्य वातावरण का पूर्णतः प्रभाव पड़ता है। आनुवंशिकता के द्वारा यदि व्यक्ति की शारीरिक एवं आंतरिक संरचना निर्धारित होती है तो वातावरण, व्यक्ति के व्यवहार को दिशा प्रदान करता है। व्यक्ति वातावरण से लेकर वृद्धावस्था तक सीखता है, परन्तु उसके व्यवहार पर बाल्यावस्था से किशोरावस्था के उम्र का ज्यादा प्रभाव पड़ता है। समाज के विभिन्न अवयव परिवार, पड़ोस, क्रीड़ा स्थली, विद्यालय तथा अन्य औपचारिक एवं अनौपचारिक संस्थाओं का पूर्णतः प्रभाव पड़ता है। परिवार, सामाजीकरण की प्राथमिक पाठशाला मानी जाती है जहॉ पर व्यक्ति पैदा होने के बाद से लेकर विद्यालय जाने के पूर्व तक माता–पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों से बालक सीखता है। वह अपने भविष्य को ध्यान में रखते हुए पठन–पाठन एवं पूर्व के व्यवहार में परिमार्जन का कार्य करता है, मित्रों के साथ वह बहुत ही सहजता के साथ सीखता है तथा इसका स्थायी प्रभाव व्यवहार पर पड़ता है। व्यवहार के माध्यम से मानव अन्य व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है तथा इसके प्रकृति के आधार पर किसी को अच्छा या बुरा कहा जाता है। मानव व्यवहार परिवर्तन में कई ऐसी परिस्थितियां भी जिम्मेदार होती है जहॉ पर वह कोई नई चीज सीखता है।

व्यवहार की प्रकृति कैसी है,तथा किन परिस्थितियों से प्रभावित है, माता–पिता एवं उसके नजदीकी कैसे है, यह व्यवहार के माध्यम से ही पता चलता है व्यवहार को वृहद रूप से देखा जाता है इसीलिए इसके अन्तर्गत व्यक्ति द्वारा सम्पन्न कार्य ही नहीं आते है,बल्कि सोच, बोलचाल तथा अन्य तत्व भी शामिल होते हैं जिससे समाज का कोई भी व्यक्ति प्रभावित होता है। समाज का विनिर्माण सामाजिक अतः क्रियाओं के माध्यम से होता है और सामाजिक अंतःक्रियाएं व्यक्ति के व्यवहार के माध्यम से संभव होती है। मनोसामाजिक प्रकरण होने के कारण मनौवैज्ञानिकों के द्वारा इस पर कई शोध किये गये लेकिन वस्तुतः व्यवहार को किसी एक सिद्धांत सीमा में रख पाना असंभव सा दिखता है, अतैव मानव व्यवहार को अद्‌भुत कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

6.3 मानव व्यवहार का अर्थ

मानव व्यवहार किसी व्यक्ति के विभिन्न दशाओं में भौतिक क्रिया कलापों एवं प्रेक्षणीय भावात्मक दशाओं के समूह को कहते है। यह मानव जाति के विविध व्यवहारों के लिए सामूहिक रूप से प्रयुक्त शब्दावली है। मानव व्यवहार अलग–अलग परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित होता है परन्तु कुछ मूलभूत परिस्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं होता है। मानव व्यवहार कई तत्वों से प्रभावित होता है इसमें संस्कृति समाज, पारिवारिक वातावरण एवं चारों ओर घटित होने वाली घटनाएं प्रमुख है। व्यक्ति के व्यवहार के निर्धारण में आनुवंशिकता तथा वातावरण दोनों का महत्व होता है। व्यक्तित्व के निर्धारण में आनुवंशिकता तथा वातावरण की अंतःक्रिया दोनों का महत्व होता है। मनोवैज्ञानिकों के द्वारा मानव व्यवहार हेतु कई अध्ययन एवं प्रयोग किये गये। व्यक्ति के लिए आनुवंशिकता एक जैविक चारदीवारी के भीतर व्यक्ति के भिन्न–भिन्न शील गुणों का निर्माण होता है। मानव व्यवहार के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिकों द्वारा एकाकी जुड़वा बच्चे, विशिष्ट व्यवहार का अध्ययन, व्यवहार के विकास में परिपक्वता तथा

सीख का महत्व, पर्यावरणीय वंचन एवं पर्यावरण सम्पन्नीकरण आदि का अध्ययन किया गया और इनके आधार पर निष्कर्ष प्रतिपादित किये।

गेसेल्ल एवं थॉम्पसन ने दो जुड़वा बहनों का अध्ययन किया। 14 साल एक ही वातावरण में रखने पश्चात उनके व्यवहारों का अध्ययन किया गया तो दोनों में काफी समरूपता पायी गयी। न्यूमैन, फ्रीमैन, हाल जिंगर ने एक अध्ययन किया इसके अंतर्गत एकाकी जुड़वा बच्चों में मात्र कुछ ही भिन्नता दिखायी दिया। जुडवां बच्चों अपेक्षा वे बच्चे जो एक वातावरण में थे किन्तु जुड़वा नहीं थे, उनके व्यवहार में, काफी भिन्नता पायी गयी। इससे पता चलता है कि व्यक्तित्व के कुछ गुणों में आनुवंशिकता का अधिक योगदान रहता है तो कुछ में वातावरण का अधिक योगदान होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्ति के निर्धारण में आनुवंशिकता तथा वातावरण दोनों का योगदान रहता है और यह दोनों की अंतःक्रिया द्वारा निर्धारित होती है। ऐसे बच्चे जिनका प्रारम्भिक अवस्था में बच्चों के देख–रेख करने वाली संस्थानों में पालन पोषण हुआ, वे उन बच्चों से जिसका पालन पोषण घर पर हुआ उनकी अपेक्षा देरी से तथा मंदित होते है ।

6.3.1 अवस्था एवं मानव व्यवहार

1. बाल्यावस्था में मानव व्यवहार–बाल्यावस्था 2 वर्ष से 6 वर्ष तक की मानी जाती है। इस अवस्था में बालक का शारीरिक विकास, भाषा विकास प्रत्यक्षणात्मक एवं संज्ञानात्मक विकास, बौद्धिक, सामाजिक, सर्वांगिण विकास होंते है। इस अवस्था की विशेषताए बिन्दुवार निम्न है–

(क) इस अवस्था में बच्चों में विशिष्ट व्यवहार विकसित होते हैं। बच्चे इस अवस्था में झक्की, जिद्दी, विरोधात्मक, स्वतंत्र कार्य करने पर बल देते है इसीलिए माता–पिता के लिए समस्या के केन्द्र बिन्दु होते है।

(ख) इस अवस्था में उत्सुकता, एवं प्रेक्षण की प्रवृत्ति अत्यधिक पायी जाती है। बालक इर्द–गिर्द की वस्तुओं को जानने की कोशिश करते है।

(ग) बच्चों में अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। वे गुड्डी–गुड्डा, राजा–रानी इत्यादि का खेल खेलते हैं, जिससे व्यक्तित्व का, स्व का उनमें विकास होता है

(घ) इनकी खिलौने में रुचि पायी जाती है तथा खेलने में अभिरुचि होती है तथा किसी बात पर या हल्की चोट पर तेज रोने की प्रवृत्ति होती है।

2. उत्तर बाल्यावस्था में मानव व्यवहार– उत्तर बाल्यावस्था बालिकाओं में 6 वर्ष से प्रारम्भ होकर 10 वर्ष तक तथा बालकों में 6 वर्ष से प्रारम्भ होकर 12 वर्ष तक मानी जाती है। माता पिता इस अवस्था को उत्पाती अवस्था, शिक्षक प्रारम्भिक स्कूल अवस्था तथा मनोवैज्ञानिक टोली अवस्था कहते हैं इस अवस्था में व्यवहार सम्बधी विशेषताऍं निम्नवत है–

(क) इस अवस्था में बालक व्यक्तिगत आदतों के प्रति लापरवाह होते है जिस कारण माता, पिता शिक्षक दोनों परेशान रहते है।

(ख) इस अवस्था में लड़ाई–झगड़े की प्रवृत्ति आ जाती है। जिन जिन परिवारों में भाई–बहन की संख्या अधिक होती है, वे छोटी–छोटी बातों पर आरोप का पत्यारोपण करते है।

(ग) इस अवस्था को नाजुक अवस्था (Critical Stage) कहा जाता है। बच्चों में उच्च उपलब्धि प्रेरणा, निम्न उपलब्धि प्रेरणा, माध्यम उपलब्धि प्रेरणा की आदत इसी उम्र में पड़ती है। इसी अवस्था से बालक पाठ्यक्रम से सम्बन्ध कौशल तथा पाठ्येतर कौशल से, भविष्य की नीव डालते हैं। इस अवस्था में बालक मौलिक कौशल विकसित करता है।

(3) किषोरावस्था में मानव व्यवहार– किशोरावस्था को अति महत्तपूर्ण अवस्था माना जाता है। किशोरावस्था 13 वर्ष से प्रारम्भ होकर 19–20 वर्ष तक, ज्यादातर विद्वानों द्वारा मानी गयी है। इस प्रकार प्राक्किशोरावस्था प्रारंभिक किशोरावस्था तथा उत्तर किशोरावस्था तीनों ही इसमें सम्मिलित हो जाते हैं। किशोरावस्था में शारीरिक विकास, मानसिक विकास, संवेगात्मक विकास, संज्ञानात्मक विकास सभी शामिल होते हैं। व्यवहार के अस्थिरता के कारण इसे संघर्ष तनाव, तूफान की अवस्था के नाम से जाना जाता है।

1. किशोरावस्था में व्यक्ति का व्यवहार अस्थिर होता है। उसके मनोभाव लगातार बदलते रहते है। वह अपने आप को बच्चों से अलग करता है परन्तु प्रौढ़ अपनी मण्डली में उसको शामिल नहीं करते है। इस प्रकार उसकी वैयक्तिक स्थिति अस्पष्ट होती है तथा भूमिका में ंभ्रान्ति की स्थिति होती है।

2. इस अवस्था में किशोर समस्याग्रस्त होते हैं, इसका प्रमुख कारण इनकी शारीरिक बनावट में परिवर्तन होना है परन्तु इससे वे पूर्ण परिचित नहीं होते है। इस प्रकार की समस्याओं को वे अपने माता–पिता से या संरक्षक से चर्चा नहीं करते है।

3. इस अवस्था में विपरीत लिंग के आकर्षक व्यवहार में दिखाई देता है। विपरीत लिंग के लोगों के बारे में सुनना, मिलना पसंद करते है। इस अवस्था में विपरीत लिंग के व्यक्तियों एवं समलिंग व्यक्तियों को सही संदर्भ में परखते है जिससे उनमें सामाजिक सूझ विकसित होती है और सामाजिक समायोजन में मदद मिलती है। इस अवस्था में किशोर स्वतंत्र होकर काम करना चाहते है जिससे माता पिता से संघर्ष एवं विरोध का भी सामना करना पड़ता है।

4. किशोरावस्था से ही संज्ञानात्मक विकास होता है और निगमनात्मक चिन्तन का भी विकास होता है। किशोरों में किसी भी समस्या के तार्किक सोच की प्रणाली का विकास होता है तथा वे अन्तिम वैज्ञानिक निष्कर्ष तक पहॅुचना चाहते है।

5. किशोरावस्था में किशोरों के व्यवहार में अपनी विशिष्ट पदवी बनाये रखने का प्रयास या प्रवृत्ति पायी जाती है। वह अपने समूह में एक स्थान बनाना चाहता है। इसी प्रवृत्ति के कारण किशोर कुछ इस प्रकार का व्यवहार करते हैं, जो अनोखा होता है, समाज के लिए विशिष्ट होता है , अर्थात् इसे अहम विशिष्टता की समस्या कहा जाता है।

6. किशोरावस्था में मूल यौन गुणों का विकास तथा यौनांगों में परिपक्वता पायी जाती है। लड़कियों में स्तनवृद्धि, यौनांगो का विकास, आवाज में मधुरता, दिखाई देती है जबकि लड़कों में दाढ़ी –मॅूछ का आना आवाज का भारी होना आदि दृष्टिगत होते हैं। कई ग्रंथियों का भी विकास इस अवस्था में होता है।

(4) <u>वयस्क व्यक्ति एवं व्यवहार</u>

वयस्कावस्था में व्यक्ति समाज का जिम्मेदार प्राणी के रूप में जीवन यापन करता है। उसके ऊपर कई कर्तव्य के बोझ पड़ता हैं। नैतिकता, आदर्श, मूल्यों के अनुरूप वह भली प्रकार व्यवहार करने की चेष्ठा करता है क्योंकि किशोरावस्था बीतने के बाद समाज उससे परिपक्व व्यवहार की अपेक्षा भी करता है। कर्तव्यों के बोझ होने के कारण व्यक्ति पूर्णतः सामंजस्य बनाना सीख लेता है। व्यक्ति का व्यवहार उत्तरदायित्व पूर्ण हो जाता है।

भारतीय संस्कृति के अनुसार बुजर्ग **(सठियावस्था)** व्यक्ति को अत्यधिक अनुभवी माना जाता है तथा समाज के द्वारा उसका सम्मान किया जाता है, इस उम्र में व्यक्ति में भूलने की प्रवृत्ति आ जाती है तथा क्रोध में अभिवृद्धि होती है। इस अवस्था में प्रकृति तथा परिस्थितियों के अनुरूप सामांजस्य की प्रकृति में कमी आ जाती है। शारीरिक शक्ति का धीरे–धीरे ह्रास होना शुरू हो जाता है, इस प्रकार अवस्था के अनुरूप मानव व्यवहार में भी अन्तर आ जाता है।

मानव व्यवहार पर अंतःस्रावी ग्रंथिया,–न्यूरोन,तंत्रिका,आवेग सूत्र, युग्मन, न्यूरोट्रांसमीटर, तंत्रिका तंत्र, मस्तिष्क स्तंभ, अग्र मस्तिष्क,पश्च मस्तिष्क, मध्य मस्तिष्क आदि का प्रभाव मानव व्यवहार पर पड़ता है। मानव शरीर के ये तत्व मानव व्यवहार को प्रभावित करते है।

6.3.2 <u>मानव व्यवहार के प्रकार</u>– मानव व्यवहार को प्रमुखतया दो भागों में बॅाटा जाता है– **1–सामान्य व्यवहार 2– असामान्य व्यवहार**

1– सामान्य व्यवहार <u>(Normal Behaviour)</u> नार्मल शब्द लैटिन के नार्मा (Norm) से बना है। जिसका अर्थ बड़ई के स्केल से लिया जाता था। जिस प्रकार बड़ई अपने स्केल से यह निश्चित करता है कि यह मानक के अनुरूप है या नहीं। उस प्रकार से यह देखने का प्रयास किया जाता है कि यह मानक के अनुरूप ठीक है या नहीं। समाज में सामान्य क्या है इसका कोई आजतक सार्वभौमिक मानक नहीं है। क्योंकि कोई व्यवहार कहीं सामान्य माना जाता है, वो दूसरे समाज में असामान्य भी हो सकता है।

Ab उपसर्ग जोड़ने के बाद Normal शब्द Abnormal कहलाता है। जिसका अर्थ असामान्य होता है। असामान्य से आशय उन व्यवहार से है, जो सामान्य से परे है।

बोरलो डुरण्ड के अनुसार ''सामान्य व्यवहार व्यक्ति के भीतर मनोंवैज्ञानिक प्रक्रिया की स्थिति होती है, जो कार्यों में व्यय तथा हानि से साहचर्यित होता है। यह ऐसी अनुक्रिया होती है जो प्रतिनिधिक या सांस्कृकि रूप से प्रत्याशित होती है। निम्न कसौटी के आधार पर असमान्य व्यवहार को देख सकते है।

(1) **सांख्यिकीय अबारंबारता की कसौटी**– उन सभी व्यवहार को असामान्य माना जाता है जो सांख्यिकीय रूप से औसत से ज्यादा विचलित होते है। और सामान्य व्यवहार में नहीं आते है। जैसे बुद्धि मापन के अंतर्गत सामान्य बुद्धि लब्धि से किसी व्यक्ति के बुद्धि लब्धता का काफी विचलित होना इस कसौटी का कोई वॅाछित मूल्य नहीं है।

(2) **मानक अतिक्रमण की कसौटी**– हर समाज का एक मानक होता है कि उसे उस समाज में क्या करना चाहिये या क्या नहीं करना चाहिये। यदि समाज के सदस्य का व्यवहार मानक के अनुरूप होता है तो वह सामान्य माना जाता है तथा यदि नहीं होता है तो असामान्य। इसका कोई एक मापदण्ड नहीं है। कोई व्यवहार एक समाज में सामान्य तथा दूसरे में असामान्य हो सकता है

(3) **व्यक्तिगत व्यथा**—यदि व्यक्ति का व्यवहार ऐसा होता है, जिससे उसमें अधिक तकलीफ तथा यातना उत्पन्न होती है, असामान्य व्यक्ति की श्रेणी में आता है। विकृति विषय से ग्रस्त व्यक्ति को अधिक यातना सहनी पड़ती है। परन्तु मनोविकारी लोग तरह—तरह के समाज विरोधी कार्य करते है, परन्तु उनमें कोई चिन्ता नहीं पायी जाती है

6.3.3 सामान्य एवं असमान्य मानव व्यवहार में अंतर

सामान्य एवं आसामान्य व्यवहार में मात्रात्मक एवं गुणात्मक अन्तर पाया जाता है। दोनों व्यवहारों में ज्यादातर अंतर मात्रात्मक रूप से ही पाया जाता है। सामान्य व्यवहार एवं असमान्य व्यवहार में अन्तर प्रमुखतया निम्नांकित है—

1. सांवेगिक परिपक्वता— सामान्य व्यक्ति के अंदर क्रोध, प्रेम, घृणा, एवं अन्य सामाजिक भाव समयानुकूल होते है तथा सांवेगिक रूप से इसमें धैर्य का भाव प्रमुख रूप से दिखाई देता है। असमान्य व्यक्ति के क्रोध एवं घृणा की स्थिति स्पष्ट नहीं होती है कि कब वह करेगा तथा अन्य सांवेगिक क्रियाएं जो सामान्य व्यवहार से पूर्णतः भिन्न होती है।

2. सामाजिक समायोजन— संतुलित व्यक्ति का पड़ोसियों, सहयोगियों तथा आस—पास के व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध अच्छे होते है। वह रीति रिवाज नियम प्रणालियों का आदर करता है परन्तु असामान्य व्यक्ति इसके साथ सामंजस्य नहीं बना पाता उसमें सहयोग एवं मिलकर रहने की भावना का अभाव होता है।

3. सूझपूर्ण व्यवहार— सामान्य व्यक्ति को हमेशा इस बात का ज्ञान होता है कि वह जो कार्य कर रहा है उसे किस परिस्थिति में करना चाहिए, क्या उसके द्वारा किये गये व्यवहार नैतिक एवं सही है या नहीं, परन्तु असामान्य व्यक्ति के अन्दर अनैतिक व नैतिक का पूर्ण ज्ञान नहीं होता कि उसे किस परिस्थिति में क्या करना चाहिए, असामान्य व्यक्ति के अन्दर हमेशा अनिर्णायकता की स्थिति बनी होती है।

4. विचित्र व ऊ\टपटांग व्यवहार— सामान्य व्यक्ति के द्वारा किये गये व्यवहार में स्पष्टता, नियमितता, यथार्थता आदि पायी जाती है। वह विवेकी, तार्किक एवं प्रासंगिक होता है परन्तु असामान्य व्यक्ति के द्वारा किया गया व्यवहार असमन्वित तथा बिना सिर पैर के होता है। इनका व्यवहार बेतुका एवं ऊ\टपटांग होता है।

5. वास्तविकता का ज्ञान— सामान्य व्यक्ति को हमेशा किसी परिस्थिति में क्या करना उचित है या क्या करना अनुचित है, इसका ज्ञान होता है, वह काल्पनिकता से दूर सच्चाई में जीता है परन्तु असामान्य व्यक्ति अधिक काल्पनिक एवं भ्रम की स्थिति में अत्यधिक जीता है। इनको सामाजिक आदर्श मानको का पूर्ण ज्ञान नहीं होता है।

6. अपनी देखभाल— सामान्य व्यक्ति अपनी देखभाल एवं सुरक्षा के लिए पर्याप्त होता है। इसका व्यक्तित्व संतुलित एवं स्वस्थ होता है। उसके द्वारा कोई ऐसा कार्य नहीं किया जाता है, जिससे उसका अस्तित्व खतरे में पड़े। असामान्य व्यक्ति में इतनी कुशलता नहीं होंती है कि वह अपनी देखभाल कर सके । उसकी देखभाल का भार परिवार एवं समाज पर रहता है। असामान्य व्यक्तियों में गलतियों के प्रति दोष का भाव नहीं उत्पन्न होता है।

7. अप्रत्याषा की कसौटी– असामान्य व्यवहार पर्यावरणीय तनाव को उत्पन्न करने वाले उद्दीपक के प्रति एक अप्रत्याशित अनुक्रिया होता है जैसे व्यक्ति व्यर्थ ही अच्छे आर्थिक स्थिति के बावजूद धन की आकांक्षा करता है तो इसे असामान्य व्यवहार कहते है।

6.4 मानव व्यवहार के निर्धारक कारक –

मानवीय व्यवहार विभिन्न तत्वों के द्वारा प्रभावित होता है जिससे व्यवहार में भिन्नता पायी जाती है। संसार के किसी भी व्यक्ति का व्यवहार पूर्णतः दूसरे के साथ मेल नहीं खा सकता है या समान नहीं हो सकता है। व्यवहार पर आनुवंशिकता के साथ परिस्थितियों एवं वातावरण इत्यादि का प्रभाव पड़ता है। मानव व्यवहार को निर्धारित करने वाले प्रमुख कारक निम्नवत् है।

1. सृजनात्मकता (Creativity):– मानव एक क्रियाशील एवं सामाजिक प्राणी है जो कुछ न कुछ जैविक क्रियाएँ, अन्य सामाजिक क्रियाएँ करता रहता है। मनुष्य में मस्तिष्क होंने कारण सोचने, समझने एवं उसको कार्य रूप में करने की शक्ति पायी जाती है। अपने इसी शक्ति के कारण मनुष्य अन्य जीवों से भिन्न है तथा उसके द्वारा एक संस्कृति का निर्माण किया जा सका है। अपने सृजनात्मक शक्ति के कारक मानव संस्कृति लगातार आगे बढ़ रही है तथा समाज के अंतर्गत विभिन्न नियमों, जनरीतियों, प्रथाओं तथा अन्य का वह व्यवस्थित प्रकार से निर्माण कर सका है। ये प्रथाएँ, परम्पराएं जनरीतियाँ एवं नैतिकता इत्यादि मानव व्यवहार पर एक निश्चित प्रभाव डालते है तथा व्यक्ति का व्यवहार इसी के अनुरूप किया जाता है। सृजनात्मकता के ही द्वारा विभिन्न वैज्ञानिक अविष्कार होते हैं जिससे मानव सभ्यता का निर्माण होता है। इन प्रक्रियाओं के द्वारा मानव जीवन उन्नति के पंथ पर अग्रसर है।

2. समकालीन समाज– मानव के व्यवहार को निर्धारित करने में समकालीन समाज का बहुत बड़ा योगदान होता है। व्यक्ति जिस समाज में रहता है वहाँ की प्रथाएँ, परम्पराएँ, नियम, विधि–विधान इत्यादि व्यवहार को प्रभावित करते है। आनुवंशिक तत्वों के साथ–साथ समाज के विभिन्न अवयव जिसमें व्यक्ति रहता है, यह मानव व्यवहार को प्रभावित करता है।सामाजिक संरचना के निम्न तत्व व्यवहार को प्रभावित करते है–

i. परिवार– परिवार, व्यक्ति की प्रथम पाठशाला मानी जाती है। व्यक्ति चेतना आने के बाद सर्वप्रथम अपनी माता से सीखता है और इसके बाद पिता तथा परिवारजनों से, इसीलिए परिवार को सबसे पहली पाठशाला माना जाता है। परिवार की सीख, व्यक्ति के व्यवहार में आजीवन झलकती है। बालक सीख के दौरान माता के भाव भंगिमाओं और अन्य व्यवहार सम्बन्धी तत्वों को ग्रहण करता हैं। माता–पिता, भाई बहन तथा परिवार के अन्य सदस्यों के संपर्क से उसके व्यवहार का मूल तत्व निर्धारित होता है। माता–पिता के व्यवहार का जो प्रभाव बालक ग्रहण करता है वह आजीवन दिखाई देता है इसीलिए समाज वैज्ञानिकों के द्वारा मानव व्यवहार पर परिवार के प्रभाव को स्वीकारा गया है।

ii क्रीड़ा समूह एवं मित्र मण्डली– व्यक्ति के व्यवहार पर मित्रों का परिवार के बाद सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ता है, इसीलिए अच्छे मित्रों के चयन पर जोर दिया जाता है। बालक जब खेलने के योग्य हो जाता है तो अपने हम उम्र बच्चों के साथ खेलता है या बच्चों की तलाश खेलने हेतु करता है। बहुत सारी चीजें वह मित्रों के साथ रहकर सहजता के साथ सीखता है। खेल–खेल के दौरान वह प्रतियोगिता, प्रेम, झगड़ा, फटकार तथा अन्य सामाजिक अंतः क्रियाए करता है, ये उसके जीवन पर अमिट छाप छोड़ती है। मानव व्यवहार के निर्धारण में

क्रीडा समूह का या मित्रों के साथ अंतःक्रियाओं का काफी बुनियादी प्रभाव पड़ता है। इसीलिए युवागृहों की स्थापना जनजातीय समाज में की जाती थी ताकि वे अनौपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त कर सके।

iii. पड़ोस– व्यवहार को निर्धारित करने में पड़ोस महती भूमिका निभाते है इसीलिए समाज वैज्ञानिक सी.एच. कूले ने परिवार एवं मित्र मण्डली के अलावा पड़ोस को भी प्राथमिक समूह में शामिल किया है। ग्रामीण इलाकों के अंतर्गत गाँवों का आकार छोटा होने के कारण ग्रामीण समुदाय ही पड़ोस का रूप धारण कर लेता है परन्तु शहरों के अंतर्गत छोटे–छोटे मुहल्ले होते हैं तथा मुहल्लों में छोटे–छोटे समूह होते हैं, जिनकी अपनी उपसंस्कृति होती है। व्यक्ति घर से बाहर निकलने पर यहाँ पर अपनापन महसूस करता है। बुरे पड़ोसी के संपर्क में आने के फलस्वरूप व्यक्ति के व्यवहार के बुरे होने की सम्भावना होती है। व्यक्ति के व्यवहार का निर्धारण अपने आसपास की परिस्थितियों के माध्यम से भी होता है। इसीलिए लोग अच्छे पड़ोसी को ही पसंद करते हैं।

iv.. षिक्षालय– शिक्षा को व्यवहार परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति को देश, काल, परिस्थिति का ज्ञानार्जन होता है जिससे उसके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन आता है। विद्यालय के माध्यम से बच्चे का सामाजीकरण होता है तथा समाज संस्कृति के बारे में जानकारी भी मिलती है। आधुनिक युग में औपचारिक शिक्षा की महत्ता बढ़ रही है अतएव शिक्षा की महत्ता व्यवहार के दृष्टिकोण से भी बढ़ती जा रही है। शिक्षण संस्थानों में तीन अवयव दृष्टिगोचर होते है–

1. शिक्षक / शिक्षिकाएँ 2. सहपाठी 3. पुस्तकें

इनके माध्यम से विद्यालय का वातावरण निर्मित होता है। व्यक्ति को शिक्षा दो माध्यमों से प्राप्त होती है– **1. अनौपचारिक षिक्षा 2. औपचारिक षिक्षा।**

अनौपचारिक शिक्षा का माध्यम घर परिवार के उम्रदराज लोग होते है तथा औपचारिक शिक्षा का माध्यम विद्यालय होता है।

v.. संस्कृति– संस्कृति, मानव एवं पशु समाज के बीच विभेदीकरण का कार्य करती है। संस्कृति श्रेष्ठतम धरोहर है जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांरित होती रहती है। मानव व्यवहार संस्कृति से पूर्णतः प्रभावित होता रहता है। संस्कृति को समाजशास्त्रियों ने अपने–अपने तरीके से देखने का प्रयास किया है। राल्फ लिंटन ने संस्कृति को जीवन जीने की विधि माना जबकि हर्सकोविट्स ने **'पर्यावरण का मानव निर्मित भाग माना है'।** हाबेल ने, संस्कृति को सीखे गये व्यवहार प्रतिमान का कुल योग माना है जो समाज के सदस्यों की विशेषता है। टायलर ने संस्कृति को संपूर्ण जटिलता माना है जिसमें ज्ञान, विज्ञान, कला, नैतिकता तथा वे सभी क्षमताएँ व गुण सम्मिलित है जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करते है। संस्कृति अमूर्त होती है जिसे मानव सामाजीकरण के माध्यम से अपने अंदर धारण करता है। मानव व्यवहार समयानुसार बदलता रहता है, व्यक्तियों का सम्बन्ध भी वहाँ के संस्कृति के अनुरूप होने की आशा की जाती है।

3. परिस्थितियाँ– परिस्थितियाँ भी मानव व्यवहार के निर्धारक तत्वों में से एक है। मानव जीवन में होंने वाले विभिन्न प्रकार के अनुभव, वातावरण एवं परिस्थितियां भी मानव व्यवहार को प्रभावित करती हैं। व्यक्ति परिस्थितियों के अनुरूप अपने व्यवहार को बदलते रहते हैं और वातावरण के साथ सामंजस्य बनाते है। मानव

व्यवहार परिवर्तनशील है, किसी व्यक्ति विशेष के साथ लम्बे समय तक संपर्क भी व्यक्ति के व्यवहार को बदलता है।

4. प्रभावी वर्ष या समय– जीवन में कुछ समय ऐसे गुजरते है जिसमें घटने वाली घटनाओं का आजीवन प्रभाव पड़ता है। प्रभावी समय के अंतर्गत बाल्यावस्था से लेकर किशोरावस्था का समय आता है अर्थात् 4–5 वर्ष से लेकर 18–19 वर्ष तक का समय इस समय में विभिन्न संस्थाओं एवं परिस्थितियों के माध्यम से बालक सीखता है और इस समय सीखे गये व्यवहार का प्रभाव आजीवन उसके मस्तिष्क पर पड़ता है। मानव अपनी पूरी जिन्दगी सीखता ही रहता है परन्तु जीवन के प्रारम्भिक समय की सीख उसके जीवन व्यवहार पर ज्यादा परिलक्षित होती है। व्यक्ति के जीवन में कुछ विशिष्ट प्रकार की घटनाएं भी घटित होती है जिनकी अमिट प्रभाव व्यवहार पर पड़ता है।

5. आनुवंषिक विरासत– व्यक्ति का व्यवहार आनुवंशिकता के माध्यम से भी प्रभावित होता है। आनुवंशिकता के द्वारा व्यक्ति का व्यवहार एक निर्धारित दिशा में विकसित होता है जो माता पिता के आंतरिक गुणों से प्रभावित है। मानव शरीर का निर्माण कोशिकाओं के द्वारा है। कोशिका के केन्द्रक में छड़ी आकार की संरचना पायी जाती है जिसे गुणसूत्र की संज्ञा दी जाती है पुरूष के अंडग्रंथ से निकलने वाली शुक्राणु की कोशिका, स्त्री के डिम्बग्रंथि से निकलने वाली अण्डाणु की कोशिका से मिलते है तो गर्भधारण की प्रक्रिया होती है। महिला में 23 तथा पुरूष के 23 गुणसूत्र मिलाकर कुल 46 गुणसूत्र अर्थात 23 जोड़े गुणसूत्र का निर्माण होता है जिनमें 22 गुणसूत्र पुरूष एवं महिला के समान होता है तथा 23वॉ गुणसूत्र यौन गुणसूत्र होता है। पुरूष में x के साथ–साथ y गुणसूत्र तथा महिला में मात्र x गुणसूत्र पाया जाता है।

व्यवहार आनुवंशिकी शाखा का अभ्युदय मनोवैज्ञानिक के एक शाखा के रूप में हुआ, इस विषय के अंतर्गत व्यवहार पर आनुवंशिकता का पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है यह प्रयोग मानव तथा पशुओं पर भी किये गये। **उदाहरणार्थ–** फ्रांसिस गाल्टन ने अपनी पुस्तक **हेरेडिटी जिनियस** के अन्तर्गत अध्ययन में 997 मशहूर व्यक्तियों का अध्ययन किया, प्राप्त आंकड़ों के परिणाम में देखा गया कि कुशल व्यक्ति उन परिवार में अधिक पैदा हुए जिनके पहले ही पीढ़ियों में ऐसे लोग पैदा हो चुके थे। आनुवंशिक आधारों का अध्ययन, पिडिग्री चार्ट के विश्लेषण से होता है जिनमें एक ही परिवार की पीढ़ियों की शादी, बच्चे एवं योग्यता का विवरण समाहित होता है। सगोत्रता अध्ययन विधि के अंतर्गत **हेनरी गोडार्ड** ने 1912 में अतिमहत्वपूर्ण सगोत्र अध्ययन का प्रकाशन किया। मार्टीन कालीकाल एक क्रांतिकारी सैनिक था जिसका एक विवाह मंदबुद्धि लड़की से तथा दूसरा विवाह पढ़ी लिखी तलाकशुदा लड़की से हुआ। पहली शादी के कुल 480 वंशज हुए तथा दूसरी तलाकशुदा लड़की से 456 वंशज हुए। अध्ययन के दौरान ज्ञात हुआ कि पहली लड़की से मानसिक मंदता, अनैतिकता, मद्यपानता, अपराधिकता के गुण, दूसरे परिवार के वंशजों के अपेक्षा अधिक थी माना यह गया कि माता पिता के गुण जीन्स के कारण बच्चें में पाये जाते है जिससे आनुवंशिकता मानव व्यवहार के निर्धारण में महती भूमिका निभाता है।

सारांशतः मानव व्यवहार को निर्धारित करने में व्यक्ति की आनुवंशिक विरासत अर्थात माता–पिता के गुण एवं शारीरिक बनावट एवं अन्य आन्तरिक तत्वों के साथ–साथ व्यक्ति के अन्दर पायी जाने वाली सृजनात्मक शक्ति, समाज के विभिन्न अवयव जैसे– परिवार, मित्र मंडली, पड़ोस, शिक्षालय एवं परिस्थितियां आदि उत्तरदायी होते है।

बोध प्रश्न

1– मानव व्यवहार के बोध प्रष्न

(1) व्यक्ति पर सबसे ज्यादा प्रभाव किस संस्था का पड़ता है?

(2) कौन सी अवस्था संघर्ष ,तनाव एवं तूफान की कही जाती है?

(3) मानव व्यवहार कितने प्रकार का होता है?

(4) मानव व्यवहार पर मात्र आनुवंशिकता का प्रभाव पड़ता है? सत्य या असत्य ?

6.5 मानव व्यवहार के आधारभूत सिद्धान्तः–

मानव के अन्तः क्रियाओं के द्वारा समाज का निर्माण होता है। समाज में कई प्रकार के व्यवहार करने वाले व्यक्ति होते हैं, कुछ का व्यवहार संवेदनशील तथा कुछ लोगों का व्यवहार संवेदनहीन होता है। व्यक्तित्व कुछ तत्वों के द्वारा निर्धारित अवश्य होता है परन्तु हम कभी भी पूर्णतः व्यक्ति के व्यवहार का एक सटीक आकलन नहीं कर सकते हैं कि वह व्यक्ति मात्र इसी प्रकार का व्यवहार करेगा। व्यक्ति के व्यवहार की पूर्णतः व्याख्या सम्भव नहीं है। मानव व्यवहार से सम्बन्धित कुछ आधारभूत सिद्धांत निम्नवत है–

1– **मानव की प्रकृति जटिल होती है–** मानवीय प्रवृत्ति चंचल होने के फलस्वरूप मानव की प्रकृति जटिल मानी जाती है। व्यक्ति के विचारों में लगातार परिवर्तन होता रहता है, इनमें स्थिरता का अभाव होता है। आज व्यक्ति जैसा व्यवहार कर रहा है बाद में उसी परिस्थिति में ठीक उसी प्रकार का व्यवहार करना संभव नहीं है। विश करना, गिफ्ट देना, क्रोध करना, डॉटना इत्यादि व्यवहार परिस्थितियों के अनुरूप बदलते रहते हैं।

2– **मानव का व्यवहार उद्देष्यपूर्ण होता है–** मानव (व्यक्ति) हमेशा लाभ के लिए व्यवहार नहीं करता है परन्तु उसका व्यवहार उद्देश्य को लेकर किया जाता है। कोई भी कार्य बिना कारण के घटित नहीं होता है। कार्य के पीछे छिपे कारण को ढूंढ निकालना वैज्ञानिक विधि के अन्तर्गत आता है। हम व्यक्ति के व्यवहार के उद्देश्य के लिए पूछ सकते हैं।

3– **पुरस्कृत व्यवहार दुहराये जाते हैं–** मानव का व्यवहार जिसकी प्रशंसा की जाती है या किसी अन्य प्रकार से प्रोत्साहित किया जाता है, उसको व्यक्ति बार–बार दुहराता है क्योंकि प्रशंसा सुनना, पुरस्कार प्राप्त करना, प्रोत्साहन प्राप्त होने पर आन्तरिक खुशी होती है। वे व्यवहार जिनकी भर्त्सना की जाती है, दण्डित किया जाता है, उसको व्यक्ति दुबारा करने से बचता है।

4– **व्यक्ति का ध्यान उन तथ्यों की तरफ अधिक जाता है जिसका निर्णय न हुआ हो–** व्यक्ति के कार्यो का कुछ न कुछ लक्ष्य होता है। जब व्यक्ति कार्य करता है तो कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो निर्णय के स्थिति को प्राप्त नही होते है। उस कार्य में व्यक्ति की संलिप्लता के फलस्वरूप उसके निर्णय के प्रति उसका ध्यान बार–बार जाता है।

5– **प्रत्येक मानव व्यवहार में सम्मान की चाहत होती है–** व्यक्ति कोई कार्य करता है तो उसके प्रति उसकी भावनाएं जुड़ी होती है। किसी कार्य के पीछे व्यक्ति की प्रताड़ना की चाहत नहीं होती है। अतः व्यक्ति मानव प्रकृति हमेशा अपने व्यवहार में सम्मान चाहता है।

मानव व्यवहार के सम्बन्ध में अनेक धारणाएं है परन्तु कोई भी सिद्धांत पूर्णतः सत्य नहीं है। इसका मुख्य कारण मानव की परिवर्तनशील प्रकृति है। मानव व्यवहार को समझने के लिए समाजशास्त्रियों ने कई सिद्धान्त प्रतिपादित किये जिसमें विनिमय व्यववहार सिद्धान्त, विनिमय सिद्धान्त एवं अन्य सूक्ष्म समाजशास्त्रीय सिद्धान्त प्रमुख है। मनोविज्ञान में भी मानव व्यवहार को समझने हेतु कई प्रयोग किये गये इनमें व्यवहार संबंधी व्यवहारवाद एवं उत्तरव्यवहारवाद का सिद्धांत प्रमुख है। व्यवहारवाद का सिद्धांत निम्नवत है–

6.6 व्यवहारवाद एवं उत्तरव्यवहारवाद–

<u>व्यवहारवादः–</u> व्यवहारवाद मनोविज्ञान का एक ऐसा स्कूल है जिसकी स्थापना संचरनावाद एवं प्रकार्यवाद के विरोध में जे0बी0वाटसन द्वारा 1913 में जान हापीकन्स स्कूल में की गयी। यह अमेरिका एवं रूस के शैक्षिक मनोविज्ञान पर लगभग 1920 से 1960 वाले दशक तक हावी रहा और अन्य विधाओं पर अपनी छाप छोड़ी। वाटसन का मानना था कि मनोविज्ञान सूक्ष्म विज्ञान न होकर प्रेक्षणीय विज्ञान है। जिसका प्रेक्षण सम्भव है तथा मापने योग्य है । वाटसन ने मानव के लिए प्रयोज्यों के व्यवहार का अध्ययन करने हेतु एक विधि अपनाई जिसमें प्रेक्षण एवं अनुबंध को महत्व प्रदान किया गया। वाट्सन के द्वारा संवेग, सीख इत्यादि के क्षेत्र में अध्ययन किये गये। वाट्सन का व्यवहारवाद, मन एवं चेतना के अस्तित्व को नकारता है। वाट्सन व्यवहार को आनुवंशिक न मानकर पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित मानते हैं इन्होनें कहा कि मुझे एक दर्जन बच्चे दीजिएॅ मैं जैसा चाहूंगा बना दूंगा। वाट्सन ने व्यवहारवाद की औपचारिक स्थापना किया परन्तु इसमें पावलव, स्मीथ, थार्नडाइक आदि मनोवैज्ञानिकों की भूमिका सराहनीय रही। व्यवहारवाद की तीन पूर्व कल्पनाएं निम्नवत है–

1. **पर्यावरणवाद**– सभी प्राणी का व्यवहार पर्यावरण के द्वारा निर्धारित होता है। विभिन्न साहचर्यो के आधार पर भविष्य के बारे में सीख मिलती है।

2. **प्रयोगवाद**– प्रयोग के आधार पर पर्यावरण के किस पहलू द्वारा व्यवहार प्रभावित होता है या परिवर्तित होता है, पता लगाया जाता है।

3. **आषावाद**– व्यक्ति पर्यावरण का प्रतिफल है, तो प्रयोग के द्वारा वातावरण के पहलू ज्ञात किये जा सकते हैं।

इस पूर्व कल्पनाओं की व्याख्या इस रूप में की जा सकती है कि व्यवहार को व्यक्तिगत अनुभूतियों के माध्यम से सीखता है व्यक्ति किसी व्यवहार को किस प्रकार से सीखता है उससे सम्बन्धित सिद्धांत निम्नवत है–

1. **प्राचीन अनुबंध सिद्धांत**– यह सिद्धांत रूसी शरीर विज्ञानशास्त्री पावलन के द्वारा दिया गया। इसमें उद्दीपन एवं उससे सम्बन्धी प्रतिक्रिया को अनुबंध के द्वारा व्यक्त किया गया। किसी स्वाभाविक उद्दीपन की स्वाभाविक अनुक्रिया होती है परन्तु जब यह प्रतिक्रिया किसी कृत्रिम या अस्वाभाविक उद्दीपन के द्वारा होंने लगे तो इसे अनुबन्धित प्रतिक्रिया कहते है। यथा मांस देखने के बाद कुत्ते के मुंह से लार टपकना एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है परन्तु जब मांस के साथ घंटी भी बजाया जाय और कार्य बार–बार हो तो कुछ दिन बाद मात्र घंटी की आवाज पर कुत्ते की लार टपकने लगती है, तो यह अस्वाभाविक उद्दीपन के बाद की प्रतिक्रिया है जिसे अनुबन्धित प्रतिक्रिया कहेंगे। लैण्डिस के शब्दों में अनुबंधित सहज क्रिया में कार्य के प्रति स्वाभाविक उद्दीपन के स्थान पर एक प्रभावहीन उद्दीपन होता है, जो स्वाभाविक उत्तेजना से सम्बन्धित किये जाने के कारण प्रभावपूर्ण हो जाता है।

2. **उद्दीपन– अनुक्रिया सिद्धांत–** इस सिद्धांत के प्रणेता ई0एल0 थर्नाडाइक है थर्नाडाइक का मानना है कि सीखने की प्रक्रिया बंध संबंध का परिणाम है। इनके साथ बुडवर्थ का मानना था कि यह जगत उद्दीपनों एवं उनकी अनुक्रियाओं का ही परिणाम है। किसी परिस्थिति में एक विशेष प्रकार का उद्दीपन एक विशिष्ट प्रतिक्रिया को प्रेरित करता है और एक दूसरे से सम्बन्धित हो जाता है जिसे बंध कहते है। एक निश्चित प्रकार के उद्दीपन से एक निश्चित प्रकार की अनुक्रिया होती है एवं ये एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। उद्दीपन जितना तीव्र होगा, अनुक्रिया भी उतनी ही तीव्र होगी तथा उद्दीपन जितना मंद, प्रतिक्रिया भी उतनी मंद होगी। थर्नाडाइक ने बिल्ली पर एक प्रयोग किया। बिल्ली को एक पहेली पेटी (Puzzel Box) में बंद कर दिया तथा सामने भोजन रख दिया। बाक्स एक खटके के दबाने पर खुलता था। शुरूआत में बिल्ली ने कई बार पंजा मारा लेकिन जब अचानक उसका पंजा खटके पर पड़ा तो दरवाजा खुल गया। यदि क्रिया जब बिल्ली के द्वारा बार–बार की गयी तो उसके खटका खोलने के प्रयत्नों में कमी आयी और वह बाद बिना भूल किये दरवाजा खोल लिया। इस प्रकार बिल्ली ने उद्दीपन एवं अनुक्रिया के बीच संबंध दृढ़ कर लिया।

उत्तरव्यवहारवादः– स्कीनर, टालमैन, गथरी के द्वारा व्यवहारवाद को आगे बढ़ाने का कार्य जारी रहा। स्कीनर के क्रिया –प्रसूत के सिद्धांत में पुनर्वलन के महत्व को स्वीकारा गया तथा यह बताया गया कि पुनर्वलन के द्वारा व्यवहार को मोड़ा जा सकता है। कई व्यवहार पुनर्वलन से दुबारा करने की इच्छा होती है फलरूवरूप सुखद परिणाम होते है। गथरी के द्वारा सीखने की जरूरत पर उतना ध्यान नहीं दिया गया तथा यह बताया गया कि व्यक्ति एक ही प्रयास में सीख लेता है जिसको इकहरे प्रयास से सीखने की संज्ञा दी गयी। इनका मानना था कि व्यक्ति एक प्रयास में सीख लेता है परन्तु जटिल कार्यो के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। गथरी का मानना है कि बुरी आदतों से तीन प्रकार से छुटकारा पाया जा सकता है–

1– सीमा 2– थकान 3– परस्पर विरोधी उद्दीपन

A- स्कीनर का सिद्धांत– क्रिया प्रसूत का सिद्धान्त प्रो0 बी0एफ0स्कीनर के द्वारा प्रतिपादित किया गया। क्रिया प्रसूत अनुबंधन की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें विभेदक उद्दीपन की उपस्थिति या अनुपस्थिति में धनात्मक अथवा ऋणात्मक पुनर्वलन का प्रयोग करते हुए अधिगमकर्ता को किसी अनुक्रिया को उत्पन्न करना या अवरूद्ध करना सिखलाया जाता है। इसमें धनात्मक पुनर्वलन जैसे पुरस्कार, प्रोत्साहन इत्यादि का प्रयोग करते हुए व्यवहार में उपयुक्त संशोधन अथवा अनुक्रिया को नियंत्रित किया जाता है। क्रिया प्रसूत में व्यक्ति एंव उनसे उत्पन्न होने वाले परिणाम को महत्व दिया जाता है इसके अन्तर्गत प्राणी को सक्रिय होकर अनुक्रिया करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। यदि प्रतिक्रिया के बाद तुरन्त पुनर्वलन उपस्थित किया जाय, तो प्रतिक्रिया की सम्भावना बढ़ती है और यदि पुनर्वलन उत्तेजक के प्रस्तुतीकरण के साथ हो तो शक्ति में वृद्धि होती है।

4. **टालमैन का सिद्धांत–** संज्ञान (संकेतक) का सिद्धान्त टालमैन के द्वारा दिया गया जो व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक है। टालमैन व्यवहार को लक्ष्य निर्देशित या साभिप्राय मानते हैं इसी कारण से इनको सोद्देश्यीय व्यवहारवादी भी कहते हैं। इन्होंने उद्दीपन अनुक्रिया के मध्यस्थता का कार्य किया। इनके सिद्धांत के मतानुसार प्राणी उत्तेजना परिस्थिति के अनुक्रमों को सीखता है जो उसके लक्ष्य को निर्देशित करते है या लक्ष्य को सुस्पष्ट करते है। टालमैन के द्वारा अपने सिद्धांत में संज्ञान के विकास के स्थान पर साहचर्य के विकास पर अधिक जोर दिया गया। इसीलिए इस सिद्धांत को चिह्न अर्थ सिद्धांत भी कहा जाता है। इसके अनुसार यदि पशु को शिक्षण परिस्थिति में रखा जाय तो वह व्यवहारपरक मार्गो को सीखता है जो वातावरण की उत्तेजना से सम्बन्धित होते हैं।

उक्त सिद्धांत व्यवहार को समझने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। मानव व्यवहार को वस्तुतः किसी सीमित दायरे में रख पाना असंभव है परन्तु विद्वानों के द्वारा उसको समझने का प्रयास किया गया है।

6.7 समाजशास्त्र में व्यवहार की व्याख्या–

जार्ज होमंस,पीटर ब्ला तथा माइक हेचर का नाम विशेष रूप से व्यवहार को व्याख्या के लिए लिया जाता है। समाजशास्त्र में व्यवहार से सम्बन्धित दो धाराएं देखने को मिलती हैं।

1– जार्ज होमंस का विनियम व्यवहारवाद

2– पीटर ब्ला का उपयोगितावादी रणनीति

1– जार्ज होमंस का विनियम व्यवहारवाद– जार्ज होमंस एक आगमनवादी समाज वैज्ञानिक थे । इनका मानना है कि अनुभविक स्तर पर प्रत्येक मूर्त घटनाओं को सामाजिक संदर्भ से देखना चाहिए । इन्होंने अध्ययन के लिए आगमनवादी प्रणाली एवं आनुभविक सामान्यीकरण की व्याख्या के द्वारा अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन किया । इनके सिद्धांत में तीन तत्व प्रमुख हैं। 1– गतिविधियां 2– अंतःक्रियायें 3– मनोभाव। जैसे– किसी निशिचित दिशा में काम करना ही गतिविधियां है तथा कार्य करते हुए व्यक्ति कई चीजों से अंतःक्रियाएँ करता है। यह अंतःक्रियाएँ दूसरे की गतिविधियों को उत्प्रेरित करती हैं इसके उपरान्त किसी के सम्बन्ध में एक प्रकार का मनोभाव विकसित होता है। जैसे पढ़ने के सम्बन्ध में मनोभाव आते है तो विद्यार्थी पुस्तकों इत्यादि के अंतःक्रियाओं के साथ उसके मन में कुछ मनोभाव आते हैं। कि हमें ट्यूशन भी पढ़ना चाहिए । इनका मानना है कि सामाजिक अंतःक्रिया सम्पूर्ण रूप में विनिमय का स्वरूप है विनिमय कम से कम दो व्यक्तियों में होता है और इन्होंने मनुष्य के सम्पूर्ण व्यवहार को ही विनियम माना गया है।

2– पीटर ब्ला का संरचनात्मक विनियम सिद्धांत– पीटर ब्ला का अध्ययन क्षेत्र मात्र छोटे समूह ही नहीं थे बल्कि इन्होंने बुनियादी अंतःक्रियाओं का अध्ययन विशाल समूह तक किया हैं। इन्होंने उन्हीं क्रियाओं का विश्लेषण किया जिससे व्यक्ति को कुछ लाभ मिलता है। बिना लाभ वाली क्रियाओं का उल्लेख ब्ला के द्वारा नहीं किया गया तथा विनियम के घेरे में मात्र लाभ वाली क्रियाओं को रखा है । ब्ला ने व्यवहार के लिए उद्दीपन, क्रिया, लागत, मूल्य एवं अपेक्षा आदि को प्रयोग में लाया है। इनका मानना है कि जब व्यक्ति व्यवहार करता है तो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वह लाभ लेना चाहता है। ब्ला के सिद्धांत का केन्द्रीय संदर्भ सामाजिक संरचना है। यह सामाजिक संरचना ही है जो विनियम सिद्धांतों को सुदढ़ एवं सशक्त करता है। यद्यपि व्यवहार या विनियम का प्रारंभ विशुद्ध रूप से व्यक्ति के स्वार्थ से होता है परन्तु सामाजिक संबंधों के द्वारा यह आस्था में बदल जाता है जब विनियम के माध्यम से अधिकतम लाभ लिया जाता है तब इस प्रकार के व्यवहार का विचारधारा के आधार पर विरोध किया जाता है। समूह, कुछ मानकों को विकसित करते हैं और ये मानक सदस्यों को बाध्य कर देते हैं कि वे अमुक प्रकार का व्यवहार करें।

होमंस व्यवहारवादी मनोविज्ञान को अपनी व्याख्या का मुख्य संदर्भ मानते हैं जबकि पीटर ब्ला व्यवहार को सामाजिक संरचना के संदर्भ में देखते हैं पीटर ब्ला का मानना है कि सम्बन्धों की निरन्तरता का कार्य व्यक्ति का नहीं अपितु समाज का है।

बोध प्रश्न 2

1– प्राचीन अनुबन्ध सिद्धांत का प्रतिपादन किसने किया?

2– क्रिया प्रसूत सिद्धांत किसके द्वारा प्रतिपादित किया गया है?

3– व्यवहारवाद के जनक कौन हैं?

4– समाजशास्त्र में विनियम व्यवहारवाद का सिद्धांत किसने दिया?

6.8 सारांष–

मानव व्यवहार वस्तुतः व्यक्ति द्वारा किये गये क्रिया कलाप एवं भावनाओं का योग माना जाता है । व्यवहार को दो भागों में बॅाटा जाता है– पहला सामान्य व्यवहार तथा दूसरा असामान्य व्यवहार। सामान्य व्यवहार के अंतर्गत व्यक्ति वह व्यवहार या कार्य करता है जो बहुतायत लोगों में पाया जाता है तथा जिसके द्वारा समाज में सामंजस्य बना रहता है। तथा असमान्य व्यवहार वाले व्यक्ति का व्यवहार कुछ बेतुका सा होता है तथा समाज में असामंजस्यता की स्थिति बन जाती है। मानव व्यवहार के कई निर्धारक तत्व होते हैं, जैसे– देश, समाज, आनुवंशिकता, संस्कृति तथा कुछ अनोखी घटनाएं जो व्यक्ति पर विशेष प्रभाव छोड़ जाते हैं। व्यवहार के निर्धारण में आनुवंशिक तत्वों के साथ–साथ वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। आनुवंशिकता एक सीमा रेखा खींचता है, जिसमें वातावरण व्यवहार को पुष्पित–पल्लवित करता है। मानव व्यवहार के कई आधारभूत सिद्धान्त है जिसमें दण्ड, पुरस्कार, प्रोत्साहन, उद्देश्यपूर्णता आदि प्रमुख है। व्यवहारवाद, मानव व्यवहार को प्रेक्षणीय माना है। इसके प्रणेता वाट्सन है तथा उत्तर व्यवहारवाद संशोधित रूप में व्यवहारवाद की व्याख्या करता है। इसके समर्थक स्कीनर, टालमैन, गथरी है। सामजशास्त्र के क्षेत्र में व्यवहार को समझने का प्रयास जॉर्ज होमंस, पीटर ब्ला इत्यादि समाजशास्त्रियों के द्वारा किया गया।

6.9 बोध प्रष्न के उत्तर

बोध प्रष्न संख्या 1

1, परिवार 2. किशोरावस्था 3. दो 4. असत्य

बोध प्रष्न संख्या 2

1, पावलव 2. स्कीनर 3. वाटसन 4. जार्ज होमंस

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. सिंह, अरूण कुमार– उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास जवाहर नगर, नयी दिल्ली, 2015

2. सिंह, अरूण कुमार– आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास जवाहर नगर, नयी दिल्ली, 2013

3. http//bibica/brethenfellouship.word press. com

4. www.regional.org.eu/eu/open

5.. सिंह, जे0पी0–समाजशास्त्रः अवधारणाए एवं सिद्धांत, प्रेटिस हाल आफ इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2007

6. दोषी एस0 एल0 एवं त्रिवेदी एम0 एस0– उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धांत, रावत पब्लिकेशन, जवाहर नगर,जयपुर–2013

6.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री–

1. रावत, हरिकृष्ण– समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन, जवाहर नगर, जयपुर–2002

3. तिवारी ए0के0– समाजशास्त्र, वाणी प्रकाशन, इलाहाबाद, 2001

4. गुप्ता एम0 एल0 एवं शर्मा डी0डी0– समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, 1996

5. पाण्डेय एस0एस0– समाजशास्त्र, टाटा मैकया हिल एजूकेशन प्राइवेट लिमिटेड,नयी दिल्ली, 2010

6.12 निबंधात्मक प्रष्न

(1) मानव व्यवहार का क्या अर्थ है?

(2) सामान्य एवं असामान्य व्यवहार में अंतर बताइए?

(3) मानव व्यवहार के निर्धारक तत्वों में वातावरण का योगदान बताइऍं?

(4) मानव व्यवहार के मूलभूत सिद्धांत बताइए?

इकाई 7
सामाजिक अन्तर्क्रिया

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 समाजिक अन्तर्क्रिया : परिभाषाएवं उनकी विशेषता
7.3 सामाजिक अन्तर्क्रिया के प्रकार
7.4 समाजिक अन्तर्क्रिया के उद्दीपक
7.5 सारांश
7.6 शब्दावली
7.7 अभ्यास प्रश्न
7.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक अन्तर्क्रिया तथा मनोवृत्तिकी अवधारणा को समझाने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही सामाजिक अन्तर्क्रिया तथा मनोवृत्ति की संघटन एवं संरचना, विमातथाप्रकार को स्पष्ट करना भी इस इकाई का उद्देश्य है। आशा है कि इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप :

- सामाजिक अन्तर्क्रिया तथा मनोवृत्ति की अवधारणा को समझ पाएँगे;
- समाजिक अन्तर्क्रिया के उद्दीपक को समझ पाएँगे;
- मनोवृत्तिसंघटकों की विशेषताओं की व्याख्या कर पाएँगे;
- मनोवृत्ति की विमाए एवं प्रकार समझ पाएँगे;तथा
- मनोवृत्ति तथा सम्बद्ध संप्रत्ययस्पष्टतया समझ पाएँगे।

7.1 प्रस्तावना

समाजिक व्यवहार की उत्पत्ति व्यक्ति एवं सामाजिक परिस्थिति के बीच होने वाली अन्तर्क्रिया के परिणामस्वरूप होती है। अभिवृत्ति या मनोवृत्ति शब्द का प्रयोग व्यवहार में हम प्रायः अपने दैनिक जीवन में करते रहते है। अतः इस शब्द से हम परिचित है। लेकिन, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से मनोवृत्ति शब्द काफी जटिल तथा विवादग्रस्त है। इसकी एक भी वैज्ञानिक परिभाषा उपलब्ध नहीं है, जिस पर सभी मनोवैज्ञानिक तथा समाज–वैज्ञानिक सहमत हों। इस असहमति का कारण उनका अपना–अपना दृष्टिकोण है।

7.2 समाजिक अन्तर्क्रिया : परिभाषाएवं उनकी विशेषता

समाजिक अन्तर्क्रिया पारस्परिक प्रभाव वाली ऐसी प्रक्रिया है जिसमें लोग अन्तर–उद्दीपन एवं अनुक्रियाओं के माध्यम से एक दूसरे को प्रभावित करते है। विभिन्न विद्वानों ने इसे कुछ इसी तरह परिभाषित भी किया है।

शेरिफ एवं शेरिफ (1969) ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्तियों के बीच होने वाला आदान–प्रदान अन्तर्क्रिया प्रक्रम कहा जाता है।''

न्यूकाम्ब (1959) के अनुसार, ''यह एक ऐसा प्रक्रम है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति उन व्यक्तियों को अनुभूत करता है तथा उनके प्रति अनुक्रिया करता है जो स्वयं उसे अनुभूत करते हैं तथा उसके प्रति अनुक्रिया करते हैं।''

किम्बल यंग (1960) के अनुसार, ''व्यापक अर्थो में अन्तर्क्रिया का आशय इस बात से है कि किसी व्यक्ति की अनुक्रिया – हावभाव, शब्द, संकेत या शारीरिक गतियाँ, दूसरे व्यक्ति के लिए उद्‌दीपन का कार्य करती है, जो प्रत्युत्तर में प्रथम व्यक्ति के प्रति अनुक्रिया करता है।''

गिलिन एवं गिलिन (1950) के अनुसार, ''सामाजिक अन्तर्क्रिया का तात्पर्य व्यक्ति एवं व्यक्ति समूह एवं समूह और समूह एवं व्यक्ति के बीच पाए जाने वाले सभी प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों से है।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि सामाजिक अन्तर्क्रियाएक दूसरे के व्यवहार को परस्पर प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है अर्थात् व्यक्ति अपने परिवेश के विभिन्न पक्षों से प्रभावित होने के साथ–साथ उन्हें प्रभावित भी करता है। ऐसे पारस्परिक उद्‌दीपन के परिणामस्वरूप ही सामाजिक अन्तर्क्रिया का प्रदर्शन होता है। अन्तर्क्रिया तात्कालिन उद्‌दीपन के अतिरिक्त पूर्वानुभवों तथा प्रत्याशाओं द्वारा भी प्रभावित होती है। एक ही सामाजिक परिस्थिति का भिन्न–भिन्न लोगो पर असमान प्रभाव पड़ सकता है, जैसे – किसी व्यक्ति की उपस्थिति से कोई प्रसन्न तो कोई अप्रसन्न हो सकता है। इसके अनेक रूप हो सकते है, तथा किसी को प्रभावित करना, उसकी सहायता करना, उससे प्रतिस्पर्धा करना, उससे स्नेह या प्यार करना इत्यादि। इस प्रक्रम में कुछ विशेषताएं पाई जाती है –

1. अन्तर्क्रिया में व्यक्तियों द्वारा सक्रिय रूप में व्यवहार किया जाता है।
2. अन्तर्क्रिया द्विमार्गीय प्रक्रिया है। अर्थात् एक व्यक्ति का प्रभाव दूसरे पर और दूसरे का प्रभाव पहले व्यक्ति पर भी पड़ता है। इसीलिए इसे पारस्परिक प्रक्रिया भी कहा जाता है।
3. इसमें एक व्यक्ति का व्यवहार दूसरे के लिए उद्‌दीपन और उसका व्यवहार पहले व्यक्ति के लिए उद्‌दीपन का कार्य करता है।

4. सामाजिक अर्न्तक्रिया सामाजिक अधिगत तथा सांस्कृतिक कारकों द्वारा भी प्रभावित होती है, जैसे – एक–दूसरे से मिलने पर कुछ लोग 'नमस्कार' कहते हैं तो कुछ अन्य लोग किसी अन्य रूप में अभिवादन कर सकते है।
5. सामाजिक अर्न्तक्रिया दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच हो सकती है।
6. सामाजिक अर्न्तक्रिया व्यक्ति एवं व्यक्ति के ही बीच नहीं अपितु व्यक्ति एवं समूह और समूह एवं समूह के भी बीच होता है।

7.3 सामाजिक अन्तर्क्रिया के प्रकार

सामाजिक अन्तर्क्रियाओं को तीन वर्गो में विभक्त किया जाता है। इन्हें व्यक्ति एवं व्यक्ति, व्यक्ति एवं समूह और समूह एवं समूह के बीच होने वाली अन्तर्क्रियाएँ कहा जाता है।

1. **व्यक्ति एवं व्यक्ति के बीच अन्तर्क्रिया**– यदि एक व्यक्ति का प्रभाव दूसरे पर और दूसरे का प्रभाव पहले व्यक्ति पर पड़ता है तो इसे व्यक्ति एवं व्यक्ति के बीच होने वाली अन्तर्क्रिया कहा जाता है। दोनो मित्रों, दो व्यक्तियों, शिक्षक–शिक्षार्थी, पिता–पुत्र क्रेता–विक्रेता इत्यादि के बीच होने वाला व्यवहार इसके उदाहरण हैं। यदि दो लोगों के बीच अच्छे सम्बन्ध है तो उनमें परस्पर सहयोग पाया जाएगा। परन्तु यदि सम्बन्ध अच्छे नहीं है तो उनके बीच प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष आदि देखने को मिलेगा।
2. **व्यक्ति एवं समूह के बीच अन्तर्क्रिया**– यदि व्यक्ति का प्रभाव समूह पर और समूह का प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है तो इसे व्यक्ति एवं समूह के बीच होने वाली अन्तर्क्रिया कहा जाता है। यथा, किसी व्यक्ति तथा उसके परिवार के बीच या किसी खिलाड़ी और उसकी टीम के बीच होने वाली अन्तर्क्रियाएं इस वर्ग में आयेंगी। व्यक्ति एवं समूह के बीच सम्बन्ध जितना ही घनिष्ठ होगा, उनमें अन्तर्क्रिया भी उतनी ही अधिक होगी।
3. **समूह एवं समूह के बीच अन्तर्क्रिया**– यदि दो समूह या संगठन परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तो उसे समूह एवं समूह के बीच होने वाली अन्तर्क्रिया कहा जाता है। यथा, दो टीमों, दो संगठनों, दो दलों, दो परिवारों एव दो वर्गों का एक दूसरे पर जो प्रभाव पड़ता है। उसे समूह–समूह के बीच होने वाले अन्तर्क्रिया कहा जाता है। परस्पर अन्तर्क्रिया करने वाले समूहों की संख्या दो से अधिक भी हो सकती हैं।

7.4 समाजिक अन्तर्क्रिया के उद्दीपक

अन्य व्यवहारों की भाँति सामाजिक अन्तर्क्रिया के लिए भी उद्दीपक की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे उद्दीपकों को प्राथमिक उद्दीपक और गौण उद्दीपक कहते हैं। प्रथम वर्ग में प्रत्यक्ष और द्वितीय में अप्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा प्रभाव डालने वाले कारक आते है।

(क) **सामाजिक अन्तर्क्रिया के प्राथमिक उद्दीपन**– इनकी प्रत्यक्ष उपस्थिति से व्यक्ति प्रभावित होता है। इस वर्ग में निम्नांकित उद्दीपक आते हैं –

1. **हाव–भाव**– विभिन्न प्रकार के हाव–भाव सामजिक अन्तर्क्रिया के लिए प्रबल उद्दीपकों का कार्य करते है। ये अनेक प्रकार के हो सकते है।

   (क)संवेगात्मक हाव–भाव– किसी व्यक्ति का संवेगात्मक व्यवहार अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के लिए उद्दीपक का कार्य कर सकात है, जैसे – किसी की तरफ प्रेम से बढ़ने, हाथ मिलाने या गले मिलने का संकेत करने पर दूसरा भी वैसा करेगा।

   (ख) प्रदर्शनात्मक हाव–भाव– शारीरिक अंगों द्वारा किसी प्रकार का व्यवहार करने के लिए संकेत करना इसका उदाहरण है। जैसे–आँख, सिर या हाथ द्वारा संकेत करके किसी को कोई कार्य या व्यवहार करने के लिए सुझाव देना; यथा–यह संकेत करना कि इधर आओ या हट जाओं आदि।

   (ग) चित्रित हाव–भाव– यदि वस्तु या व्यक्ति के आकार (मोटापन, लम्बाई आदि) को इंगित करके क्रिया की जाती है तो उसे चित्रित हाव–भाव कहते है।

   (घ) प्रतीकात्मक हाव–भाव– यदि किसी अमूर्त भाव को संकेतों द्वारा व्यक्त किया जाता है तो उसे प्रतीकात्मक हाव–भाव कहते हैं, जैसे – नाट्य या नृत्य शैली के माध्यम से विचारों या भावों को व्यक्त करना।

   (ड.) आदतजन्य हाव–भाव– जो हाव–भाव व्यक्ति की आदत बन जाते है, उन्हें आदतजन्य हाव–भाव कहते है।

   (च) अचेतन हाव–भाव– ऐसे हाव–भाव जिन्हें व्यक्ति अचेतन रूप में करता रहता है, जैसे – बैठे हुए पैर हिलाना।
2. **आसनिक अभिव्यक्ति**– विभिन्न स्अभिव्यक्तियां भी सामाजिक अन्तर्क्रिया के लिए व्यक्ति को प्रेरित करती है, जैसे – चुप बैठ जाना, अकड़कर खड़ा होना, विनम्रता से झुक जाना इत्यादि अन्य व्यक्तियों के लिए उद्दीपन का कार्य करते है।
3. **मुस्कान तथा हँसी**– मुस्कराहट तथा हँसी अन्य व्यक्तियों को अपनी तरफ आकर्षित करती है और परस्पर अन्तर्क्रिया को बल मिलता है। इससे आपसी मेल–जोल बढ़ता है। मित्रता स्थापित करने में इस तरह के हाव–भाव की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
4. **स्वर अभिव्यक्ति**– व्यक्यिों के मुँह से निकलने वाले स्वरों एवं वाणियों का स्वरूप भी अन्तर्क्रिया के लिए उद्दीपन का कार्य करता है। जैसे – मन्द एवं मधुर स्वर किसी को अपनी तरफ आकर्षित कर सकते हैं तो कठोर और कर्कश स्वर क्रोधित कर सकते है। अर्थात् प्रथम स्थिति में अन्तर्क्रिया प्रोत्साहित होगी और द्वितीय स्थिति में बाधित हो सकती है।
5. **मुखाकृतिक अभिव्यक्तियाँ**– विभिन्न प्रकार की मुखाकृतिक अभिव्यक्तियाँ भी सामाजिक अन्तर्क्रिया के लिए उद्दीपन का कार्य करती है। अप्रसन्न्ता आदि की दशाओं में चेहरे का भावों की स्पष्ट झलक मिलती है। प्रसन्नता, भय, क्रोध या अप्रसन्नता आदि की दशाओं में चेहरे का हाव–भाव बदल जाता है। इससे अन्य लोग प्रभावित होते हैं और तदनुसार व्यवहार भी करते है।
6. **भाषा**– सामाजिक अन्तर्क्रिया में भाषा को विशेष महत्व है। भाषा सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम है। इसके द्वारा हम अपनी भावनाएँ व्यक्त करते हैं। मधुर भाषा का प्रयोग करके लोगों पर अच्छा प्रभाव डाल सकते हैं, उन्हें अपनी तरफ आकर्षित कर सकते हैं। इसके विपरीत कठोर या अप्रिय भाषा से सम्बन्ध खराब होता है, दूरी तथा तनाव बढ़ता है।

(ख)सामाजिक अन्तर्क्रिया के गौण उद्दीपक– सामाजिक अन्तर्क्रिया को प्रभावित करने वाले इस वर्ग मे वे कारक या दशाएँ सम्मिलित की जाती है जिनके सम्पर्क में व्यक्ति प्रत्यक्षतः नहीं होता है बल्कि विभिन्न रूपों में उनसे अप्रत्यक्षतः प्रभावित होकर व्यवहार करने लगता है, जैसे – रेडियों, टेलीवेजन, समाचार

पत्र, टेलीफोन एवं पत्र इत्यादि, ऐसे ही माध्यम है जिनके द्वारा अन्य लोगों के विचारों और भावनाओं से हम अवगत होते है और व्यवहार भी करते है।

7.5 सारांश

समाजिक व्यवहार की उत्पत्ति व्यक्ति एवं सामाजिक परिस्थिति के बीच होने वाली अन्तर्क्रिया के परिणामस्वरूप होती है।सामाजिक परिस्थितियों में व्यक्तियों के बीच होने वाला आदान–प्रदान अन्तर्क्रिया प्रक्रम कहा जाता है।सामाजिक अन्तर्क्रिया एक दूसरे के व्यवहार को परस्पर प्रभावित करने वाली प्रक्रिया है अर्थात् व्यक्ति अपने परिवेश के विभिन्न पक्षों से प्रभावित होने के साथ–साथ उन्हें प्रभावित भी करता है।सामाजिक अन्तर्क्रियाओं को तीन वर्गो में विभक्त किया जाता है। इन्हें व्यक्ति एवं व्यक्ति, व्यक्ति एवं समूह और समूह एवं समूह के बीच होने वाली अन्तर्क्रियाएँ कहा जाता है।सामाजिक अन्तर्क्रिया के लिए भी उद्‌दीपक की आवश्यकता पड़ती है।प्राथमिक उद्‌दीपक के रुप मे हाव–भाव,आसनिक अभिव्यक्ति,मुस्कान तथा हँसी,स्वर अभिव्यक्ति,मुखाकृतिक अभिव्यक्तियाँतथा भाषाएवंगौण उद्‌दीपकजिनके सम्पर्क में व्यक्ति प्रत्यक्षतः नहीं होता है बल्कि विभिन्न रूपों में उनसे अप्रत्यक्षतः प्रभावित होकर व्यवहार करने लगता है, जैसे – रेडियों, टेलीवेजन, समाचार पत्र, टेलीफोन एवं पत्र इत्यादि आते है।

मनोवृत्ति–प्रतिक्रिया करने की तत्परता की वह मानसिक एवं स्नायु–स्थिति है जो अनुभव के कारण संगठित होती है, और जिसका दिशासूचक तथा/अथवा सक्रिय प्रभाव व्यवहार पर पड़ता है।मनोवृत्ति तीनों तरह के संघटकों से संरचित है जिन्हें संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक संघटक कहते है।कर्षण–शक्ति,बहुविधता,संगति विशेषताएं,मनोवृत्ति पुंज में अन्तर्सम्बद्धतातथाअनुरूपता मनोवृत्ति के संघटकों की विशेषताएँहै।मनोवृत्ति की पॉच विमाएं दिशा,तीव्रता,केन्द्रीयता,प्रमुखतातथासंगतिहै।

7.6 शब्दावली

सामाजिक अन्तर्क्रिया — सामाजिक अन्तर्क्रिया का तात्पर्य व्यक्ति एवं व्यक्ति समूह एवं समूह और समूह एवं व्यक्ति के बीच पाए जाने वाले सभी प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों से है।

मनोवृत्ति — मनोवृत्ति–प्रतिक्रिया करने की तत्परता की वह मानसिक एवं स्नायु–स्थिति है जो अनुभव के कारण संगठित होती है, और जिसका दिशासूचक तथा/अथवा सक्रिय प्रभाव व्यवहार पर पड़ता है।

संज्ञानात्मक संघटक — संज्ञानात्मक संघटककिसी मनोवृत्ति–वस्तु के प्रति हमारी जो धारणा होती है अथवा हमारा जो विश्वास होता है, उसे ही मनोवृत्ति का संज्ञानात्मक संघटक कहा जाता है।

भावात्मक संघटक — भावात्मक संघटक का तात्पर्य किसी मनोवृत्ति–वस्तु के प्रति व्यक्ति के भाव, अथवा पसन्द या नापसन्द से है।

क्रियात्मक संघटक — क्रियात्मक संघटक का तात्पर्य किसी मनोवृत्ति–वस्तु के प्रति व्यक्ति किसी मनोवृत्ति की क्रिया–प्रवृत्ति से है।

7.7 अभ्यास प्रश्न

1. समाजिक अन्तर्क्रिया को परिभाषितकीजिएतथा अन्तर्क्रिया के प्रकारों को बताईये?

2. समाजिक अन्तर्क्रिया के उद्दीपक से आप क्या समझते है?

7.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Allport, F. H. (1935). **Social Psychology**. Boston: Houghton Mifflin.

Baron, R. A. & Byrne, D. (1987).**Social Psychology: Understanding Human Interactions**. Allyn & Bacon, London.

Brinkerhaff, D. B. & White, L. K. (1985).**Sociology**. West Pub. Co., N.Y.

Myers, D. G. (1988).**Social Psychology**. McGraw-Hill, N.Y.

Raven, B. & Rubin, J. (1974). **Social Psychology**: People in Groups. John Wiley.

Sears et. al. (1991).**Social Psychology**.

Singh A. K. (2014). **An Outline of Social Psychology**. Motilal Banarasi Das: New Delhi.

Singh, R. N. (2012). **Adhunik Samajik Manovigyan**. Agrawal Publication: Agara.

Sulaiman, M. (2014).**Advanced Social Psychology** (2^{nd} Edition). Motilal Banarasi Das: New Delhi.

Zajonc, R.B. (1966). **Social Psychology: An Experimental Approach**. Cole. Pub.Co.

इकाई- 8

सामाजिक अंतःक्रिया, उद्दीपन एवं सामाजिक अभिवृत्ति

8.1. उद्देश्य

8.2. प्रस्तावना

8.3 सामाजिक अंतः क्रिया का अर्थ एवं परिभाषा

8.3.1 सामाजिक अंतः क्रिया के आधारभूत तत्व

8.3.2 सामाजिक अंत क्रिया के सिद्धांत

8.4 सामाजिक उद्दीपन

8.5 सामाजिक अभिवृत्ति का अर्थ एवं परिभाषा

8.5.1 सामाजिक अभिवृत्ति की विशेषताएँ

8.5.2 अभिवृत्ति निर्माण एवं इसके संघटक तत्व

8.5.3 सामाजिक अभिवृत्ति के प्रकार

8.6 सारांश

8.7. बोध प्रश्न के उत्तर

8.8. संदर्भ ग्रंथ सूची

8.9. सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.10. निबंधात्मक प्रश्न

8.1 उद्देश्य–

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात–

1. सामाजिक अंतः क्रिया के बारे में जान सकेंगे।
2. सामाजिक अंतःक्रिया की परिभाषा व अर्थ को समझेंगे ।
3. सामाजिक उद्दीपन के विषय में जान पाएँगें।
4. सामाजिक उद्दीपन के अर्थ एवं परिभाषा को जानेगें।
5. सामाजिक अभिवृत्ति के अर्थ, परिभाषा को विश्लेषित करेंगे।
6. सामाजिक अभिवृत्ति की विशेषताओं को बता सकेंगे ।
7. सामाजिक अभिवृत्ति के प्रकार को बता सकेंगे।
8. सामाजिक अभिवृत्ति के आधारभूत तत्वों को समझेगें।

8.2 प्रस्तावना–

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जिसमें समूह में रहने की प्रवृत्ति आदिकाल से पायी जाती रही है। अपनी शारीरिक बनावट की विशेषताओं के फलस्वरूप व्यक्ति संस्कृति का निर्माण करता है तथा ज्ञान, आविष्कार, कला, नैतिकता, प्रथा परम्परा, जनरीतियों इत्यादि को संचित कर मानव समाज की कल्पना को साकार करता है। मनुष्य एवं पशु में विभेद का मुख्य आधार संस्कृति को माना जाता है। संस्कृति के अन्तर्गत हस्तांतरण की प्रकिया सामाजिक अंतः क्रिया के माध्यम से सम्पन्न होती है । समाज में बिना अंतः क्रिया के कोई भी सामाजिक प्रक्रिया यथा सहयोग,संघर्ष,प्रतिस्पर्धा, प्रतिकूलन एकीकरण,सात्मीकरण., किसी का भी होना सम्भव नहीं है। सामाजिक अंतः क्रिया के माध्यम से ही सामाजिक संबंध का भी निर्माण होता है। जो कि समाज का मूल तत्व माना जाता है। समाज में अंतः क्रिया तभी घटित होती है जब एक व्यक्ति अथवा समूह के संकेतात्मक भावनाओं या वाचिक तत्वों को दूसरा व्यक्ति अथवा समूह, किसी भी रूप में ग्रहण करता है। सूचना वाचिक या मौखिक किसी भी रूप में हो सकती है जिसे एक पक्ष से दूसरा भी ग्रहण करता है। कभी भी निर्वात में सामाजिक अंतः क्रिया घटित नहीं होती है। इसके लिए एक माध्यम का होना आवश्यक होता है।

सामाजिक अंतः क्रिया सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन का बिन्दु रहा है। सामाजिक मनोविज्ञान के माध्यम से व्यक्ति के सामाजिक जीवन एवं उसमें निहित मन सम्बन्धी प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, कि किस प्रकार व्यक्तियो के मनोभाव ,मनोवृत्तियो से सामाजिक समूह का निर्माण होता है एवं समूह सम्बन्धी गतिविधियॉ क्रियाशील होती है। सामाजिक अंतः क्रिया के घटित होने में उद्दीपन एवं उससे सम्बन्धी प्रतिक्रियाओं एवं परिवेश का योगदान होता है।

मनुष्य का सामाजीकरण परिवार, मित्र मण्डली, नातेदारी, पड़ोस संस्कृति, शिक्षालय, परिवेश, एवं परिस्थितियों के माध्यम से होता है। व्यक्ति समाज के विभिन्न अवयवों से सीखता है और व्यवहार के रूप में उसे प्रकट करता है जिसमें उसके मूल प्रवृत्तियों का भी योगदान होता हैं । समाज में व्यक्तियों की आवश्यकताऐं अतंत होती है जिसकी पूर्ति हेतु वह प्रथमतः दूसरे व्यक्तियों के संपर्क में आता है। समाज के मान्य नियमों के अनुरूप उसके व्यवहार करने पर समाजिक व्यवस्था बनी रहती है। व्यक्ति का आचरण सामाजिक मानदंडों के अनुरूप नहीं होता है तो समाज में विघटन एवं उच्छृंखलता की स्थिति उपस्थित हो जाती है । मानव का व्यवहार सामाजिक अभिवृत्ति का अंग होता है जिसे व्यक्ति समाज में करता है।

8.3 सामाजिक अंतः क्रिया का अर्थ एवं परिभाषा

समाजिक अंतः क्रिया – अंतः क्रिया के अंतर्गत दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच भाषा या संकेत के माध्यम से भावनाओं का आदान प्रदान होता है। जब तक दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच मौखिक, लिखित, सांकेतिक रूप से मनोभावों का आदान–प्रदान नहीं होता है उसे अंतःक्रिया नहीं कर सकते हैं। व्यक्ति द्वारा किया गया सभी प्रकार का कार्य अंतः क्रिया की श्रेणी में नहीं आता है। अंतः क्रिया के अन्तर्गत किसी न किसी प्रकार की प्रतिक्रिया दूसरे पक्ष से आना आवश्यक है। यदि आप राह में अकेले जा रहे है तो यह सामाजिक क्रिया नहीं होती है क्योंकि इसमें किसी भी प्रकार की अंतः क्रिया नहीं होती है परन्तु यदि आपकी नजर दूसरे पर टकराई और दोनों में मुस्कराहट, स्वागत, अथवा नफरत के भाव आते है तो यह अंतः क्रिया के अन्तर्गत आते हैं। सामाजिक अंतः क्रिया के माध्यम से ही सामाजिक प्रक्रिया घटित होती है परन्तु प्रत्येक सामाजिक अंतः क्रिया में सामाजिक प्रक्रिया का होना आवश्यक नहीं है। जैसे कोई लड़का एवं लड़की दोनों बार–बार मिलते है, यह सामाजिक अंतः क्रिया कहलाती है लेकिन जब दोनों में मित्रता के भाव आते है या दोनों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो वह सामाजिक प्रक्रिया कहलाती है। सामाजिक अंतःक्रिया के अंतर्गत संस्कृति, सामाजिक संरचना, नियम व्यवस्था, संस्था, जिसमें व्यक्ति रहता है । उसमें संकेतों के माध्यम से भावनाओं का आदान प्रदान होता है। सामाजिक अंतः क्रिया में व्यक्तियों में सांस्कृतिक, तत्वों का संकेतों के माध्यम से आदान प्रदान होता है जो समाज में प्रचलित होते हैं। समाजशास्त्रीय विधाओं के अन्तर्गत समाज एवं व्यक्ति के मध्य एक सैद्धांतिक तारतम्यता कायम की गयी हैं । वृहत सिद्धांतवेत्ताओं के द्वारा यह कहा जाता है कि समाज सर्वोपरि है तथा समाज की व्यक्ति के मनोभावों का निर्माण करता है। जैसा समाज होता है उसी प्रकार से व्यक्ति होता है यह सिद्धांत व्यक्ति के स्वत्रंत्रता को नकारता है तथा यह मानता है कि समाज की जनरीतियॉ प्रथाएॅ प्रमुख है। सूक्ष्म सिद्धांतवेत्ताओं का यह मानना है कि व्यक्ति के द्वारा समाज का निर्माण होता है। व्यक्ति का समाज से भिन्न अलग अस्तित्व है। व्यक्ति, भाषा संकेतों तथा अन्य माध्यमों से समाज का निर्माण होता है। सूक्ष्म सिद्धांतवेत्ताओं ने विनियम सिद्धांत, लोकविधि विज्ञान इत्यादि विधाओं पर जो दिया है।

सामाजिक अंतःक्रिया समाज में तीन स्तरों पर घटित होती है–

(1) व्यक्ति– व्यक्ति के बीच

(2) व्यक्ति एवं समूह के बीच

(3) समूह– समूह के बीच

अंतः क्रिया सामाजिक सम्बन्धों की मूल आवश्यकता है। समाज,अंतःक्रिया पर आधारित होता है।

सामाजिक अंतक्रिया की परिभाषा–

A.W. ग्रीन के अनुसार ''सामाजिक अंतःक्रिया वे पारस्परिक प्रभाव है जो कि व्यक्ति एवं समूह अपनी समस्याओं को हल करने एवं लक्ष्यों एवं समूह अपनी समस्याओं को हल करने एवं लक्ष्यों की पूर्ति की प्रयत्न में एक दूसरे पर डालते हैं।

एल्ड्रिज एवं मैरिल– (Cutture and Society) में सामाजिक अंतःक्रिया के बारे में लिखा है कि ''सामाजिक अंतः क्रिया वह सामान्य प्रक्रिया है जिसके द्वारा दो या दो से अधिक व्यक्तियों में अर्थपूर्ण सम्पर्क स्थापित होता है जिसके परिणामरूवरूप व्यवहार परिवर्तन हो जाता है चाहे वह ज्यादा हो या कम मात्रा में''।

पार्क एवं बर्गेस (1921) ने अपनी पुस्तक An introduction to the seience of society में बताया है कि ''सामाजिक अंतःक्रिया द्विपक्षीय होती है जिसमें व्यक्तियों का व्यक्तियों पर प्रभाव तथा समूह का समूह पर प्रभाव पड़ता है ''।

डासन एवं गेटिस (An introduction to the Society) सामाजिक अंतःक्रिया एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य एक दूसरे के मस्तिष्क में प्रविष्ट होते हैं। सामाजिक अंतःक्रिया के माध्यम से मानव सम्बन्ध विनिर्मित होते है, जिसके अन्तर्गत पारस्परिक उत्तेजना एवं अनुक्रिया होती हैं। सामाजिक अंतःक्रिया के अन्तर्गत उद्दीपन तथा प्रतिक्रिया होती है। सामाजिक अंतः क्रिया के अन्तर्गत उद्दीपन तथा प्रतिक्रिया के माध्यम से मनुष्य एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं।

8.3.1 सामाजिक अंतः क्रिया के आधारभूत तत्व

सामाजिक अंतःक्रिया के दो आधारभूत तत्व होते हैं

1– सामाजिक संपर्क 2– संचार

सामाजिक संपर्क– सामाजिक संपर्क सामाजिक अंतःक्रिया की प्रथम अवस्था है। सम्पर्क शारीरिक, भौतिक सम्पर्क के साथ–साथ रेडियो पत्र टेलीविजन एवं संचार के अन्य माध्यमों द्वारा आपस में स्थापित किया जाता है। गिलिन व गिलिन ने सामाजिक सम्पर्क को सामाजिक अंतःक्रिया की प्रथम अवस्था माना है। सामाजिक सम्पर्क ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से स्थापित किये जाते है तथा संवेदन शक्ति ज्ञानेन्द्रियों को प्रेरणा देती है।

सामाजिक संपर्क दो प्रकार को होता है – (a) प्रत्यक्ष संपर्क (b) अप्रत्यक्ष संपर्क

1. **प्रत्यक्ष संपर्क** – प्रत्यक्ष संपर्क के अन्तर्गत व्यक्ति या समूह एक दूसरे के शारीरिक संपर्क में रह कर उद्दीपन एवं प्रतिक्रिया करते हैं।

2. **अप्रत्यक्ष संपर्क** – अप्रत्यक्ष संपर्क के अन्तर्गत आमने–सामने न रहकर किसी अन्य माध्यम द्वारा संपर्क को साधा जाता है । जैसे पत्र,टेलीफोन,वीडियो कालिंग इत्यादि के माध्यम से अंतःक्रिया करना । किंग्सले डेविस का मानना है कि अंतःक्रिया के अन्तर्गत अर्थपूर्ण संपर्क का होना अत्यंन्त आवश्यक है बिना इसके अंतःक्रिया सम्पन्न नहीं हो सकती।

संचार –संचार अंतः क्रिया का महत्वपूर्ण तत्व है। संचार का अर्थ अपनी बातों विचारों तथा भावनाओं को दूसरे तक पहुॅचाना हैं। गिलिन एंव गिलिन ने इसे दो भागों में विभाजित किया है।

(1) **पूर्ण संचार**– पूर्ण संचार वह संचार माना जाता है, जब व्यक्ति जो व्यक्त करता है ठीक उसी रूप में दूसरे पक्ष द्वारा समझ लिया जाता है। पूर्ण संचार की स्थिति में सामाजिक अंतःक्रिया व्यवस्थित रूप में घटित होती है।

(2) **अपूर्ण संचार**– जब प्रथम पक्ष दूसरे पक्ष के द्वारा व्यक्त किये गये आशय को नहीं समझ पाता है तो वह अपूर्ण संचार की स्थिति होती है।

संचार, स्थिति सापेक्ष होता है एक ही क्रिया का भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न अर्थ हो सकता है। जैसे–मुस्कुराहट का अर्थ अभिवादन, व्यंग्य, अपमान, खुशी आदि के रूप में लगाया जा सकता है। अंतः क्रिया के अंतर्गत अंतःक्रिया करने वाले व्यक्तियों के मध्य जागरूकता का होना आवश्यक है।

8.3.2 सामाजिक अंतः क्रिया के सिद्धान्त

समाजशास्त्र के अन्तर्गत अंतःक्रियावाद को आगे बढ़ाने में मीड, गारफिंकल, शुट्ज, गॉफमैन जैसे विद्धानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद की उत्पत्ति ब्लूमर के द्वारा लिखित पुस्तक Symbolic Interactionism : Perspective and method .1969 से मानी जाती हैं। ब्लूमर ने प्रथमतः शिशु के विकास को क्रमिक रूप में देखने का प्रयास किया तथा बच्चे के विकास में प्रतीकात्मक अंतःक्रिया को प्रमुख माना तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि शिशु का समाज के सम्बन्ध प्रतीकों के माध्यम से है। अंतःक्रियावाद को वैज्ञानिक धरातल पर रखने का कार्य ब्लूमर के द्वारा किया गया परन्तु इस सिद्धान्त में मीड की महती भूमिका रही है, इन्होनें स्व को केन्द्र बनाकर इसको समझने का प्रयास किया जिसका उल्लेख इन्होनें अपनी पुस्तक mind self and society में किया है।

मीड का सिद्धान्त

मीड ने स्व के आधार पर प्रतीकात्मक अंतःक्रिया को देखने का प्रयास किया है। यहॉ पर स्व का तात्पर्य व्यक्ति के अन्दर पायी जाने वाली सृजनात्मक अवयव से है जो बराबर क्रियाशील रहता है। एक स्व दूसरे स्व से अंतःक्रिया करता है एवं स्व के द्वारा बाहरी दुनिया के तत्वों का मूल्यांकन होता है । समाज के मूल्य, मानक, भूमिक एवं प्रास्थिति स्व के अन्दर आते है । मीड ने स्व के दो अवस्थाओं को देखा । प्रथम अवस्था में स्व सावयक का विशुद्ध रूप है जिसमें अपने मूलभूत आवेग होते है, वह मानमाने ढंग से क्रियाएं करता है। दूसरी अवस्था मुझे या मेरी (me) की है, इस अवस्था में दूसरे के प्रति स्व की अभिवृत्ति संगठित हो जाती है। मेरी (me)की अवस्था में स्व दूसरों से सीखता है और दूसरों की वस्तुओं, मानकों, मूल्यों, भूमिकाओं आदि को अपना बना लेता है तथा इनको अपना समझने लगता है। स्व अंतःक्रिया के माध्यम से अपनी गतिविधियों को निर्धारित करता है, स्व के विकास में मीड ने भूमिका ग्रहण को महत्वपूर्ण माना है । समाज में प्रतीकों की एक बड़ी सूची होती है जिससे व्यक्ति जिस समाज का सदस्य होता है उसके मानक, मूल्य, भूमिका एवं प्रस्थितियों को अपनाने लगता है। संकेतों को परिभाषित करते हुए में मीड़ का मानना है कि संकेत वे तत्व है जिनका स्व ने

आन्तरीकरण कर लिया है जो एक ही अर्थ के प्रतीक है । प्रतीक के न होने पर व्यक्ति पत्थर की मूर्ति के समान है । मीड़ के प्रतीकात्मक अंतःक्रिया सिद्धांत का मुहावरा स्व एवं प्रतीक है। मनुष्य जब बात करते है तब प्रतीकों का प्रयोग करते है तथा संचार प्रभावपूर्ण हो जाता है। अर्नोल्ड रास का भी मानना है दूसरों की भूमिका ग्रहण के बिना प्रतीकों का विकास नहीं हो सकता है।

ब्लूमर का सिद्धांतः

मीड के शिष्य ब्लूमर ने मीड के सिद्धांतों को एक तार्किक रूप में प्रस्तुत किया। इन्होनें मनुष्य के अंतःक्रिया के व्यवहारवादी सिद्धांत को नकारा। उनका मानना था कि व्यवहारवादी सिद्धांतवेत्ता होमन्स ने जो उद्दीपन –प्रतिक्रिया की अवधारणा का विकास मानवीय अंतः क्रियाओं को समझने में किया, वह अपर्याप्त है। इनका मानना था कि व्यवहार में व्यक्ति ही निर्धारक तत्व है। कर्ता दुनिया के विषय में स्वयं निर्वचन करता है एवं समझ बना कर कार्य करता है। हर्बट ब्लूमर ने निर्वचन को अंतःक्रिया का आधार वाक्य बनाया। हर्बट ब्लूमर ने उद्दीपन प्रत्युत्तर की अवधारणा में एक बुनियादी संशोधन किया है। इनका मानना है कि समाज में कर्ता उद्दीपन करता है, लेकिन उद्दीपन का सीधा प्रत्युत्तर नहीं आता है। उद्दीपन व स्व में अंतःक्रिया होती है। स्व उद्दीपन से विवाद करता है और वह विवाद स्व एवं उद्दीपन द्वारा किया गया निर्वचन है और जब तक स्व उद्दीपन के प्रत्युत्तर से संतुष्ट नहीं होता है तब तक वह प्रतिक्रिया नहीं करता है। इसीलिए ब्लूमर उद्दीपन प्रत्युत्तर के बीच निर्वचन को महत्वपूर्ण स्थान देते है। संशोधित अवधारणा इस प्रकार है उद्दीपन–निर्वचन–प्रत्युत्तर । निर्वचन की प्रक्रिया को स्व संकेत के नाम से भी जाना जाता है संकेत का जो अर्थ मीड के द्वारा लगाया गया, वही अर्थ ब्लूमर ने भी लगाया है। इसमें समानता यह है कि व्यक्ति संकेत को समझने के लिए दूसरे की भूमिका को स्वयं अपना लेता है। इस सिद्धांत को व्यवस्थित बनाने के लिए ब्लूमर ने क्रियाओं में अभिप्राय, अभिप्राय का श्रोत, निर्वचन में अभिप्राय की भूमिका को महत्व दिया है। मनुष्य किसी भी वस्तु, प्रतीक के जो अभिप्राय निकालते है उसी के अनुरूप कार्य भी करते हैं। व्यक्ति के अभिप्राय का स्रोत किसी सहयोगी, साथी एवं विरोधी के साथ अंतः क्रिया है । अभिप्रायः या निर्वचन व्यक्ति के द्वारा तय किया जाता हैं।

ब्लूमर ने आगमनात्मक विधि को स्वीकार किया ओर मानव व्यवहार को समझने में इसको सबसे ज्यादा उपयोगी माना है। ब्लूमर का मानना है कि समाज कुछ न होकर प्रतीकात्मक अंतः क्रिया ही है।

इर्विन गॉफमैन का सिद्धान्त–

गॉफमैन प्रतीकात्मक अंतः क्रियावाद के विकास एवं अवधारणाओं के निर्माण में अद्वितीय कार्य किया है। गॉफमैन पर ब्लूमर एवं मीड दोनों का प्रभाव था। उनका सम्पूर्ण संदर्भ उनकी पुस्तक ''द प्रजेन्टेशन आफ सेल्फ इन इवरी डे लाइफ'' में है। उनके अनुसार ''मनुष्य हमेशा सक्रिय रहता है, वह बराबर अधिकतम जानकारी लेने का प्रयत्न करता है। चाहे व्यक्ति अपराधी हो या पथ भ्रष्ट, उसमें भी स्व होता है। वह स्व ही उन्हें बनाता अथवा बिगाड़ता है। गॉफमैन की रूचि अंतः क्रिया के विभिन्न स्वरूपों में है।

गॉफमैन ने अभिनय कला और दैनिक जीवन के माध्यम से जीवन को समझने का प्रयास किया। अभिनय कला के विश्लेषण में फ्रंट एवं बैक दो अवधारणाओं को इन्होंने काम में लिया। फ्रंट वह मंच है जहॉ अभिनेता अपने करतब या अभिनय दिखाता है। यह अभिनय वह है, जिसे देखने की अपेक्षा दर्शक के द्वारा की जाती है।

गॉफमैन का मानना है कि जब **'स्व'** बाहरी दुनिया में आता है तो स्व को अगणित भूमिकाओं का अभिनय करना पड़ता है जहाँ पर उसका व्यवहार औपचारिक एवं संयमित होता है। दूसरी अवधारणा बैक की है, जो मंच के पीछे का भाग होता है, वहॉ पर जो कुछ होता है उसे दर्शक नहीं देख पाते। यहाँ पर व्यक्ति अपने मूल रूप में होता है अर्थात् मेरा से मैं बन जाता है। गॉफमैन को सूक्ष्म सामाजिक प्रक्रियाओं का विश्लेषक भी माना जाता है। व्यक्ति संपर्क, कार्य निष्पादन, भेंट आदि सभी तत्व अपने प्रकृति में सूक्ष्म है, जिनका प्रभाव वृहत समूहों पर पड़ता है।

गारफिंकल का सिद्धान्त–

गारफिंकल के मतानुरूप व्यक्तियों के बीच अंतःक्रिया में, अंतः क्रियाओं एवं स्थिति का विवरण महत्वपूर्ण होता है। गारफिंकल का मानना है कि अंतः क्रिया में विवरण एवं अभिप्राय महत्वपूर्ण होते हैं। अंतः क्रिया का अर्थ संदर्भ या स्थिति से माना जाता है और जब अंतः क्रिया का विवरण दिया जाता है तो यह पूर्ण होता है, जिससे अभिप्राय निकलता है।

बोध प्रश्न 1

(i) सामाजिक अंतः क्रिया कितने स्तरों पर घटित होती है?

(ii) सामाजिक अंतः क्रिया के कितने आधारभूत तत्व हैं?

(iii) मीड का सिद्धान्त किस पर आधारित है?

(iv) ब्लूमर किससे शिष्य थे?

(v) अपनी अवधारणा में किसने फ्रंट एवं बैक का इस्तेमाल किया है?

8.4. सामाजिक उद्दीपक–

सामाजिक अंतः क्रिया उद्दीपन एवं प्रतिक्रिया के माध्यम से घटित होता है। किसी अंतः क्रिया का प्रथम तत्व सामाजिक उद्दीपक को माना जाता है। अंतः क्रिया के माध्यम से ही समाज का निर्माण होता है। अधिगम की प्रक्रिया में भी उद्दीपक का ही योगदान होता है, जिसके बारे में मनोवैज्ञानिकों ने अनेकानेक सिद्धांतों का

प्रतिपादन किया है। क्रो एवं क्रो का मानना है कि अधिगम आदतों, ज्ञान एवं अभिवृत्तियों का अर्जन है। अधिगम प्रक्रिया के अनेक पक्ष होते है जो उद्दीपक के प्रभावकारिता से सम्बन्धित होते है।

सामाजिक उद्दीपक व्यक्ति की अपेक्षा समूह के सदस्यों में प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। सामाजिक उद्दीपक को वृहत समाजशास्त्र के अध्ययन वस्तु के रूप में स्वीकार किया जाता है। यह व्यक्ति के व्यवहार का ऐसा तत्व है जो दूसरे व्यक्ति एवं समूह के व्यवहार को प्रभावित करता है। जनप्रवादों, खबरों, मीडिया, जनसंचार आदि के रूप में उद्दीपक जनमत, समूहों का निर्माण कर सामाजिक प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं।

आलपोर्ट ने भीड़ व्यवहार को समझाने के लिए ''पारस्परिक उत्तेजना'' का सिद्धांत प्रस्तुत किया। पारस्परिक उत्तेजना के फलस्वरूप भीड़ में प्रत्येक व्यक्ति के कार्य को दूसरा व्यक्ति ग्रहण कर लेता है, जिसके फलस्वरूप भीड़ व्यवहार, असामान्य हो जाता है और एक व्यक्ति की भावनाएं दूसरे की हो जाती है। सामाजिक क्रिया अनुगामी होने के फलस्वरूप सबकी क्रियाए एक जैसी हो जाती है और लोग वैसा ही करते है जैसा प्रत्येक व्यक्ति करता है। एक व्यक्ति के मस्तिष्क का प्रसार दूसरे व्यक्ति में इसलिए होता है कि मानव की प्रकृति एक जैसी होती है, सबका पर्यावरण एक जैसा होता है। सारांशतः सामाजिक उद्दीपक सामाजिक रूप से उत्पन्न किये गये उद्दीपक होते है, जिसमें समूह सम्बन्धी प्रतिक्रिया होती है।

8.5 सामाजिक अभिवृत्ति का अर्थ एवं परिभाषा

अभिवृत्ति के संदर्भ में विविध सैद्धांत, उपागमों एवं दृष्टिकोणों के चलते मनोवैज्ञानिकों एवं समाजवैज्ञानिकों के द्वारा दी गयी किसी सर्वमान्य परिभाषा का अभाव है। दृष्टिकोण या अभिवृत्ति एक मानसिक या स्नायुपरक तत्परता, संगठन अथवा अभिविन्यास है जिसमें प्रेरणात्मक,भावात्मक,प्रत्यक्षात्मक एवं विचारात्मक प्रक्रियाए सम्मिलित होती है जिस कारण व्यक्ति के चारों ओर वस्तुओं, व्यक्तियों अथवा समूह की सकारात्मक या नकारात्मक प्रक्रिया निर्देशित होती है। जब कोई विचार, सिद्धांत या किसी या व्यक्ति के सम्बन्ध में हमारी धारणा पुष्ट एवं विकसित होती है तो उसे दृष्टिकोण या अभिवृत्ति कहते है। स्वभाव, विचार एवं अभिवृत्ति के मध्य अन्तर पाया जाता है। स्वभाव से आशय उन भावनाओं से है जो चरित्र का स्थायी अंग बन जाता है तथा विचार मन की वह प्रक्रिया है जिसमें हम पुराने अनुभवों को वर्तमान समस्याओं के हल करने में लगाते है।

अभिवृत्ति की परिभाषा

आलपोर्ट के अनुसार –'' अभिवृत्ति मानसिक एवं स्नापुरक तत्परता की स्थिति है जो अनुभव के द्वारा निर्धारित होती है तथा उन समस्त वस्तुओं एवं परिस्थितियों के प्रति व्यक्ति को प्रेरित एवं निर्देशित करती है। आलपोर्ट इसको मानसिक एवं स्नायुपरक तत्परता की स्थिति मानते है जो परिस्थिति के सापेक्ष व्यक्ति के मनोभाव का मूल्यांकन करती है। यह जन्मजात न होकर अनुभवों द्वारा प्राप्त होती है। आलपोर्ट के अनुसार इसके पॉच अंग है–

1. अभिव्यक्ति के पक्ष है– **(a)- मानसिक (b)- स्नाप्रपरक**
2. यह प्रतिक्रिया की तत्परता है।
3. यह संगठित होती है जिसके विभिन्न पक्ष संज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक है।
4. इसका अनुभव के आधार पर अर्जन होता है ।

5. यह व्यवहार को दिशा निर्देशन के साथ खास प्रकार का शक्ति भी प्रदान करता है।

बी0कुप्पुस्वामी का मानना है कि ''हमारी अभिवृत्तिया प्राथमिक रूप से सामाजिक प्रभावों से उत्पन्न होती है। व्यक्ति जन्म से ही ऐसे सामाजिक संस्थाओं के जाल में उलझ जाता है जो व्यक्ति के भौतिक जगत का निर्माण करती है। सामाजिक इकाई के रूप में परिवार का किसी व्यक्ति के अभिवृत्ति के निर्माण पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि बाद में प्राप्त होने वाले अनुभव आसानी से परिवार से प्राप्त अनुभवों को बदल नहीं पाते है। अभिवृत्ति समूह, संस्थाओं के प्रति एक संगति प्रदान करती है।''

क्रंच एवं क्रचफील्ड के अनुसार ''व्यक्ति का समाजिक व्यवहार उसके अभिवृत्तियों को प्रतिबिम्बित करता है। यह सामाजिक परिदृश्य के प्रति धनात्मक, ऋणात्मक मूल्यांकन एवं संवेगात्मक भावों के पक्ष या विपक्ष के क्रियात्मक झुकाव की अपेक्षाकृत स्थायी पद्धति है। अभिवृत्तिया संवेगात्मक, अभिप्रेरणात्मक, प्रत्यक्षात्मक तथा संज्ञानात्मक क्रियाओं का संगठन है।''

वी0 वी0 अकोलकर ने अभिवृत्ति को स्पष्ट एवं संक्षेप में परिभाषित करते हुए कहा है कि ''अभिवृत्तिया किसी वस्तु या व्यक्ति के विषय में एक विशेष ढंग से सोचने, अनुभव एवं कार्य करने की तत्परता की दशा को इंगित करता है। यह किसी वस्तु, व्यक्ति के बारे में सोचने अनुभव करने के क्रिया की तत्परता की स्थिति को कहते है।''

8.5.1. अभिवृत्ति की विशेषताएँ–

विभिन्न विद्वानों के द्वारा अभिवृत्ति की दी गयी परिभाषाओं एवं अर्थ के अनुरूप इसकी विशेषताए निम्नवत हैः–

1. अभिवृत्ति एक मानसिक एवं स्नायुपरक अवस्था है।

2. यह प्रतिक्रिया की तत्परता है।

3. अभिवृत्ति जटिल एवं संगठित होती है। इसके संगठक के रूप में भावात्मक, संज्ञानात्मक, व्यवहारात्मक तीनों तत्व समाहित होते है। यह स्वतंत्र चर भी है।

4. अभिवृत्ति व्यक्ति अर्जित करता है।

5. अभिवृत्ति स्थायी होते हुए भी परिवेश के अनुरूप परिवर्तित होता है।

6. इसकी एक दिशा होती है तथा तीव्रता भी पायी जाती है।

उसकी विशेषताओं में दिशा, तीव्रता, केन्द्रीयता, प्रमुखता, उन्मुखता, सुसंगति इत्यादि प्रमुख है।

8.5.2 अभिवृत्ति निर्माण एवं इसके संघटक तत्व

अभिवृत्ति निर्माण– सामाजिक सीख अभिवृत्ति निर्माण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। सामाजिक सीख उद्दीपन एवं प्रत्युत्तर की उस प्रक्रिया के रूप में देख सकते है जिनके द्वारा हम अन्य लोगों से नयी जानकारी, व्यवहार के तरीके या मनोवृत्तियों को ग्रहण करते है। बाल्यावस्था से ही बच्चे का सामाजीकरण प्रारम्भ हो जाता है। परिवार में सामाजीकरण के दौरान बच्चा विभिन्न व्यक्तियों, वस्तुओं इत्यादि के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक अभिवृत्ति निर्मित करता है। परिवार के साथ बच्चा अपने संगी–साथी, समूह के अन्य सदस्यों एवं

विभिन्न परिस्थितियों, शिक्षालय इत्यादि से सीखकर अभिवृत्ति का विनिर्माण करता है। अभिवृत्तियों का निर्माण बहुतायत उस जगह से होता है जहॉ का वह सदस्य होता है। अभिवृत्तियों का अध्ययन मनोवैज्ञानिकों, समाज वैज्ञानिक के द्वारा किया जाता रहा है। अभिवृत्ति के लिए सीख एवं साहचर्य पर आधारित सीख महत्तवपूर्ण माना गया है।

अभिवृत्ति के संघटक तत्व– अभिवृत्ति के तीन संघटक तत्व संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक माना जाता है। मनुष्य द्वारा प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति या अन्य के प्रति प्रत्यक्षीकरण जिस रूप में किया जाता है, संज्ञानात्मक संघटक को इंगित करता है। यह सकारात्मक या नकारात्मक दोनों हो सकता है। यह स्थिर प्रकृति का होता है। अभिवृत्ति का दूसरा तत्व भावात्मक है जो संवेगों के आधार पर विनिर्मित होता है। जैसे किसी को पसंद करना या नापसंद करना या अन्य भावनाओं से ओत–प्रोत तत्व। भावात्मक तत्व व्यक्ति के संवेगों प्रेम, घृणा, सौहार्द आदि को दर्शाते है। अभिवृत्ति का तीसरा संघटक तत्व क्रियात्मक है जो वस्तु या व्यक्ति के प्रति व्यक्ति के क्रिया व्यवहार को अभिव्यक्त करता है। अभिवृत्तियों परिवर्तन भी सम्भावित होता है जो विविध कारकों के कारण होता है। अभिवृत्तियों के संज्ञानात्मक तत्व में परिवर्तन विभिन्न परिस्थितियों के कारण होता है जो मूल क्रियात्मक संगठक में भी परिवर्तन लाता है।

पूर्वाग्रह एवं अभिवृत्ति – पूर्वाग्रह किसी भी सामाजिक समूह के सदस्यों के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति का द्योतक है जबकि अभिवृत्ति व्यापक अवधारणा है जिसके अंतर्गत व्यक्ति की संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्ष सम्मिलित होते है जिसे वह अपने परिवेश के माध्यम से सीखकर प्रतिक्रियाओं को प्रेरित व निर्देशित करता है।

8.5.3 अभिवृत्ति के प्रकार

अभिवृत्ति के प्रकार– मानव प्रकृति के आधार पर अभिवृत्तियों को निम्न श्रेणियों में विभाजित किया जासकता है–

1. **सकारात्मक–** मनुष्य की ऐसी अभिवृत्ति जो मानव समाज के लिए सकारात्मक होती है जिसके द्वारा समाज में एक रचनात्मक एवं संगठनात्मक कार्य होते है सकारात्मक अभिवृत्ति के रूप में गिने जाते है। सकारात्मक अभिवृत्ति के अंतर्गत दृढ़ता, समझदारी, पसंदगी, उद्देश्यपूर्ण कार्य, प्रसन्नता, आदि आते हैं जिसके द्वारा समाज में सर्जन एवं उत्थान का कार्य होता है।

2. **नकारात्मक अभिवृत्ति–** नकारात्मक अभिवृत्ति के अंतर्गत वे तत्व आते है जो समाज के लिए हानिकारक होते है। इस अभिवृत्ति के माध्यम से विघटनकारी प्रवृत्तियॉ क्रियाशील होती है। इसके अंतर्गत क्रोध, शंका, नापंसदगी, तनाव, ईर्ष्या एवं जलन इत्यादि तत्व आते है।

3. **प्राकृतिक अभिवृत्ति–** इसके अंतर्गत व्यक्ति की प्राकृतिक तत्वों को लिया जाता है। आहार, निद्रा, भय, मैथुन जैसी क्रियाए प्राकृतिक अभिवृत्ति के अंतर्गत आती है। यह स्वतः क्रियाशील होती है।

बोध प्रश्न –2

(i) अभिवृत्ति के कितने पक्ष हैं ?

____

(ii) अभिवृत्ति के कितने संघटक तत्व माने जाते हैं ?

____

(iii) मानव अभिवृत्ति प्रकृति के आधार पर कितने प्रकार का होता है ?

____

(iv) अभिवृत्ति किससे आधार पर अर्जित की जाती है ?

____

8.6. सारांष–

सामाजिक अंतः क्रिया को मानव समाज की आधारशिला माना जाता है। सामाजिक अंतः क्रिया में मात्र अर्थपूर्ण भावना एवं भाषा को शामिल किया जाता है। बिना अंतः क्रिया के मानव जीवन का चलना सम्भव नहीं है क्योंकि मानव सम्भ्यता के हर काल में हमारे द्वारा जो अर्जन किया गया है उसके लिए मानवीय अंतः क्रियाएं एवं मानव की खोजी प्रवृत्ति ही उत्तरदायी है। किसी भी मानवीय अंतः क्रिया का निर्माण उद्दीपन और उसके प्रत्युत्तर के द्वारा होता है। दोनों का सामाजिक अंतः क्रिया के लिये होना आवश्यक है साथ ही परिवेश भी इसमें महती भूमिका निभाता है। उद्दीपन सजीवों की एक प्रवृत्ति है जो मनुष्य अंतिम क्षण तक करता है। अभिवृत्ति का निर्माण मानव के अंतः क्रिया से संभव होता है। अभिवृत्ति के अन्तर्गत मानसिक या स्नायुपरक तत्परता शामिल होता है जिसको व्यक्ति अनुभव प्राप्त करता है अर्थात यह अनुभव द्वारा अर्जित होती है तथा सम्पूर्ण व्यवहार इससे निर्देशित होता है।

8.7. बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(i) तीन

(ii) दो

(iii) स्व

(iv) मीड

(v) गॉफमेन

बोध प्रश्न 2

(i) दो

(ii) तीन

(iii) तीन

(iv) गॉफमैन

8.8.संदर्भ ग्रंथ–

(i) सिंह, जे0पी0– समाजशास्त्र : अवधारणा एवं सिद्वांत, प्रेंटिस हाल आफ इण्डिया, (प्राइवेट लिमिटेड) नई दिल्ली, 2007

(ii) सिंघी नरेन्द्र कुमार एवं गोस्वामी वसुधाकर– समाजशास्त्र विवेचन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1999

(iii) दोषी एस0 एल0 एवं त्रिवेदी एम0एस0–उच्चतर समाजशास्त्र सिद्वांत, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2013

(iv) www.scotbuzz.org

(v) https:// hi.wikipedia.org/wiki/ अभिवृत्ति

(vi) तिवारी ऍ0के0–समाजशास्त्र, वाणी प्रकाशन, इलाहाबाद, 2001

(vi) Gillin J.L.& Gillin S.P.-Cultural sociology,MacMillan,New Yark,1948

8.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1– सिंह, अरूण कुमार– उच्चतर मनोवैज्ञानिक सिद्धांत, मोतीलाल बनारसी दास , जवाहर नगर, नई दिल्ली, 2015

2– रावत, हरिकृष्ण– समाजशास्त्र विश्व कोष, रावत पब्लिकेशन, जयपुर 2002

3– गुप्ता एम0एल0तथा शर्मा डी0डी0–समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन , आगरा 1996।

4– Devis, K - Human Society ,MacMillan, New Yark,1948

8.10. निबंधात्मक प्रष्न–

(1) सामाजिक अंतः क्रिया से आप क्या समझते हैं?

(2) सामाजिक अंतःक्रिया के सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए?

(3) अभिवृत्ति के अर्थ को स्पष्ट कीजिए?

(4) अभिवृत्ति के संघटक तत्व कौन–कौन से हैं?

(5) अभिवृत्ति की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए?

इकाई9
सामाजिक अन्तर्क्रिया की प्रक्रियाएं तथा प्रक्रार

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 सामाजिक अन्तर्क्रिया की प्रक्रियाएं
9.3 समाजिक सुगमता या सौकर्य
9.4 सहयोग
9.5 समंजन या व्यवस्थापन
9.6 आत्मसात्करण
9.7 प्रतिस्पर्धा
9.8 समूह या सामाजिक संघर्ष
9.9 सामाजिक परिस्थिति का विभेदक प्रभाव
9.10 अन्तर्वैयक्तिक अनुक्रिया गुण एवं अन्तर्क्रिया
9.11 सारांश
9.12 शब्दावली
9.13 अभ्यास प्रश्न
9.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक अन्तर्क्रिया की प्रक्रियाएं तथा प्रक्रार को समझाने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही समाजिक सुगमता या सौकर्य, सहयोग, समंजन, या व्यवस्थापन, आत्मसात्करण,प्रतिस्पर्धा, समूह या सामाजिक संघर्षको स्पष्ट करना भी इस इकाई का उद्देश्य है। आशा है कि इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप :

- सामाजिक अन्तर्क्रियाकी प्रक्रियाएं तथा प्रक्रार को समझ पाएँगे;
- समाजिक सुगमता या सौकर्य तथा सहयोग के उद्दीपक को समझ पाएँगे;
- समंजन या व्यवस्थापन तथा आत्मसात्करणकी व्याख्या कर पाएँगे;
- प्रतिस्पर्धा तथा समूह या सामाजिक संघर्ष समझ पाएँगे; तथा
- अन्तर्वैयक्तिक अनुक्रिया गुण एवं अन्तर्क्रियाको समझ पाएँगे;
- सामाजिक परिस्थिति का विभेदक प्रभाव को स्पष्टतया समझ पाएँगे।

9.1 प्रस्तावना

व्यक्ति के जीवन में सामाजिक अन्तर्क्रिया सदैव चलती रहती है। इसीलिए सामाजिक मनोविज्ञान को सामाजिक अन्तर्क्रिया या अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार घटना के भी रूप में परिभाषित किया जाता है इसका आशय व्यक्ति एवं उसके परिवेश के पक्षों, जैसे – अन्य व्यक्ति एवं समूह आदि द्वारा एक दूसरे को प्रभावित करने से है।

9.2 सामाजिक अन्तर्क्रिया की प्रक्रियाएं

लोगों के बीच सामाजिक अन्तर्क्रियाविभिन्न रूपों में घटित होती है। इन्हें सामाजिक प्रक्रम भी कहा जाता है। विभिन्न प्रक्रमों को दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता है –

(अ) एकीकरण या सम्बद्धक सामाजिक प्रक्रम– ऐसे सामाजिक प्रक्रम, जो लोगों को एक दूसरे के साथ सहयोग आदि करने के लिए प्रेरित करते है और जिनसे लोगों में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापति होता है। उन्हें एकीकरण या सम्बद्धक सामाजिक प्रक्रम कहा जाता है।

(ब) विघटनात्मक या बिच्छेदक सामाजिक प्रक्रम– ऐसी सामाजिक प्रक्रियाएं, जो लोगों में दूरी या तनाव बढ़ाती है उन्हें विघटनात्मक या विच्छेदक सामजिक प्रक्रियाएं कहा जाता है। प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष इत्यादि इसके उदाहरण हैं। अब कुछ प्रमुख सामाजिक प्रक्रमों का वर्णन किया जाएगा।

9.3 समाजिक सुगमता या सौकर्य

विभिन्न शोधकर्ताओं का निष्कर्ष है कि यदि कोई व्यक्ति कोई कार्य कर रहा है और उस समय अन्य कोई व्यक्ति उपस्थित हो जाता है तो उसकी उपस्थिति का पहले वाले व्यक्ति को निष्पादन पर प्रभाव पड़ेगा। यह प्रभाव अनुकूल या धनात्मक या नकारात्मक हो सकता है यदि प्रभाव अनुकूल या धनात्मक है तो इसे सामाजिक सुगमता (सौकर्य) या सरलीकरण कहा जाता है यदि प्रभाव नकारात्मक या प्रतिकूल है तो इसे सामाजिक व्यवधान कहा जाता है।

मायर्स (1988) के अनुसार, सामाजिक सुगमता का मौलिक आशय व्यक्ति की ऐसी प्रवृत्ति से है जिसके कारण वह अन्य लोगों की उपस्थिति में सरल या विधिवत सीखे हुए कार्यो को अपेक्षाकृत अच्छे ढंग से कर लेता है।

मायर्स का मत है कि इसका आधुनिक अर्थ थोड़ा भिन्न है। इनका मत है कि अन्य लोगों की उपस्थिति के कारण प्रभावी (सम्भावित) अनुक्रियाओं का दृढ़ होना या उनके प्रदर्शन की सम्भावना में वृद्धि होना सामाजिक सुगमता कहा जाता है।''

यंग (1960) – ने भी इसे इसी तरह परिभाषित किया जाता है। इनके अनुसार, ''सामाजिक सुगमता को अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति या उनके कार्यों के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की अनुक्रिया में होने वाली वृद्धि के रूप में परिभाषित किया जा सकाता है।''

कुछ विद्वान दूसरों की उपस्थिति से किसी के निष्पादन में होने वाली कमी को भी इसी के अन्तर्गत मानते है। यथा **बैरन एवं बायर्न** (1987) का मत है कि ''सामाजिक मनोविज्ञान में सामाजिक सुगमता का आशय दूसरों की उपस्थिति का किसी व्यक्ति के निष्पादन (कार्य) पर पड़ने वाले प्रभावों से है। इस प्रकार इसमें कार्य में होने वाली वृद्धि या ह्रास दोनों को सम्मिलित किया जाता है।

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि कोई कार्य करते समय अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति उदोलन उत्पन्न कर सकती है और व्यक्ति (प्रयोज्य) की कार्य क्षमता में वृद्धि हो सकती है। यहाँ स्पष्ट है कि अन्य व्यक्ति की उपस्थिति उत्प्रेरक का कार्य कर सकती है और व्यक्ति की अव्यक्त क्षमता भी कार्य–निष्पादन के लिए सक्रिय हो जाती है। सामान्य परिस्थितियों में ऐसा नहीं हो पाता है। उदाहरणार्थ, किसी साइकिल चालक को देखियें। जब उसके बगल में कोई दूसरा साइकिल चालक पहुँच जाता है तो वह और भी तेज रफ्तार कर लेता है। परीक्षाफल में किसी छात्र के बगल में किसी अध्यापक के खड़े हो जाने पर उसकी गति और भी बढ़ जाती है। वैसे कभी–कभी कुछ छात्रों की लेखन गति अवरूद्ध (कम) भी हो जाती है। **बैरन एवं बायर्न** (1987) ने इसी कारण वृद्धि और ह्रास दोनों को ही इसका परिणाम माना है। वैसे, कार्य में वृद्धि को ही प्रायः सामाजिक सुगमता का नाम दिया जाता है।

अन्य लोगों की उपस्थिति का परिणाम

किसी व्यक्ति द्वारा कोई कार्य करते समय अन्य व्यक्तों की उपस्थिति उसके कार्य पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है।

निष्पादन में वृद्धि – अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति से किसी व्यक्ति या प्रयोज्य के निष्पादन या कार्य की मात्रा में वृद्धि हो सकती है । यह सामाजिक सुगमता का उदाहरण होगा। **ट्रिपलेट** (1898) द्वारा किये गये प्रारम्भिक प्रयोग इसके उदाहरण हैं। ट्रिपलेट ने पाया कि प्रयोज्य ने अकेले साइकिल चलाने की दशा में 24 मील की दूरी एक घण्टे में तय की। जब उसके साथ एक और साइकिल चलाक हो लिया तो उसने उतने ही समय में 31 मील की दूरी तक कर ली। यहाँ चालक केवल साथ था वह प्रतिस्पर्धा नहीं था। सामान्य भाव में उसके बगल में चल रहा था और जब उसके बगल में एक प्रतिस्पर्धी आ गया तो उसने (प्रयोज्य) एक घण्टा में 32.6 मील की दूरी तय कर ली। स्पष्ट है कि अन्य व्यक्ति की उपस्थिति से उसकी चाल में काफी वृद्धि हो गयी। अन्य व्यक्ति की मात्र उपस्थिति में चाल की 30 प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी और प्रतिस्पर्धा की दशा में चाल में 5 प्रतिशत की और भी वृद्धि हुई। इस आधार पर **ट्रिपलेट** ने निष्कर्ष दिया, ''विभिन्न कार्यो में एक से अधिक व्यक्तियों की सहभागिता सामान्य दशाओं में उपलब्ध न हो सकने वाली अव्यक्त क्षमता को भी उपलब्ध करा देती है।''

सामाजिक सुगमीकरण के प्रभाव का अध्ययन **ट्रिपलेट** के बाद भी अनेक लोगों द्वारा किया गया है और निष्कर्ष पूर्ववत ही पाया गया है। अन्य लोगों की उपस्थिति से गति के अतिरिक्त कार्य कुशलता में भी वृद्धि होती है। साधारण गुणा, अक्षरों को छाँटने तथा सामान्य पेशीय कार्यों में अन्य लोगों की उपस्थिति से वृद्धि ही नहीं उसमें सुधार भी होता है। ऐसे निष्कर्ष पशु प्रयोज्यों पर भी प्राप्त हुए हैं।

निष्पादन में ह्रास– अन्य लोगों की उपस्थिति का प्रयोज्य के कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ सकता है और निष्पादन की मात्रा घट जाती है। पशु प्रयोज्यों पर ऐसे अनेक निष्कर्ष प्राप्त हुए है। मानव प्रयोज्यों के भी कार्य पर (गुणा करना, जोड़ना, शब्द याद करना) अन्य लोगों की उपस्थिति का बाधक प्रभाव पाया गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो रहा है कि अन्य लोगों की उपस्थिति का किसी के कार्य पर कैसा प्रभाव पड़ेगा इसका स्पष्ट

उत्तर देना कठिन है। इस सम्बन्ध में वस्तुस्थिति सन् 1965 तक विवादास्पद बनी रही। जोबाद में **जैजान्क** के अध्ययनों से स्थिति काफी स्पष्ट हुई है।

जैजान्क का सिद्धान्त–जैजान्क (1965) ने यह विचार व्यक्त किया कि ''यदि कार्य सरल हो तो अन्य लोगों की उपस्थिति से सुगमीकरण प्रभाव पैदा होगा और कार्य की गति बढ़ जायेगी। परन्तु यदि कार्य कठिन है और उसका समाधान जानकारी में नहीं है तो गति धीमी पड़ सकती है और त्रुटियाँ भी अधिक होंगी।'' सम्प्रति सामाजिक सुगमता को इसी तरह परिभाषित भी किया जाता है। **जैजान्क** का विचार सुगमीकरण के अन्तर्नोद सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। इसके अनुसार, ''जिन कार्यो में व्यक्ति अभ्यस्त है उन पर अन्य की उपस्थिति का अनुकूल प्रभाव पड़ेगा जिनमें अभ्यस्त नहीं है उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। यथा छोटे बच्चे साधारण जोड़ का काम अन्य लोगों के सामने शीघ्रता से कर लेते है परन्तु कठिन गुणा–भाग करने में त्रुटियाँ करने लगते है। इसी प्रकार अभ्यस्त व्यक्ति श्रोताओं के समक्ष काफी ओजस्वी भाषण दे लेता है परन्तु कम अभ्यस्त व्यक्ति हकलाने लगता है। **जैजान्क** तथा **स्टिफेन सेल्स** (1966) के एक अन्य अध्ययन से भी निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि पर्दे पर प्रक्षेपित शब्दों में से परिचित शब्दों की पहचान शीघ्रता तथा शुद्धता के साथ ही गयी। अपरिचित शब्दों को प्रत्यक्षित करने में त्रुटियाँ अधिक की गयी। जैजान्क के सिद्धान्त के मुख्य अभिग्रह चित्र 3.1 में दर्शाए गए है। चित्र में स्पष्ट है कि अन्य लोगों की उपस्थिति से व्यक्ति में उदोलन अवश्य उत्पन्न होगा। परन्तु उदोलन का परिणाम, कार्य के स्वरूप पूर्वानुभव तथा व्यक्ति के ज्ञान पर भी निर्भर करेगा।

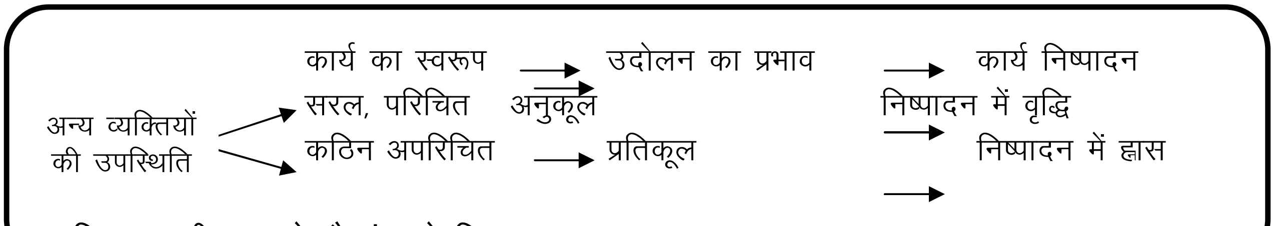

सामाजिक सुगमीकरण के जैजांक के सिद्धान्त का माडल

जैजांक के निष्कर्षों की पुष्टि अन्य अध्ययनों से भी हुई है। **हंट एवं हिलेरी** (1973) का निष्कर्ष है कि अन्य लोगों की उपस्थिति में छात्रों ने साधारण भूलभूलैया सीखने में समय कम और जटिल भूलभूलैया सीखने में समय अधिक लिया। एक अन्य अध्ययन में भी यह निष्कर्ष पाया गया है कि अन्य लोगों की उपस्थिति में अध्यस्त छात्रों में शॉट लगाने में सफलता अधिक प्राप्त की (70% से बढ़कर 80% सफलता)। इसके विपरीत कम अभ्यस्त छात्रों को शॉट प्रतिशत 36 से घटकर 2.5% तक हो गया।

अनेक अन्य शोधकर्ताओं का भी मत है अन्य लोगों की उपस्थिति की निष्पादन की एममात्र निर्धारक नहीं है, अपितु इस पर अन्य कारकों का भी प्रभाव पड़ता है। संक्षेप में कुछ मुख्य निष्कर्ष इस प्रकार है –

1. **कार्य की जटिलता**– सरल तथा परिचित कार्यों पर अन्यों की उपस्थिति का अनुकूल तथा कठिन कार्यो पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।
2. **शारीरिक परिवर्तन**– अन्यों की उपस्थिति से प्रयोज्य की हृदयगति एवं रक्तचाप इत्यादि बढ़ सकता है जिसका कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
3. **व्यक्तियों की संख्या**– अन्य व्यक्तियों की संख्या बढ़ जाने से कार्य–कुशलता घट सकती है। अधिक लोगों की उपस्थिति बाधक प्रभाव उत्पन्न करेगी।
4. मूल्यांकन आशंका – यदि प्रयोज्य को आशंका है कि लोग उसका मूल्यांकन कर रहे है तो उदोलन बढ़ जायेगा जिससे निष्पादन में वृद्धि होगी।

5. **आत्म प्रदर्शन**– यदि प्रयोज्य इस द्वन्द्व में है कि अन्य व्यक्तियों का कार्य उससे अधिक न हो जाय तो सुगमीकरण–प्रभाव अधिक उत्पन्न होगा क्योंकि वह अपेक्षाकृत अधिक सक्रियता से कार्य करने लगेगा।

9.4 सहयोग

सहयोग सामाजिक जीवन की आधारशिला है। सामाजिक अन्तर्क्रियाओं का यह एक प्रमुख रूप है। सामान्यतः इसका आशय ऐसे व्यवहार से लिया जाता है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति या समूह परस्पर मिलकर किसी लक्ष्य को प्राप्त करने या किसी कार्य को निष्पादित करने का प्रयास करते है।

फेयरचाइल्स(1954) के अनुसार, ''सहयोग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग या समूह प्रायः संगठित होकर उभयनिष्ठ उद्‌दश्य को प्राप्त करने का प्रयास करते है।''

अकोलकर (1960) का मत है कि सहायेगी व्यवहार का मूल तत्व यह है कि सम्बन्धित व्यक्तियों (या समूहों) का कोई उभयनिष्ठ उद्‌दश्य होता है और वे परस्पर ऐसा व्यवहार करते है कि लक्ष्य प्राप्त किया जा सकें।''

ग्रीन (1956) का मत है कि ''उभयनिष्ठ रूप में इच्छित किसी कार्य को करने या किसी लक्ष्य को प्राप्त करने की दृष्टि से दो या दो अधिक व्यक्तियों द्वारा किया जाने वाला सतत एवं सामूहिक प्रयास सहयोग कहा जाता है।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि सहायोग एक प्रकार का परस्पर मिलकर किया जाने वाला व्यवहार है। इस प्रकार के व्यवहार का उद्‌दश्य लोगों के उभयनिष्ठ लक्ष्य को प्राप्त करना होता है और लक्ष्य की प्राप्ति तक या परस्पर इच्छित कार्य के पूरा होने तक लोगों का समन्वित प्रयत्न जारी रहता है। जहाँ समाज है, वहाँ सहयोग है। सहयोग के बिना सामाजिक जीवन की कल्पना भी नहीं की जा कसती। सहयोग लोगों को एक सूत्र में बाँधता है। समाज और सामाजिक इकाइयों (जैसे – परिवार, समूह आदि) को एकजुट किए रहने और उन्हें उभयनिष्ठ उद्‌दश्यों एवं लक्ष्यों के प्रति सदैव प्रयत्नशील बनाए रखने की दृष्टि से सहयोगी व्यवहार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संक्षेप में सहयोगी व्यवहार से समय श्रम तथा संसाधनों की भी बचत होती है।

सहयोग के प्रकार– सहयोगी व्यवहार का वर्गीकरण अनेक रूपों में कर सकते है –

मैकआइवर तथा पेज (1952) ने इसे दो वर्गो में विभक्त किया है –

1. **प्रत्यक्ष सहयोग**– यदि दो या दो से अधिक लोग एक साथ मिलकर कोई उभयनिष्ठ कार्य करते हैं, तो उसे प्रत्यक्ष सहयोग कहते है, जैंसे – किसी टीम के लोगों द्वारा परस्पर सहयोग करके जीतने का प्रयास करना।
2. **अप्रत्यक्ष सहयोग**– यदि किसी उभयनिष्ठ लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु अलग–अलग परन्तु समन्वित प्रयास किया जाता है तो उसे अप्रत्यक्ष सहयोग कहते है, जैसे किसी के उद्‌दश्यों को ही प्राप्त करना होता है। आज के युग में इस प्रकार के सहयोग का महत्व अपेक्षाकृत अधिक है क्योंकि प्रत्यक्ष सहयोग सीमित रूप में ही हो पाता है।

ग्रीन ने सहयोग को तीन वर्गों में विभक्त किया है –

1. **प्राथमिक सहयोग**– यह सहयोग की वह स्थिति है जिसमें किसी समूह के सदस्य अपने लक्ष्यों और समूह को अपना लक्ष्य मानते है, जैसे – परिवार में माता–पिता अपने बच्चों के कल्याण के प्रति समर्तित होते है और परिवार के सदस्य भी परिवार के विकास के प्रति प्रयत्नशील रहते है। ऐसी स्थिति में अपनत्व एवं घनिष्ठता अधिक पाई जाती है। यह सहयोग 'में' के स्थान पर 'हम' ही भावना विकसित करता है।

2. **गौण सहयोग**– सहयोग का यह प्रकार लोगों में 'हम' के स्थान पर 'मैं' की भावना का बढ़ावा देता है। ऐसा सहयोग अपने लाभ या हित साधन हेतु किया जाता है। गौण समूहों में ऐसा सहयोग प्रायः पाया जाता है। आधुनिक समाज में इसका प्रभाव तीव्र गति से बढ़ रहा है। यही कारण है कि आधुनिक समाज में स्वार्थ की प्रवृत्ति बढ़ रही है। कर्मचारी और मालिक में एवं मित्रों या सम्बन्धियों में इस प्रकार का सहयोग प्रायः देखने को मिलता है।
3. **तृतीयक सहयोग**– यह सहयोग का वह रूप है जिसके कारण परस्पर विपरीत विचारों के लोग भी किसी विशेष परिस्थिति के कारण परस्पर सहयोग करने के लिए तैयार हो जाते है, जैसे– राष्ट्रीय संकट के समय सभी राजनैतिक दल परस्पर सहयोग का प्रदर्शन करते है। ऐसे सहयोग को समंजन भी कहते है। इसके कारण लोग परस्पर समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाकर किसी लक्ष्य की ओर अग्रसर होते है।

सहयोग के कारण– लोगों में सहयोगी व्यवहार अनेक कारणों से पाया जाता है –

1. **लक्ष्य की प्राप्ति**– पारस्परिक सहयोग से ऐसे लक्ष्यों को भी प्राप्त किया जा सकता है जिन्हें अकेले प्रयास करके प्राप्त करना कठिन होता है, जैसे किसी संस्था के विकास से अनेकानेक लोगों को लाभ मिलता है। संस्था सामाजिक सहयोग से ही खड़ी होती है।
2. **आवश्यकताओं की पूर्ति**– सहयोग का एक मुख्य कारण यह है कि इससे व्यक्ति की विभिन्न आवश्यकतओं की पूर्ति होती है। व्यक्ति अकेले अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता है। उसे अन्य लोगों का सहयोग चाहिए ही।
3. **विकास के अवसर**– व्यक्ति की क्षमता तथा उसके संसाधन भी सीमित होते हैं। यदि दो या दा से अधिक लोग परस्पर सहयोग करते है तो उनकी क्षमता तथा संसाधनों में वृद्धि हो जाती है। इससे लोगों की उन्नति तथा विकास की संभावतना बढती है। इस कारण भी लोग परस्पर सहयोग करते है।
4. **पुरस्कार एवं दण्ड**– लोग दूसरों से प्रशांसा या पुरस्कार पाने और आलोचना या दण्ड से बचने के प्रयास में परस्पर सहयोग के लिए प्रेरित होते है। पुरस्कार किसी वस्तु के रूप में या सामाजिक सम्मान के रूप में भी दिया जा सकता है। इसी प्रकार लोग समाज के साथ सहयोग न करने पर मिलने वाले दण्ड या होने वाली आलोचना के भय से भी परस्पर सहयोग करने के लिए प्रेरित होते है।
5. **सम्पर्क एवं सम्प्रेषण**– एक–दूसरे के साथ सम्पर्क होने पर परस्पर एक–दूसरे को समझने का अवसर मिलने और विचारों के आदान–प्रदान (सम्प्रेषण) के परिणामस्वरूप भी सहयोग की भावना बढ़ती है। परस्पर सम्पर्क एवं सम्प्रेषण जितना ही अधिक होगा, सहयोगी व्यवहार के विकसित होने की संभावना भी उतनी ही अधिक होगी।
6. **सामाजिक विनिमय**– सहयोगी व्यवहार एक तरह का सामाजिक विनिमय है। लोग दूसरों की सहायता करके स्वयं उनसे भी सहायता प्राप्त करते हैं या सहायता की प्रत्याशा करते हैं। अर्थात जैसा कोई हमारे साथ करता है, वैसा ही हम उसके भी साथ करते है। कभी–कभी यह भी देखने को मिलता है कि लोग सहयोगी व्यक्तियों का शोषण भी करने लगते हैं। यदि सहयोग करने वाला एक पक्ष कमजोर है तो शक्तिशाली पक्ष उसका शोषण कर सकता है। परन्तु परस्पर विश्वास की भावना अधिक होने पर सहयोगी व्यवहार में वृद्धि होती है। इसी कारण सहयोगी व्यवहार का इसे एक प्रमुख कारण माना जाता है।
7. **सामाजिक शक्ति**– किसी व्यक्ति में निहित सामाजिक शक्ति या क्षमता भी सहयोगी व्यवहार का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। प्रायः देखा जाता है कि जो व्यक्ति सत्ता के केन्द्र में समर्थ होता है। वह अधिक शक्तिशाली बन जाता है। वह अन्य लोगों को प्रभावित करने में समर्थ होता है उसका पुरस्कार या लाभों

के वितरण पर नियंत्रण रहता है। इसके कारण लोग उसके साथ सम्पर्क स्थापित करने तथा सहयोग करने के लिए अधिक उत्सुक रहते है।

8. **सामाजिक दबाव**– लोग सामाजिक प्रभाव या दबाव में आकर परस्पर सहयोग करने के लिए तैयार हो जाते हैं। यदि ऐसा न करें तो वे अलग–थलग पड़ जाते हैं। उन्हें सामाजिक आलोचना, निन्दा एवं दण्ड का भागी बनना पड़ सकता है। इनसे बचने के लिए लोगों में सहयोगी व्यवहार प्रदर्शित होता है।

9.5 समंजन या व्यवस्थापन

समंजन का आशय परस्पर समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाने से है ताकि आपसी तालमेल बना रहे। **गाबा (1984)** के अनुसार, समंजन सामाजिक जीवन में ऐसी पारस्परिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत परस्पर विरोधी समूह या व्यक्ति अपने–अपने विरोधपूर्ण दृष्टिकोण और व्यवहार को बदलकर आपस में सुलह कर लेते हैं और मिलजुलकर रहना सीख लेते है।

र्यूटर एवं हार्ट (1933) का मत है कि बदली हुई परिस्थितियों में समन्वय स्थापित करने के प्रयास में नवीन आदतों तथा अभिवृत्तियों के निर्माण की प्रक्रिया समंजन है। इससे परस्पर सामन्यजस्य स्थापित होता है।

गिलिन एवं गिलिन (1950) के अनुसार, समंजन या व्यवस्थापन ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग या समूह आपसी एकता हेतु अपनी विरोधी गतिविधियों को परस्पर समायोजित (अनुकूलित) कर लेते है।

ब्रिन्करहाफ एवं व्हाइट (1985) ने लिखा है कि ''दो समूहों के बीच होने वाली यह ऐसी अन्तर्क्रिया है जिसमें वे अगल–बगल समानान्तर संस्कृतियों के रूप में रहते है।

प्रस्तुत परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समंजन परस्पर सामन्जस्य स्थापित करने की प्रक्रिया है यह स्थिति उस समय देखने को मिलती है जब परस्पर विरोधी विचारों, मान्यताओं या दृष्टिकोणों के लोग या समूह आपस में समन्वय एवं एकता स्थापित करने हेतु समझौतावादी नीति के आधार पर चलने का कार्य करते है। इसमें लोगों या समूहों का मूल स्परूप या विशेषताएँ बनी रहती है। इस दृष्टि से यह आत्मसातीकरण से भिन्न है। आपसी तालमेल एवं शान्ति हेतु समंजन आवश्यक है। व्यक्ति को अपने जीवन की विभिन्न प्रतिस्थितियों में प्रायः समंजन (अनुकूल) स्थापति करना पड़ता है। किसी के विवाद होने पर विपरीत विचारों के सामने आपने पर और कहीं नवीन परिस्थिति में जाने पर अनुकूलन स्थापित करना समंजन ही है। इससे सौहार्द्र बढ़ता है, शान्ति स्थापित होती है और पारस्परिक एकता में वृद्धि होती है। किसी नवीन जगह में स्वयं को समायोजित करना, किसी नवविवाहित का अपने ससुराल में सामंजस्य स्थापित करना या किसी अन्य संस्कृति के लोगों के साथ तालमेल करना इसके उदाहरण हैं। इससे स्पष्ट है कि एक रचनात्मक या एकीकरण प्रक्रिया है इसमें कतिमय विशेषताएँ पाई जाती है।

1. यह एक तरह का समझौतावादी व्यवहार है।
2. एक ऐच्छिक एवं अनैच्छिक दोनों प्रकार का होता है।
3. मनव जीवन में इसका प्रभाव प्रायः देखा जाता है।
4. इससे सामन्जस्य बढ़ता है और तनाव घटता है।
5. इससे पारस्परिक एकता में वृद्धि होती है।
6. जीवन की विपरीत या बदली परिस्थितियों में समायोजन स्थापित करने में इससे सहायता मिलती है।
7. लोग अपनी व्यक्तिगत पहचान सुरक्षित रखते हुए भी अनुकूल स्थापित कर सकते है। जैसे – भारतीय समाज में अनेको जातियों तथा सम्प्रदाय है। वे परस्पर सामन्जस्य रखते है। उनकी अपनी पहचान भी बनी हुई है।

समंजन के प्रकार – समंजन को मुख्यतः दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता है।

1. **समपदस्थ समंजन**– यदि लोग पारस्परिक हितों को ध्यान में रखते हुए दीजिए एवं लिजिए सिद्धान्त के आधार पर सामंजस्य स्थापित करते है तो इसें समपदस्थ समंजन कहते है। ऐसा समंजन समान स्थिति के लोगों के बीच होता है।
2. **उच्चपदस्थ निम्नपदस्थ समंजन**– यदि उच्च और निम्न पदों वाले लोगों के बीच परस्पर समंजन स्थापित किया जाता है तो उसे उच्च पदस्थ निम्न पदस्थ समंजन कहते है, जैसे – अधिकारी–कर्मचारी, सबल–निर्बल आदि के बीच अनुकूलन इसके उदाहरण हैं। प्रायः देखा जाता है निचले स्तर का व्यक्ति स्तर के व्यक्ति के साथ समझौतावादी दृष्टिकोण अपना लेता है।

समंजन की विधियाँ – समंजन या व्यवस्थापन हेतु निम्ननांकित विधियाँ प्रयुक्त की जाती है।

1. **दबाव के सामने झुकना**– प्रायः देखा जाता है कि कमजोर लोगों दबाव में आकर शक्तिशाली लोगों के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेते है। इसे दबाव के सामने झुकना कहते है।
2. **सहिष्णुता** – परस्पर सामंजस्य स्थापित करने की दृष्टि से सहनशीतला का प्रदर्शन करना एक उपयोगी विधि है।
3. **विचार परिवर्तन** – यदि कोई बात या विचार ऐसा है जिसके साथ अपना विचार अनुरूप नहीं है तो स्वयं के विचार को तदनुसार परिवर्तित करके अनुकूलन स्थापित कर सकते है।
4. **समझौता** – यदि पारस्परिक हितों की रक्षा के लिए 'दीजिए एवं लीजिए' सिद्धान्त लागू करते है तो इसे समझौता तकीनक कहते हैं, अर्थात सभी पक्षों को कुछ न कुछ लाभ प्राप्त हो जाता है।
5. **उदात्तीकरण** – यदि व्याक्तियों या व्यक्ति एवं सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच द्वन्द्व है, तो व्यक्ति अपनी इच्छा की पूर्ति अन्य रूपों में कर सकता है, जैसे – सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण प्रेम में असफल व्यक्ति कवि या कलाकार बनकर प्रतिष्ठा में वृद्धि कर सकता है। इसे शोधन भी कहते है।
6. **युक्तकीकरण** – अपने परिवेश में सामंजस्य स्थापित करने की यह वह विधि है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी बातें को उचित ठहराने के लिए झूठ या अनुचित तर्को का सहारा लेता है।

9.6 आत्मसात्करण

आत्मसात्करण या स्वांगीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग या समूह आपसी मतभेद भुलाकर एकता स्थापित करते है और आपसी असमानताओं का त्याग कर देते है। इसके लिए उन्हें अपनी विशिष्ट पहचान भी छोड़नी पड़ती है।

गिलिन एवं गिलिन (1950) के अनुसार, ''संक्षेप में आत्मसात्करण की प्रक्रिया की विशिष्टता यह है कि लोग भावनात्मक रूप में उभयनिष्ठ दृष्टिकोणों का विकास करते हैं ताकि विचरों और कार्यो में एकता का कम से कम एकीकरण किया जा सकें।''

हबा (1979) के अनुसार ''यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा विभिन्न जातीय एवं प्रजातीय वर्ग मतभेद भुलाकर समान विचार अपना लेते है और समाज में समान अवसर प्राप्त करने का मार्ग ढूँढ लेते है।''

कोजर (1983) के अनुसार, ''यह सम्बन्धों का ऐसा रूप है जिसमें एक समूह अपनी पहचान छोड़कर दूसरे में विलीन हो जाता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो रहा है कि आत्मसात्करण की प्रक्रिया समंजन (व्यवस्थापन) से भिन्न है। व्यवस्थापन में लोग अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखते हुए सामंजस्य स्थापति करते है। इसके विपरीत आत्मसात्करण की प्रक्रिया में विशिष्ट पहचान छोड़नी होती है। उभयनिष्ठ विचार या संस्कृति अपनानी पड़ती है एवं लोग परस्पर एक समान हित, स्वार्थ या मान्यता स्वीकार कर लेते है। कभी – कभी जब दो भिन्न–भिन्न समूह या संस्कृति के लोग आपस में एकता स्थापित करते है तो प्रायः छोटे समूह बड़े समूह में इस प्रकार मिल

जाते है कि उनकी अपनी पहचान समाप्त हो जाती है। अर्थात् आपसी असमानता समाप्त करके एकता स्थापित कर लेना आत्मसात्करण है। आधुनिक समाज में इसका इहत्व काफी बढ़ गया है क्योंकि इससे सामाजिक समरसता स्थापित करने में काफी सहायता मिलती है।

आत्मसात्करण के निर्धारक – आत्मसातकरण व्यवहार पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। इन्हें दो वर्गो में विभक्त कर सकते है –

अनुकूलन कारक

1. **सहिष्णुता**– एक दूसरे के विचारों मान्यताओं तथा लक्ष्यों को वर्गीकृत (अपनाने) करने के लिए परस्पर सहनशीलता आवश्यक है। यह जितनी अधिक होगी, आत्मसातीकरण भी उतना ही अधिक होगा।
2. **घनिष्ठ सम्पर्क** – लोगों में आपस में घनिष्ठता जितीन अधिक होगी, उनमें आत्मसात्करण भी उसी अनुरूप अधिक पाया जाएगा। घनिष्ठता के कारण असहमति घटेगी और विचार उभयनिष्ठ होते जायेंगें।
3. **समान प्रास्थिति**– प्रायः समान स्तर के व्यक्तियों या समूहों में पारस्परिक घनिष्ठता अधिक पाई जाती है। उनमें वैचारिक मतभेद नहीं या नगण्य होते है। इससे आत्मसात्करण का प्रोत्साहन मिलता है।
4. **सम्मिश्रण** – यदि किसी आधार पर लोग या समूह एक दूसरे से मिल जाते है तो आत्मसात्करण बढ़ता है। विवाह या मैत्री द्वारा आपस में घनिष्ठता बढ़ती है। इसे सम्मिश्रण कहते है।
5. **समान संस्कृति** – यदि लोगों में सांस्कृतिक समानता है तो घनिष्ठता बढ़ेगी। इससे आत्मसात्करण का मार्ग प्रशस्त होगा।

प्रतिकूल कारक –

1. **प्रजातीय भिन्नता** – जातीय एवं प्रजातीय भिन्नता आत्मसात्करण में बाधा डालती है। इससे सामाजिक दूरी बढ़ती है।
2. **सांस्कृतिक भिन्नता** – वैचारिक एवं सांस्कृतिक असामनताएँ भी आत्मसात्करण में व्यवधान डालती है। ऐसी असमानता के कारण लोग एक दूसरे को अंगीकार नहीं कर पाते है।
3. **सामाजिक दूरी**– यदि लोग परस्पर पृथकता की स्थिति में रहते है व एक दूसरे से सामाजिक दूरी बनाए रहते है तो इसका आत्मसात्करण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
4. **श्रेष्ठता ग्रन्थि** – कुछ लोग, समूह या प्रजातियाँ स्वयं को दूसरे से श्रेष्ठ या उत्तम मानते है। इससे पूर्वाग्रह बढ़ती है और धनिष्ठता घटती है। अतः आत्मसात्करण बाधित होता है।
5. **शोषण** – यदि समाज के कुछ लोग या वर्ग अन्य लोगों (कमजारों) का शोषण करते है तो वैमनस्य बढ़ता है। इस कारण लोग एक–दूसरे से दूर होते जाते है और आत्मसात्करण की प्रक्रिया पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

9.7 प्रतिस्पर्धा

सामाजिक अन्तर्क्रिया का यह भी एक प्रमुख रूप है। **गाबा (1984)** के अनुसार, '' प्रतिस्पर्धा अन्तर्क्रिया का वह रूप है जिसमें अनेक व्यक्ति या समूह किसी विशेष वस्तु सेवा या लाभ को पाने की अभिलाषा करते हैं। परन्तु प्राप्य वस्तु इतनी सीमित, दुर्लभ या अविभाज्य होती है कि वह सबको प्राप्त नहीं हो सकती। अतः वे उसे पाने के प्रयत्न में एक दूसरे से आगे बढ़ने या एक–दूसरे का मात देने की कोशिश करते है।''

फेयरचाइल्ड (1954) का मत है कि ''सीमित वस्तुओं पर अधिकार करने या उनका उपयोग करने के लिए प्रयत्न करना प्रतिस्पर्धा कहा जाता है।''

बीसंज एवं बीसंज (1954) के अनुसार, ''दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा सीमित लक्ष्य, जो कि इतना सीमित है कि सभी उसमें भागीदारी नहीं कर सकते है, के लिए किया जाने वाला प्रयास प्रतिस्पर्धा है।''

इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि लक्ष्यों या साध्यों के सीमित और उभयनिष्ठ होने के कारण ही लोगों में एक दुसरे के प्रति प्रतिस्पर्धा की भावना पैदा होती है। व्यक्ति और समाज की प्रगति के लिए प्रतिस्पर्धा आवश्यक है। यह लोगों के अधिक से अधिक सक्रियता तथा लक्ष्य के प्रति निरन्तर प्रयत्न करते रहने के लिए प्रेरणा का कार्य करती है। प्रतिस्पर्धा एक स्वस्थ सामाजिक व्यवहार है। यह चेतन और अचेतन दोनों ही रूपों में प्रदर्शित होती है। जैसा कि **रॉस (1908)** ने कहा है, ''प्रतिस्पर्धा प्रत्येक व्यक्ति का उसके अपने समाज में स्थान निर्धारण जैसा व्यापक कार्य करती है। यह ऐसी प्रगतिशील है जो रचनात्मक न कि विध्वंसात्मक कार्य करती है।''

संक्षेप में, प्रतिस्पर्धा एक रचनात्मक अन्तर्क्रिया है। परन्तु आजकल समाज में जिस तरह की प्रतिद्वन्द्विता तथा होड़ मची हुई है, उससे समाज में अस्वस्थ या नकारात्मक मानसिकता बढ़ रही है। लोग एक दूसरे से आगे निकल जाने की होड़ में अनुचित तरीके अपनाने लगे हैं। इस कारण समाज में भ्रष्टाचार, हिंसा तथा ऐसा अन्य आचरणों को बढ़ावा मिल रहा है। यह स्वस्थ प्रतिस्पर्धा रहीं है।

प्रतिस्पर्धा के प्रकार– यह दो प्रकार की हो सकती है।

1. **वैयक्तिक प्रतिस्पर्धा** – यदि प्रतिस्पर्धा किन्ही दो व्यक्तियों या समूहों के बीच किसी लक्ष्य के लिए पाई जाती है तो इसे व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धा कहते हैं, जैसे – परिचित व्यक्तियों, मित्रों, समूहों तथा टीमों के बीच किसी लक्ष्य के लिए प्रतिस्पर्धा का होना।
2. **अवैयक्तिक प्रतिस्पर्धा** – यदि प्रतिस्पर्धा अपरिचित व्यक्तियों या समूहों के बीच होती है तो इसे अवैयक्तिक प्रतिस्पर्धा कहते हैं। किसी परीक्षा में बैठने वाले तमाम परीक्षार्थियों के बीच ऐसी ही प्रतिस्पर्धा पाई जाती है।

प्रतिस्पर्धा को चेतन एवं अचेतन वर्गो में भी विभक्त किया जाता है। उपयुक्त दोनों प्रकार कीप्रतिस्पर्धाएँ चेतन स्तरीय प्रतिस्पर्धाएँ है। वैसे प्रतिस्पर्धा अचेतन स्तर पर भी हो सकती है।

प्रतिस्पर्धा के रूप – सामाजिक जीवन में प्रतिस्पर्धा अनेक रूपों में दिखाई पड़ती है :–

1. **आर्थिक प्रतिस्पर्धा** – आधुनिक समाज में आर्थिक प्रतिस्पर्धा का बोलबाला अधिक है। आर्थिक क्षेत्र में एक–दूसरे से आगे बढ़ने ही होड़ लगी हुई है। लोग आर्थिक संसाधनों तथा वस्तुओं पर अपना अधिकार जमाने के लिए सतत प्रयत्नशील है। विभिन्न कम्पनियों में अपने उत्पादनों की मात्रा बढ़ाने तथा बाजार पर अधिक से अधिक कब्जा जमाने की होड़ मची है। किसी नयी कम्पनी के आते ही पुरानी कम्पनी अपने उत्पादनों का दाम घटा कर या कम लाभ पर ही अपना सामान बेचने लगती है। सीमित संसाधन, बढ़ती मांग और प्रतिद्वन्द्विता के कारण आर्थिक प्रतिस्पर्धा और भी बढ़ जाता है।
2. **प्रास्थिति एवं भूमिका प्रतिस्पर्धा**– समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने समाज या समूह में उच्च स्थिति एवं अधिकार प्राप्त करना चाहता है। इस कारण उनमें विशिष्ट प्रास्थिति एवं भूमिका के लिए प्रतिस्पर्धा पाई जाती है। एक दूसरे से आगे निकलने और सम्मान प्राप्त करने की इच्छा के कारण ऐसी प्रतिस्पर्धा में निरन्तर वृद्धि हो रही है। कक्षा में उच्च स्थान प्राप्त करने हेतु छात्रों में प्रतिस्पर्धा एवं खेल में जीतने के लिए टीमों में प्रतिस्पर्धा, नम्बर एक पर आने के लिए कम्पनियों या सितारों में प्रतिस्पर्धा आदि इसके उदाहरण है।
3. **प्रजातीय प्रतिस्पर्धा**– विभिन्न प्रजातियों में एक–दूसरे से श्रेष्ठ होने की भावना पई जाती है। जैसे, गोरे अमरीकी नीगों को अपने से नीचा मानते है। इसी प्रकार अपने देश में भी विभिन्न धर्मों एवं जातियों के बीच एक भावना पाई जाती है। ऐसी प्रतिस्पर्धा को प्रजातीय प्रतिस्पर्धा कहते है। इससे समाज में द्वेष एवं ईर्ष्या बढ़ती है।
4. **सांस्कृतिक प्रतिस्पर्धा** – प्रजातीय प्रतिस्पर्धा की ही भाँति समाज में सास्कृतिक प्रतिस्पर्धा भी दिखाई पड़ती है। एक संस्कृति के लोग दूसरे से अपने को ऊँचा तथा उसे नीचा सिद्ध करने का प्रयास करते

है। लोग अपनी सांस्कृतिक मान्यताओं, विचारों, विश्वासों तथा मूल्यों का अच्छा और दूसरे की सांस्कृतिक विशेषताओं की खराब करने का प्रयास करते है।

5. **राजनैतिक प्रतिस्पर्धा** – आज के युग में राजनैतिक प्रतिस्पर्धा का भी प्रभाव काफी बढ़ गया है। सत्ता पर काबिज होने के लिए सभी पार्टियों में होड़ मची हुई है। विभिन्न पार्टियाँ सत्ता के करीब पहुँचने के लिए तमाम तरह के हथकण्डे अपनाती है। अनेक प्रकार के लुभावने नारे दिए जाते है और अरोप–प्रत्यारोप भी किए जाते है। आज राजनैतिक आकांक्षा इतनी बढ़ गयी है कि प्रायः नये राजनैतिक समीकरण बनते–बिगड़ते रहते है।

प्रतिस्पर्धा के परिणाम – प्रतिस्पर्धा के परिणाम विभिन्न रूपों में दिखाई पड़ते है। इसका परिणाम अच्छा या खराब दोनों प्रकार का हो सकता है।

1. **संगठनात्मक परिणाम** – स्वस्थ प्रतिस्पर्धा समाज तथा व्यक्ति दोनों के लिए लाभदायक है। इससे समाज में प्रगति होती हैं, लोग आगे बढ़ते है और उनकी स्थिति मजबूत होती है। समाज के विभिन्न प्रकार के संघ तथा संगठन देखने को मिलते है। इनके द्वारा रचनात्मक कार्य किये जाते है और लोगों की ऐसी अनेक समस्याओं का समाधान होता है। जिन्हें व्यक्तिगत स्तर पर हल करना सदैव संभव नहीं हो पाता है। ऐसे संघ तथा संगठन अपने सदस्यों, संस्था तथा समाज के हितों के प्रति समर्तित होते है।
2. **विघटनात्मक परिणाम** – वैसे तो प्रतिस्पर्धा को एक स्वस्थ व्यवहार माना जाता है परन्तु कभी–कभी लोग अपने स्वार्थो की पूर्ति के लिए दूसरों को नुकसान पहुँचाने पर भी उतर आते है। इससे तनाव तथा संघर्ष की स्थितियाँ पैदा हो जाती है।
3. **व्यक्तित्व पर प्रभाव** – प्रतिस्पर्धात्मक व्यवहार करते रहने से व्यक्ति के व्यक्तित्व में भी परिवर्तन आ सकता है। स्वस्थ रूप में प्रतिस्पर्धा करने से व्यक्ति में अच्छे गुणों का विकास होता है। इससे व्यक्ति तथा उसके समूह का भी कल्याण होता है। परन्तु यदि लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अनुचित बातों का सहारा लिया जाता है तो इसके व्यक्तित्व में विकृतियाँ आती है। इनका व्यक्ति पर ही नहीं समाज पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि प्रतिस्पर्धा वस्तुतः एक प्रगतिशीाल व्यवहार शैली है। इससे कार्य तथा व्यवहार में उत्कृष्टता आती है। परन्तु यदि प्रतिस्पर्धा विकृत रूप ले लेती है तो इससे तनाव, विघटन तथा संघर्ष आदि को बढावा मिलता है। प्रतिस्पर्धात्मक व्यवहार पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं, व्यक्तित्व और उसकी सामाजिक स्थिति आदि का व्यापक रूप से प्रभाव पड़ता है। कुछ परिवारों तथा समाजों में प्रतिस्पर्धा को अपेक्षाकृत अधिक प्रोत्साहित किया जाता है। इसी प्रकार कुछ लोग स्वभावतः प्रतिस्पर्धी होते है और कभी–कभी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति उसे और भी प्रतिस्पर्धी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

9.8 समूह या सामाजिक संघर्ष

गाबा (1984) के अनुसार, ''द्वन्द्व या संघर्ष ऐसी अन्तर्क्रिया है जिसमें एक पक्ष दूसरे को मिटाकर क्षति पहुँचाकर या कमजोर करके अपने लक्ष्य पूरे करने को तत्पर होता है। संघर्ष तब पैदा होता है जब दोनों पक्षों के लक्ष्य परस्पर विरोधी हों या जब वे किसी दुर्लभ वस्तु को हासिल करने की दौड़ में एक दूसरे से आगे निकल जाना चाहते है।

मैकआइवर एवं पेज (1959) का मत है कि सामाजिक द्वन्द्व या संघर्ष में ऐसी सभी क्रियाएँ सम्मिलित हैं जिनके द्वारा लोग किसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु एक दुसरे के विरूद्ध कार्य करते है।

आलसन (1978) के अनुसार, ''जब दो या दो से अधिक व्यक्ति सामाजिक अन्तर्क्रिया में एक दूसरे का विरोध करते है तो सामाजिक संघर्ष (या सामूहिक संघर्ष) उत्पन्न होता है। इसमें लोग दुर्लभ या असंगत लक्ष्यों को पाने के लिए और विरोधी को वंचित करने के लिए परस्पर सामाजिक सामर्थ्य का उपयोग भी करते है।''

वेबर (1964) के अनुसार, ''समूह संघर्ष एक ऐसा सामाजिक सम्बन्ध है जिसमें कोई व्यक्ति अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए अपने प्रतिरोधी (विरोधी) पक्ष या पक्षों के विरूद्ध अपने कार्यो को दिशा देता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो रहा है कि समूह या सामाजिक संघर्ष एक प्रकार की विघटनात्मक प्रक्रिया है। इसमें लोग एक–दूसरे का बाह्य या आन्तरिक अथवा दोनों रूपों में अपने किसी इच्छित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विरोध करते है। उनमें कभी–कभी हिंसा, मारपीट, गाली–गलौज या अन्य प्रकार की विध्वंसक क्रियाएँ भी होती है। संक्षेप में संघर्ष के अनेक परिणाम देखने को मिलते है –

1. संघर्ष से विघटन को बढ़ावा मिलता है।
2. संघर्ष में हिंसा एवं आक्रमण आदि का सहारा लिया जाता है।
3. संघर्ष की दशा में किसी समूह में आन्तरिक एकता बढ़ती है। जैसे, दो समूहों में मारपीट होने या दो देशों में युद्ध होने पर आन्तरिक एकता बढ़ती है ताकि विरोधी पक्ष का सामना किया जा सकें।
4. संघर्ष से धन–जन की हानि होती है, जैसे – युद्ध के समय लोगों की मृत्यु तथा संम्पति का नुकसान होता है।
5. संघर्ष से व्यक्ति तथा समाज के विकास में व्यवधान पैदा होता है।

संघर्ष के प्रकार– संघर्ष अनेक रूपों में हो सकता है। संघर्ष बाह्य या अव्यक्त रूप में हो सकता है। संघर्ष के मुख्य रूप निम्नांकित है –

1. **व्यैक्तिक संघर्ष** – ऐसा संघर्ष किन्हीं दो व्यक्तियों के बीच होता है। दोनों एक दूसरे को नुकसान पहुँचाने या विरोध करने का प्रयत्न करते हैं। इसमें लड़ाई, झगड़ा, सम्पत्ति को नुकसान या हत्या आदि भी हो सकती है।
2. **समूह संघर्ष** – यदि दो समूह आपस में पड़ते हैं या एक–दूसरे की खिलाफत करते है तो इसे समूह संघर्ष कहते है। विभिन्न जातियों या सम्प्रदाओं में इस प्रकार के संघर्ष प्रायः होते रहते है।
3. **वर्ग संघर्ष** – यह भी एक तरह का समूह संघर्ष है। अमीरों–गरीबों, शोषकों–शोषितों और मालिकों–मजदूरों के बीच होने वाला संघर्ष, ऐसा ही संघर्ष है। महान चिंतन मार्क्स ने इसे बहुत ही महत्वपूर्ण बताया है।
4. **राजनैतिक संघर्ष** – ऐसा संघर्ष विभिन्न राजनैतिक दलों के बीच पाया जाता है। यथा, अपने देश की विभिन्न पार्टियों एक–दूसरे का विरोध करती है, आलोचना करती है, उनके कार्यकत्ताओं में रह–रहकर मारमीट एवं हत्या तक की घटनाएं भी घटती है।
5. **अन्तराष्ट्रीय संघर्ष** – यदि दो देशों के बीच संघर्ष होता है तो एसे अन्तराष्ट्रीय संघर्ष कहते है। भारत–चीन, भारत–पाकिस्तान, अमेरिका–इराक आदि के बीच हुए संघर्ष ऐसे ही संघर्ष के उदाहरण हैं। ऐसा प्रायः राजनैतिक कारणों से होता है।

संघर्ष के कारण – संघर्ष अनेक कारणों से होते है –

1. **प्रजातीय कारक** – संघर्षो को बढ़ावा देने में प्रजातीय कारकों की प्रमुख भूमिका होती है। विभिन्न समाजों में रंगभेद या नस्लभेद के कारण संघर्ष के कारण संघर्ष प्रायः होते रहते है। अमेरिका के काले–गोरों के बीच, भारत में जनजातियों एवं अन्य जातियों के बीच संघर्ष आदि इसके उदाहरण हैं। विभिन्न प्रजातियाँ अपनी पहचान बनाए रखने के लिए कभी–कभी संघर्ष पर उतर आती है। आजकल अपने देश में क्षेत्रीय या प्रजातीय आधार पर राज्यों की मांग बल पकड़ रही है। यह भी संघर्ष का एक

कारण है। विभिन्न प्रजातियाँ अपने रीति–रिवाजों में विभिन्नता के कारण भी कभी–कभी संघर्ष का रास्ता अपना लेती है।

2. **साम्प्रदायिक कारक** – समूह या सामाजिक संघर्ष अपने बार साम्प्रदायिक कारणों से भी होते हैं ऐसे समाज के व्यक्तियों की मान्यताओं में जिनमें अनेक आस्थाओं एवं धर्मों के लोग रहते है, कतिपय असमानताएँ पाई जाती है। यदि वे परस्पर समन्वयवादी दृष्टिकोण नहीं अपनाते है तो संघर्ष की संभावना बढ़ती है। भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों में संघर्ष का मुख्य कारण यही है।
3. **राजनैतिक कारण** – समूह या सामाजिक संघर्ष राजनैतिक कारणों से भी होते हैं। यथा, किसी देश में विभिन्न राजनैतिक दलों के बीच टकराहट होती रहती है। कभी–कभी कतिपय आन्दोलन राजनैतिक लाभों के लिए चलाए जाते है। इससे संघर्ष को बढ़ावा मिलता है। अपने देश में उत्तर–दक्षिणी की लड़ाई राजनैतिक कारणों से ही है। नेता लोग अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए जनता को ऐसे ही अनेक नारों से फुसलाते रहते हैं। इसी प्रकार अगड़ों–पिछड़ों का भी संघर्ष राजनीति की ही देन है।
4. **भाषा समस्या** – भाषा को लेकर भी समाज में संघर्ष की घटनाएँ घटती है। यथा, आजकल राजभाषा हिन्दी का विरोध क्षेत्रीय भाषाओं के नाम पर किया जाता है। दक्षिण के कई प्रदेशों में तो वहाँ के नेताओं की राजनीति भाषा पर ही टिकी हुई है।
5. **आर्थिक कारक** – समूहों के बीच संघर्ष आर्थिक विषमताओं के कारण भी होता रहता है। सुविधाहीन वर्ग से संघर्ष करना चाहता है। अमीरों–गरीबों के बीच संघर्ष की मिसाल सभी देशों में मिलती है। इसी प्रकार सुविधाओं की कभी भी कभी–कभी संघर्ष का कारण बनती है। इसके कारण समाज में लूटपाट, मारपीट एवं अन्य प्रकार की हिंसा की घटनाएँ घटती है। इसी प्रकार मालिकों एवं मजदूरों में होने वाला संघर्ष भी इसी तरह का संघर्ष हैं
6. **बेरोजगारी** – समाज में संघर्ष का एक कारण युवकों के सामने खड़ी बेरोजगारी की विकराल समस्या भी है। आज हमारे देश में बेरोजगारों की संख्या बहुत अधिक हो गई है। उसमें वृद्धि होती जा रही है। इसके कारण अनेक युवक भटक जाते है। वे गलत रास्तों पर चलने लगते है। इससे संघर्ष की संभावना बढ़ती है।

संघर्ष के समाधान के उपाय – संघर्ष व्यक्ति, समूह तथा समाज के लिए हानिकारक होता है। अतः इसे नियंत्रित करना आवश्यक है। इसके नियन्त्रण हेतु प्रमुख उपाय निम्नांकित हैं –

1. **पूर्वाग्रह तथा रूढ़ धारणाओं को कम करना** – विभिन्न समाजों में प्रजातीय पूर्वाग्रह तथा रूढ़धारणाएँ पाई जाती है। इनसे संघर्ष को बल मिलता है। जैसे – हिन्दुओं को मुसलमानों द्वारा काफिर (नास्तिक) कहा जाना और मुसलमानों को हिन्दुओं द्वारा म्लेच्छ माना जाना पूर्वाग्रह का ही परिणाम है। इस तरह के विचारों को आज परिवर्तित किए जाने की आवश्यकता है। इससे संघर्ष को रोकने में सहायता मिलेगी।
2. **साम्प्रदायिक सौहार्द्र हो प्रोत्साहित करना** – विभिन्न सम्प्रदायों में सौहार्द्र तथा एकता को बढ़ावा देकर संघर्ष टाला जा सकता है। इसके लिए लोगों में सहिष्णुता तथा भाईचारे की भावना विकसित करना चाहिए। यह मानकर चलना उत्तम होगा कि पूरा संसार एक परिवार (वसुधैव कुटुम्बकम) है। यह भावना जातीय तथा धार्मिक भेदभाव कम करने में रामबाण सिद्ध हो सकती है।
3. **उभयनिष्ठ लक्ष्य** – आज के समाज में ऐसे लक्ष्यों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जो सभी के लिए प्रिय तथा लाभकारी हों, जैसे – क्षेत्रीय या सामुदायिक विकास का लक्ष्य। ऐसा होने पर लोग आपसी मतभेद भुलाकर सामूहिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सक्रिय हो जायेगें और तनाव कम हो जाएगा। इससे संघर्ष की संभावना टलेगी।

4. **समझौता** – समूहों या व्यक्तियों के बीच संघर्ष टालने का एक अच्छा उपाय सम्बन्धित लोगों में समझौता करा देना है। लोग थोड़ा–थोड़ा लाभ–हानि सिद्धान्त के आधार पर संघर्ष टालने के लिए राजी हो सकते है। लोगों में पारस्परिक सम्पर्क बढ़ाने से भी संघर्ष टलता है।
5. **राजनैतिक संकीर्णता पर नियंत्रण** – इस समय समाज में राजनैतिक संकीर्णता बढ़ रही है। इसके कारण प्रायः संघर्ष होते रहते है। उत्तर–दक्षिण की राजनीति, सवर्ण–गैरसवर्ण की राजनीति और भाषा की राजनीति आदि राजनैतिक संकीर्णता की ही परिचायक है। ऐसी राजनीति करने वालो पर कठोर नियम लागू किया जाना चाहिए। इससे संघर्ष पर नियंत्रण स्थापित करने में काफी मदद मिलेगी।
6. **सुविधाएँ बढ़ाना** –समाज में सुविधाओं का अभाव संघर्ष का एक प्रमुख कारण है। बेराजगारों पर नियंत्रण एवं उपभोग की सामग्रियाँ की आपूर्ति में वृद्धि करके सामाजिक तनाव तथा संघर्ष पर काफी हद तक नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। ऐसे लोग जो सुविधाओं से वंचित हैं, लाभान्वित नहीं है उन्हें विकास के समुचित अवसर प्रदान कर वर्ग संघर्ष टाला जा सकता है अर्थात् आर्थिक असमानताओं को दूर करके सामाजिक संघर्ष को काफी हद तक नियंत्रित कर सकते है।
7. **रोजगार के अवसर बढ़ाना** – आज बेराजगारी में बेतहाशा वृद्धि हो रही है। इससे तनाव एवं संघर्ष भी बढ़ रहा है। अब तो अपने यहाँ भी बेरोजगारों को भत्ता देने की माँग जो पकड़ती जा रही है। अतः यदि रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने का समुचित प्रयास किया जाय तो सामाजिक तनाव व तोड़–फोड़ को रोकने में सहायता मिलेगी और युवा शक्ति का सदुपयोग हो सकेगा।

9.9 सामाजिक परिस्थिति का विभेदक प्रभाव

सामाजिक अन्तर्क्रिया की विभिन्न प्रक्रियाओं के स्वरूप पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति द्वारा अकेले में और सामाजिक परिस्थिति में किए जाने वाले व्यवहारों में अन्तर पाया जाता है। ऐसा अन्तर सामाजिक परिस्थिति विभेदक या भिन्नतापरक प्रभाव कहा जाता है। इस अन्तर को निम्नांकि सूत्र से ज्ञात कर सकते हैं–

DE = Bs-Ba

जिसमें, DE = विभेदक प्रभाव

Bs = व्यक्ति का सामाजिक परिस्थिति में व्यवहार

BA = व्यक्ति का अकेले में व्यवहार

अर्थात् यदि यह ज्ञात करनाप है कि व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक परिस्थिति में कैसा होता है, कितना है और अकेले व्यवहार में क्या स्थिति है, दोनों दशाओं के व्यवहारों में अन्तर है या नहीं तथा यदि अन्तर है तो कितना एवं कैसा है? तो उक्त सूत्र का प्रयोग कर सकते है। सामाजिक परिस्थिति का प्रभाव अनुकूल या प्रतिकूल या शुन्य भी हो सकता है। अनुकूल प्रभाव की दशा में अन्तर, धनात्मक और प्रतिकूल प्रभाव की दशा में अन्तर ऋणात्मक प्राप्त होता है।

विभेदक प्रभाव के निर्धारक – किसी सामाजिक स्थिति का विभेदक प्रभाव अमेक कारकों पर निर्भर करता है। जैसे –

1. **व्यक्तियों सम्बन्धी कारक** – जैसे – उनकी संख्या, उनकी प्रतिष्ठा, यौन, जाति, धर्म परिचितता–अपरिचितता आदि।
2. **कार्य सम्बन्धी कारक** – किए जाने वाले कार्य की विशेषताएँ भी विभेदक प्रभाव निर्धारित करती है, जैसे कार्य का सरल या जटिल होना, अरोचक–रोचक होना आदि।

3. **स्थान का प्रभाव** – किसी परिस्थिति में व्यवहार किया जाना है, यह भी महत्पवूर्ण कारक है। जैसे, सम्बन्धित व्यवहार (यथा–खेल, प्रेम) के लिए स्थान उचित है या नहीं। इसमें सामाजिक मानकों का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। इन सभी कारकों में अन्तराश्रितता पाई जाती है। ये परस्पर सम्बन्धित होते है।

9.10 अन्तर्वैयक्तिक अनुक्रिया गुण एवं अन्तर्क्रिया

सामाजिक अन्तर्क्रिया में अन्तर्वैयक्तिक अनुक्रिया गुणों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनसे अन्तर्क्रिया का स्वरूप तथा तीव्रता आदि निर्धारित होती है। **क्रेच, क्रचफील्ड, तथा बैलकी (1962)** के अनुसार, ''अन्य व्यक्तियों के साथ अपेक्षाकृत ढंग से अनुक्रिया करने की अपेक्षाकृत स्थिर एवं सगत स्ववृत्ति को अन्तर्वैयक्तिक अनुक्रिया गुण कहते है'' इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के प्रति व्यवहार करने की जो क्रियाप्रवृत्ति बना रखा है। वही अन्तर्वैयक्तिक अनुक्रिया गुण है। जैसे, किसी को देखते ही उसे नमस्कार करना, हाथ मिलाना, मित्रता की स्ववृत्ति का द्योतक है। इसके विपरीत किसी को देखने पर चिढ़ जाना, गुस्सा आना या उस पर आक्रमण की बात सोचना शत्रुता का द्योतक है। यह स्ववृत्ति प्रतिकूल है। व्यक्ति में ऐसे विभिन्न गुण कुछ न कुछ मात्रा में अवश्य पाए जाते है। कोई गुण सम्पूर्ण या शून्य रूप में नहीं पाया जाता है। इतना अवश्य है किसी में किसी गुण की प्रधानता होती है तो किसी में दूसरे तरह के गुण की प्रधानता हो सकती है। यथा – कोई सामाजिक तो कोई एकान्तप्रिय हो सकता है। इससे सम्बन्धित व्यक्ति की सामाजिक अन्तर्क्रिया का प्रभावित होना निश्चित है।

अन्तर्वैयक्तिक अनुक्रिया गुणों के प्रकार– गिलफोर्ड (1959) ने इन्हें तीन वर्गो में विभक्त किया है –

1. **भूमिका स्ववृत्तियाँ**– इस वर्ग में प्रभाविता, प्राबल्य या प्रभुत्व, सामाजिक नेतृत्व एंव स्वाधीनता आदि स्ववृत्तियाँ एवं इसके विपरीत स्वरूप वाली स्ववृत्तियाँ आती है। इनसे भूमिका व्यवहार निर्धारित होता है।
2. **समाजमितीय स्ववृत्तियाँ**– इस वर्ग में स्वीकृति–अस्वीकृति सामाजिकता–असामाजिकता, मित्रता–अमित्रता एवं सहानुभूति – असहानुभूति आदि जैसे स्ववृत्तियों की गणना की जाती है। इनसे सामाजिक व्यवहार निर्धारित होता है।
3. **अभिव्यक्तात्मक स्ववृत्तियाँ**– इस वर्ग में प्रतिस्पर्धा, आक्रामकता, सामाजिक संतुलन एवं आत्मप्रदर्शन आदि एवं इनके विपरीत स्वरूप वाली स्ववृत्तियाँ आती है।

अन्तर्वैयक्तिकअनुक्रिया गुणों की विशेषताएँ – इनमें निम्नांकित प्रकार की विशेषताएँ पाई जाती है।

1. **स्थायित्व**–अन्तर्वैयक्तिक अनुक्रिया गुणों में काफह स्थायित्व पाया जाता है। इसी कारण लोगों के व्यवाहर में स्थिरता दिखाई पड़ती है, जैसे – कोई सामाजिक प्रवृत्ति का है तो सामान्यतः सामाजिककता का प्रदर्शन करता रहेगा। स्टाट को प्रभावितकता जैसे गुण में लम्बे समय तक स्थायित्व प्राप्त हुआ है।
2. **व्यापकता** – कुछ अन्तर्वैयक्तिक अनुर्क्रिया गुणों का प्रभाव अधिक से अधिक व्यवहारों पर पड़ता है। अर्थात् उनका प्रभाव अधिक व्यापक होता है। यथा – प्रतिस्पर्धा एक व्यापक प्रभाव वाला गुण है। इसका प्रभाव जीवन के हर क्षेत्र में दिखाई पड़ता है। इसकी तुलना में सामाजिक संतुलन का प्रयोग कुछ ही दशाओं में होता है, जैसे – अपरिचितों, श्रोताओं आदि के सामने यह एक सीमित प्रभाव वाला गुण है।
3. **संगति**– यदि विभिन्न अन्तर्वैयक्तिक अनुक्रिया गुणों में समानता या सहसम्बन्ध है तो उनमें संगति पाई जायेगी अन्यथा इसकी कमी पाई जायेगी। यदि विभिन्न गुणों में संगति अधिक है तो सम्बन्धित व्यक्ति के बारे में भविष्योक्ति सरलता से कर सकते है।
4. **प्रतिरूपता** – विभिन्न व्यक्तियों के अन्तर्वैयक्तिक गुणों की प्रतिरूपता में अन्तर पाया जाता है। यथा कोई व्यक्ति सामाजिक कार्यो में अधिक रूचि ले सकता है परन्तु घनिष्ठ मित्रता कम स्थापित करना चाहता

है। एक दूसरा व्यक्ति जिसमें सामाजिकता पहले व्यक्ति की ही तरह हो सकती है, यह सामाजिक कार्यो में रूचि कम और मित्रता स्थापित करने में अधिक ले सकता है। व्यवहारों में ऐसी विशेषता को ही अन्तर्वैयक्तिक अनुक्रिया गुणों में प्रतिरूपता कहा जाता है।

संक्षेप में, अन्तवैयक्तिक अनुक्रिया गुण सामाजिक परिस्थिति में व्यक्ति के व्यवहार का स्वरूप तथा तीव्रता निर्धारित करते है। इनके विकास पर व्यक्ति के परिवेश, आवश्यकताओं की पूर्ति तथा कुण्ठा आदि को भी प्रभाव पड़ता है। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में एक सीधे एक से अधिक ऐसे गुण सम्मिलित होकर सामाजिक अन्तर्क्रिया को प्रभावित करते है। कोई अकेला गुण व्यवहार को व्यापक रूप में नहीं, अपितु सीमित रूप में ही प्रभावित करता है।

9.11 सारांश

सामाजिक अन्तर्क्रियाप्रक्रमों को दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता हैः एकीकरण या सम्बद्धक सामाजिक प्रक्रम तथा विघटनात्मक या बिच्छेदक सामाजिक प्रक्रम।कुछ प्रमुख सामाजिक प्रक्रमसामाजिक सुगमता, सहयोग, समंजन, आत्मसात्करण, प्रतिस्पर्धातथा द्वन्द्वहै।'सामाजिक सुगमता' का आशय दूसरों की उपस्थिति का किसी व्यक्ति के निष्पादन (कार्य) पर पड़ने वाले प्रभावों से है। इस प्रकार इसमें कार्य में होने वाली वृद्धि या ह्रास दोनों को सम्मिलित किया जाता है। 'सहायोग' एक प्रकार का परस्पर मिलकर किया जाने वाला व्यवहार है। इस प्रकार के व्यवहार का उद्देश्य लोगों के उभयनिष्ठ लक्ष्य को प्राप्त करना होता है और लक्ष्य की प्राप्ति तक या परस्पर इच्छित कार्य के पूरा होने तक लोगों का समन्वित प्रयत्न जारी रहता है। 'समंजन' परस्पर सामन्जस्य स्थापित करने की प्रक्रिया है यह स्थिति उस समय देखने को मिलती है जब परस्पर विरोधी विचारों, मान्यताओं या दृष्टिकोणों के लोग या समूह आपस में समन्वय एवं एकता स्थापित करने हेतु समझौतावादी नीति के आधार पर चलने का कार्य करते है। 'आत्मसात्करण' या स्वांगीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग या समूह आपसी मतभेद भुलाकर एकता स्थापित करते है और आपसी असमानताओं का त्याग कर देते है। इसके लिए उन्हें अपनी विशिष्ट पहचान भी छोड़नी पड़ती है। 'प्रतिस्पर्धा' अन्तर्क्रिया का वह रूप है जिसमें अनेक व्यक्ति या समूह किसी विशेष वस्तु सेवा या लाभ को पाने की अभिलाषा करते हैं। परन्तु प्राप्य वस्तु इतनी सीमित, दुर्लभ या अविभाज्य होती है कि वह सबको प्राप्त नहीं हो सकती। अतः वे उसे पाने के प्रयत्न में एक दूसरे से आगे बढ़ने या एक–दूसरे का मात देने की कोशिश करते है। 'द्वन्द्व' या संघर्ष ऐसी अन्तर्क्रिया है जिसमें एक पक्ष दूसरे को मिटाकर क्षति पहुँचाकर या कमजोर करके अपने लक्ष्य पूरे करने को तत्पर होता है। संघर्ष तब पैदा होता है जब दोनों पक्षों के लक्ष्य परस्पर विरोधी हों या जब वे किसी दुर्लभ वस्तु को हासिल करने की दौड़ में एक दूसरे से आगे निकल जाना चाहते है। 'सामाजिक अन्तर्क्रिया' की विभिन्न प्रक्रियाओं के स्वरूप पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति द्वारा अकेले में और सामाजिक परिस्थिति में किए जाने वाले व्यवहारों में अन्तर पाया जाता है। ऐसा अन्तर सामाजिक परिस्थिति विभेदक या भिन्नतापरक प्रभाव कहा जाता है।समाजिक अन्तर्क्रिया में अन्तर्वैयक्तिक अनुक्रिया गुणों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनसे अन्तर्क्रिया का स्वरूप तथा तीव्रता आदि निर्धारित होती है।भूमिका स्ववृत्तियाँ,समाजमितीय स्ववृत्तियाँ तथा अभिव्यक्तात्मक स्ववृत्तियाँकुछ प्रमुखअन्तर्वैयक्तिक अनुक्रिया के गुण है।

9.12 शब्दावली

एकीकरण सामाजिक प्रक्रम	ऐसे सामाजिक प्रक्रम, जो लोगों को एक दूसरे के साथ सहयोग आदि करने के लिए प्रेरित करते है और जिनसे लोगों में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापति होता है।
विघटनात्मक सामाजिक प्रक्रम	ऐसी सामाजिक प्रक्रियाएं, जो लोगों में दूरी या तनाव बढ़ाती है उन्हें विघटनात्मक या विच्छेदक सामजिक प्रक्रियाएं कहा जाता है। प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष इत्यादि इसके उदाहरण हैं।
सामाजिक सुगमता	सामाजिक मनोविज्ञान में सामाजिक सुगमता का आशय दूसरों की उपस्थिति का किसी व्यक्ति के निष्पादन (कार्य) पर पड़ने वाले प्रभावों से है। इस प्रकार इसमें कार्य में होने वाली वृद्धि या ह्रास दोनों को सम्मिलित किया जाता है।
सहयोग	उभयनिष्ठ रूप में इच्छित किसी कार्य को करने या किसी लक्ष्य को प्राप्त करने की दृष्टि से दो या दो अधिक व्यक्तियों द्वारा किया जाने वाला सतत एवं सामूहिक प्रयास सहयोग कहा जाता है।
समंजन	समंजन या व्यवस्थापन ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग या समूह आपसी एकता हेतु अपनी विरोधी गतिविधियों को परस्पर समायोजित (अनुकूलित) कर लेते है।
आत्मसात्करण	आत्मसात्करणयह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा विभिन्न जातीय एवं प्रजातीय वर्ग मतभेद भुलाकर समान विचार अपना लेते है और समाज में समान अवसर प्राप्त करने का मार्ग ढूँढ लेते है।
प्रतिस्पर्धा	दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा सीमित लक्ष्य, जो कि इतना सीमित है कि सभी उसमें भागीदारी नहीं कर सकते है, के लिए किया जाने वाला प्रयास प्रतिस्पर्धा है।
सामाजिक द्वन्द्व	सामाजिक द्वन्द्व या संघर्ष में ऐसी सभी क्रियाएँ सम्मिलित हैं जिनके द्वारा लोग किसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु एक दुसरे के विरूद्ध कार्य करते है।

9.13 अभ्यास प्रश्न

3. सामाजिक अन्तर्क्रिया की प्रक्रियाएंतथा प्रकारों को बताइए?
4. समाजिक सुगमता या सौकर्य किसे कहते हैं? इनकी प्रकृति स्पष्ट कीजिए?
5. सहयोगकी अवधारणाएँ को स्पष्ट कीजिए?
6. समंजन या व्यवस्थापनअर्थ स्पष्ट कीजिए?
7. आत्मसात्करण क्या हैं?
8. प्रतिस्पर्धा से आप क्या समझते हैं?
9. समूह या सामाजिक संघर्षको परिभाषित कीजिए।

9.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Allport, F. H. (1935). **Social Psychology**. Boston: Houghton Mifflin.

Baron, R. A. & Byrne, D. (1987).**Social Psychology: Understanding Human Interactions**. Allyn & Bacon, London.

Brinkerhaff, D. B. & White, L. K. (1985).**Sociology**. West Pub. Co., N.Y.

Myers, D. G. (1988).**Social Psychology**. McGraw-Hill, N.Y.

Raven, B. & Rubin, J. (1974). **Social Psychology**: People in Groups. John Wiley.

Sears et. al. (1991).**Social Psychology**.

Singh A. K. (2014). **An Outline of Social Psychology**. Motilal Banarasi Das: New Delhi.

Singh, R. N. (2012). **Adhunik Samajik Manovigyan**. Agrawal Publication: Agara.

Sulaiman, M. (2014).**Advanced Social Psychology** (2nd Edition). Motilal Banarasi Das: New Delhi.

Zajonc, R.B. (1966). **Social Psychology: An Experimental Approach**. Cole. Pub.Co.

इकाई 10
सामाजिक मानकःअर्थ,स्वरूप,प्रकार एवं निर्माण

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य
10.2 सामाजिक मानक का अर्थ
10.3 सामाजिक मानक का स्वरूप
10.4 कुछ प्रमुख मानक
10.5 मानकों के प्रकार
10.6 सामाजिक मानक के प्रभाव तथा आशय
10.7 सामाजिक मानकों का निर्माण
10.8 सामाजिक मानक के विकासपर कारकों का प्रभाव
10.9 सारांश
10.10 अभ्यास प्रश्न
10.12 शब्दावली
10.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक मानक की अवधारणा को समझाने का प्रयास किया गया है। इसके साथ ही इसकी प्रकृति, निर्माण, प्रमुख प्रकारों तथा महत्त्व को स्पष्ट करना भी इस इकाई का उद्देश्य है। आशा है कि इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप :

- सामाजिक मानक की अवधारणा को समझ पाएँगे;
- सामाजिक मानक की प्रकृति अथवा इसकी विशेषताओं की व्याख्या कर पाएँगे;
- सामाजिक मानक का निर्माण समझ पाएँगे;
- सामाजिक मानक के प्रकारों की व्याख्या कर पाएँगे; तथा
- सामाजिक मानक पर कारकों के प्रभाव को स्पष्टतया समझ पाएँगे।

10.2 सामाजिक मानक का अर्थ

मानक या सामाजिक मानक का तात्पर्य किसी–समाज में प्रचलित नियमों, परम्पराओं प्रथाओं आदि से है। यह एक वास्तविकता है कि प्रत्येक समाज का समूह में कुछ नियमों, परम्पराओं तथा प्रथाओं को मान्यता प्राप्त होती है। उस समाज या समूह के सदस्यों को उन नियमों, परम्पराओं तथा प्रथाओं के अनुकूल व्यवहार करना आवश्यक होता है। जो इस नियमों, परम्पराओं अथवा प्रथाओं का उल्लंघन करने वाले दण्ड के भागी होते है। इन्हीं नियमों एवं परम्पराओं को मानक कहा जाता है।

बेरोन तथा बिर्ने ने इसी अर्थ में मानक की परिभाषा देते हुए कहा हैं, ''मानकों का तात्पर्य समूह के अन्तर्गत उन नियमों से है जो यह इंगित करते है कि इसके सदस्यों को विभिन्न परिस्थितियों में कैसे व्यवहार करना चाहिए।''

रेबर तथा रेबर के अनुसार, ''सामाजिक मानक का तात्पर्य ऐसे व्यवहार प्रतिरूप से है जो किसी–समाज विशेष में इस हद तक आधारित होता है कि उसे समाज के प्रतिबिम्बन के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है और उस समाज के सदस्यों द्वारा मान्यता प्राप्त मान लिया जाता है।''

10.3 सामाजिक मानक का स्वरूप

मानक अथवा सामाजिक मानक की उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से इसके स्वरूप के सम्बन्ध में निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट होती है :–

1. **समाजिक प्रसंग**– मानक का सम्बन्ध किसी समाज से होता है। इसीलिए, इसे सामाजिक मानक कहा जाता है। कुछ सामाजिक मनोवैज्ञानिक, सामाजिक मानक तथा समूह मानक को समानार्थक मानते है। लेकिन, वास्तविकता यह है कि समूह मानक केवल अपेक्षाकृत छोटी सामाजिक इकाइयाँ के लिए ही आरक्षित है।
2. **समाजिक प्रतिबिम्बन**– सामाजिक मानक किसी समाज का प्रतिबिम्बन होता है। सामाजिक मानको के आधार उस समाज में प्रचलित नियमों, परम्पराओं, प्रथाओं, विश्वासों आदि का बोध होता है।
3. **समाजिक व्यवहार प्रतिरूप**– सामाजिक मानक वास्तव में किसी समाज के व्यवहार प्रतिरूप की सांकेतिक होता है। सामाजिक मानक इस बात को निर्धारित करता है कि अमुक समाज के व्यक्तियों को विभिन्न परिस्थितियों में क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। जैसे – हिन्दू समाज, मुस्लिम समाज तथा पारसी समाज में प्रचलित मानक निर्धारित करते है कि मृतक को क्रमशः जला देना चाहिए, जमीन में दफन कर देना चाहिए तथा पक्षियों को खिला देना चाहिए।
4. **मानक–अंतरण**– मानक अथवा सामाजिक मानक की एक विशेषता यह है कि इसका अंतरण पीढ़ी दर–पीढ़ी होता रहता है। हिन्दू समाज में गाय को माता का दरजा दिया जाता है। यह सामाजिक मान्यता या सामाजिक मानक सदियों से अनेक पीढ़ीयों से होता हुआ आज भी जारी है।

5. **परिवर्तनशीलता–** सामाजिक मानक में परिवर्तन की संभावना भी बनी रहती है। एक समय था कि सती–प्रथा को हिन्दू समाज में मानक के रूप में मान्यता प्राप्त थी। लेकिन आज वह समाप्त हो गया है। इसी प्रकार विधवा की अनुमति तथा बाल विवाह का विरोध हिन्दू समाज के बदलते हुए मानक के उदाहरण है।
6. **विचारों तथा व्यवहारों में समानता–** सामाजिक मानक की एक विशेषता यह भी है कि इसके प्रभाव के कारण किसी समाज के विचारों तथा व्यवहारों में समानता विकासित होती है। मुस्लित समाज का एक धार्मिक मानक यह है कि कारबा की ओर मुँह करके ही 'नमाज' (इबादत) अदा करनी चाहिए। यह व्यवहार संसार के तमाम मुसलमानों में समान रूप से देखा जाता है।
7. **नियंत्रण का साधन–** मानक वास्तव में सामाजिक व्यवहारों को नियंत्रित करने का एक ऐसा साधन है जो बहुत–अंशों में आत्मप्रेरित होता है। व्यक्ति स्वेच्छा से अपने व्यवहार पर नियंत्रण रखता है, तथा अपने सामाजिक मानकों का उल्लंघन करने से बचता है।
8. **सर्वसम्मति** – मानक व सामाजिक मानक के प्रति समाज के सभी सदस्यों की सर्वसम्मति माना जाता है लेनिक सदा ऐसा नहीं होता है। कुछ सदस्यों की सहमति नहीं होने पर भी अधिकांश सदस्यों की सहमति के आलोक में सामाजिक मानक के रूप में किसी नियम, या विश्वास को स्वीकार कर लिया जाता है। वास्तव में कुछ अंशो में सर्वसम्मति के बिना मानक हो ही नहीं सकता है। इसीलिए मानक को सामूहिक मूल्यांकन कहा जाता है।
9. **नियामक प्रासंगिकता–** मानक की एक मुख्य विशेषता नियामक प्रासंगिकता है। यह किसी परिस्थिति के सन्दर्भ में काम करता है। परिस्थिति के प्रसंग के अनुकूल इसमें परिवर्तन हो सकता है। हमारे दैनिक जीवन के अनुभव साक्षी है कि आचरण के मूल्यांकन का व्यक्तिगत तथा सामाजिक विशेषताओं के साथ–साथ लक्ष्य व्यक्ति, वस्तु की विशेषताओं तथा परिस्थिति विशेष की विशेषताओं के प्रासंगित होता है।
10. **विभेदक क्षमता–** मानक की एक विशेषता यह है कि इसको सैद्धांतिक पक्ष तथा व्यवहारिक पक्ष में अन्तर है। सैद्धांतिक रूप से समाज में सभी व्यक्तियों के लिए किसी मानक के प्रति समान क्षमता या अधिकार होता है, किन्तु व्यावहारिक रूप में नहीं। जैसे – भारत में एक गरीब तथा प्रभावशाली धनी व्यक्ति को वोट देने का समान अधिकार है। यह यहां का मानक है। लेकिन व्यावहारिक रूप से दोनों के इस अधिकार में भारी अन्तर है।

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि मानक या सामाजिक मानक के स्वरूप के सम्बन्ध में उपर्युक्त कई विशेषताएं है, जिनसे ज्ञात होता है कि सामाजिक मानक एक जटिल संप्रत्यय है।

10.4 कुछ प्रमुख सामाजिक मानक

प्रत्येक समाज में कुछ महत्वपूर्ण मानक प्रचलन में होते है। इनमें परम्परायें, प्रथायें, जनरीतियाँ एवं रूढ़ियाँ प्रमुख हैं–

1. **परम्परा** – परम्पराएँ सामाजिक विरासत हैं। इनका एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तानतरण होता रहता है। इसीलिए पीढ़ी–दर–पीढ़ी लोगों के व्यवहार में समानता प्रदर्शित होती रहती है। **जिन्सबर्ग (1958)** के अनुसार, परम्परा का आशय व्यक्तियों के विचारों, आदतों एवं प्रथाओं के योग से है। इनका हस्तानतरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को होता रहता है। इनका हमारे जीवन में व्यापक उपयोग तथा महत्व है।

   (i) परम्परा हमें व्यवहार की उपयुक्ता सिखाती हैं। अर्थात कब कैसा व्यवहार करना है।

(ii) इनके कारण लोगों के व्यवहार में अनुरूपता प्रदर्शित होती है।
(iii) परम्पराओं से समाज में सामंजस्य तथा शान्ति रहती है।
(iv) ये व्यवहार को नियंत्रित तथा निर्देशित करती हैं।
(v) परम्पराएँ व्यक्ति को उसके अतीत एवं इतिहास से अवगत कराती है।

2. **प्रथाएँ – रॉस (1925)** के अनुसार, प्रथा का आशय व्यवहार की पद्धतियों या तरीकों से है। इसके विपरीत परम्परा का तात्पर्य पारम्परिक विचार एवं विश्वास के पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरण से है। इसके बारे में कुछ निष्कर्ष इस प्रकार हैं –
(क) प्रथा व्यवहार की पद्धति निश्चित करती है,
(ख) प्रथाओं का भी हस्तान्तरण होता रहता है,
(ग) प्रथाएँ भी समाज में सामंजस्य उत्पन्न करती हैं,
(घ) प्रथाओं में रूढ़िवादिता की विशेषता पाई जाती है।

3. **जनरीतियाँ** –यह सम्प्रत्यय विलियम ग्राहम समरन द्वारा 19वीं शताब्दी में प्रयुक्त किया गया। **ब्रिन्करहाफ एवं ह्वाइट (1985)** के अनुसार, जनरीतियाँ व्यवहार की पारम्परिक सामान्य एवं आदतजन्य विधियाँ हैं। जनरीतियों का निर्माण सामाजिक अन्तर्क्रिया पर निर्भर करता है। इन्हें व्यवहार के लोकप्रिय मानक के भी रूप में जाना जाता है। इनकी अवहेलना करना कठिन होता है। जनरीतियों के अनुसार व्यवहार करने पर प्रशंसा प्राप्त होती है और उनके विपरीत आचरण करने पर निन्दा का शिकार बनना पड़ता है।

4. **रूढ़ियाँ–ब्रिन्करहाफ एवं ह्वाइटमैन (1985)** के अनुसार, रूढ़ियाँ ऐसे मानक है जिनके साथ गलत या सही की प्रबल भावना जुड़ी हुई होती है। लोग यह समझते है कि समृद्ध तथा व्यक्ति का कल्याण इन्हीं पर निर्भर करता है। रूढ़ियाँ धनात्मक एवं निषेधात्मक होती है, जैसे – मानवता, सत्य बोलना, परोपकार धनात्मक रूढ़ियाँ हैं; इसके विपरीत चोरी न करना, बेईमानी न करना, झूठ न बोलना, निषेधात्मक रूढ़ियाँ है। ऐसी रूढ़ियाँ अनुचित व्यवहारों को प्रतिबंधित या निषेधित करती है। धनात्मक रूढ़ियाँ वांछित व्यवहारों को प्रोत्साहित करती हैं। इनके कारण समाज में शान्ति, सद्भाव, सामन्जस्य, भाईचारा, आदर, सहयोग एवं अनुरूपता पाई जाती है। इनका उल्लंघन करने पर भी व्यक्ति निन्दित एवं दण्डित किया जाता है।

5. **कानून** –कानून या नियम भी मानक होते हैं इन्हें सरकार या वैधानिक संस्थाओं द्वारा लागू किया जाता है। इनका सम्बन्ध प्रथाओं और जनरीतियों से होता है। ऐसे नियम जो सामाजिक प्रत्याशाओं एवं मान्यताओं के अनुरूप नहीं होते हैं उनका महत्व धीरे–धीरे समाप्त हो जाता है। कानून व्यवहार सम्बन्धी नियमों के रूप में जाने जाते हैं। ये लिखित तथा समाज द्वारा स्वीकृत होते हैं। इनका उल्लंघन करने पर दण्ड मिलना निश्चित होता है।

10.5 सामाजिक मानकों के प्रकार

सामाजिकमानक प्रायः दो प्रकार के होते हैं –

1. **सार्वभौमिक मानक** – ऐसे मानक जो सभी पर लागू होते है, उन्हें सार्वभौमिक मानक कहते है।
2. **विशिष्ट मानक** – ऐसे मानक जो किसी एक वर्ग या समूह पर लागू होते हैं परन्तु दूसरे पर लागू नहीं होते है। उन्हें विशिष्ट मानक कहते हैं, जैसे – पुरूषों के लिए जो व्यवहार–संहिता है वह महिलाओं से

भिन्न हैं। अध्यापकों के लिए निर्धारित नियम अलग हैं और छात्रों के लिए अलग हैं इत्यादि। विशिष्ट मानकों से समाज में लोगो की भूमिकाओं को निश्चित करने में सहायता मिलती है।

10.6 सामाजिक मानक के प्रभाव तथा आशय

मानक अथवा सामाजिक मानक का प्रभाव को कई रूपों में देखा जाता है। मुख्य रूप से इसके निम्नलिखित प्रभाव सामाजिक जीवन में अधिक देखे जाते है :–

1. **सामाजिक मानक तथा अनुपालन**– सामाजिक मानक का आशय अनुपालन के सन्दर्भ में काफी महत्वर्पूण है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने अनुपालन की व्याख्या सामाजिक मानकों के अलोक में की है। अनुपालन का अर्थ है कि समूह दबाव, सामूहिक निर्णय अथवा समूह निर्णय के समान झुक जाना। इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। भारतीय हिन्दू समाज में चचेरे भाई बहन के बीच विवाह वर्जित है। यही हिन्दू समाज का मानक है। एक हिन्दू युवक अपनी चचेरी बहन की ओर आकर्षिक होकर निजी तौर पर उससे विवाह करने का निर्णय लेता है। लेकिन मानक के विपरीत होने के कारण हिन्दू समाज या उसका परिवार उसके इस निर्णय का विरोध करता है। वह युवक इस भय के कारण कि अपने नीति निर्णय पर अटल रहने पर उसे परिवार या समाज से निकाल दिया जा सकता है, अथवा परिवार के सदस्य के रूप में मिलने वाले लाभों से उसे वंचित कर दिया जा सकता है, वह समाज अथवा परिवार के दबाव के सामने झुक जाता है, और उस युवती से विवाह करने का इरादा छोड़ देता है। **शेरीफ** (1948) व **ऐश** (1956) आदि के अध्ययनों के अनुपालन के रूप में मानक का प्रभाव प्रमाणित होता है। **रोजेनबर्ग तथा टरनर** ने कहा है कि अनुपालन के सन्दर्भ में सामाजिक मानक का आशय सहज ही स्पष्ट हो जाता है।
2. **सामाजिक मानक का पालन** – सामाजिक मानक का आशय पालन के सन्दर्भ में भी देखा जाता है कि समूह या समाज के मानक के प्रभाव के परिणामस्वरूप ही पालन व्यवहार घटित होता है। पालन का अर्थ है किसी दूसरे व्यक्ति के अनुरोध के अनुकूल व्यवहार करना। जैसे – यदि किसी बुढ़े व्यक्ति के अनुरोध करने पर हम उसे सड़क पार करा देते है तो उस व्यवहार को पालन कहा जायेगा। उल्लेखनीय है कि पालन में हम किसी दूसरे व्यक्ति की इच्छा के अनुकूल व्यवहार करते है, जबकि अनुपालन में हम अपनी इच्छा के अनुकूल कोई व्यवहार करते हैं। इसी तरह पालन में किसी तरह का द्वन्द्व या संघर्ष नहीं होता है जबकि अनुपालन में विधि–निर्माण तथा समूह–निर्माण के बीच विरोध के कारण द्वन्द्व या संघर्ष रहता है। यह भी सही है कि पालन में किसी तरह के दण्ड या भय अथवा स्पष्ट पुरस्कार का लालच नहीं रहता है जबकि अनुपालन में रहता है।
3. **सामाजिक मानक तथा आज्ञापालन**– मानक का आशय आज्ञापालन के सन्दर्भ में देखा जाता है। दूसरे शब्दों मे, मानक का प्रभाव आज्ञा पालन केरूप में देखा जाता है। समूह या समाज में प्रचलित मानकों के अनुकूल ही व्यक्ति आज्ञापालन सम्बन्धी व्यवहार करता है। आज्ञापालन का अर्थ है वैध अधिकारियों के आदेश का पालन करना। जैसे – युद्ध के मैदान में सैनिक अपनी पदाधिकारी की आज्ञा का पालन करते है। इसी मानक के तहत बच्चे अपने माता–पिता की आज्ञा का पालन करते है और शिष्य अपने गुरू का आज्ञा–पालन करते है। कभी–कभी पदाधिकारी के गलत आदेश के कारण व्यक्ति गलत कार्य करने को बाध्य होता है। इसे आज्ञा पालन का अपराध कहते है।
4. **सामाजिक मानक तथा विचलन**– सामाजिक मानक का एक महत्वूपर्ण आशय विचलन अथवा विचलित व्यवहार के सन्दर्भ में है। विचलन का अर्थ है वह व्यवहार–प्रतिरूप जो किसी समाज के अर्न्तगत स्वीकृत मानकों से स्पष्टतः भिन्न है। कारण, इस तरह के विचलित व्यवहारों की पहचान मानक के आधार पर

संभव हो सकती है। विचलन वास्तव में अनुपालन के विपरीत है। इस सन्दर्भ में **बेकर** (1963), **इरिक्सन** (1962), **किटसुसे** (1962) के अध्ययन प्रासंगित प्रतीत होते है।

5. **सामाजिक मानक तथा परोपकारिता–** सामाजिक मानक का आशय परोपकारिता के सन्दर्भ में भी महत्पूर्ण है। परोपकारी व्यवहार अथवा सहायतापरक व्यवहार का आधार भी सामाजिक मानक है। सहायतापतर व्यवहार या उपकारिता का अर्थ है स्वार्थरहित होकर अथवा व्यक्तिगत नुकसान उठाकर दुसरों की सहायता करना। कुछ समाज मनोवैज्ञानिक परोपकारिता को जन्मजात प्रेरक मानते है तथा कुछ अन्य सामाजिक मनोवैज्ञानिक इसे सहकारिता प्रवृत्ति मानते है। लेकिन आधुनिक मनोवैज्ञानिक इसे अर्जित मानक मानते है। परोपकारिकता चाहे जन्मजात हो या अर्जित हो, इतना सत्य है कि इसका आधार सामाजिक मानक है। व्यक्ति अपने समाज मे मान्यता प्राप्त मानकों के अनुकूल परोपकारी व्यवहार करते है। यही कारण है कि भिन्न–भिन्न समाजों में प्रचलित मानकों के आलोक में सदस्यों के परोपकारी–व्यवहारों में भिन्नता पायी जाती है। इस सन्दर्भ में **डार्ली** तथा **लैटेन**, **पोलिआविन, रोडीन** तथा **पीलिआविन** आदि के अध्ययन उल्लेखनीय है।
6. **सामाजिक मानक तथा आक्रमण नियंत्रण–** आक्रमण नियंत्रण के सन्दर्भ में सामाजिक मानक का महत्वपूर्ण स्थान है। माता–पिता अपने बच्चों को आक्रमण को अर्जित करने से बचाव के लिए सामाजिक मानको का उपयोग करते है। माता–पिता उन्हें अपने समाज के नियमों, परम्पराओं आदि के आलोक में आक्रमणकारी व्यवहार करने से बचाने का प्रयास करते है तथा इसका उल्लंघन करने पर उन्हें दण्डित करते है। इस तरह बच्चे आक्रमण से बचाव करने हेतु अनुकूलित हो जाते है।
7. **सामाजिक मानक तथा अन्तराष्ट्रीय व्यवहार–लिण्डग्रेन** ने कहा है कि, ''अन्तर्राष्ट्रीय आक्रमण की रोकथाम उसी हद तक सम्भव है जिस हद तक विभिन्न राष्ट्र किसी सामान्य मानक का निर्माण करने में सफल होते है।''
8. **मानक तथा अपेक्षित भूमिका निर्वाह–** मानक तथा अपेक्षित निर्वाह के बीच गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। भूमिका में परिवर्तन होने पर व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित प्रत्याशा तथा अधिकार परिवर्तित हो जाते है। एक व्यक्ति पिता, पति, पुत्र, शिक्षक आदि भूमिकाओं में भिन्न–भिन्न समय में हो सकता है। इन सभी भूमिकाओं की स्थिति में सामाजिक मानक अलग–अलग होते है। परिणामतः उनके विचार एवं व्यवहार बदल जाते है। पिता की भूमिका में एक व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह अपमे अपराधी बेटे को क्षमा कर दे। लेकिन एक न्यायाधीश की भूमिका में उसी व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह उस बेटे की उचित दण्ड दे।
9. **सामाजिक मानक तथा सहकारिता–** सहकारिता के सन्दर्भ में भी सामाजिक मानक का महत्पूर्ण स्थान देखा जाता है। सहकारिता का अर्थ है परस्पर स्वीकार्य लक्ष्यों के प्रति मिल–जुलकर काम करना। लक्ष्यों का समान होना आवश्यक नहीं है, किन्तु इतना आवश्यक है कि उन लक्ष्यों को प्राप्त करने से सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को संतुष्टि मिले। **लिंडग्रेन** के अनुसार इसका अर्थ सहकारिता का आधार पालन तथा अनुपालन के रूप मे सामाजिक मानक है।
10. **सामाजिक मानक तथा समग्रता–** समग्रता अर्थात् समूह समग्रता का अर्थ है समूह के सदस्यों के साथ सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने तथा उसे बनायें रखने की योग्यता। लेकिन किसी समूह की समग्रता उसी सीमा

तक संभव हो पाती है। जिस सीमा तक समूह के सदस्य समूह मानकों का पालन करते है। बेक के अध्ययन से इस विचार का समर्थन होता है।

10.7 सामाजिक मानकों का निर्माण

जैसा कि प्रारम्भ में उल्लेख किया जा चुका है, मानकों का निर्माण सामाजिक अन्तर्क्रिया का परिणाम है। व्यक्ति इसे सामाजिक अन्तर्क्रिया के माध्यम से अर्जित करता है। स्पष्ट है कि मानकों से अवगत होने में सामाजिक अधिगम की भूमिका होती है। व्यक्ति के व्यवहार, विचार तथा अभिवृत्तियों में उसके समाज में प्रचलित मानकों की झलक मिलती रहती है। व्यक्ति की अपनी प्रास्थिति तथा भूमिका में परिवर्तन होने के कारण भी उसे नवीन मानकों को अंगीकार करना पड़ता है। एक शिशु के व्यवहार में मानकों का प्रभाव परिलक्षित नहीं हो पाता है क्योंकि उसमें अपेक्षित सामाजिक योग्यता का उस समय तक विकास नहीं हो पाता है। परन्तु जैसे–जैसे आयु, अनुभव एवं योग्यता मे वृद्धि होती है, वह भी सामाजिक आचार–संहिता से परिचित होता जाता है और उसे उसका महत्व भी स्पष्ट होने लगता है। वह धीरे–धीरे व्यवहार के नियमों को आत्मसात करता जाता है और अपने व्यवहार को सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुरूप परिमार्जित करता रहता है। **पियाजे (1932)** का निष्कर्ष है के बच्चों में मानकों के अनुरूप व्यवहार करने की योग्यता धीरे–धीरे विकसित होती है। लोगी जैसा खेल उनमें नैतिकता विकसित करनेमें महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह विकास चार अवस्थाओं में सम्पन्न होता है –

प्रथम अवस्था– प्रारम्भ में बच्चे बड़ों को देखकर खेल सीखते हैं। वे केवल आनन्द लेते है। उन्हें हार–जीत अथवा उचित–अनुचित को समझने में विशेष रूचि नहीं होती है।

द्वितीय अवस्था– लगभग चार–पॉच वर्ष की उम्र होते–होते बच्चे नियमों को सीखना तथा समझना प्रारम्भ कर देते है। वे जिस तरह खेलना जानते हैं, उसी को उचित तथा वास्तविक विधि मानते है। अन्य सुझावों से सहमत नहीं होते है।

तृतीय अवस्था– लगभग 5–7 वर्ष की आयु होते–होते बच्चों में यह समझ विकसित होने लगती है कि कोई भी नियम मनुष्यों द्वारा ही बनाये जाते हैं। नियम स्थायी नहीं बल्कि परिवर्तनशाल होते है। उचित – अनुचित में अन्तर भी समझने लगते है।

चतुर्थ अवस्था–पियाजे ने मानक विकास की चौथी अवस्था के प्रारम्भ का समय किशोरवस्था बताया है। इस अवस्था में वे यह अनुभव करने लगते हैं कि खेल का तरीका एक ही नहीं अनेक हो सकता है और एक निश्चित तरीके को हर एक को स्वीकार करना चाहिए। वास्तव में इसी अवस्था में मानकों का आत्मसातीकरण किया जाने लगता है और वे प्रत्याशानुसार व्यवहार का प्रयास करने लगते है।

मानक निर्माण का प्रायोगिक अध्ययन

मानक निर्माण की प्रक्रिया सामाजिक अधिगम या सामाजिक अन्तर्क्रिया का परिणाम है (पियाजे,1932)। इसका निर्माण प्रायोगिक परिस्थिति में भी किया जा सकता है। इस समस्या पर कुछ शोधकर्ताओं द्वारा ऐतिहासिक प्रयोग भी किये गये है। ऐसे कुछ प्रमुख प्रयोगों का यहाँ पर सन्दर्भ दिया जा सकता है। आगे उनका विस्तृत वर्णन किया गया है।

शेरिफ का स्वचलित गतिक प्रभाव का अध्ययन –शेरिफ के प्रायोगिक अध्ययन में यह पाया गया है कि व्यक्ति समूह से प्राप्त सूचनाओं को सामाजिक वास्तविकता मानकर स्वयं भी वैसा ही व्यवहार कर सकता है जैसा कि अन्य अधिकांश सदस्यों का विचार है। एक प्रयोग में प्रयोज्यों ने एक स्थिर बिन्दु को, यह सूचना प्राप्त होने पर कि समूह के अधिकांश की राय में वह गतिमान है, गतिमान प्रत्यक्षित किया। अर्थात् उन्होंने अपने विचार के अनुरूप परिवर्तित कर लिया। उनके व्यवहार पर समूह मानदण्डों का प्रभाव बाद में भी पड़ा। यह अध्ययन मानकों

के प्रायोगिक अध्ययन का एक प्रतिष्ठित उदाहरण है। इस निष्कर्ष की पुष्टि बाद में अनेक अध्ययनों से भी हुई है।

शेरिफ की प्रायोगिक परिस्थिति असंरचित या अस्पष्ट थी। इस प्रसंग में हुए प्रयोगों का निष्कर्ष है कि जिन प्रयोज्यों में अपने निर्णय पर विश्वास कम होता है और परिस्थिति अस्पष्ट होती है, समूह के विचार के बारे में प्राप्त सूचनानुसार अपना निर्णय शीघ्रता से परिवर्तित कर लेते है। इस प्रवृति को अभिमुखता कहते है। इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति (प्रयोज्य) का निर्णय समूह निर्णय की ओर केन्द्रित होने लगता है। ऐसा हो जाने पर समूह की प्रमाणिकता बढ़ती जाती है। परन्तु यदि प्रयोज्यों को अपने पर विश्वास है तो उनमें अभिमुखता की प्रवृति कम प्रदर्शित होती है। यदि प्रयोज्यों ने मानको को अन्तःकृत कर लिया है तो वे उससे और भी प्रभावित होंगे। ऐसी दशा में मानको को परिवर्तित करना कठिन हो जायेगा।

इस प्रसंग में यह भी निष्कर्ष पाया गया है कि अन्तर्क्रिया में सहभागी व्यक्तियों की विश्वसनीयता प्रतिष्ठा एवं क्षमता अधिक होने पर प्रयोज्यों में अभिमुखता की प्रवृति बढ़ जाती हैं। शेरिफ का यह भी मत है कि व्यक्ति विभिन्न प्रकार के मानकों को आत्मसात कर लेता है और वे उसके व्यवहार को प्रभावित करते रहते है। (जैसे – प्रथाएं, रूढ़िया मूल्य तथा परम्परा इत्यादि) ऐसा इसलिए क्योंकि मानक अपेक्षाकृत स्थायी होते है।

ऐश का सामूहिक दबाव का अध्ययन–ऐश का प्रयोग यह दर्शाता है कि व्यक्ति अपना निर्णय समूह दबाव के कारण समूह–निर्णय के अनुरूप परिवर्तित कर सकता है। जैसे कि उल्लेख किया जा चुका है, **शेरिफ** के प्रयोग में परिस्थिति अस्पष्ट थी। ऐश के प्रयोग में परिस्थिति स्पष्ट थी। **ऐश** की तकनीक में प्रयोज्य को समूह के निर्णय से अवगत कराकर उस पर दबाव डाला जाता है ताकि वह अपना निर्णय अपेक्षित रूप में परिवर्तित कर ले। **ऐश (1951)** का प्रयोग मानकीय सामाजिक प्रभाव का उदाहरण है। शेरिफ का प्रयोग सूचनात्मक सामाजिक प्रभाव तकनीक पर आधारित था। ऐश के प्रयोग में पाया गया कि मिथ्या समूह निर्णय प्रस्तुत कर देने से प्रयोज्यों ने एक ऐसी चल रेखा को मानक रेखा के बराबर मान लिया जो वास्तव में बराबर नहीं थीं। अनुरूपता के अन्तर्गत इस प्रयोग का भी विवेचना किया गया है। ये प्रयोग यह स्पष्ट करते है कि मानकों का निर्माण सामाजिक अन्तर्क्रिया का परिणाम है और मानक किसी समूह के सदस्यों के व्यवहार में एकरूपता लाते है।

10.8 सामाजिक मानक के विकासपर कारकों का प्रभाव

मानक अथवा सामाजिक मानक के सम्बन्ध में एक प्रश्न यह है कि विभिन्न मानकों का विकास अथवा निर्माण कैसे होता है। दूसरे शब्दों में, किन परिस्थितियों में मानकों का विकास होता है अथवा मानकों के विकास पर किन कारकों या निर्धारकों का प्रभाव पड़ता है। इस प्रश्न से सम्बन्धित किये गये अध्ययनों तथा दैनिक जीवन के निरीक्षणों से निम्नलिखित बाते स्पष्ट है :–

1. **अस्पष्ट परिस्थिति**– मानक या सामाजिक मानक के विकास पर परिस्थिति के स्वरूप का गहरा प्रभाव पड़ता है। अध्ययनों से पता चलता है कि अस्पष्ट परिस्थितियों में मानकों का विकास सहज रूप से संभव होता है। परिस्थिति जिस हद तक संरचित तथा स्पष्ट होती है, मानकों के विकसित होने की संभावना उसी सीमा तक कम होती है। अतः जहा अस्पष्ट परिस्थितियॉ सहायक होती है। **मुजफ्फर शेरीफ** के एक प्रयोग से इस बात का प्रमाण मिलता है कि मानकों के विकास में अस्पष्ट परिस्थितियों का हाथ होता है। उन्होंने अपने प्रयोज्यों को एक कमरे में बैठाया और निर्देश दिया कि जब कमरे में अंधेरा हो जायेगा तो एक प्रकाश बिन्दु नजर आयेगा। ज्यों ही वह प्रकाश बिन्दु घूमना आरम्भ करे वे टेबुल पर रखे टेलिग्राफ–कुंजी को दबा दें। उन्हें यह बतलाने के लिए कहा गया कि प्रकाश बिन्दु अपने आरम्भ स्थान से कितनी दूरी तक घूमा। वास्तविकता यह थी कि प्रकाश–बिन्दु गतिशील नजर आता था। इस घटना को **शेरीफ** ने स्वचलित प्रभाव की संज्ञा दी। फिर प्रयोज्यों के निर्णय की जॉच दो

परिस्थितियों में की गयी। पहली–परिस्थिति में उन्हें अकेले में निर्णय देने के लिए कहा गया और दूसरी परिस्थिति में उनसे दूसरे लोगों की उपस्थिति में निर्णय देने के लिए कहा गया। देखा गया कि पहली परिस्थिति में प्रयोज्यों के निर्माण में भिन्नता अधिक थी। जबकि दूसरी परिस्थिति में यह भिन्नता बहुत कम थी। इसका कारण यह है कि दूसरी परिस्थिति में समूह प्रभाव के कारण परिस्थिति अधिक स्पष्ट हो गयी जिससे एक मानक विकसित हो गया जो उनके निर्णय को नियंत्रित करने लगा। सामाजिक मानक के प्रभाव के कारण अकेले में होने वाली वैयक्तिक विभिन्नता धुंधली पड़ जाती है। यह प्रभाव उस समय भी जारी रहता है जब व्यक्ति अकेले में होता है। शेरीफ ने अपने प्रयोग में देखा कि जब प्रयोज्यों को समूह परिस्थिति से हटा कर अकेले–अकेले फिर से निर्णय देने के लिए कहा गया तो भी उनके निर्णय वही थे जो समूह परिस्थिति में दिये गये थे। शेरीफ के इस अध्ययन के आलोक में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त किये गये :–

(क) अस्पष्ट परिस्थिती में लोग अपने कार्य की दिशा के प्रति अनिश्चय एवं उलझन की स्थिति में रहते है। वे निर्णय नहीं ले पाते हैं कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। फलतः वे कार्य की सही दिशा जानने के लिए एक–दूसरे पर निर्भर हो जाते है और परस्पर बात–चीत के आधार पर किसी बिन्दु पर वे सहमत हो जाते है। इसी सहमति या सर्वसहमति से मानक का निर्माण हो जाता है।

(ख) इस सहमति या सर्वसहमति के रूप में समूह–प्रभाव समूह–परिस्थिति से बाहर भी जारी रहता है और अकेले में भी व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है।

(ग) यह प्रक्रिया सामान्तः इसके बोध से ही सहज रूप से जारी रहती है। इसी कारण इसे मौन सहमति कहा जाता है।

2. **सामाजिक दबाव**– सामाजिक मानक के निर्माण में अस्पष्ट परिस्थिति के साथ–साथ दबाव का भी निश्चित प्रभाव पड़ता है। **शेरीफ** के प्रयोग से इस समस्या का समाधान नहीं हो पाता है कि वे मौन सहमति अधिक अस्पष्ट परिस्थिति में विकसित होता है, वहीं प्रभाव अपेक्षाकृत कम अस्पष्ट परिस्थिति में विकसित होता हैं, या नहीं **ऐश** ने अपने क्लासिकी प्रयोग के माध्यम से इस समस्या के समाधान का प्रयास किया। इन प्रयोगों में मूल बात थी एक सीधे–सीधे प्रयोज्य को एक ऐसे समूह में रखना था जिसके सदस्यों को कार्यवाही में निर्धारित बिन्दुओं पर गलत निर्णय देने का निर्देश दिया गया था। परिणाम में देखा गया कि 26% प्रयोज्य प्रयत्न में गलत मानक का विरोध करने में सक्षम थे। प्रयोग में 8 प्रयास शामिल थे, जिसके दौरान अधिकांश प्रयोज्यों ने 12 बार गलत उत्तर दिये। गलत मानक के प्रति समर्पण से त्रिरूपतामक वितरण उत्पन्न होता है। निष्कर्ष के रूप में ऐश ने कहा कि गलत मानक की स्थिति में भी व्यक्ति के निर्णय पर बहुमत का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में ऐसी परिस्थिति जहां बहुमत के विरोधी वस्तुनिष्ठ प्रमाण उपलब्ध होतो हैं, वहां भी दूसरों के विचारों का प्रभाव (समूह–प्रभाव) व्यक्ति के निर्णय पर पड़ता है। बहुमत के प्रति अनुपालन या झुकाव **कैलिर्फोनिया** विश्वविद्यालय में व्यक्तित्व मापन एवं शोध संस्थान के अन्तर्गत **क्रचफिल्ड** के द्वारा किये गये प्रयोगों में भी देखा गया। विवेकी प्रयोज्यों अर्थात् वे प्रयोज्य जो प्रयोग की वैधता के प्रति आशंकित थे वे भी गलत मानक के शिकार हुए। 26% सीधे–सीधे प्रयोज्यों और 12% विवेकी प्रयोज्यों में यह बात देखी गयी।
3. **धार्मिक विश्वास**– मानकों के निर्माण या विकास में धार्मिक विश्वासों का भी हाथ होता है। सच पूछा जाये तो आदर्शी मानकों के विकास के पीछे धार्मिक विश्वासों का हाथ होता है। इसी कारण विभिन्न समाजों में प्रचलित मानकों मं भिन्नता पायी जाती है। हिन्दू समाज में गाय को माता की तरह पवित्र पशु माना जाता है जबकि मुस्लिम समाज में इसे अन्य पशुओं की तरह एक साधारण पशु समझा जाता है।

इसी आदर्शी मानक के विभिन्न स्वरूप के कारण किसी समाज में भगवान को मंदिर, किसी मस्जिद, किसी हरिमंदिर और किसी में गिरजाघर में तवस्थित माना जाता है।

4. **चिन्ता एवं तनाव**– चिन्ता तथा तनाव की स्थिति में विवेक घट जाता है और व्यक्ति अधिक संकेतशील बन जाता है। वह दूसरों का सुझाव तथा परामर्श की आवश्यकता महसूस करने लगता है। इसी आवश्यकता से समूह के प्रति झुकाव उत्पन्न होता है जो सामाजिक मानक को जन्म देता है। **शैश्टर** ने अपने प्रयोग में देखा कि चिन्ता से सम्बन्धन–आवश्यकता उत्पन्न होती है। उन्होंने विश्वविद्यालय की स्नातकोत्तर छात्राओं पर एक अध्ययन किया। छात्राओं को दो समूहों में विभाजित कर दिया गया। प्रयोगात्मक समूह की छात्राओं से कहा कि प्रयोग के समय उन्हें विद्युत आघात लगाया जायेगा, जिससे उन्हें पीड़ा होगी किन्तु स्थाई क्षति नहीं होगी। यह उच्च चिन्ता समूह था। नियंत्रित समूह की छात्राओं से कहा गया कि उन्हें हल्का विद्युत आघात लगाया जायेगा, जिससे कोई हानि नहीं होगी, केवल गुदगुदी महसूस होगी। यह निम्न चिन्ता समूह था। फिर उन सभी छात्राओं से कहा गया कि अब आप प्रयोग के लिए ठहर सकती हैं, अथवा जा सकती है। देखा गया की उच्च चिन्ता समूह की 63% लड़कियों ने कक्षा में एक साथ रहना पसन्द किया जबकि निम्नचिन्ता समूह की केवल 33% लड़कियों में यह बात देखी गयी। इस प्रकार चिन्ता के स्तर के ऊंचा होने के कारण पहले समूह की छात्राओं में मौन सहमति या सर्वसम्मति विकसित हुई।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि मानक या सामाजिक मानक के विकास या निर्माण पर उपर्युक्त कई कारकों का प्रभाव पड़ता है।

10.9 सारांश

सामाजिक मानक का तात्पर्य किसी–समाज में प्रचलित नियमों, परम्पराओं प्रथाओं आदि से है।समाजिक प्रसंग, समाजिक प्रतिबिम्बन, समाजिक व्यवहार प्रतिरूप, मानक–अंतरण, परिवर्तनशीलता, विचारों तथा व्यवहारों में समानता, नियंत्रण का साधन, सर्वसम्मति,नियामक प्रासंगिकता, विभेदक क्षमता आदि सामाजिक मानक की विशेषताएं है।परम्परा, प्रथाएँ, जनरीतियाँ,रूढ़ियाँ, कानून आदि कुछ महत्वपूर्ण मानक प्रचलन में है।ऐसे मानक जो सभी पर लागू होते है, उन्हें सार्वभौमिक मानक कहते है तथाऐसे मानक जो किसी एक वर्ग या समूह पर लागू होते हैं परन्तु दूसरे पर लागू नहीं होते है।सामाजिक मानक का प्रभाव को कई रूपों में देखा जाता है। मुख्य रूप से सामाजिक मानक का प्रभाव को अनुपालन,आज्ञापालन, विचलन, परोपकारिता, आक्रमण नियंत्रण, सामाजिक मानक का पालन, अन्तराष्ट्रीय व्यवहार, अपेक्षित भूमिका निर्वाह, सहकारिता तथा समग्रताकेरूपों में देखा जाता है।मानकों का निर्माण सामाजिक अन्तर्क्रिया का परिणाम है। व्यक्ति इसे सामाजिक अन्तर्क्रिया के माध्यम से अर्जित करता है।प्रथम अवस्था में बच्चे बड़ों को देखकर खेल सीखते हैं। चार–पॉच वर्ष की उम्र होते–होते बच्चे नियमों को सीखना तथा समझना प्रारम्भ कर देते है। 5–7 वर्ष की आयु होते–होते बच्चों में यह समझ विकसित होने लगती है कि कोई भी नियम मनुष्यों द्वारा ही बनाये जाते हैं। नियम स्थायी नहीं बल्कि परिवर्तनशाल होते है। उचित – अनुचित में अन्तर भी समझने लगते है। चौथी अवस्था में वे यह अनुभव करने लगते हैं कि खेल का तरीका एक ही नहीं अनेक हो सकता है और एक निश्चित तरीके को हर एक को स्वीकार करना चाहिए। अस्पष्ट परिस्थिति, सामाजिक दबाव, धार्मिक विश्वासतथाचिन्ता एवं तनावआदि कई कारकों का सामाजिक मानक के विकास या निर्माण पर प्रभाव पड़ता है।

10.10 शब्दावली

सामाजिक मानक	सामाजिक मानक का तात्पर्य ऐसे व्यवहार प्रतिरूप से है जो किसी–समाज विशेष में इस हद तक आधारित होता है कि उसे समाज के प्रतिबिम्बन के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है और उस समाज के सदस्यों द्वारा मान्यता प्राप्त मान लिया जाता है।
परम्परा	परम्परा का आशय व्यक्तियों के विचारों, आदतों एवं प्रथाओं के योग से है। इनका हस्तानतरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को होता रहता है।
प्रथाएँ	प्रथा का आशय व्यवहार की पद्धतियों या तरीकों से है।
जनरीतियाँ	जनरीतियाँ व्यवहार की पारम्परिक सामान्य एवं आदतजन्य विधियाँ हैं। जनरीतियों का निर्माण सामाजिक अन्तर्क्रिया पर निर्भर करता है। इन्हें व्यवहार के लोकप्रिय मानक के भी रूप में जाना जाता है।
रूढ़ियाँ	रूढ़ियाँ ऐसे मानक है जिनके साथ गलत या सही की प्रबल भावना जुड़ी हुई होती है। लोग यह समझते है कि समृद्ध तथा व्यक्ति का कल्याण इन्हीं पर निर्भर करता है।.
कानून	कानून या नियम भी मानक होते हैं इन्हें सरकार या वैधानिक संस्थाओं द्वारा लागू किया जाता है।
सार्वभौमिक मानक	ऐसे मानक जो सभी पर लागू होते है, उन्हें सार्वभौमिक मानक कहते है।
विशिष्ट मानक	ऐसे मानक जो किसी एक वर्ग या समूह पर लागू होते हैं परन्तु दूसरे पर लागू नहीं होते है।

10.12 अभ्यास प्रश्न

10. सामाजिक मानक का अर्थ एवं स्वरूप स्पष्ट कीजिए?
11. मानक कितने प्रकार का होता है तथा प्रमुख मानक क्या है?
12. सामाजिक मानक के प्रभाव तथा आशय स्पष्ट कीजिए?
13. सामाजिक मानकों का निर्माण कैसे होता है? समझाइए।
14. सामाजिक मानक के विकास पर किन कारकों का प्रभावपड़ता है?

10.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Allport, F. H. (1935). **Social Psychology**. Boston: Houghton Mifflin.

Baron, R. A. & Byrne, D. (1987).**Social Psychology: Understanding Human Interactions**. Allyn & Bacon, London.

Brinkerhaff, D. B. & White, L. K. (1985).**Sociology**. West Pub. Co., N.Y.

Myers, D. G. (1988).**Social Psychology**. McGraw-Hill, N.Y.

Raven, B. & Rubin, J. (1974). **Social Psychology**: People in Groups. John Wiley.

Sears et. al. (1991).**Social Psychology**.

Singh A. K. (2014). **An Outline of Social Psychology**. Motilal Banarasi Das: New Delhi.

Singh, R. N. (2012). **Adhunik Samajik Manovigyan**. Agrawal Publication: Agara.

Sulaiman, M. (2014).**Advanced Social Psychology** (2nd Edition). Motilal Banarasi Das: New Delhi.

Zajonc, R.B. (1966). **Social Psychology: An Experimental Approach**. Cole. Pub.Co.

इकाई 11

सामाजिक मानदंड : प्रथा, परम्परा, लोकरीति और लोकाचार

Social Norms: Tradition, Customs, Folkway and Mores

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 मानदंड की अवधारणा

11 3. मानदंड की विशेषताएं

11.4 मानदंड के प्रकार

11.5 प्रथा की अवधारणाविशेषता/एं

11.6 प्रथा का महत्व

11.7 परम्परा

11.8 लोकरीतियां एवं उनकी विशेषताएं

11.9 लोकाचार एवं उनकी विशेषताएं

1110. सारांश

11.11 अभ्यास प्रश्न

11.12 पारिभाषिक शब्दावली

11.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः-

- मानदंड की अवधारणा एवं विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे।
- मानदंड के प्रकारों के बारे में आप जान सकते हैं।
- प्रथाओं की अवधारणा एवं विशेषताओं के विषय में जान सकते हैं।
- परम्परा अवधारणा एवं विशेषताओं के बारे में आप जान सकते हैं।
- लोकरीति और लोकाचार के बारे में आप जान सकते हैं।

11.1 प्रस्तावना

समाज में रहने वाले प्रत्येक प्राणी से आशा की जाती है कि वह समाज के नियम कानून एवं प्रथा या परंपरा को अवश्य जाने। जिसे सामाजिक भाषा में मूल्य, मानदंड एवं प्रथा कहते हैं। इस इकाई में हम इन सामाजिक शब्दों को विस्तार से जानेंगे या अध्ययन करेंगे। मानदंड शब्द से तात्पर्य समाज के वे नियम हैं। जो सांस्कृतिक विशेषताएं, सामाजिक मूल्यों और समाज द्वारा स्वीकृत विधियों के अनुसार किसी विशेष परिस्थिति में व्यक्ति को एक विशेष प्रकार का व्यवहार करने का निर्देश देते हैं, सामाजिक प्रतिमानों का संबंध् सामाजिक उपयोगिता से होता है। सामाजिक प्रतिमानों की प्रकृति सरल होती है तथा बिना अधिक सोचे-विचारे मनुष्य इसका अनुसरण करता है। सामाजिक मूल्य वे मानक या धरणाएं हैं जिनके आधार पर हम किसी व्यक्ति के व्यवहार, वस्तु के गुण, लक्ष्य, साधन एवं भावनाओं आदि का उचित या अनुचित, अच्छा या बुरा ठहराते हैं यह गतिशील होते हैं। इनका काम समाज में एक रूपता स्थपित करना है तथा सामाजिक क्षमता का मूल्यांकन करना। प्रथा से तात्पर्य यह

कि प्रथा व्यवहार का वह तरीका है जिसे एक विस्तृत क्षेत्र में संपूर्ण समाज की स्वीकृति प्राप्त है। इन्हें व्यक्ति बिना सोचे-विचारे ग्रहण कर लेता है।

11.2 मानदंड की अवधारणा

प्रत्येक समाज के अंतर्गत कुछ ऐसे पूर्व निर्धारित मानदंड या आदर्श पाए जाते हैं ,जिन्हें ध्यान में रखकर ही लोग व्यवहार करना पसंद करते हैं। समाज अपने सदस्यों के लिए कुछ इस ढंग का मानदंड निर्धारित कर देता है जिसका पालन समाज की अपेक्षा होती है, उसे ही समाजशास्त्रीय भाषा में आदर्श या मानदंड (Norms) कहा जाता है। मानदंड़ के माध्यम से समाज व्यक्तियों के व्यवहार का निर्धारण करता है। यह सामाजिक नियंत्रण का एक प्रमुख उपकरण है। मानदंड सामाजिक संरचना का एक प्रमुख तत्व है जो सामाजिक संरचना का संचालन करता है। यहां ध्यान देने का बात यह है कि बहुत लोग मानदंड को एक सांख्यिकी Statistical Average मानते हैं। समाज में मानदंड की सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि इससे लोगों को ज्ञान होता है कि किस परिस्थिति में उन्हें कौनसा व्यव-हार करना चाहिए और कौन सा नहीं। प्रत्येक समाज में किसी न किसी प्रकार के मानदंड की आवश्यकता अवश्य होती है क्योंकि कोई भी समाज मानदंड के अभाव में कभी नहीं चल सकता है। मानदंड समाज में व्यक्तियों के व्यवहार का संचालक है।

मानदंड के पालन के संबंध में एक दूसरी स्थिति यह है कि समाज के तमाम लोग समान रूप से उस मानदंड का पालन नहीं करना चाहते हैं। लेकिन समाज यह चाहता है कि हर सदस्य समान रूप से मानदंड का अनुसरण करे। मानदंडों का अनुकरण कराने के लिए समाज में दंडविध-ान (Sanction) की व्यवस्था होती है। जो लोग इसका अनुकरण करते हैं, समाज उन्हें शाबाशी देता है और जो लोग इसका उल्लंघन करते हैं, समाज उन्हें विभिन्न प्रकार से दंडित करने का प्रयास करता है। दंडविध-ान औपचारिक (Formal) एवं अनौपचारिक (Informal) दोनों हो सकता है। आधुनिक समाज में दंड विधन के लिए पुलिस एवं न्यायालय की व्यवस्था होती है जिसके माध्यम से व्यक्तियों के व्यवहार में अनुकूलता (Conformity) लाई जाती है। जुर्माना, कैद या फांसी की सजा औपचारिक नकारात्मक दंडविध-ान (Formal

Negative Sanction)के उदाहरण हैं। अच्छा काम करने वालों को कभी कोई उच्च जिम्मेदारी का पद दिया जाता है । तो कभी प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति की ओर से किसी खास अवसर पर सम्मानित भी किया जाता है। इसे औपचारिक सकारात्मक दंडविध-ान (Formal Positive Sanction) कहा जाता है। किसी मानदंड के पीछे यदि दंड व्यवस्था नहीं रहे तो समाज में लोगों के व्यवहार में अनुकूलता (Conformity) पैदा करना मुश्किल हो जाएगा और इस स्थिति में समाज अव्यवस्था या अराजकता (Anarchy) की स्थिति में पहुंच जायेगा। इसी अवस्था को Emile Durkheim ने मानदंड शून्यता (Anomie Normlessness) कहा है।

11.3 मानदंड की विशेषताएं

मानदंड की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

- मानदंडों को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है। मानदंडों के निर्माण में व्यक्ति की भूमिका गौण होती है। इसका निर्माण और विघटन दोनों सामुदायिक या सामाजिक स्तर पर होता है, व्यक्ति विशेष के स्तर पर नहीं।
- मानदंडों का समाज में समय के साथ स्वतः विकास होता है। कानून को छोड़कर अन्य तमाम मानदंडों का विकास किसी योजना के तहत नहीं होता है। कोई सामाजिक मानदंड कब और कहां विकसित हुआ यह उस समाज के लोगों को नहीं मालूम होता है।
- मानदंड औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों ही हो सकता है। औपचारिक मानदंड लिखित होता है और अनौपचारिक मानदंड अलिखित और मौखिक होता है।
- मानदंड सापेक्षिक रूप से ज्यादा स्थायी होता है। कुछ लोगों की कोशिश के बावजूद मानदंडों में आसानी से परिवर्तन नहीं हो पाता है।
- मानदंडों पर अमल करने के लिए प्रत्येक समाज में किसी-किसी प्रकार का दंड-न-विध‍ान होता है। जो लोग मानदंडों का उल्लंघन करते हैं, समाज उन्हें दंडित करने का प्रयास करता है। दूसरी तरफ जो लोग मानदंडों को ध्यान में रखकर अच्छा व्यवहार करते हैं, समाज उन्हें पारितोष या शाबाशी देता है।

- मानदंड सामाजिक नियंत्रण के एक अभिकरण के रूप में काम करता है। प्रत्येक समाज की अपेक्षा यह होती है कि उसका प्रत्येक सदस्य समान परिस्थिति में समान आचरण करे।
- मानदंड व्यक्तियों के लिए समाज में प्रकाश स्तंभ का काम करता है। मानदंड व्यक्तियों को यह निर्देश देता है कि उसे कौनसा नहीं करना है।-सा आचरण करना है और कौन-
- मानदंडों का संबंध सामाजिक नैतिकता से भी है। इसे हम विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक तर्कों के आधार पर सही या गलत नहीं सकते हैं, क्योंकि मानदंडों के अनुसार सामाजिक उपयोगिता एवं आवश्यकताएं स्वतः विकसित एवं परिवर्तित होती रहती हैं।

11.4 मानदंड के प्रकार

मानदंड दो प्रकार के होते हैं -

- निर्देशात्मक मानदंड (Prescriptive Norms)
- निषेधात्मक मानदंड (Proscriptive Norms)

- **निर्देशात्मक मानदंड**

जिस मानदंड से हमारा आचरण निर्देशित होता है, उसे निर्देशात्मक मानदंड कहा जाता है लेकिन समाज यदि यह मानता है कि लोगों को अपने मातापिता का आद-र करना चाहिए तो उसे निर्देशात्मक मानदंड कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, समाज जो नहीं करने की इजाजत देता है उसे निषेधात्मक मानदंड कहा जाता है और जो व्यवहार समाज अपने सदस्यों को खास ढंग से संपादन करने की अपेक्षा रखता है । उसे निर्देशात्मक मानदंड कहा जाता है। निर्देशात्मक एवं निषेधात्मक मानदंड में क्या फर्क है।

- **निषेधात्मक मानदंड**

जो मानदंड हमें किसी आचरण को करने की इजाजत नहीं देता है उसे निषेधात्मक मानदंड कहा जाता है। जैसे प्रत्येक आधुनिक समाज यह अपेक्षा रखता है कि सार्वजनिक स्थानों पर किसी को नग्न नहीं घूमना चाहिए। यह एक निषेधात्मक मानदंड का उदाहरण है।

समाज में कुछ वैसे भी मानदंड होते हैं जो सार्वभौम होते हैं। समाज के हरेक सदस्य को उस मानदंड के अनुसार ही आचरण करना है। वैसे आदर्श या मानदंड को सामुदायिक मानदंड (Communal Norms) कहा जाता है। दूसरी तरफ समाज में कुछ वैसे भी मानदंड होते हैं जो समाज के विभिन्न उपखंडों के स्तर पर पाए जाते हैं, उसे बीयरस्टेट ने सहचारी मानदंड (Associational Norms)कहा है। जैसे भारतीय समाज में अपने गुरूजनों को प्रणाम करना सामुदायिक मानदंड (Communal Norms) कहा जाता है। हिंदुओं के द्वारा जनेऊ धारण करना एक सहचारी मानदंड)Associational Norms) है, क्योंकि हिंदु समाज में तमाम जातियों के लिए समान रूप से यह आवश्यक नहीं रहा है।

जो आज सामुदायिक मानदंड हैं, वह कल सहचारी मानदंड भी हो सकता है। उसी तरह जो आज सहचारी मानदंड है, वह कल सामुदायिक मानदंड भी हो सकता है। कभी ऐसा भी होता है कि सामुदायकि मानदंड एवं सहचारी मानदंड समय के साथ समाप्त हो जाता है और उसकी जगह कोई नया सामुदायिक मानदंड एवं सहचारी मानदंड स्थापित हो जाता है।

कुछ समाजशास्त्रियों ने मानदंड को एक दूसरे ढंग से वर्गीकृत किया है, जैसे- **वास्तविक मानदंड** ;(Real Norms) एवं **नैतिक मानदंड** (Idealized Norms) जैसे यदि यह कहें कि अहिंसा परम-धर्म है, झूठ नहीं बोलना चाहिए या हमें पूरी ईमानदारी से काम करना चाहिए । तो इसे नैतिक मानदंड कहा जाएगा। लेकिन व्यवहार में हम कुछ और ही करते हैं। क्रोध में हम थोड़ा हिंसक भी हो जाते हैं, अपने किसी खास उद्देश्य की पूर्ति के लिए झूठ भी बोल लेते हैं या कभी हम अपने कार्य में पूरी निष्ठा नहीं रखते हैं। समाज ऐसे साधरण नैतिक विचलनों को सहन करता है। कर्त्ता को इसके लिए कोई विशेष दंड नहीं दिया जाता है। यह भी एक किस्म का सामाजिक मानदंड है। इस प्रकार वास्तविक जीवन के आचरण को हम वास्तविक मानदंड कहते हैं।

11.5 प्रथा की अवधारणाविशेषता/एं

प्रथा शब्द का प्रयोग ऐसी जनरीतियों के लिए होता है जो समाज में बहुत समय से प्रचलित हो। प्रथा में भी समूह कल्याण के भाव निहित होते हैं। यही कारण है कि कई बार प्रथा एवं-

लोकाचार का प्रयोग पर्यायवाची के रूप में किया जाता है। प्रथा को अलिखित कानून कहा जाता है।

जब जनरीतियों को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित किया जाता है तो वे प्रथाओं के नाम से जानी जाती हैं। प्रथाएं नवीनता की विरोधी होती हैं और ये कार्य करने के परंपरागत तरीके पर ही जोर देती हैं। प्रथा को शिथिल रूप में प्रायः लोकरीति कहा जाता है। लोकरीतियों एवं प्रथाओं के मध्य अंतर मात्रा का है।

अतः स्पष्ट है कि प्रथाएं हमारे सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। वे हमारी संस्कृति को निर्धारित करती हैं। इसका संरक्षण करती हैं एवं इसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करती हैं। उन्हें समाज के अस्तित्व के लिए नितांत आवश्यक समझा जाता है तथा इतना पवित्र माना जाता है कि उनका कोई उल्लंघन न केवल एक चुनौती अथवा अपराध अपितु ईश्वर के प्रकोप को आमंत्रित करने वाला अधार्मिक कार्य भी समझा जाता है।

प्रथा लोकतंत्रीय एवं समग्रवादी दोनों हैं। यह लोकतंत्रीय इसलिए है कि इसका निर्माण समूह द्वारा होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति इसके विकास में योगदान देता है। यह समग्रवादी इसलिए है कि यह आत्मअभि-व्यक्ति, सार्वजनिक एवं निजी के प्रत्येक क्षेत्र को हमारे विचारों, विश्वासों एवं ढंगों को प्रभावित करती है।

11.6 प्रथा का महत्व

1. प्रथाएं सामाजिक जीवन को नियमित करती हैं।
2. प्रथा सामाजिक विरासत का भंडार हैं ।
3. प्रथाएं सार्वभौमिक हैं ।
4. प्रथाएं व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं।
5. प्रथा लोकतंत्रीय एवं समग्रवादी दोनों हैं।

11.7 परम्परा

'परम्परा' का शाब्दिक अर्थ है -'बिना व्यवधान के शृंखला रूप में जारी रहना'। परम्परा-प्रणाली में किसी विषय या उपविषय का ज्ञान बिना किसी परिवर्तन के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ियों में संचारित होता रहता है। कुछ विद्वान 'सामाजिक विरासत' को ही परम्परा कहते हैं। परन्तु वास्तव में परम्परा के काम करने का ढंग जैविक वंशानुक्रमण या प्राणिशास्त्रीय विरासत के तरीके से मिलताजुलता है-, और वह भी जैविक वंशानुसंक्रमण की तरह कार्य को ढालती व व्यवहार को निर्धारित करती है। उसी तरह तरह अर्थात् जैविक वंशानुसंक्रमण की) परम्परा का भी स्वभाव बगैर टूटे खुद जारी रहने पर भूतकाल की उपलब्धियों को आगे (ही आने वाले युगों में से जाने या उन्हें हस्तान्तरित करने का है। यह सब सच होने पर भी सामाजिक विरासत और परम्परा समान नहीं है। सामाजिक विरासत की अवधारणा परंपरा से अधिक व्यापक है। भोजन कपड़ा, मकान कुर्सी, मेज, पुस्तक, खिलौने, घड़ी, बिस्तर, जूते, बर्तन, उपकरण, मशीन, प्रविधि नियम, कानून, रीतिरिवाज-, ज्ञान, विज्ञान, विचार, प्रथा, आदत, मनोवृत्ति आदि जो कुछ भी व्यक्ति को समाज से मिलता है, उस सबके योग को या संयुक्त रूप को हम सामाजिक विरासत कहते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि सामाजिक विरासत के अन्तर्गत भौतिक तथा अभौतिक दोनों ही प्रकार की चीजें आती हैं, जबकि 'परम्परा' के अन्तर्गत पदार्थों का नहीं, बल्कि विचार, आदत, प्रथा, रीतिरिवाज-, धर्म आदि अभौतिक पदार्थों का समावेश होता है। अतपरम्परा सामाजिक विरासत नहीं स्पष्ट है कि :, 'सामाजिक विरासत' का एक अंग मात्र है। 'परम्परा' सामाजिक विरासत का अभौतिक अंग है। मशीन, मकान, फर्नीचर, बर्तन, मूर्ति, घड़ी, बिस्तर, जूते आदि असंख्य भौतिक पदार्थों की सामाजिक विरासत को हम 'परम्परा' के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं करते। परम्परा हमारे व्यवहार के तरीकों की द्योतक है, न कि भौतिक उपलब्धियों की। जिन्सबर्ग के शब्दों में, ''परम्परा का अर्थ उन सभी विचारों आदतों और प्रथाओं का योग है, जो व्यक्तियों के एक समुदाय का होता है, और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता रहता है।''

समाज में रहने वाले प्रत्येक प्राणी से आशा की जाती है कि वह समाज के नियम कानून एवं प्रथा या परंपरा को अवश्य जाने। जिसे सामाजिक भाषा में मूल्य, मानदंड एवं प्रथा कहते हैं। इस इकाई में हम इन सामाजिक शब्दों को विस्तार से जानेंगे या अध्ययन करेंगे। मानदंड

शब्द से तात्पर्य समाज के वे नियम हैं। जो सांस्कृतिक विशेषताएं, सामाजिक मूल्यों और समाज द्वारा स्वीकृत विधियों के अनुसार किसी विशेष परिस्थिति में व्यक्ति को एक विशेष प्रकार का व्यवहार करने का निर्देश देते हैं, सामाजिक प्रतिमानों का संबंध् सामाजिक उपयोगिता से होता है। सामाजिक प्रतिमानों की प्रकृति सरल होती है तथा बिना अधिक सोचे-विचारे मनुष्य इसका अनुसरण करता है। सामाजिक मूल्य वे मानक या धरणाएं हैं जिनके आधार पर हम किसी व्यक्ति के व्यवहार, वस्तु के गुण, लक्ष्य, साधन एवं भावनाओं आदि का उचित या अनुचित, अच्छा या बुरा ठहराते हैं यह गतिशील होते हैं। इनका काम समाज में एक रूपता स्थपित करना है तथा सामाजिक क्षमता का मूल्यांकन करना। प्रथा से तात्पर्य यह कि प्रथा व्यवहार का वह तरीका है जिसे एक विस्तृत क्षेत्र में संपूर्ण समाज की स्वीकृति प्राप्त है। इन्हें व्यक्ति बिना सोचे-विचारे ग्रहण कर लेता है।

11.8 लोकरीतियां एवं उनकी विशेषताएं

दुनिया का प्रत्येक समाज विभिन्न प्रकार के सामाजिक नियमकानूनों से चलता है-, जिसे समाजशास्त्र के क्षेत्र में मानदंड (Norms) कहा जाता है। अमेरिकन समाजशास्त्री समनर, (Wiiliam Gram Sumner) ने तमाम सामाजिक नियम,कानूनों- मान्यताओं एवं दस्तूरों को दो भागों में विभाजित किया, जिसे लोकरीतियां (Folways) एवं लोकाचार (Mores)कहा है। दूसरी तरफ हम यहां यह देख रहे हैं कि लोकरीति मानदंड का एक हिस्सा मात्र हैं।

लोकरीति का शाब्दिक अर्थ होता है, आम लोगों के रीति रिवाज-। मनुष्य की आवश्यकताएं अनंत हैं और उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह बहुत तरह के नियमों का निर्माण या आविष्कार करता रहा है, लेकिन नियमों का विकास भौगोलिक एवं आर्थिकसामाजिक - परिस्थितियों के संदर्भ में ही होता है, इसीलिए हर समाज की अलगअलग लोकरीतिया-ं होती हैं।

समनर ने बताया है कि लोकरीतियों का तात्पर्य व्यवहार के उन अपेक्षित एवं संचित तरीकों से है जो एक विशेष परिस्थिति में सामाजिक क्रियाओं की आवश्यकता को पूरा करने के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि लोकरीतियों की उत्पत्ति विचारपूर्ण ढंग से होती है तथा समस्त सामाजिक समूह उसे स्वीकार करता है। समाज प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा रखता है कि किस परिस्थिति में उसे किस ढंग से व्यवहार करना चाहिए। व्यवहारों की अपेक्षा हर समाज में अलगअलग प-्रकार की होती है। इसीलिए प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी लोकरीतियाॅं होती हैं। किसी व्यक्ति को किस प्रकार बैठकर भोजन करना चाहिए, किसी से मिलने पर किस ढंग से अभिनंदन करना चाहिए, विदाई के समय कैसा व्यवहार करना है, किस अवसर पर किस प्रकार का वस्त्र पहनना है, महिलाओं के साथ पुरूषों का व्यवहार कैसा होगा, बच्चे बड़ों के साथ किस प्रकार बातचीत करेंगे, इस प्रकार के हजारों अपेक्षित व्यवहारों को लोकरीति कहा जाता है। सामाजिक संरचना की हिफाजत लोकरीति समाज की सांस्कृतिक बुनियादी ढांचे को बनाए रखने में मदद करता है। इसके द्वारा हम अपनी आवश्यकताओं को सहजतापूर्वक पूरा करते हैं। लोकरीति के माध्यम से समाज और संस्कृति का स्वरूप स्पष्ट होता है। आचरण में सहजता व्यक्तियों को किस परिस्थिति में कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसका ज्ञान लोकरीति के माध्यम से होता है। इतना ही नहीं, लोगों को लोकरीति के द्वारा यह भी मालूम होता है कि किस समय कौनसा काम करना चाहिए-, किस काम को कैसे करना चाहिए, कौनसा अनुचित है इत्यादि। लोकरीति एक प्रकार का -सा काम उचित और कौन-प्रारूप है, जिसके आधार पर व्यक्ति समाज में आचरण करता है।

- **लोकरितियों की विशेषताएं-**

एक स्वीकृत विधि के रूप में- लोकरीति समाज की एक स्वीकृत विधि का नाम है। हर समाज ने अपने अनुभवों के आधार पर एक लम्बे समय में यह तय किया है कि किस अवसर पर किसी व्यक्ति के लिए कौनसा व्यवहार सही होगा-, ऐसा समाज ने अपने हितों की हिफाजत के लिए किया है। जिस सामाजिक व्यवहार को समाज स्वीकृत नहीं करता, उसे

लोकरीति नहीं कहा जा सकता। लोकरीति कहे जाने के लिए यह जरूरी है कि समाज के अधिकांश लोग उसे स्वीकार करते हों।

लोकरीति एक गत्यात्मक परंपरा हैचू -ंकि लोकरीति का आधार परंपरागत आचार एवं व्यवहार है इसीलिए हमें यह नहीं मानना चाहिए कि वह एक स्थिर व्यवस्था है। लोकरीतियां समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती हैं। कुछ लोकरीतियां पुरानी होकर समाप्त हो जाती हैं, तो कुछ पहले से ज्यादा प्रचलित हो जाती हैं, कभीकभी नई लोकरीतिया-ं भी समाज में पैदा हो जाती हैं। आमतौर पर लोकरीतियों की परंपरा एकदम समाप्त नहीं होती। पुरानी लोकरीतियों के साथ नई लोकरीतियां जुड़ जाती हैं। इस तरह लोकरीति निरंतर विकसित और संग्रहीत होती रहती हैं।

एक सांस्कृतिक तत्व के रूप में लोकरीति संस्कृति का एक प्रमुख तत्व है। -हर संस्कृति में अलगअलग प्रकार की लोकरीतिया-ं पायी जाती हैं। लोकरीतियों के आधार पर हम एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति को अलग कर सकते हैं। यह विश्व की हर संस्कृति में पाई जाती हैं। अर्थात् लोकरीति संस्कृति का एक विश्वव्यापी तत्व है।

एक अमूर्त व्यवस्था- लोकरीति एक अमूर्त सामाजिक व्यवस्था है। इसे हम आचारव्यवहार में - देख सकते हैं, पर इसका कोई भौतिक स्वरूप नहीं होता है। यह एक व्यक्तिनिष्ठ तथ्य (Subjective Phenomenon) है। इसकी उत्पत्ति संपूर्ण सामाजिक चिंतनशैली एवं व्यवहार से होती है। समाज के कुछ लोगों के व्यवहार से लोकरीति नहीं बनती। जबतक समाज के तमाम लोग उसे अच्छा मानकर स्वीकार नहीं करते, तबतक कुछ व्यक्तियों के व्यवहार को लोकरीति नहीं कहा जा सकता।

सामाजिक संरक्षण- हर लोकरीति को सामाजिक संरक्षण प्राप्त होता है। चूंकि समाज अपनी लोकरीति में विश्वास रखता है इसीलिए उसका विरोध् करने वालों का समाज विरोध करता है। जो लोग अपने समाज की लोकरीतियों का उल्लंघन करते हैं, उसे समाज अच्छे व्यक्ति के रूप में नहीं लेता है। कभी समाज उसकी निंदा करता है, तो कभी समाज उसे हलके फुलके-ढंग से दंडित करने का भी प्रयास करता है। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि लोकरीति की हिफाजत में

ही समाज अपनी हिफाजत देखता है। लोकरीति के आधार पर समाज व्यक्तियों का समाजीकरण Socialization करता है। इस तरह समाजीकरण के द्वारा लोकरीति और सामाजिक संरचना को एक निरंतरता मिलती है।

11.9 **लोकाचार एवं उनकी विशेषताएं**

लोकरीति की तरह लोकाचार पर भी सबसे पहले अमेरिकन समाजशास्त्री समनर ने ही विचार किया था। उन्होंने अपनी पुस्तक Folkways में पहली बार लोकाचार More को Folway से अलग किया। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि हरेक समाज कुछ खास किस्म के नियमों से चलता है। उन्हीं नियमों में कुछ वैसे नियम भी होते हैं, जिन्हें समाज किसी को तोड़ने की इजाजत नहीं देता है। उन्हें तोड़ना समाज बिल्कुल अनैतिक मानता है। अतः इन नियमों को तोड़ने वाले को समाज दंड भी देता है। वैसे तमाम नियमों को समनर ने लोकाचार कहा है। जैसे उत्तर भारत के -हिंदू समाज में चचेरे, ममेरे एवं फुफेरे भाईविवाह -बहनों के बीच शादी-कानून का उल्लंघन करेंगे-वर्जित है। जो लोग इस नियम, समाज उन्हें वहिष्कार कर दंडित करता है। इसलिए लोग इस ढंग के लोकाचार का उल्लंघन करने की हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं।

मैकाइवर एवं पेज ने लोकाचार के बारे में कहा है कि लोकाचार एक प्रकार का व्यक्तियों के आचरण का नियंत्रक है। लोकाचार को हमेशा समाज के द्वारा सही और नैतिक माना जाता है। लोकाचार एक ऐसा नैतिक नियम या मूल्य है, जिसे समाज कभी भी टूटते हुए नहीं देख सकता है। चूंकि लोकाचार को समाज के तमाम व्यक्ति की स्वीकृति रहती है इसीलिए उसके टूटने से समाज में बेचैनी होती है। लोकाचार को समाज अपने स्थायित्व का आधार मानता है। उसे तोड़ने वाले को समाज विभिन्न तरह से दंडित करने का प्रयास करता है। यदि कोई व्यक्ति समाज के प्रचलित तरीकों के खिलाफ अपने ढंग से वस्त्र पहनता है तो उसे लोकरीति का उल्लंघन माना जाएगा पर यदि कोई नंगा होकर सड़क पर घूमने का प्रयास करता है तो उसे लोकाचार का उल्लंघन कहा जाएगा। इस ढंग के अभद्र व्यवहार को समाज पूरी तरह अनैतिक मानता है। समाज वैसे लोगों की निंदा करेगा या कुछ लोग ऐसे लोगों को गाली देंगे

तो कुछ लोग उन पर ढेलापत्थर भी फेंक सकते हैं। दूसरे शब्दों में लोकरीति जब पूरी तरह - समाज के लिए नैतिक एवं लाभकारी मानी जाती है तो लोकरीति लोकाचार का स्थान ग्रहण चार में इतना हकर लेती है। लोकरीति और लोका ी फर्क है कि लोकचार का उल्लंघन करने वाले को समाज अधिक से अधिक दंड देने का प्रयास करता है। लोकरीति के साथ कोई बहुत नैतिकता की बात नहीं होती है, पर लोकाचार को पूरी तरह नैतिक माना जाता है। लोकाचार का उल्लंघन एक प्रकार का निषेध माना जाता है।

यह सत्य है कि हर समाज में कुछकुछ लोकाचार अवश्य पाया जाता है-न-, पर यह कोई जरूरी नहीं है कि जो एक जगह लोकाचार है वही दूसरी जगह पर लोकाचार हो। जैसे- मुसलमानों के बीच चचेरे, एवं फुफेरे भाईबहनों के बीच शादी करना लोकाचार का उल्लंघन - नहीं है। उत्तर भारत के हिंदुओं के बीच मामाभगि-नी के बीच विवाह लोकाचार का उल्लंघन है, जबकि दक्षिण भारत के हिंदुओं के बीच मामाभगिनी का विवाह लोकाचार का समर्थन है। - ऐसे लोकाचार बहुत कम हैं जो विश्व स्तर पर स्वीकार किए जाते हों। भाईबहन-, मा-बेटे या पिता-पुत्री के बीच वर्जित यौनस-ंबंध विश्वव्यापी लोकाचार के कुछ सीमित उदाहरण हैं-

यहां यह भी उल्लेख करना आवश्यक लगता है कि समय के साथ लोकरीति लोकाचार बन जाती है और लोकाचार लोकरीति।

लोकाचार भी एक प्रकार की लोकरीति है लेकिन यह आम किस्म की लोकरीति नहीं है। जब लोकरीति के साथ सामाजिक हित की बात जुड़ जाती है, तब उसे लोकाचार कहा जाता है। भारतीयों के द्वारा धोती और पायजामा पहनना एक प्रकार का लोकाचार है। उसी तरह हिंदुओं के द्वारा टीका लगाना, चोटी रखना या जनेऊ पहनना एक प्रकार की लोकरीति है। चोटी न रखना या धोती की जगह पतलून पहनना या चंदनटीका नहीं करना-, यह मात्रा लोकरीति का उल्लंघन है, लेकिन दूसरी तरफ निर्वस्त्र रहना, दो विभिन्न जातियों के बीच शादी करना या किसी वैचारिक मतभेद के चलते मातापिता के साथ गलत व्यवहार करना लोकाचार का - उल्लंघन है।

लोकचार का पालन करना अनिवार्य माना गया है। इसकी अवहेलना दंडनीय है। लोकाचार एक प्रकार का नैतिक मूल्य है। लोकाचार में समाजकल्याण की भावना छिपी होती है इसीलिए तो - सामाजिक कल्याण की भावना लोकाचार।-कहा जाता है कि लोकरीति

- **लोकाचार की विशेषताएं**

सामाजिक नियंत्रण के एक साधन के रूप में- लोकाचार के द्वारा व्यक्तियों का व्यवहार समाज में निर्धारित होता है। चूंकि लोकाचार आचरण का एक प्रकार का प्रतिमान है इसीलिए समाज यह अपेक्षा रखता है कि प्रत्येक व्यक्ति उसके अनुरूप व्यवहार करे। व्यक्तियों को अपने आचरण के बारे में यह सोचने की आवश्यकता नहीं रहती है कि उसे क्या करना है या क्या नहीं करना है। वह सामाजिक दबाव वश सामाजिक प्रतिमान के अनुरूप व्यवहार करता है।

समूह कल्याण की भावना- लोकाचार में समूह कल्याण की भावना छिपी होती है। प्रत्येक समाज यही मानता है कि उस समाज की भलाई इसी में है कि समाज के तमाम लोग एक लंबे समय से प्रचलित लोकाचार में विश्वास रखें।

नैतिक नियमों का समूह- लोकाचार समाज में प्रचलित नैतिक नियमों का समूह है, यह वैसे नैतिक नियमों का समूह है जिसके पीछे समाज का अधिकतम बल होता है। यही कारण है कि लोकाचार के पालन नहीं करने वाले लोगों को समाज दंडित करता है।

तार्किकता का अभाव- लोकाचार में तार्किकता का अभाव होता है। व्यक्ति को इस बात पर विचार करने की आजादी नहीं होती है कि यह नैतिक नियम सही है या गलत। समाज में चले आ रहे परंपरागत नियमों का उसे हर परिस्थिति में पालन करना होता है। समाज में रहने के कारण व्यक्ति अपने समाज के मूल्यों को बाध्य होकर स्वीकार करता है।

एक कठोर नियम- समाज बहुत तरह के नियमों से चलता है और जो नियम सबसे कठोर माना जाता है उसे ही लोकाचार कहा जाता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि साधारण नियमों को लोकरीति की श्रेणी में रखा जाता है। किसी नियम के कठोर होने की पहचान यही है कि समाज उसका उल्लंघन करने वाले को कितना दंडित करता है।

एक सामाजिक स्वरूप- लोकाचार का स्वरूप सामाजिक होता है। यह समय के साथ स्वतः समाज में विकसित होता है। समाज में इसका विकास और संचयन धीरेधीरे चलता रहता है। - राज्य के द्वारा बनाए गए कानूनों को लोकाचार नहीं कहा जा सकता है। लोकाचार सेकानून की उत्पत्ति तो होती है पर कानून से शायद ही लोकाचार की उत्पत्ति होती है।

व्यक्ति और समाज के बीच एक कड़ी के रूप में- लोकाचार व्यक्ति को समाज से जोड़ता है। जो लोग लोकाचार के अनुसार समाज में चलते हैं, उन्हें समाज अच्छा मानता है। जो लोग इसका विरोध करते हैं, उन्हें समाज अपना दुश्मन या पागल समझता है। लेकिन कभीकभी - महान क्रांतिकारीव्यक्ति लोकाचार विरोधी होते हैं और समाज उन्हें बुरा मानता है।

समाज में व्यक्तियों का व्यवहार मुख्य रूप से लोकरीतियों एवं लोकाचार से निर्धारित होता है। लेकिन राज्य के अंतर्गत नागरिकों के व्यवहार का नियंत्रण राज्य के कानून से होता है। कानून आधुनिक समाज की प्रमुख विशेषता है क्योंकि प्रत्येक आधुनिक समाज के साथ राज्य अवश्य जुड़ा हुआ होता है। जिस प्रकार लोकाचार और लोकरीतियों का निर्माण समाज में स्वतः होता है, कानून का निर्माण उस तरह नहीं होता है। कानून तो कहीं कुछ लोग बैठकर सोचसमझकर-, योजना(तरीके से) बनाते हैं। यह सही है कि कानून का निर्माण राजनीतिक नेताओं के द्वारा होता है, लेकिन इसका निर्माण सामाजिक नियमकानून को ध्यान में रखकर - ही किया जाता है, क्योंकि जो कानून सामाजिक मूल्यों एवं मान्यताओं का विरोधी होता है, समाज उसका विरोध करता है।

लोकरीतियों और लोकाचार के विपरीत आमतौर पर कानून लिखित होते हैं और जरूरत पड़ने पर न्यायपालिका इसका विश्लेषण करती है। न्यायपालिका का मुख्य काम राज्य के कानूनों को अमल कराना, इसका विश्लेषण करना है। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि लोकरीतियों और लोकाचार का सहज ढंग से विकास होता है। जैसे किसी व्यक्ति को कैसे बैठना चाहिए, कैसे वस्त्र पहनने चाहिए या किस प्रकार भोजन करना चाहिए । तमाम ऐसी विभिन्न किस्म की लोकरीतियों का स्वतः विकास हुआ है। इनका विकास हमेशा सामाजिक अंतः क्रिया के द्वारा होता है। लेकिन कानून को विधानसभाओं और संसदों के माध्यम से निर्मित किया

जाता है और न्यायालयों एवं पुलिस के माध्यम से उस पर अमल किया जाता है। राज्य सीधे रूप में अपने सदस्यों को कानून पालन करने के लिए बाध्य करता है, लेकिन लोकरीति एवं लोकाचार का पालन करवाने के लिए समाज आमतौर पर अप्रत्यक्ष ढंग से लोगों को बाध्य करता है।

कानून राज्य का औपचारिक मानदंड है। यह प्रत्येक आधुनिक समाज की विशेषता है। कानूनी मानदंड के पीछे राज्य की शक्ति होती है। आधुनिक समाज में जेल भेजना, जुर्माना लगाना, मौत की सजा सुनाना इत्यादि कानूनी मानदंडों को लागू करने का अधिकार केवल राज्य को ही प्राप्त है। कानून प्रायः रीतिरिवाजों एवं मूल्यों की व्युत्पत्ति होती है-, परंतु सामाजिक मानदंड कानून का रूप तभी धारण करता है जब राज्य का उसे समर्थन प्राप्त होता है। संविधान अध्यादेश एवं औपचारिक व्यवस्था ;या नौकरशाही व्यवस्था की तमाम नियमावली एवं परंपरा कानून के अंतर्गत आती है।

सामान्यतया कानून का स्वरूप औपचारिक होता है। चूंकि कानून विभिन्न प्रकार के नियमों की तुलना में काफी विकसित और जटिल होता है, इसलिए यह आमतौर पर लिखित होता है। कानून को हम मुख्य रूप से दो भागों में बांट सकते हैं(1) - प्रथागत कानून एवं (2) पारित कानून । जिन कानूनों को सामाजिक प्रथाओं, मानदंडों, आदर्शों एवं विभिन्न प्रकार के नैतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर विकसित किया जाता है, उन्हें प्रथागत कानून कहते हैं, जैसेभारत - मेंHindu Law एवं Muslim Law प्रथागत कानून के उदाहरण हैं। प्रथागत कानून हमेशा लिखित ही नहीं होते हैं। बहुत सारे आदिम जातियों के बीच भी प्रथागत कानून पाए जाते हैं जिन्हें अभी तक संहिता का स्वरूप नहीं दिया गया है।

जटिल या आधुनिक समाजों के अंतर्गत पारित कानूनों की प्रधानता होती है। आधुनिक समाजों में भाषा एवं लिपि के विकास के कारण कानूनों का स्वरूप लिखित होता है। विधान-सभाओं, विधान परिषदों एवं संसदों के द्वारा जिन कानूनों का निर्माण किया जाता है, वे तमाम पारित कानून कहलाते हैं। पारित कानून हमेशा किसी निश्चित योजना के तहत किसी खास समय में विकसित किया जाता है। कार्यपालिका के द्वारा इसको लागू किया जाता है और

न्यायपालिका के द्वारा इसकी रक्षा की जाती है। पारित कानून जितनी आसानी से योजनाबद्ध तरीके से निर्मित होता है, उतनी ही आसानी से योजनाबद्ध तरीके से परिवर्तित भी होता है। कानून आधुनिक राज्य का एक ऐसा अभिकरण है जिससे उस राज्य में रहने वाले तमाम लोगों का आचरण नियंत्रित और निर्धारित होता है। भारत का संविधान पारित कानून का एक उदाहरण है।

11.10 सारांश

इस इकाई के अंतर्गत हमने मूल्य मानदंड एवं प्रथा के विषय में जानकारी प्राप्त की और प्रथाओं का समाज के लिए क्या महत्व है उसको जाना । सर्वप्रथम इसमें हमने मानदंड को जाना एवं उसकी विशेषताओं को जाना, विशेषताओं को समझा और यह जाना कि मूल्य एवं मानदंड समाज के स्थायित्व के लिए महत्वपूर्ण हैं।

11.11 अभ्यास प्रश्न

1. मानदंड को परिभाषित कीजिए ?
2. मानदंड की विशेषताएं समझाएं ?
3. मानदंड क्या है एवं उसके प्रकार बताइए ?
4. लोकरीति एवं लोकाचार में अंतरबताइए ?
5. मूल्य क्या है ?
6. मूल्यों की विशेषताएं एवं प्रकार का संक्षेप में वर्णन करें।

.7 प्रथा से आप क्या समझते हो ?

8. है समाज में प्रथा का क्या महत्व?

11.12 पारिभाषिक शब्दावली

1.	मानदंड	-	सामाजिक नियम कानून
2.	विघटन	-	बिखराव
3.	निषेधात्मक मानदंड	-	जिससे आचरण निर्देशित
4.	लोकरीति	-	आम लोगों का रीति रिवाज
5.	लोकाचार	-	ऐसे नियम जिनको तोड़ने पर समाज दंड देता है
6.	प्रथागत कानून	-	नैतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर विकसित कानून
7.	मूल्य	-	समाज के आदर्श
8.	नैतिक मूल्य	-	धर्म एवं परिस्थितियों से होता है
9.	बुद्धिसंगत मूल्य	-	सामूहिक विश्वास
10.	सौंदर्यपरक मूल्य	-	साहित्यिक कृतियां, संगीत आदि

11.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मैकाइवर, आर.एम. एंड पेज, चार्ल्स एच., समाज का परिचायत्मक विश्लेषण, न्यू देल्ली, मैकमिलन इंडिया लि-1985.।
2. बीयर स्टीड, रार्बट, दा सोशल आर्डर, न्यू देल्ली, टाटा मेग्राहिल 1970.।
3. राधा कमल, मुखर्जी, मूल्यों की सामाजिक संरचना, लंदन मैकमिलन एंड कंपनी1949 .।
4. ए, गिड़िस, सोशियोलॉजी, दा ब्लैक वेल पब्लिशर्स, कैंब्रिज।
5. .जेपी, सिंह, समाजशास्त्र अवधारणाएं एवं सिद्धांत,प्रेंटिस हॉल ऑफ इंडिया प्राइवेट लि. नई दिल्ली 2009.।

इकाई 12

सामाजिक मानकों का निर्माण और अनुरूपता (Formation of Social Norms & Conformity)

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 सामाजिक मानकों का निर्माण

12.3.1 प्रायोगिक स्तर पर सामाजिक मानक निर्माण का अध्ययन

12.3.2 सामाजिक मानक निर्माण का महत्व

12.3.3 अभ्यास प्रश्न

12.3.4 अभ्यास पश्नों के उत्तर

12.4 अनुरूपता

अनुरूपता का अर्थ व परिभाषा

12.4.1 अनुरूपता की विशेषताऐ

12.4.2 अनुरूपता सम्बन्धी महत्वपूर्ण अध्ययन एवं प्रयोगात्मक मापन

12.4.3 अनुरूपता को प्रभावित करने वाले कारक

12.4.4. अनुरूपता के सिद्धांत

12.5 शब्दावली

12.6 सारांश

12.7 अभ्यास प्रश्न

12.8 अभ्यास प्रश्नों क उत्तर

12.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2सन्दर्भग्रन्थ सूची

12.1 उद्देश्य-

इस ईकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो जायेगे कि आप|

1. सामाजिक मानको के निर्माण को समझ सकेंगे|
2. सामाजिक मानक निर्माण के सम्बन्ध में हुए प्रयोगात्मक अध्ययनो को समझ सकेंगे|
3. सामाजिक मानक निर्माण के महत्व को समझ सकेंगे|
4. अनुरूपता के सम्बन्ध में जान सकेंगे|
5. अनुरूपता सम्बन्धी अध्ययनो व प्रयोगात्मक मापनो को समझ सकेंगे|
6. अनुरूपता को प्रभावित करने वाले कारको को समझ सकेंगे|
7. अनुरूपता के सिद्धान्तों को समझ सकेंगे|

12.2 प्रस्तावना-

प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी समाज से जुड़ा होता हैं| अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वह समाज में अलग-अलग प्रकार का व्यहार करता है| समाज में व्यक्तियों को मनमाने ढंग से व्यहार करने की स्वतंत्रता नही होती है बल्कि वह सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत सामाजिक मान्यताओ, प्रत्याशाओ, रीतियों और नियमों के अनुसार व्यहार करता है|ये सामजिक व्यवस्था ही व्यक्ति को समाज में व्यवहार करने में नियंत्रण करती हैं| इसलिए समाज में सभी व्यक्तियों के व्यवहार में समानता पाई जाती हैं| अगर व्यक्ति इन सामाजिक मान्यताओ, प्रत्याशाओ, रीतियों और नियमों के विरुद्ध व्यवहार करता है तो उसे दण्ड दिया जाता हैं सामाजिक व्यवहार करने में समाज द्वारा बनाये गये मानकों का पालन करना आवश्यक हैं|

व्यक्ति कभी-कभी अपनी इच्छा से समाज के निर्णयों को स्वीकार कर लेता है व कभी-कभी सामाजिक दबाव के कारण अपने व्यवहार तथा मनोवृत्ति में परिवर्तन लाता है और समाज के निर्णयों को स्वीकार कर लेता है यही अनुरूपता है

12.3 सामाजिक मानको का निर्माण (Formation of Social Norms) –

सामाजिक मानको का निर्माण व्यक्ति समाजिक अन्तर्क्रिया के माध्यम से अर्जित करता है| व्यक्ति के व्यवहार, अभिवृतियों, विचारों में समाज में चले आ रहें मानक देखने को मिलते हैं| सामाजिक योग्यता के अभाव के कारण एक छोटे बच्चे के व्यवहार में ये मानक देखने को नही मिलते हैं| जैसे-जैसे आयु अनुभव व योग्यता बढती है वैसे-वैसे बच्चा समाज के मानको के अनुरूप व्यवहार करने लगता है| पियाजे (1932) ने निष्कर्ष निकला की बच्चों में मानको के अनुसार व्यवहार करने की योग्यता का विकास धीरे-धीरे होता हैं| उन्होने विकास की चार अवस्थाये बतायी हैं|

प्रथम अवस्था - प्रथम अवस्था में बच्चा अपने से बड़ो को देखकर खेल सीखता हैं| उसे हार-जीत उचित अनुचित का ज्ञान नही होता है बल्कि वह तो खेल देखकर केवल खुश होता है|

द्वितीय अवस्था – द्वितीय अवस्था 4-5 वर्ष तक होती है| इस अवस्था तक बच्चे समाज में प्रचलित नियमों व मान्यताओं को सीखना और समझना शुरू कर देते है| वे जिस तरह खेलते है उसे ही सही मानते है अन्य को नहीं|

तृतीय अवस्था - 5-7 वर्ष की अवस्था तक बच्चे यह समझने लगते है कि समाज में नियम मनुष्यों द्वारा ही बनाये जाते है ये नियम बदले जा सकते हैं तथा बच्चा यह भी जानने लगता हैं कि क्या उसके लिए उचित है और क्या अनुचित है|

चतुर्थ अवस्था – मानक के रूप में संस्कृति के विभिन्न प्रकारों से बच्चे इस काल मे परिचित होते है| पियाजे ने किशोरावस्था को मानक विकास की चौथी अवस्था बताया है|इस अवस्था में बच्चा समाज में प्रचलित मानको को ग्रहण करने लगता है और उसी के अनुसार व्यवहार करने का प्रयास करने का लगता है|

पियाजे द्वारा बताये गये मानक विकास की अवस्थाओं को जानने के बाद यह जानना भी अत्यन्त आवश्यक है कि किन-किन परिस्थितियों में इन मानको का विकास होता है अथवा मानकों के विकास में किन-किन कारको का प्रभाव पड़ता है|इसे हम निन्लिखित बातो से स्पष्ट कर सकते हैं|

1. **अस्पष्ट परिस्थिति-(Ambiguous & Situation)** - अस्पष्ट व असरचित सामाजिक परिस्थितियों में सामाजिक मानक का विकास बहुत शीघ्र होता है|अस्पष्ट और असंरचित सामाजिक परिस्थिति में आत्मनिष्ठता अधिक होती है|क्योकि प्रत्येक परिस्थिति में व्यक्ति अपना अलग-अलग मूल्यांकन करते हुए एक निष्कर्ष में पहुचने का प्रयास करता है| अस्पष्ट परिस्थितियाँ मानक के विकास में सहायक व स्पष्ट परिस्थितियाँ मानक के विकास में अवरोध उत्पन्न करती है|

2. **सामाजिक दबाव –(Social Pressure)** - सामाजिक मानक के निर्माण में अस्पष्ट परिस्थिति के साथ-साथ सामाजिक दबाव का भी प्रभाव पड़ता है सामाजिक दबाव के कारण कभी-कभी व्यक्ति न चाहते हुए भी अपने निर्णय को समूह के निर्णय के समान बदल देता है|
3. **धार्मिक विश्वास –(Religious Belief)** –_ सामाजिक मानको के निर्माण में धार्मिक विश्वास का भी महत्वपूर्ण स्थान है इसी कारण विभिन्न समाजो में व्याप्त मानको में भी भिन्नता पाई जाती है|जैसे हिन्दू समाज में गाय की पूजा की जाती है अन्य समाज में उसे सामान्य पशु के समान माना जाता है| धार्मिक विश्वास के कारण ही एक भगवान को विभिन्न समाजो में अलग-अलग जगह जैसे किसी समाज में मंदिर,किसी समाज में गुरुद्वारा और किसी समाज में गिरजाघर में ढूढा जाता है|
4. **चिन्ता व तनाव –(Anxiety and Stress)** – व्यक्ति में चिन्ता व तनाव के समय उसका अपना विवेक कम हो जाता है और वह संवेदनशील (Suggestible) हो जाता है|व्यक्ति स्वयं समस्या का समाधान आने पर भी समस्या का समाधान नही कर वह दूसरों से सुझाव व परामर्श लेने लगता है|इससे उसका झुकाव समूह के प्रति होता है जिससे सामजिक मानक का जन्म होता है|

12.3.1 मानक निर्माण का प्रायोगिक अध्ययन –(Experimental Study of Norm Formation)- सामाजिक मानको का निर्माण प्रायोगिक परिस्थितियों से भी किया जा सकता है| इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों के द्वारा एतिहासिक व महत्वपूर्ण प्रयोग किये गये जिसका विवरण निम्न प्रकार है|

शैरिफ का सामजिक मानक पर परीक्षण (Sherif's & Experiment on Social Norms)– शेरिफ ने अपने प्रायोगिक अध्ययन में पाया कि व्यक्ति समाज से प्राप्त सूचनाओं को वास्तविक मान कर स्वयं भी उसी प्रकार का व्यवहार करने लगता है, जैसा की समाज के अधिकतर व्यक्ति सोचते है| स्वचालित स्थिति **(Auto Kinetic Situation)** का प्रयोग अपने अध्ययन में किया है| अपने प्रयोग में शैरीफ ने दो परिस्थिति रखी पहली परिस्थिति में प्रयोज्य को अकेले रख कर प्रयोग किया| इस परिस्थिति में प्रयोज्य व प्रयोगकर्ता दो ही व्यक्ति थे| जबकि दूसरी परिस्थिति में प्रयोज्यों को अन्य प्रयोज्यों के साथ रखकर प्रयोग किया प्रयोज्यों का कम स्वचालित गतियों के विषय में निर्णय देना था| प्रथम अवस्था में प्रयोज्यों की संख्या 19 थी और दूसरी अवस्था में प्रयोज्यों की संख्या 40 थी इसमें प्रयोज्यों को एक अंधेरे कमरे में बैठाकर उन्हें रोशनी का एक बिन्दु कुछ समय के लिए दिखाया जाता था| और प्रयोज्यों से कहा गया की रोशनी की बिन्दु इधर उधर घूमें तो उसे बताना है की बिन्दु कितने इंच घूमा| वास्तविकता यह है कि रोशनी की बिंदु स्थिर है किन्तु कमरा पूर्णतः अधेरा होने के कारण प्रयोज्य को भ्रम के कारण बिन्दु इधर-उधर घूमता दिखायी देता है| अपने अध्ययन में शेरिफ ने पाया कि रोशनी की गतिशील की दूरी के निर्णय में प्रयोज्यों ने प्रारम्भ के कुछ प्रयासों में 2 इंच से 12 इंच तक का अंतर बताया परंतु प्रयोज्यों की

संख्या बढाने पर सहमति पर अधिक उत्तर आने लगे और अन्त में बीच की दूरी 7 इंच से 8 इंच की दूरी पर पूर्णतः सहमत हो गये इसकी दूरी के प्रसार के निर्णय को शेरिफ ने सामाजिक मानक कहा है|

शेरिफ के प्रयोगात्मक अध्ययन से निम्न परिणाम प्राप्त हुए|

1. किसी विषय के सम्बन्ध में जब प्रयोज्यों सामूहिक परिस्थिति में एक मानक (**Norm**) बना लेता है तो व्यक्तिगत परिस्थिति भी उस निर्णय को दोहराता है| उदहारण – जैसे सामूहिक परिस्थिति में प्रयोज्य ने रोशनी की बिन्दु की गति दूरी 7 इंच बतायी तो वह व्यक्तिगत रूप में भी अध्ययन करने पर रोशनी की बिन्दु की गति दूरी 7 इंच ही बताता है|
2. किसी विषय के सम्बन्ध में प्रयोज्य व्यक्तिगत परिस्थिति में अलग-अलग मानक विकसित करता है तो वह सामूहिक परिस्थितियों में आपसी अंतर को कम कर लेता है और उसी निर्णय को मान लेता है जो समूह के सभी व्यक्तियों द्वारा मान्य होता है| उदाहरण-व्यक्तिगत परिस्थिति में रोशनी की बिन्दु गति को किसी प्रयोज्य ने 3 इंच बताया प्रयोज्य ने 5 इंच व किसी प्रयोज्य ने 2 इंच बताया लेकिन अब सामूहिक परिस्थिति में अध्ययन किया तो देखा कि सभी प्रयोज्य आपसी अन्तरो को भूलकर सामूहिक रूप से एक सामान्य दूरी जैसे 4 इंच मान लेते है|
3. सेकर्ड तथा बैकमैन (**Second & Backman 1974**) के अनुसार व्यक्ति भौतिक वास्तविकता (**Physical Reality**) तथा सामाजिक वास्तविकता (**Social Reality**) के द्वारा किसी विषय के सम्बन्ध में अपने मत तथा क्रियाओ के बारे में निर्णय करते समय सूचनाऐ एकत्रित करता है भौतिक वातावरण हमारी ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करती है और इसके द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर हम व्यहारो व मतो का मूल्यांकन करते हैं| सामाजिक वास्तविकता दूसरे व्यक्तियों द्वारा किये गये निर्णयों एवं मूल्यांकन से है| जब भौतिक वातावरण अस्पष्ट रहता है उदाहरणार्थ शेरिफ़ द्वारा किये गये अध्ययन में अधेरे कमरे में रोशनी की बिन्दु गति के सम्बन्ध में निर्णय लेने में प्रयोज्य को वातावरण में कोई संकेत नही मिल पाता हैं तो सामाजिक वास्तविकता को ध्यान में रखकर प्रयोज्य अपना मत देता है| अतः स्पष्ट है कि सामाजिक मानक का निर्माण अस्पष्ट एवं असंरचित परिस्थिति में तीव्रता से होता है|
4. इस प्रयोग में अधिकाशतः प्रयोज्य यही कहते है कि वे रोशनी की गति की दूरी के निर्णय में दूसरों के निर्णय द्वारा प्रभावित नहीं हुए|

ऐश के सामुहिक दबाव का अध्ययन – ऐश के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति किसी विषय के सम्बन्ध में अपने निर्णय को समूह दबाव में आकर बदल देता और समूह के द्वारा दिये गये निर्णय को मान लेता है| ऐश के प्रयोग में परिस्थिति स्पष्ट है जबकि शेरीफ़ के प्रयोग में परिस्थिति अस्पष्ट थी| ऐश के प्रयोग में प्रयोज्य पर विषय के सम्बन्ध में निर्णय बदलने के लिए समूह का दबाव बनाया जाता है| ऐश का प्रयोग मानकीय सामाजिक प्रभाव (**Normative Social Information Social Influence**) पर आधारित

है ऐश ने अपने प्रयोग में यह सिद्ध कर दिया कि एक चर रेखा जो कि मानक रेखा के बराबर नही है उसे व्यक्ति समूह में रहकर बराबर बताता है ये प्रयोग यह स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक मानको का निर्माण सामाजिक अन्तक्रिया के कारण होता हैं| और मानक किसी समूह के व्यवहार में समानता लाते हैं|

शैश्टर (Schachter 1959) का चिन्ता सम्बन्धी अध्ययन –शैश्टर ने अपने अध्ययन में देखा कि सम्बन्धन आवश्यकता चिन्ता के कारण उत्पन्न होती है| उन्होंने अपने अध्ययन में विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले स्नातकोत्तर छात्राओ को लिया| इन छात्राओ को दो समूहों प्रयोगात्मक समूह व नियंत्रित समूह में बाँटा| प्रयोगात्मक समूह को प्रयोग के समय बिजली का करेंट दिया गया इस करंट से उन्हें केवल पीड़ा होती थी कोई शारीरिक नुकसान नही होता था| यह उच्च चिन्ता समूह था| इसके विपरीत नियंत्रित समूह की छात्राओ को हल्का करंट दिया गया जबकि कोई शारीरिक नुकसान नही पहुचाया, बल्कि केवल शरीर में गुदगुदी हुई| यह निम्न चिन्ता समूह था| इसके बाद छात्राओ से कहा गया की वह प्रयोग के लिए रुक भी सकती हैं और जा भी सकती हैं| शैश्टर ने देखा कि उच्च चिन्ता समूह की 63% लडकियों ने कक्षा में एक साथ रहना पसंद किया| जबकि निम्न चिन्ता समूह के केवल 33% छात्रों ने कक्षा में एक साथ रहना पसंद किया| इस प्रकार चिन्ता स्तर उच्च होने के कारण पहले समूह की छात्राओ में मौन सहमति विकसित हुई|

12.3.2 सामाजिक मान के निर्माण का महत्व (Importance of Social Norms Formation) –

सामाजिक मानक निर्माण के महत्व को निम्न प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं|

(1) व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित व निर्देशित करने में सामाजिक मानको का निर्माण महत्वपूर्ण स्थान हैं|
(2) सामाजिक मानको के निर्माण से सभी व्यक्तियों में समानता दिखायी देने के लिए महत्वपूर्ण हैं|
(3) स्वस्थ समाज की कल्पना सामाजिक मानको के लिए महत्वपूर्ण है|
(4) किसी व्यक्ति के व्यवहार का सही/गलत का निर्णय सामाजिक मानको के निर्माण द्वारा ही सम्भव है|
(5) सामाजिक मानक ही व्यक्ति को उचित कार्य करने के लिए प्रेरित करते है|

12.3.3 अभ्यास प्रश्न –

प्रश्न 1 – स्वचालित गतिक प्रभाव का सम्बन्ध है|

(क) गति
(ख) प्रत्यक्षीकरण
(ग) मानक निर्माण
(घ) इनमें से कोई नहीं

प्रश्न 2 – सामाजिक मानकों का विकास शीघ्र होता है|

(क) स्पष्ट सामाजिक परिस्थिति

(ख) स्पष्ट व अस्पष्ट दोनों सामाजिक परिस्थिति में

(ग) अस्पष्ट सामाजिक परिस्थिति

(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

प्रश्न 3 – सामाजिक मानकों में समूह दबाव का प्रभाव पड़ता है|

(क) सत्य

(ख) असत्य

प्रश्न 4 – ऐश का प्रयोग मानकीय सामाजिक प्रभाव पर आधारित है|

(क) सत्य

(ख) असत्य

प्रश्न 5 – शैरिफ का सामाजिक मानक पर प्रयोग स्वचालित स्तिथि पर किया गया है|

(क) सत्य

(ख) असत्य

12.3.4 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

उत्तर 1 – ग

उत्तर 2 – ग

उत्तर 3 – क

उत्तर 4 – क

उत्तर 5 – क

अनुरूपता (Conformity)

12.4 अनुरूपता का अर्थ व परिभाषा (Meaning and Definition of Conformity)–

अनुरूपता का अर्थ किसी व्यक्ति द्वारा अपने व्यहार को समूह के व्यवहार के अनुसार बदल लेने से है| यदि समूह में व्यक्तियों के विचारों में असमानता होती है तो तो व्यक्तियों को समूह के अनुसार व्यवहार बदलने में परेशानी होती है| असमानता के कारण व्यक्ति में द्वन्द्व (**Conflict**) उत्पन्न होता हैं| और उस पर मानसिक दबाव पड़ता हैं| व्यक्ति द्वन्द्व व दबाव को समाप्त करने के लिए अपने विचार को समूह की इच्छा के अनुसार बदल देता है|

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने अनुरूपता की परिभाषा निम्न प्रकार दी है|

क्रेच व अन्य (1962) ने बताया है – "व्यक्ति एवं समूह की धारणाओं में द्वन्द्व के परिणामस्वरूप अनुभव समूह दबाव (प्रत्याशा) के अनुरूप व्यक्ति द्वारा अपने निर्णय या व्यवहार को परिवर्तित करना अनुरूपता है"

"Conformity is yielding of the individual's judgement or action to group pressure arising from a conflict between his own opinion and that maintaines by the group" – Krech Et. Al.

कीसलर एवं कीसलर (1969) के अनुसार "वास्तविक या काल्पनिक समूह दबाव के कारण व्यवहार या विश्वास में उत्पन्न परिवर्तन ही अनुरूपता है|"

"Conformity is a change in the behaviour or belief as a result of real or Imagined group pressure" – Keisler and Keisler

वर्केल और कूपर (1979) के अनुसार "अनुरूपता एक ऐसा व्यवहार है जिसके सहारे व्यक्ति समूह दबाव के सामने झुक जाता है हालाँकि उसकी व्यक्तिगत अनुभूतियाँ दूसरे ढंग से विचार करना चाहती हैं|

"Conformity is behaviour by which an individual yields to group pressures, despite the personal feling that he or she should Act in same mannes" – Worchel Q Cooper

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अनुरूपता का अर्थ समूह या समाज के दबाव में आकर किसी व्यक्ति द्वारा अपने निर्णय व व्यवहार के बदल देने से है| इसे समूह दबाव के सामने झुकना (**Yielding to Group Pressure**) भी कहते हैं| यदि व्यक्ति दबाव में आकर अपना विचार बदल देता है, तो इसे आन्तरिक स्वीकृति (**Internal Acceptance**) कहते है|यदि बदलाव केवल दिखने के लिए होता है तो इसे जन अनुपालन (**Public Compliance**) कहते है| दबाव वास्तविक व काल्पनिक भी हो सकता हैं|

अनुरूपता का उदहारण- मान लीजिए एक 25 वर्षीय हिन्दू लड़की दूसरे धर्म में विवाह करना चाहता है परन्तु सामाजिक मूल्यों व मानको के कारण मानसिक संघर्ष में पड़ जाती है, कि उसे विवाह करना चाहिए या नही यदि विवाह नही करती है तो उसे उस लड़के का साथ छोड़ना पड़ेगा जो उसके लिए कठिन है और यदि विवाह करती है तो समाज व समूह के मानक व परम्पराए सामने आती है| उसे डर लगता है कि वह शादी करेगी तो समाज के लोग उसे बुरी नजर से देखेगे अन्त मे लड़की विवाह न करने का निर्णय लेती है यही अनुरूपता है क्योंकि लड़की समाज के अनुरूप अपने विचार में परिवर्तन लाती है इसमें उपरोक्त तीनो बातें आ जाती है पहला लड़की के मन में व्यक्तिगत इच्छा व विचार (**शादी करने की इच्छा**) तथा सामाजिक मूल्यों एवं मानको के बीच एक संघर्ष होता है| दूसरा, संघर्ष में वह अपनी व्यक्तिगत इच्छा का त्याग कर समूह दबाव के सामने झुक जाती है अर्थात विवाह न करने का निर्णय लेती है तीसरा इसमे काल्पनिक समूह दबाव उत्पन्न हो रहा है क्योंकि

समाज स्पष्ट रूप से यह नही कहता कि लड़की के दूसरे धर्म में विवाह करने से लोग उसे बुरी नजर से देखेगे|

12.4.1 अनुरूपता व्यवहार की विशेषताऐ (Characteristics of Conformity Behaviour) -

अनुरूपता व्यवहार में अनेक विशेषताऐ पाई जाती है|

1. अनुरूपता के कारण व्यक्ति समूह दबाव के अनुसार अपना व्यवहार या विचार बदल देता है|
2. अनुरूपता में मानसिक संघर्ष व तनाव पाया जाता है|यह संघर्ष व्यक्ति के व्यक्तिगत विचारों व समूह को उत्पन्न होने वाले दबाव के बीच होता है|
3. समूह दबाव वास्तविक या काल्पनिक हो सकता है|
4. समूह दबाव सूचनात्मक सामाजिक प्रभाव (**Information Social Influence**) या मानकीय सामाजिक प्रभाव (**Normative Social Influence**) द्वारा होती है शेरिफ का प्रयोग सूचनात्मक सामजिक प्रभाव व ऐश का प्रयोग मानकीय सामजिक प्रभाव का उदहारण है|
5. अनुरूपता की मात्रा एक समूह के सभी सदस्यों में भिन्न-भिन्न होती है किसी में अधिक व किसी में कम पाई जाती है|
6. अनुरूपता व्यक्ति व समूह के विचारों के बीच उत्पन्न द्वन्द्व का परिणाम है|
7. अनुरूपता या तो आन्तरिक स्तर पर या केवल वाहय रूप से प्रदर्शित की जा सकता है|

12.4.2 **अनुरूपता सम्बन्धी महत्वपूर्ण अध्ययन एवं प्रयोगात्मक मापन (Experimental Measurement and Important Studies of Conformity) –**

अनुरूपता पर किये गए कुछ महत्वपूर्ण अध्ययन निम्न प्रकार है|

1. **शेरिफ का स्वचालगतिक प्रभाव का अध्ययन – (Sherif's Study of Autokinetic Effect)** – शेरिफ ने स्वचालित प्रभाव (**Autokinetic Effect**) के द्वारा समाज के मानक व अनुरूपता व्यहार का अध्ययन किया इस अध्ययन में शेरिफ ने पाया कि जब प्रयोज्य को अँधेरे कमरे में रोशनी की बिंदु की दुरी का अनुमान लगाना होता था| तो उस पर समूह द्वारा स्वीकृत निर्णय पर अधिक प्रभाव पड़ता था| प्रयोज्य अपने व्यक्तिगत निर्णय को भी सामूहिक निर्णय में बदल देता था| शेरिफ ने प्रयोग में अनुरूपता का कारण सूचनात्मक प्रभाव (**Informational Influence**) था मानकीय प्रभाव (**Normative Influence**) नही| इस प्रयोग में बाद में यह देखा गया कि प्रयोगकर्ता अपने साथी के सुझाव द्वारा अनुरूपता की मात्रा में वृद्धि कर लेता है|

शेरिफ के प्रयोग की एक विशेषता यह है कि जिन प्रयोज्यों ने अनुरूपता दिखायी वे इस बात से इंकार करते है कि उनका निर्णय दूसरे व्यक्तियों के निर्णय से प्रभावित हो रहा है| जबकि बाद के प्रयोगों में देखा कि प्रयोज्यों का निर्णय दूसरे व्यक्तियों के निर्णय से प्रभावित हो रहा है| सेकर्ड

व बैकमैन (**Second & Backman 1974**) ने देखा कि एक नये प्रयोज्य को उच्च स्तरीय व्यक्ति (**High Status Person**) के साथ अँधेरे कमरे में रोशनी की बिन्दु की गति दुरी को मापने के लिए भेजा तो पाया कि नया प्रयोज्य उच्च स्तरीय व्यक्ति के समान ही अपना निर्णय भी देता था| अर्थात अगर उच्च स्तरीय भी रोशनी की बिन्दु गति दुरी को अधिक बताता तो नया प्रयोज्य भी रोशनी की बिन्दु गति दुरी को अधिक बताता था और यदि उच्च स्तरय व्यक्ति रोशनी की बिन्दु गति दूरी को कम बताता तो नया प्रयोज्य भी रोशनी की बिन्दु गति दूरी को कम बताता था| शैरिफ के इस प्रयोग से स्पष्ट है कि व्यक्ति के अनुरूपता व्यवहार पर समूह निर्णय का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है|

2. **ऐश प्रविधि (Asch Technique) – ऐश (Asch 1951, 1952, 1956)** ने अनेक प्रयोगात्मक अध्ययन किये जिनका मुख्य उद्देश्य था कि जब व्यक्ति के व्यक्तिगत विचार, मनोवृत्ति तथा प्रत्यक्षीकरण समूह के विचारो मनोवृत्तियो व प्रत्यक्षीकरण से भिन्न-भिन्न होते है तो क्या होता है| क्या व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विचारो, मनोवृत्तियों व प्रत्यक्षीकरण को छोड़ कर समूह के विचारो, मनोवृत्तियों व प्रत्यक्षीकरण को मनाता है|अध्ययन के लिए ऐश ने प्रयोज्यों के दो समूह तैयार किये – प्रयोगात्मक समूहों (**Experimental Group**) और नियंत्रित समूह (**Control Group**) दोनों समूह में 7 से 9 प्रयोज्यों का चयन किया|प्रयोगात्मक समूह में एक वास्तविक प्रयोज्य व शेष उसके साथी सम्मिलित थे यह बात प्रयोज्य से छिपा कर रखी कि अध्ययन में केवल वह ही प्रयोज्य है शेष नही| प्रयोज्य को एक मानक रेखा कि लम्बाई दी गई तीन रेखाओं में से किसी एक रेखा कि लम्बाई मानक रेखा के समान थी| शेष दो रेखाए अलग थी| इस अध्ययन में प्रयोज्य से 18 प्रयास कराये गये प्रयोज्यों को अपना प्रयास जोर से बोलकर बताना था प्रयोज्यों को इस प्रकार बैठाया कि वास्तविक प्रयोज्य को अन्त में बोलने का अवसर दिया जाता था प्रयोग में वास्तविक प्रयोज्य को छोड़कर शेष सभी प्रयोज्यों के प्रयोगकर्ता पहले से ही यह बता देता है कि वह 18 प्रयासों से 12 प्रयासों में गलत उत्तर व शेष 06 प्रयासों में सही उत्तर देंगे| जबकि नियंत्रित समूह में सभी वास्तविक प्रयोज्य थे इन्हें भी प्रयोग में 18 प्रयास कराये गये इनमे प्रयोगकर्ता ने प्रयोगात्मक समूह के समान किसी भी प्रयोज्य को यह निर्देश नही दिया था की वह जान बुझकर किसी प्रयास का उत्तर गलत दें| परिणामों में देखा कि नियंत्रित समूह के 95% प्रयोज्यों ने रेखाओं का सही उत्तर दिया जबकि प्रयोगात्मक समूह के प्रयोज्यों ने 37% प्रयासों में सही उत्तर दिया| क्योकि उसने समूह के साथ अनुरूपता दिखाते हुए स्वयं के निर्णय गलत कर दिये| इन परिणामों से स्पष्ट है कि व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विचारों व मतों के विपरीत समूह के साथ अनुरूपता दिखाने के लिए अपने उत्तरों को गलत कर देता है| कुछ समय बाद ऐश ने एक और अध्ययन किया जिसमें प्रयोज्यों को

उत्तर बोलकर नही बल्कि गुप्त रूप से लिख कर देना था| इस अध्ययन में ऐश ने पाया कि प्रयोज्यों में समूह के निर्णय के प्रति अनुरूपता कम दिखायी दी| फेल्डमैंन **(Feldman 1985)** के अनुसार ऐश के प्रयोग में सूचनात्मक सामाजिक प्रभाव **(Informational Social Influence)** तथा मानकीय सामाजिक प्रभाव **(Normative Social Influence)** दोनों ही कार्य कर रहें हैं| मानकीय सामाजिक प्रभाव को प्रयोज्य समूह द्वारा बनाये मानक के प्रति अनुरूपता मजाक बनाये जाने के डर से अपनाता है| सूचनात्मक सामाजिक प्रभाव में समझता है कि समूह के अन्य लोगो के पास ऐसी सूचना है जो कि उसके पास नही है| समाज मनोवैज्ञानिकों ने ऐश की इस विधि को सरल व प्रयोज्यों के मन में सहयोग की भावना उत्पन्न करने वाला बताया है|

ऐश की इस प्रयोगात्मक विधि की आलोचना भी कि गई है| और कहा गया कि प्रयोज्यों ने समूह की प्रत्याशा **(Expectation)** समझ कर ऐसे उत्तर दिये न की समूह के साथ अनुरूपता दिखायी| वे रोन तथा वर्न **(Baron & Byrne 1977)** ने कहा कि ऐश कि प्रयोगात्मक विधि में समय अधिक लगता है साथ ही साथ प्रयोगकर्ता व उसके सहयोगी अगर कार्य में निपुण व अनुभवी नहीं होगे तो प्रयोग सफल नही हो पायेगा|

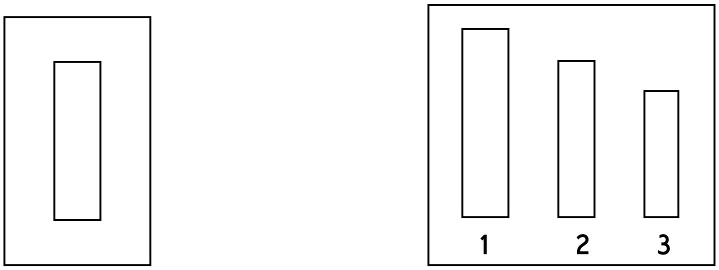

मानक रेखा **तुलना रेखाये**

अनुरूपता अध्ययन में प्रयोग किये गये चित्रों का उदहारण|

3. **क्रचफील्ड की विधि –(Crutch Field Technique)** - इसका प्रतिपादन 1955 में क्रचफील्ड के द्वारा किया गया| इस प्रयोग में ऐश के प्रयोग की उस कमी को दूर कर दिया जो प्रयोगकर्ता के मित्रबंधु के प्रयोग से सम्बंधित था| इसमें यह बताया है कि मित्रबंधु की सहायता के बिना भी अनुरूपता का मापन संभव है|

क्रचफील्ड का यह प्रयोग नियंत्रित परिस्थितियों में किया गया अध्ययन है| इसमें एक विशेष उपकरण के द्वारा क्रचफील्ड ने अनुरूपता का अध्ययन किया जिसे क्रचफील्ड उपकरण **(Crtuchfield Apparatus)** का नाम दिया गया| इस उपकरण की सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इसमें पांच प्रयोज्यों पर एक साथ कि अध्ययन किया जा सकता है| प्रयोज्य आपस में बातचीत ना कर सके इसके लिए प्रत्येक दो प्रयोज्यों के बीच एक पर्दा लगा था| प्रत्येक प्रयोज्यों के लिए स्विच व प्रकाश की अलग अलग व्यवस्था

थी| प्रयोज्यों से यह कहा जाता था कि किसी विषय में पाँचों प्रयोज्यों की अलग-अलग अनुक्रिया को सभी प्रयोज्य आपस में देख सकते है कि उन्होंने क्या अनुक्रिया की है| वास्तव में पांचो प्रयोज्यो द्वारा दी गई सूचना स्वयं प्रयोगकर्ता द्वारा दी जाती थी ना कि प्रयोज्यों के द्वारा| प्रयोगकर्ता द्वारा केवल गलत सूचना को ही बिजली के पेनल पर दी गई सूचना के रूप में दिखाया जाता था| प्रयोज्यों को समस्या के प्रति अलग-अलग अनुक्रिया करनी होती थी| जैसे कभी प्रयोज्यों को दो सामान वृतों के विषय में निर्णय लेना होता था व कभी दूसरों की मनोवृति या मतों के सम्बन्ध में निर्णय लेना होता था| इस प्रकार प्रयोज्यों को आसान व कठिन दोनों प्रकार के कार्य करने होते थे| प्रयोज्य की किसी समस्या के प्रति अनुक्रिया करने से पहले ही प्रयोज्य को बिजली के पेनल पर यह दिखाया जाता था कि उसके बाकि साथियों ने समस्या के प्रति क्या अनुक्रिया की है| क्रचफील्ड ने लगभग 600 व्यक्तियों में अनुरूपता का अध्ययन किया जिसके परिणाम निम्न प्रकार हैं|

1. अधिकांशः प्रयोज्यों ने गलत निर्णय के प्रति अनुरूपता दिखायी|
2. प्रयोज्यों ने सरल पदों पर कम व कठिन पदों पर अधिक अनुरूपता दिखायी|
3. अनुरूपता दिखाने में वैयक्तिक भिन्नता का प्रभाव पड़ा, कुछ प्रयोज्यों ने सभी पदों के प्रति अनुरूपता दिखायी, कुछ ने किसी भी प्रकार के पदों के प्रति अनुरूपता नहीं दिखायी| अधिकांशतः ऐसे प्रयोज्य थे जिन्होंने कुछ पदों पर अनुरूपता दिखायी व कुछ में नहीं दिखायी|
4. प्रयोग समाप्त होने के बाद अधिक अनुरूपता दिखाने वाले प्रयोज्यों से वैयक्तिक (गुप्त) रूप से उन पदों के प्रति पुनः निर्णय देने को कहा जिन पदों के प्रति प्रयोज्यों ने अधिक अनुरूपता दिखायी थी| परिणाम में देखा कि अनुरूपता में कमी पाई गई| प्रयोज्य ने उन मतों के प्रति स्वतंत्र रूप से निर्णय दिया जिसे वह समूह दबाव के कारण नहीं दे पा रहा था|

अनुरूपता के प्रयोगात्मक मापन के सम्बन्ध में सामान्य निष्कर्ष- शेरिफ ऐश तथा क्रचफील्ड के प्रयोगात्मक अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि अनुरूपता में समूह दबाव की महत्वपूर्ण भूमिका है| समूह दबाव के कारण प्रयोज्य सही होते हुए भी अपने निर्णय को त्याग कर समूह के निर्णय को स्वीकार कर लेता है| अनुरूपता में वैयक्तिक भिन्नता का भी प्रभाव दिखायी दिया| कुछ व्यक्तियों में अनुरूपता की प्रवृति अधिक व कुछ में कम दिखयी पड़ती है|

अनुरूपता को प्रभावित करने वाले कारक -(Factors Influencing Conformity) –

अध्ययनों से स्पष्ट है कि अनुरूपता में समूह दबाव का प्रभाव पड़ता है| अतः उन कारको को जानना भी आवश्यक है, जिससे व्यक्ति में कभी अनुरूपता अधिक व कभी कम पायी जाती है| प्रमुख समाज मनोवैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे निर्धारकों का पता लगाया है| अनुरूपता को प्रभावित करने वाले कारकों को

परिस्थितिजन्य या समूह सम्बन्धी व्यक्तित्व सम्बन्धी कारक व कार्य सम्बन्धी कारको मे बाँटा जा सकता है|

1. **परिस्थितिजन्य या समूह सम्बन्धी कारक –(Situational or Group Related Factors)-** समूह दबाव द्वारा व्यक्ति में उत्पन्न अनुरूपता समूह की विशेषताओं जैसे समूह का आकार संरचना सर्वसम्मति समूह सहमति की चरम सीमा, सशक्तता, उच्च प्रतिष्ठा, समूह अनुक्रिया, कार्य का स्वरूप, मानक व सूचना सम्बन्धी आदि प्रमुख है| इन सभी कारको का वर्णन निम्न प्रकार है|

I. **समूह का आकार (Size the Group)-** अध्ययनों से स्पष्ट है कि अगर समूह का आकार बड़ा है तो अनुरूपता अधिक व समूह का आकार छोटा है तो अनुरूपता कम होती है| अर्थात यदि व्यक्ति ने किसी समस्या के सम्बन्ध में कोई विचार दिया है व समूह के अधिकांश व्यक्ति उस व्यक्ति के विचार के विपरीत अपना विचार रखते है तो कुछ समय बाद वह व्यक्ति भी अपना विचार समूह के सभी सदस्यों के सामान कर देता है, ऐश **(Asch, 1965)** ने अपने अध्ययन में पाया कि यदि एक व्यक्ति के मत का विरोध एक व्यक्ति ने किया तो अनुरूपता नहीं के बराबर, यदि दो के बराबर तो अनुरूपता कुछ अधिक व दो से अधिक व्यक्तियों ने किया तो अनुरूपता अधिक दिखाई देती है|

II. समूह की संरचना-(Composition of Group)- अनुरूपता केवल समूह के आकार पर ही निर्भर नहीं रहती है बल्कि वह इस बात पर भी निर्भर करती है कि समूह में किसी व्यक्ति के विचारों का विरोध करने वाले व्यक्ति कैसे है| क्या वे उस व्यक्ति से अधिक योग्य है, कम योग्य हैं या उसके दोस्त हैं या अपरिचित| अध्ययनों में पाया गया कि अपने से योग्य व्यक्ति से अनुरूपता अधिक व अपने से कम योग्य व्यक्ति से अनुरूपता कम होती है| क्रचफील्ड 1955 ने अपने एक प्रयोगात्मक अध्ययन में इस बात की पुष्टि की गई है| इसी प्रकार अपने दोस्त के द्वारा विरोध करने पर अनुरूपता कम व अपरिचित के विरोध करने पर अनुरूपता अधिक पाई जाती है| क्योंकि अनुरूपता दिखाने पर भी दोस्त विरोध नहीं करेगा|

III. **समूह की एकमतता (Unanimity of group)-** अनुरूपता इस बात पर भी निर्भर करती है कि समूह में कितने लोगों ने किसी व्यक्ति के मतों का विरोध किया है तो अनुरूपता अधिक होगी क्योंकि जिस व्यक्ति के मतों का विरोध हुआ है वह व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विचारों को त्याग कर समूह के विचारों को अपना लेगा| इसके विपरीत यदि समूह में एक या दो व्यक्तियों ने किसी व्यक्ति के विचारों या मतों का विरोध किया है तो अनुरूपता कम पाई जाएगी| ऐश **(Asch)** ने अपने प्रयोत्मक अध्ययन में इस बात की पुष्टि की है|

IV. **समूह सहमति की चरम सीमा (Extremeness of group Consensus)-** अनुरूपता समूह की किसी समस्या पर सहमति और व्यक्ति द्वारा वैयक्तिक रूप से दी गई सहमति के बीच कितना अंतर हे इस

बात पर भी निर्भर करती है| यदि अंतर जटिल व अधिक है तो अनुरूपता कम व यदि अंतर थोडा बहुत है तो अनुरूपता अधिक पाई जाती है|

V. **समूह सशक्तता (Cohesiveness of group)** – सशक्त समूह में अनुरूपता अधिक दिखायी देती है| इसके विपरीत यदि समूह में सशक्ता कम है तो अनुरूपता कम पाई जाती है ऐसे में प्रयोज्य को अपने निर्णय को समूह दबाव में आकर बदलना नहीं पड़ता है| पारस्परिक आकर्षण व लगाव के कारण समूह में सशक्ता अधिक पाई जाती है ऐसे में समूह को अधिक महत्व देते हुए प्रयोज्य अपने निर्णय को समूह के निर्णय के अनुसार बदल देता है|

VI. **उच्च प्रतिष्ठा (Higher Status)** – अनुरूपता पर अन्य व्यक्तियों की सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रभाव पड़ता है| यदि व्यक्ति कि समाज में प्रतिष्ठा अधिक है तो उसका अनुसरण प्रयोज्य अधिक करेगा| निम्न सामाजिक स्थिति वाले व्यक्ति के व्यवहार का अनुसरण प्रयोज्य कम करेगा|

VII. **समूह अनुक्रिया (Group Response)** अनुरूपता के सम्बन्ध में एक प्रश्न यह भी उठता है कि व्यक्ति व्यक्तिगत स्वतन्त्र अनुक्रिया में अनुरूपता अधिक दिखाता है या समूह के साथ मिलकर अनुक्रिया करने में अधिक अनुरूपता दिखता है **ऐश** ने अपने अध्ययन में यह स्पष्ट कर दिया कि यदि प्रयोज्य से अन्य लोगो की उपस्थिति में किसी समस्या के प्रति अनुक्रिया ली जाय तो अनुरूपता अधिक दिखायी देती है| यदि प्रयोज्यों की अनुक्रिया को गोपनीय रखा जाय तो वह अपने निर्णयों को नहीं बदलते है प्रयोज्य का समूह में अपने निर्णय बदलने का एकमात्र कारण यह होता है कि वह इस बात से डरता है कि समूह में कोई उससे नाराज न हो जाय| प्रयोज्य समूह से सहानुभूति व प्रसंसा पाने के लिए अपने अनुक्रियाओं को परिवर्तित कर देता है|

VIII. **काम का स्वरूप –(Nature of Task)** – व्यक्ति से अनुक्रियाएँ चाहें व्यक्तिगत ले या सामूहिक अनुरूपता पर काम के स्वरूप का प्रभाव अवश्य पड़ता है| यदि समस्या जटिल व अस्पष्ट है तो प्रयोज्य अपने निर्णय को समूह के निर्णय के अनुरूप जल्दी-जल्दी बदल देता है| यदि समस्या सरल व स्पष्ट है तो अनुरूपता कम होती है|

IX. **मानक व सूचना सम्बन्धी सामजिक प्रभाव (Social Influence of Norm & Information Related)** – अनुरूपता पर सामाजिक प्रभाव दो प्रकार से पड़ सकता है| पहला- मानक सम्बन्धी अर्थात प्रयोग समूह से प्रसंसा, सहानुभूति व अनुमोदन प्राप्त करने व निंदा तथा अस्वीकृति से बचने के लिए समूह के विचारो को स्वीकार कर लेता है| दूसरा- सूचना सम्बन्धी अर्थात् समूह से प्राप्त होने वाली सूचना को महत्वपूर्ण मानते हुए प्रयोज्य समूह की इच्छानुसार अपने विचारों को बदल देता है| दोनों प्रकारों में मानक सम्बन्धी प्रकार को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है|

2. **व्यक्तित्व सम्बन्धी कारक (Personality Related Factors)** – अनुरूपता पर परिस्थिति सम्बन्धी कारकों के अतिरिक्त व्यक्तित्व सम्बन्धी कारको जैसे प्रेरणात्मक, संवेगात्मक व संज्ञानात्मक कारको का भी प्रभाव पड़ता है, कुछ प्रमुख व्यक्तित्व सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक कारको का वर्णन निम्न प्रकार है|

I. **आत्म सम्मान और सक्षमता (Self Esteen and Competence)** – कुछ व्यक्तियों में आत्म सम्मान व क्षमता का गुण अधिक होता है कुछ में नही होता है| जिन व्यक्तियों में आत्म सम्मान व सक्षमता का गुण अधिक होता है उन व्यक्तियों को अपने पर अधिक विश्वास होता है और वे किसी भी विषय पर स्वतंत्र रूप से विचार व्यक्त करते है व अनुरूपता कम देखी जाती है जबकि जिनमे आत्मसम्मान व सक्षमता की कमी होती है वे दूसरे से समर्थन की अधिक उम्मीद करते है व उनमे समूह दबाव के कारण अनुरूपता कम पाई जाती| स्टैग (Stang) 1972 ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययन से इस बात की पुष्टि की है| अपने अध्ययन में उन्होंने प्रयोज्यों के दो समूह बनाये एक समूह में आत्मसम्मान का गुण अधिक था जबकि दूसरे समूह में आत्मसम्मान का गुण नही था| इन दोनों समूहों में अनुरूपता का मापन क्रच फील्ड़ की विधि से किया गया जिसमें प्रयोज्य को विभिन्न प्रकार के दृष्टि सम्बन्धी कार्य पर निर्णय देने थे। अध्ययन में यह देखा गया कि अधिक आत्मसम्मान वाले प्रयोज्यो में कम अनुरूपता व कम आत्मसम्मान वाले प्रयोज्यों में अधिक अनुरूपता पाई गयी।

II. **लिंग भेद (Sex Difference)** – **इगली और कार्ली (Eagly and Carli)** ने अपने अध्ययन से यह पुष्टि की कि पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों मे अनुरूपता अधिक पायी जाती है। यदि महिला पुरूष की सामाजिक परिस्थितियों व सामाजीकरण एक जैसा किया जाय तभी अनुरूपता व लिंग भेद के सम्बन्ध में कोई वैज्ञानिक निष्कर्ष प्राप्त हो सकता हैं (**Eagly and Wood 1982**)|

III. **प्रसंसा प्राप्त करने की प्रवृति (Tendency to Engratiate)** उन लोगो में भी अनुरुपता अधिक दिखायी देती जिनमें व्यक्तियों में दूसरों से अपनी प्रसंसा पाने की इच्छा अधिक होती हैं। ऐसे व्यक्तियों यह अच्छे से जानते हैं। कि समूह को प्रसन्न करने का सबसे अच्छा तरीका समूह की हाँ मे हाँ मिलाये ऐसा करने से सब उन की प्रसंसा करेगे| **जोन्स (Jones 1964)** ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययन में इस बात की पुष्टि की है जिन लोंगों में प्रसंसा पाने की इच्छा कम होती हैं उनमें अनुरूपता कम पायी जाती है और वह अपने विचारो को स्वतंत्रत रूप से व्यक्त करते है| **उदाहरण**- जैसे आफिस में कोई कर्मचारी अपने बाँस की प्रसंसा पाने के लिए उसकी सभी बातो पर हाँ मिलाता है चाहे बास की बात सही हो या गलत।

IV. **आकर्षण (Attraction)**- किसी समूह के प्रतिव्यक्ति का आकर्षण जितना अधिक होगा अनुरूपता उतनी हो अधिक होगी **फेस्टिगर स्केकेटर तथा बैंक (Festinger Schachtes & Bank 1950)** ने अपने प्रयोगत्मक अध्ययन में पाया कि छात्रों ने उन मोहल्लों के प्रति अधिक अनुरुपता दिखायी जिन मोहल्लो में उनके साथी रहते थे। **साभेल (1971)** ने अपने अध्ययन से स्पष्ट किया कि यदि किसी व्यक्ति के विचारों से दूसरा व्यक्ति सहमत हो जाता है तो दूसरे व्यक्ति के प्रति आकर्षण व अनुरूपता बढ जाती है।

V. **संवेगात्मक उत्तेजना (Emotional Arousal)**- प्रयोज्य मे उस समय तनाव उत्पन्न हो जाता है, जब उसे अपने स्वयं के विचारो व समूह के विचारों मे अन्तर करना होता है। प्रयोज्य इस तनाव की स्थिति से मुक्ति पाना चाहता हैं। जिसके लिए वह समूह के निर्णय के अनुसार अपने निर्णय को बदलने का प्रयास करता हैं।

VI. **अभिप्रेरणा (Motivation)** - व्यक्ति को दिये जाने वाले पुरुस्कार व दण्ड से भी अनुरूपता प्रभावित होती हैं। **ऐण्ड्लर (Endler 1965)** ने एक प्रयोगात्मक अध्ययन किया जिसमे प्रयोज्यों को प्रयोगकर्ता द्वारा समूह के गलत निर्णय पर सहमत होने के लिए पुरूस्कार दिया तथा कुछ प्रयोज्यो को समूह के निर्णय में असहमत होने पर पुरुस्कार दिया परिणाम मे देखा कि जिन प्रयोज्यो को गलत निर्णय पर सहमत होने पर पुरूस्कार दिया उनके अनुरूपता कम पाई गई दिन प्रतिदिन के जीवन में भी हम देखते है कि यदि हम किसी दूसरे व्यक्ति के मतों व विचारों के प्रति अनुरूपता दिखाते हैं तो वह हमे पसंद करते है यह हमारे लिए पुनर्वलन **(Reinforcement)** है बाद में हम उसके प्रति और भी अधिक अनुरूपता दिखते है यह अनुरूपता हम पुरुस्कार प्राप्त करने के लिए दिखाते है

3. **काम सम्बन्धी कारक (Task Related Factor)** – अनेक प्रयोगात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि काम (TASK) पर भी अनुरूपता का प्रभाव पड़ता है ब्लैक हेल्सन व मूटोन **(Black, Helson & Mouton 1956)** ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययन में देखा कि प्रयोज्यों की अनुरूपता कठिन व अस्पष्ट काम के प्रति अधिक पायी गई जबकि स्पष्ट काम के प्रति अनुरूपता कम पायी गई| ऐश (Asch) 1952 ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययन में पाया कि प्रयोज्यों ने अस्पष्ट काम के प्रति जिसमे उन्हें ऐसी रेखाओं को मिलाना था जिनकी आपसी लम्बाई में कम अंतर है अनुरूपता अधिक पाई गई परन्तु जब रेखाओं की लम्बाई में स्पष्ट अन्तर था तब अनुरूपता कम पाई गई| काम अस्पष्ट होने पर व्यक्ति समूह के द्वारा दिये गये निर्णय को ही सूचना का साधन मानता है इसी लिए अधिक अनुरूपता दिखाता है| **ऐलेन तथा लेभाईन (Allen & Levine 1971)** ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययन में पाया कि विचारों में व्यक्त करने वाले पदों (Opinion Items) की तुलना में देखने वाले पदों (Visual Items) में प्रयोज्यों में अनुरूपता कम पायी गयी|

निष्कर्ष – निष्कर्ष के रूप में कह सकते है कि अनुरूपता पर मुख्य रूप से तीन कारको का प्रभाव पड़ता है कुछ कारक समूह से सम्बन्धित, कुछ व्यक्ति से सम्बन्धित व कुछ कारक प्रयोज्यों को दिए गये काम से सम्बन्धित होते है ये सभी कारक आपस में मिलकर अनुरूपता को प्रभावित करते है|

- **अनुरूपता के सिद्धांत (Theories of Conformity)**

अनुरूपता की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कुछ सिद्धांतो का प्रतिपादन किया है| अनुरूपता के विषय में सबसे बड़ी समस्या यह है कि व्यक्ति समूह निर्णय के अनुसार अपना व्यवहार बदलने के

लिए बाध्य क्यों है इस समस्या के समाधान के लिए अनुरूपता सम्बन्धी सिद्धांतों को दो भागो में बाँटा जा सकता है दोनों सिद्धांतो की व्याख्या निम्न प्रकार है|

1 **व्यक्तित्व सिद्धांत – (Personality Theory)** - समूह दबाव व समूह मानक के कारण कुछ व्यक्ति अनुरूपता अधिक दिखाते है जबकि कुछ व्यक्तियों में समूह दबाव व समूह मानक का कोई प्रभाव नही पड़ता है ऐसा क्यों होता? अनुरूपता का व्यक्तित्व सिद्धांत इसकी व्याख्या व्यक्तित्व शीलगुणों (**Traits**) के रूप में करता है| व्यक्तित्व शीलगुणों के कारण ही दो या दो अधिक व्यक्तियों में समूह मानक या समूह दबाव के प्रति अनुरूपता में भिन्नता दिखायी देती है जो व्यक्ति अनुरूपता दिखाते है उन में कुछ ऐसे व्यक्तित्व शीलगुणों पाए जाते है जो कि अनुरूपता नही दिखाने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व शीलगुण से अलग होते है| यह सिद्धांत अनेक व्यक्तियों द्वारा किये गये शोधों का परिणाम है|

क्रचफील्ड (**Crutch Field 1955**) ने अपने अध्ययन में अनुरूपता दिखाने वाले व अनुरूपता नही दिखाने वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व शीलगुणों की तुलना की| अपने एक अध्ययन में उन्होंने सैनिको व व्यवसाथियो में अनुरूपता पर अध्ययन किया और निष्कर्ष दिया कि अधिक अनुरूपता दिखाने वाले व्यक्ति कम बुद्धिमान,हीनता ग्रस्त व सत्तावादी होते है उनमे उत्तरदायित्व सूझ व मौलिकता की कमी तथा पूर्वाग्रह की अधिकता पाई जाती है| तथा कम अनुरूपता दिखाने वाले व्यक्तियों में अहं व आत्म सम्मान की भावना भी अधिक पाई जाती है कष्टकारी व असफलता के परिणामों के लिए दूसरे व्यक्तियों को दोषी बनाने का प्रयास करते है| **स्ट्रेग (Stang 1979)** ने अपने अध्ययन में पाया कि अधिक अनुरूपता दिखने वाले व्यक्तियों में आत्म सम्मान कम व कम अनुरूपता दिखने वाले व्यक्तियों में आत्म सम्मान अधिक पाया जाता है|

अनुरूपता पर उम्र और लिग के प्रभाव पर भी अध्ययन किया गया| **हार्टअप (Hartup 1970)** ने उम्र तथा अनुरूपता के सम्बन्ध में एक सामान्य निष्कर्ष निकला और कहा कि कम उम्र में अनुरूपता अधिक और अधिक आयु में अनुरूपता कम पाई जाती है लिंग (**Sex**) का अनुरूपता पर प्रभाव के सम्बन्ध में **सिसट्रंक तथा मैकडेविड (Sistrunk & MC David 1971)** ने कहा कि अनुरूपता व्यक्ति के लिंग द्वारा प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नही होती बल्कि इस बात पर निर्भर करती है कि व्यक्ति द्वारा जिन पदों पर निर्णय लिया जाता है वह लिंग से सम्बन्धित है या नही| अपने अध्ययन में उन्होंने पाया कि पुरुष सम्बन्धी पदों (**Masculine Items**) के प्रति महिलाओं में अनुरूपता अधिक और स्त्री सम्बन्धी पदों (**Feminine Items**) के प्रति पुरुषो में अनुरूपता अधिक पायी जाती है| स्त्री व पुरुषों में तटस्थ पदों के प्रति अनुरूपता समान पाई जाती है|

दोष – इस सिद्धांत में मुख्य रूप से दो दोष बतलाये गये है जो निम्नलिखित है|

1. इस सिद्धांत में अनुरूपता दिखाने वाले व अनुरूपता नही दिखाने वाले व्यक्तियों में व्यक्तित्व के शीलगुणों में अंतर बताया है अनेको अध्ययनों में दोनों तरह के व्यक्तियों के व्यक्तित्व शीलगुणों में कोई अंतर नही पाया

गया उदहारण – क्रचफिल्ड ने अपने अध्ययन में पाया कि अनुरूपता दिखने वाले व अनुरूपता नही दिखाने वाले व्यक्तियों के समूह में **MMPI (Minesota Moutiphasic Personality Inventory)** के किसी भी मापनी में कोई अंतर नही पाया गया| इससे यह स्पष्ट होता है कि अनुरूपता को व्यक्तित्व शीलगुण प्रभावित नही करते है|

2. व्यक्ति यदि एक विशेष शीलगुण के कारण अनुरूपता दिखता है तो उसे प्रत्येक स्थिति में अनुरूपता दिखानी चाहिए क्योंकि वह विशेष व्यक्तित्व शीलगुण तो व्यक्ति के व्यक्तित्व में सदैव उपस्थित रहते है परन्तु स्ट्रीकर मेसिक तथा जेक्शन **(Stricker, Messick & Jackson 1970)** ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों से सिद्ध किया कि एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में अनुरूपता समान नही रहती है| उन्होंने समूह निर्णय के प्रति प्रयोज्यों की अनुरूपता का चार अलग-अलग परिस्थितियों में अध्ययन किया| इन अलग-अलग परिस्थितियों में अनुरूपता की मात्रा .06 से .60 तक पायी गई|
3. **समूह केन्द्रित सिद्धांत (Group Center Theory)-** समूह केन्द्रित सिद्धांत अनेक मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये प्रयोगों का परिणाम है| इस सिद्धांत का मानना है कि अनुरूपता का मुख्य कारण समूह दबाव होता है इस सिद्धांत के मुख्य समर्थक **ऐश (Asch) केली (Kelley) कैम्पबेल (Compbell) ड्यूटश तथा गेरार्ड (Deutsh & Gerard), फेस्टिगर (Festinger)** हैं|

इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति में दो प्रकार का समूह दबाव होता है जिसके कारण व्यक्ति अनुरूपता दिखता है| 1 सूचनात्मक सामजिक प्रभाव (Informational Social Influence) 2 मानकीय सामाजिक प्रभाव (Normative Social Influence)- सूचनात्मक सामाजिक प्रभाव में व्यक्ति स्वंय सूचना के बारे में कुछ नही जानता वह सूचना को सही मानकर उसके अनुसार अपनी मनोवृत्ति या विचार बना लेता है| ये सुचनाऐ दो प्रकार है 1 व्यक्तिगत सूचना (Personal Information) 2 सामाजिक सूचना (Social Information)- व्यक्तिगत सूचना में व्यक्ति स्वंय के अनुभव से निर्णय लेता है जैसे यदि एक छोटा बच्चा गर्म चीज का हाथ लगाता है और उसका हाथ जल जाता है तो इस प्रकार प्राप्त जानकारी व्यक्तिगत सूचना होगी तथा वह भविष्य में गर्म चीजों से बचेगा| यदि घर के बड़े सदस्य उसे यह बताते है की गर्म चीज में हाथ लगाने से हाथ जल जाता है तो यह सामाजिक सूचना का उदहारण है| इस सिद्धांत के समर्थक मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि सामाजिक स्रोत से प्राप्त सूचनायें अधिक प्रभावशाली है|

ऐश ने अपना प्रयोग मानकीय सामाजिक प्रभाव पर किया| अपने अध्ययन में उन्होंने पाया कि यदि प्रयोज्य यह समझने लगे कि समूह के अनुरूप वह व्यहार या निर्णय नही लेगा तो समूह के अन्य सदस्य उसका मजाक उड़ायेंगे इस डर से व्यक्ति अपना व्यवहार या निर्णय समूह के निर्णय के अनुसार बदल लेता है| व्यक्ति चोरी करने,झूठ बोलने,लड़ाई झगड़ा करने या ऐसे गलत कार्यो से इसलिए बचना चाहते है क्योंकि सामाजिक मानक के अनुसार इन गलत कार्यो की स्वतंत्रता नही है| अन्त में अनुरूपता व्यवहार में सूचनात्मक व मानकीय दोनों ही प्रकार के सामाजिक प्रभावों पर प्रयोग किया जाता है तथा व्यक्तित्व सिद्धांत की तुलना में ये समूह केन्द्रित सिद्धांत अनुरूपता व्यवहार की व्याख्या करने में अधिक सफल है|

12.5 शब्दावली –

सामाजिक मानक (**Social Norms**)– सामाजिक मानक वे है जिसके द्वारा व्यक्ति को यह पता चलता है कि उसे किसी परिस्थिति में क्या करना चाहिए क्या नही करना चाहिए| इस प्रकार के मानक का निर्माण सामूहिक अन्तः क्रियाओं से प्राप्त अनुभवो व व्यहारो के आधार पर होता है|

अनुरूपता (**Conformity**) – अनुरूपता का शाब्दिक अर्थ है समूह विचारों दबाव के सामने झुक जाना| अर्थात् जब व्यक्ति अपने व्यहार या विचारों को समूह के व्यवहार या विचारों के अनुसार बदल देता है तो यही अनुरूपता है|

समूह दबाव – (**Group Pressure**) – व्यक्ति किसी न किसी समाज या समूह का सदस्य होता है व्यक्ति से आशा की जाता है कि वह समाज या समूह के निर्णय को स्वीकार करेगा| लेकिन व्यक्ति कभी तो अपनी इच्छा से समूह के निर्णय को स्वीकार कर लेता है और कभी इच्छा न होने पर भी उसे निर्णय को स्वीकार करना पड़ता है| समाज मनोविज्ञान में यहीं समूह दबाव है|

12.6 सारांश –

प्रत्येक व्यक्ति की कोई न कोई समाज व संस्कृति होती है व्यक्ति अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज में अलग-अलग व्यवहार करता है| व्यक्ति को यह व्यवहार समाज में प्रचलित सामाजिक नियमों प्रथाओं व परम्पराओं के अनुसार करना पड़ता है| इन्ही नियमों, प्रथाओं व परम्पराओं को सामाजिक मानक कहा जाता है इन सामाजिक मानकों का निर्माण सामाजिक अंतक्रिया के द्वारा होता है सामाजिक मानको का विकास अस्पष्ट एवं असंरचित सामाजिक परिस्थितियों में अधिक होता इसकी पुष्टि **शेरिफ** (**sherif**) ने सामाजिक मानक के विकास पर स्वतः चालित गति (Autokinetic Movement) के प्रभाव पर एक प्रयोगात्मक अध्ययन करके किया|

जब व्यक्ति अपने व्यक्तिगत इच्छाओं एवं विचारों को छोड़कर समूह के निर्णय को स्वीकार करता है तो इसे ही अनुरूपता कहते है| अनुरूपता में व्यक्ति में व्यक्तिगत निर्णय व सामूहिक निर्णय के बीच संघर्ष या तनाव होता है| अनुरूपता में व्यक्ति में दो प्रकार का सामाजिक दबाव पड़ता है, सूचनात्मक सामाजिक दबाव (Informational Social Pressure) व मानक सामाजिक दबाव (Normative Social Pressure) तथा अनुरूपता पर प्रायोगिक अध्ययन शैरिफ प्रविधि,ऐश प्रविधि तथा क्रचफिल्ड प्रविधि द्वारा किया गया| अनुरूपता को प्रभावित करने वाले कारक- समूह से सम्बंधित कारक व्यक्तित्व से सम्बंधित कारक तथा कार्य सम्बंधित कारक महत्वपूर्ण है| ये तीनो कारक आपस में एक-दूसरे से सम्बंधित है| अनुरूपता व्यक्ति क्यों (Why) दिखाता है

इसके लिए दो सिद्धांतो- व्यक्तित्व सिद्धांत तथा समूह केन्द्रित सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया| व्यक्तित्व सिद्धांत बदलाता है कि व्यक्ति अपने व्यक्तित्वशील गुणों के कारण अनुरूपता दिखाता है, तथा समूह केन्द्रित सिद्धांत बताता है कि व्यक्ति दो प्रकार के समूह दबाव – सूचनात्मक सामाजिक दबाव तथा मानक सामाजिक दबाव के कारण दिखलाता है|

12.7 **अभ्यास प्रश्न**

प्रश्न 1 स्वतःचालित गति अध्ययन किया गया|

(क) फेस्टिंजर के द्वारा

(ख) क्रच फील्ड के द्वारा

(ग) ऐश के द्वारा

(घ) शैरिफ के द्वारा

प्रश्न 2 समूह दबाव के प्रति अनुरूपता का प्रदर्शन किया गया|

(क) प्रतिबद्धता

(ख) मानकीय सामाजिक प्रभाव

(ग) काल्पनिक दबाव

(घ) समूह सशक्ता

प्रश्न 3 शैरिफ का अनुरूपता अध्ययन सूचनात्मक सामाजिक प्रभाव से सम्बंधित है|

(क) सही

(ख) गलत

प्रश्न 4 ऐश का अनुरूपता सम्बंधित प्रयोगात्मक अध्ययन मानकीय सामाजिक प्रभाव से सम्बंधित है|

(क) सही

(ख) गलत

प्रश्न 5 व्यक्तित्व सिद्धांत अनुरूपता के लिए समूह दबाव को महत्वपूर्ण मानता है|

(क) सही

(ख) गलत

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर -1 – घ

उत्तर -2 – ख

उत्तर -3 – क

उत्तर -4 – क

उत्तर -5 – ख

12.9 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1- सामाजिक मानकों के निर्माण की व्याख्या कीजिये|

प्रश्न 2- शैरिफ के स्वचालित गतिक प्रभाव का उदाहरण सहित वर्णन कीजिये|

प्रश्न 3- ऐश के समूह के दबाव सिद्धांत का वर्णन कीजिये|

प्रश्न 4- सामाजिक मानकों के निर्माण के सम्बन्ध में किये गए प्रयोगात्मक अध्ययनों का वर्णन कीजिये|

प्रश्न 5- अनुरूपता के सम्बन्ध में किये गए प्रयोगात्मक अध्ययनों का वर्णन कीजिये|

प्रश्न 6- अनुरूपता किसे कहते है? इसकी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिये|

प्रश्न 7- अनुरूपता को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिये|

प्रश्न 8- अनुरूपता के सिद्धांतो का मूल्यांकन कीजिये|

प्रश्न 9- अनुरूपता के समूह केन्द्रित सिद्धांत का उदाहरण सहित वर्णन कीजिये|

प्रश्न 10- अनुरूपता का कारण क्या व्यक्तित्वशील गुणों हैं? कारण सहित उत्तर दीजिये|

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. समाज मनोविज्ञान की रुपरेखा – अरुण कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन|
2. आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान- आर० एन० सिंह, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2
3. उच्चतर समाज मनोविज्ञान – मुहम्मद सुलेमान, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिकेशन|
4. सामाजिक मनोविज्ञान बी० के० पाल, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली|

इकाई–13

समाजीकरण की अवधारणा एवं प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 समाजीकरण

13.4 अवधारणा

13.5 समाजीकरण का अर्थ एवं परिभाषा

13.6 समाजीकरण की विशेषताएँ

13.7 समाजीकरण की प्रक्रिया

13.8 समाजीकरण के विभिन्न स्तर या सोपान

13.9 सारांश

13.10 शब्दावली

13.11 अभ्यास हेतु प्रश्न एवं उत्तर

13.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

13.13 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

13.14 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ पायेंगे कि–

- वास्तविक रूप में समाजीकरण क्या है।
- समाजीकरण की प्रक्रिया क्या है तथा इसका महत्व कैसे निर्धारित होता है।
- समाजीकरण की अवधारणा तथा प्रक्रिया में क्या सम्बन्ध है।

13.2 प्रस्तावना

प्रकृति ने मानव व पशु के बीच कुछ अन्तर को बना रखा है और समाज एवं संस्कृति ने उस अंतर को इतना अधिक स्पष्ट बनाया है कि मानव अपने को सर्वश्रेष्ठ प्राणी के रूप में प्रतिष्ठित करने में सफल हुआ है। जन्म के समय मनुष्य न तो सामाजिक प्राणी होता है और न ही असामाजिक अपितु वह एक जैविकीय प्राणी के रूप में जन्म लेता है। अर्थात जन्म के समय उसमें तथा पशुओं के बच्चों में प्राणीशास्त्रीय आधार पर अन्तर अवश्य होता है परन्तु उसका स्वभाव एवं व्यवहार पशुओं की भाँति ही होता है। मानव शिशु जन्म के समय किसी भी मानव समाज में भाग लेने योग्य नहीं होता है। वह केवल एक प्राणीशास्त्रीय इकाई के रूप में इस संसार में आता है जो केवल रक्त, मांस एवं हड्डियों से बना एक जीवित पुतला मात्र होता है। उसमें किसी प्रकार के सामाजिक गुण नहीं होते। वह न तो सामाजिक होता है न असमाजिक और न समाज विरोधी ही। समाज के रीति–रिवाज़ों, प्रथाओं, मूल्यों एवं संस्कृति से वह अनभिज्ञ होता है।

13.3 समाजीकरण

समाजीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो नवजात शिशु को सामाजिक प्राणी बनाती है। इस प्रक्रिया के अभाव में व्यक्ति सामाजिक प्राणी नहीं बन सकता है। इसी से सामाजिक व्यक्तित्व का विकास होता है। सामाजिक–सांस्कृतिक विरासत के तत्वों का परिचय भी इसी से प्राप्त होता है। समाजीकरण से न केवल मानव जीवत का प्रभाव अखण्ड व सत्त रहता है, वरन् इसी से मानवोचित गुणों का विकास होता है, और व्यक्ति सुसभ्य व सुसंस्कृत भी बनता है। इसलिए किम्बल यंग ने समाजीकरण को व्यक्ति के सामाजिक सांस्कृतिक श्रेत्र में प्रवेश करने की प्रक्रिया कहा है। इसी प्रक्रिया से व्यक्ति समूह के आदर्श–नियमों को सीखता है। सामाजीकरण नवजात शिशु को सामाजिक बनाने की एक प्रक्रिया है। बच्चे को सामाजिक मान्यताओं के बारे में अवगत कराना, समाज में रहना सिखाना तथा व्यक्तित्व का निर्माण करना ही समाजीकरण है।

13.4 अवधारणा

समाज में जन्म लेने के पश्चात् मनुष्य के बच्चे का समाज में ही पालन–पोषण होता है तथा समाज में रहकर ही वह बड़ा होता है। परिवार, पड़ोस, क्रीडा समूह, स्कूल, विवाह तथा धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संसथाओं के द्वारा सामाजिक सीख एवं इनके साथ परस्पर अन्तःक्रिया के माध्यम से मानव शिशु की पाशविक प्रवृत्तियों का दमन करके उनमें मानवीय एवं सामाजिक गुण विकसित कर दिये जाते हैं अर्थात उसे मानव अथवा एक सामाजिक प्राणी बना दिया जाता है। सामाजिक सीख की इसी प्रक्रिया जिसके आधार पर मानव–शिशु को पशुता से मानवता की और लाया जाता है, को समाजीकरण की प्रक्रिया कहते है। मानव का व्यक्तित्व जन्म से ही पूर्ण नहीं होता। जन्म के समय उसके पास न भाषा होती है, न समझ, उसके न कोई विचार होते हैं, न विश्वास, वह न नियम जानता है, न संस्कृति, परन्तु सामाजिक सीख की लंबी प्रक्रिया और अनुभवों के द्वारा उनमें व्यक्तित्व संबंधी सामाजिक गुणों का विकास हो जाता है। परिवर्तन और संचरण की इसी प्रक्रिया को बनाने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को सामाजिक एवं योग्य प्राणी बनाना है ताकि वह अपनी प्रस्थिति एवं भूमिका के अनुरूप कार्य कर सके। समाजीकरण के द्वारा ही व्यक्ति में 'अहम' का विकास होता है, आदर्श नियमों का आत्मसात होता है और संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होती है।

13.5 समाजीकरण का अर्थ एवं परिभाषा

समाजशास्त्र में समाजीकरण नामक शब्द का प्रयोग उन प्रक्रियाओं के लिए किया जाता है जिनके द्वारा व्यक्ति को सामाजिक–सांस्कृतिक संसार से परिचित कराया जाता है। इस अर्थ में समाजीकरण वह विधि है जिनके द्वारा संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित किया जाता है। बच्चा जब जन्म लेता है तो वह केवल रक्त, मांस, हड्डी का एक जीवित पुतला होता है। इस समय उसमें कोई सामाजिक गुण नहीं पाया जाता है और न ही समाज विरोधी गुण पाया जाता है। इस समय वह एक प्राणीशास्त्रीय गुणों वाला एक जीवित प्राणी होता है। फिर समाज और संस्कृति के बीच पलते हुए वही धीरे–धीरे एक सामाजिक प्राणी में बदल जाता है, अर्थात उस प्राणीशास्त्रीय प्राणी में सामाजिक गुण या लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं, वह अपनी सामाजिक परम्पराओं और रूढ़ियों के अनुसार व्यवहार करना सीख जाता है। इसके द्वारा वह अपने को पशु–जगत से अलग कर लेता है। इस प्रकार जिस प्रक्रिया के द्वारा कोई भी प्राणीशास्त्रीय प्राणी सामाजिक प्राणी में बदल जाता है उसे समाजीकरण कहते है। समाजीकरण से ही व्यक्ति मनुष्य बनता है, अपनी सामाजिक–सांस्कृतिक विरासत का सक्रिय हिस्सेदारी निभाता है, और अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। इसके द्वारा व्यक्ति अपने समूह एवं समाज के मूल्यों, जनरीतियों, लोकाचारों, आदर्शों एवं सामाजिक उद्देश्यों को सीखता है। समाजीकरण की विभिन्न परिभाषाओं से यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी–

ग्रीन के शब्दों में ''समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बच्चा सांस्कृतिक विशेषताओं, आत्मपन और व्यक्तित्व को प्राप्त करता है।'' इस परिभाषा से स्पष्ट है कि समाजीकरण के द्वारा बच्चा संस्कृति की विशेषताओं को सीखता है, उसके अनुसार अपने आचरण को ढालता है और व्यक्तित्व का विकास करता है।

गिलिन और **गिलिन** लिखते है ''समाजीकरण से हमारा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्ति, समूह में एक क्रियाशील सदस्य बनता है, समूह की कार्यविधियों से समन्वय स्थापित करता है, उसकी परम्पराओं का ध्यान रखता है और सामाजिक परिस्थितियों से अनुकूलन करके अपने साथियों के प्रति सहनशक्ति की भावना विकसित करता है।

किम्बाल यंग के अनुसार, ''समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रवेश करता तथा समाज के विभिन्न समूहों का सदस्य बनता है और जिसके द्वारा उसे समाज के मूल्यों और मानकों को स्वीकार करने की प्रेरणा मिलती है।''

न्यूमेयर के अनुसार ''एक व्यक्ति के सामाजिक प्राणी के रूप में परिवतर्तित होने की प्रक्रिया का नाम ही समाजीकरण है।''

जॉनसन के अनुसार ''समाजीकरण सीखने की वह प्रक्रिया है जो सीखने वाले को सामाजिक भूमिकाओं का निर्वाह करने के योग्य बनाती है।''

स्टीवर्ट एवं ग्लिन के अनुसार ''सामाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग अपनी संस्कृति के विश्वासों, अभिवृत्तियों, मूल्यों और प्रथाओं को ग्रहण करते हैं।''

फिचर के अनुसार ''समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक व्यवहारों को स्वीकार करता है और उनसे अनुकूलन करना सीखता है।''

ब्रूम तथा सेल्जनिक के अनुसार, समाजीकरण के दो पूरक अर्थ हैं– ''संस्कृति का हस्तान्तरण और व्यक्तित्व का विकास'' इससे स्पष्ट है कि समाजीकरण द्वारा एक व्यक्ति अपनी संस्कृति को सीखता है, संस्कृति पुरानी पीढ़ी द्वारा नयी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती है। संस्कृति को सीखने से ही बच्चे के व्यक्तित्व का विकास होता है।

टालकॉट पारसन्स ''व्यक्ति द्वारा सामाजिक मूल्यों को सीखने और उन्हें आन्तरीकृत करने को ही सामाजीकरण कहते है।''

हारालाम्बोस के अनुसार ''वह प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समाज की संस्कृति को सीखता है, समाजीकरण के नाम से जानी जाती है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजीकरण सीखने की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति समूह अथवा समाज की सामाजिक–सांस्कृतिक विशेषताओं को ग्रहण करता है, अपने व्यक्तित्व का विकास करता है और समाज का क्रियाशील सदस्य बनता है। समाजीकरण द्वारा बच्चा सामाजिक प्रतिमानों को सीखकर उनके अनुसार आचरण करता है। इससे समाज में नियंत्रण बना रहता है। व्यक्ति को जन्म के साथ माता–पिता की कुछ शारीरिक तथा मानसिक विशेषतायें व लक्षण प्राप्त होते हैं, पर उस समय उसमें कोई भी मानवोचित या सामाजिक गुण नहीं होते। वह न बोल पाता है, न कपड़े पहन पाता है, न शिष्टाचार जानता है, और न ही उसके कोई मूल्य या आदर्श होते हैं, पर समाज और संस्कृति के बीच पलते हुये उसमें ये सभी गुण धीरे–धीरे पनपते हैं। वह उठने–बैठने, खाने–पीने, बोलने–चालने, दूसरों के साथ बात–व्यवहार करने तथा अन्य अनेक नियम, कानून, प्रथा, परम्परा और रीति–रिवाज को व्यवहार में लाने का ढंग सीख जाता है। उसे अपने–पराये का ज्ञान होता है, वह उचित और अनुचित में भेद कर लेता है, और अपने कर्तव्य के बारे में सचेत हो जाता है। संक्षेप में, उसमें सामाजिक जीवन में हिस्सेदार बनने की क्षमता का विकास हो जाता है, और एक सामाजिक प्राणी कहलाने के लिए उसमें आवश्यक गुण व लक्षण विकसित हो जाते हैं। इस प्रकार व्यक्ति के सामाजिक व्यक्तित्व का विकास सम्भव होता है। यानी जिस सम्पूर्ण प्रक्रिया के द्वारा प्राणीशास्त्रीय व्यक्ति इस भाँति एक सामाजिक मनुष्य में रूपान्तरित हो जाता है, उसे 'समाजीकरण' की प्रक्रिया कहते हैं।

13.6 समाजीकरण की विशेषताएँ

(i) सीखने की प्रक्रिया

समाजीकरण सीखने की एक प्रक्रिया है, किन्तु सभी प्रकार की बाते सीखना समाजीकरण नहीं है वरन् उन व्यवहारों को जो सामाजिक प्रतिमानों, मूल्यों एवं समाज द्वारा स्वीकृत है, को सीखना ही समाजीकरण है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति चोरी करना, कक्षा से भाग जाना व गाली देना आदि सीखता है तो उसे समाजीकरण नहीं कहेंगे क्योंकि ये क्रियाएँ समाज द्वारा स्वीकृत नहीं है और न ही इन्हें सीखकर व्यक्ति समाज का क्रियाशील सदस्य बनता है।

(ii)आजन्म प्रक्रिया

समाजीकरण की प्रक्रिया बच्चे के जन्म से लेकर मृत्यु तक चलने वाली प्रक्रिया है। बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक वह अनेक प्रस्थितियाँ धारण करता है और उनके अनुसार अपनी भूमिकाओं का निर्वाह करना सीखता है। युवावस्था में वह पति, पिता, व्यवसायी, किसी संगठन में पदाधिकारी एवं अन्य अनेक पदों को ग्रहण करता है। वृद्धावस्था में दादा, नाना, श्वसुर, आदि पद धारण करता है और इन सभी पदों के अनुरूप भूमिका निर्वाह करना सीखता है। इस प्रकार

व्यक्ति के सामने नयी–नयी प्रस्थितियाँ एवं पद आते हैं और वह उनके अनुसार समाज द्वारा मान्य व्यवहारों को सीखता जाता है। इस प्रकार समाजीकरण की प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है।

(iii) समय व स्थान सापेक्ष

समाजीकरण की प्रक्रिया समय व स्थान सापेक्ष है। समय सापेक्ष का अर्थ है कि दो भिन्न समयों में समाजीकरण की अर्न्तवस्तु अलग–अलग हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, प्राचीन भारत में स्त्रियों को पर्दा व घूंघट रखना सिखाया जाता था, एक व्यक्ति को अपनी जाति के खान–पान के नियम से परिचित कराया जाता था, किन्तु वर्तमान समय में ये व्यवहार अपेक्षित नहीं है। इसी प्रकार से बड़ों का अभिवादन करने के लिए बच्चों को प्रणाम करना, टाटा, बाय–बाय, गुड नाइट, ओके, हैलो आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। समाजीकरण स्थान सापेक्ष भी है। इसका अर्थ यह है कि एक स्थान पर एक समाज में जो व्यवहार प्रशंसनीय माना जाता है। वहीं दूसरे समाज में निदंनीय भी माना जा सकता है। **डेविस** कहते है कि अफ्रीका की मसाई जनजाति में एक दूसरे के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए एक–दूसरे पर थूकना सिखाया जाता था, किन्तु यह व्यवहार भारत में अनुचित एवं निंदनीय माना जाता है।

(iv) संस्कृति को आत्मसात् करने की प्रक्रिया

इस प्रक्रिया के द्वारा एक व्यक्ति अपने सांस्कृतिक मूल्यों, मानकों एवं समाज स्वीकृत व्यवहारों को सीखता है तथा संस्कृति के भौतिक तथा अभौतिक तत्वों को आत्मसात् करता है। धीरे–धीरे संस्कृति व्यक्ति के व्यक्तित्व का अंग बन जाती है।

(v) समाज का प्रकार्यात्मक सदस्य बनने की प्रक्रिया

समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति सामाजिक कार्यों में भाग लेने योग्य बनता है। इसी के द्वारा वह प्राणीशास्त्रीय प्राणी से सामाजिक प्राणी में बदल जाता है। किसी पद पर रहकर किस परिस्थति में कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह सब सामाजिक सम्पर्क से ही सीखा जाता है। सम्पर्क से ही व्यक्ति लोगों की अपेक्षाओं के अनुरूप व्यवहार करना सीखता है। **हारालाम्बोस** कहते हैं कि समाजीकरण के अभाव में कोई मनुष्य समाज का सामान्य सदस्य नहीं बन सकता है।

(vi) 'आत्म' का विकास

समाजीकरण के द्वारा व्यक्ति के 'आत्म' का विकास होता है, व्यक्ति में अपने प्रति जागरूकता आती है और वह जानने लगता है कि दूसरे व्यक्ति उसके बारे में क्या सोचते हैं।

(vii) सांस्कृतिक हस्तान्तरण

समाजीकरण के द्वारा समूह अथवा समाज अपनी संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुॅचाता है नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से संस्कृति ग्रहण करती है। **डेविस** कहते हैं कि हस्तान्तरण की इस प्रक्रिया के बिना समाज अपनी निरन्तरता नहीं रख सकता और न ही संस्कृति जीवित रह सकती है।

13.7 समाजीकरण की प्रक्रिया

क्या आपने कभी सोचा है कि प्रत्येक चूहा तैरना जानता है, जबकि प्रत्येक मानव तैरना नहीं जानता है। ऐसा क्यों है? चूहों को तैरना कौन सिखाता है? मानव को तैरना क्यों नहीं आता है? इन प्रश्नों का सम्बन्ध संस्कृति

एवं समाजीकरण से है। पशु समाज संस्कृतिविहीन समाज माना जाता है तथा इनमें गुण वंशानुक्रमण के माध्यम से एक पीढ़ी द्वारा दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते हैं। चूहे तैरना इसलिए जानते हैं क्योंकि उन्होंने तैरने का गुण जन्म से ही प्राप्त किया है। संस्कृति मानव समाज का एक अनुपम गुण है।

13.8 समाजीकरण के विभिन्न स्तर या सोपान

समाजीकरण एक क्रमिक एवं दीर्घकालीन प्रक्रिया है जो जन्म के कुछ दिन बाद से ही प्रारम्भ हो जाती है और जीवनपर्यन्त चलती है। शैशावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक समाजीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया को *जॉनसन ने अपनी पुस्तक* **Sociology-A Systematic Introduction** में चार स्तरों में विभाजित किया है– मौखिक अवस्था, शौच अवस्था, गुप्तावस्था तथा किशोरावस्था।

क. **मौखिक अवस्था–** यह बच्चे के समाजीकरण की प्रथम अवस्था है। यह अवस्था जन्म से प्रारम्भ होकर लगभग एक–डेढ़ वर्ष की आयु तक चलती है। इस स्तर पर समाजीकरण की प्रक्रिया का लक्ष्य बच्चे की दूसरों पर मौखिक निर्भरता स्थापित करना है। जन्म के बाद सामाजिक संगत में आने पर बच्चा भूख, ठंड, गर्मी तथा अन्य असुविधाएँ अनुभव करता है। शिशु अपने भोजन के समय के प्रबन्ध में निश्चित अपेक्षाएँ बनाने लगता है और अपनी देखभाल की आवश्यकता के लिए संकेत देना सीखता हैं इस स्तर पर बच्चा सम्पूर्ण परिवार से देखभाल की आवश्यकता के लिए संकेत देना सीखता है। इस स्तर पर बच्चा सम्पूर्ण परिवार से सम्बन्धित न रहकर केवल अपनी माता से सम्बन्धित रहता है। वह स्वयं तथा अपनी माँ में बिल्कुल भी पृथक्ता का अनुभव नहीं करता। वह केवल यही जानता है कि वह और उसकी माँ मिले हुए हैं। इस स्थिति को **फ्रायड** ने प्राथमिक परिचय कहा हैं इस स्तर पर बच्चा भूख पर कुछ नियंत्रण रखना सीख जाता है और वह माता के साथ शारीरिक सम्पर्क से हल्के से आनन्द का अनुभव करता है।

गर्भ में भ्रूण, गर्म और आरामपूर्वक रहता हैं जन्म के समय शिशु प्रथम संकट का सामना करता है– उसे सांस लेनी होती है। उसे पेट भरने के लिए काफी श्रम करना पड़ता है, उसे सर्दी, गीलेपन और अन्य असुविधाओं से पीड़ा होती है। वह रोता चिल्लाता है। समाजीकरण का यह प्रथम चरण है जिसमें बच्चा मौखिक रूप से दूसरों पर निर्भर रहता है। बच्चा अपने भोजन के समय के बारे में निश्चित अपेक्षाएं बनाने लगता है और वह अपनी देखभाल के लिए संकेत देना सीखता है। शिशु अपना सुख–दुख मुंह के माध्यम से व मुंह के हाव–भाव से प्रकट करता है। इसीलिए इसे मौखिक अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में बच्चा परिवार में अपनी माँ के अतिरिक्त और किसी को नहीं जानता। **पारसन्स** कहते है कि परिवार के अन्य सदस्यों के लिए, बच्चा एक 'सम्पदा' से थोड़ा ही अधिक होता है। पिता या परिवार का अन्य सदस्य माता के साथ–साथ बालक की देखभाल करने लगे तो भी भूमिका विभेद नहीं होता, वह भी माता की भूमिका निभाता है। इस अवस्था में बच्चा अपनी व अपनी माँ की भूमिका में अन्तर नहीं कर पाता। अतः वह अपनी माँ को पृथक नहीं समझता। माता और शिशु 'मिले हुए' रहते हैं। इस स्थिति को **फ्रायड** ने 'प्राथमिक परिचय' कहा है। इस अवस्था में बच्चा धीरे–धीरे भूख पर नियंत्रण करना सीखता है। उसे माँ के शारीरिक सम्पर्क से आनन्द अनुभव होने लगता है। इस सोपान की अवधि एक–डेढ़ वर्ष तक की होती है।

ख. **शौच अवस्था–** समाजीकरण की दूसरी अवस्था अर्थात् शौच अवस्था डेढ़ वर्ष से लेकर लगभग तीन वर्ष की आयु तक होती है। इस स्तर पर बच्चे से यह आशा की जाती है कि वह स्वयं को थोड़ा–बहुत संभाले तथा शौच सम्बन्धी क्रियाओं को सीखकर स्वयं सम्पन्न करे। इस स्तर पर बच्चा दो भूमिकाओं को

अंतरीकृत करता है–एक अपनी और दूसरी अपनी माँ की भूमिका जिसे वह अपने से भिन्न समझने लगता हैं इस स्तर में बच्चा अपनी देखभाल के साथ–साथ प्यार भी पाता है और प्रत्युत्तर में वह प्यार देने भी लगता है। इस अवस्था में सबसे पहले बच्चे के सही एवं गलत व्यवहार में विभेद किया जाने लगता है। सही व्यवहार के लिए उसे प्यार मिलता है और गलत व्यवहार के लिए डांट अथवा दण्ड। इस प्रकार पुरस्कार एवं दण्ड की प्रक्रिया द्वारा बच्चे को सही व्यवहार करने को प्रेरित किया जाता है। इस प्रकार वह अपने पारिवारिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को सीखने लगता है। उसमें अनुकरण की प्रवृत्ति जाग्रत हो जाती है। इस स्तर पर वह न केवल अपनी माँ से सम्बन्धित रहता है अपितु परिवार के अन्य सदस्यों के व्यवहार भी उसे प्रभावित करने लगते हैं। समाजीकरण का दूसरा स्तर विभिन्न प्रकार के परिवारों एवं समाजों में भिन्न–भिन्न आयु में प्रारम्भ होता है। अमरीकन समाज में यह अवस्था पहले वर्ष से प्रारम्भ होकर तीसरे वर्ष में समाप्त हो जाती है। हमारे समाज में यह डेढ़–दो वर्ष की आयु से प्रारम्भ होकर तीन–चार वर्ष की आयु तक चलती है। इस अवस्था में बच्चे से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने आपको थोड़ा बहुत स्वंय सम्भाले। इस समय उसे शौच प्रशिक्षण दिया जाता है। बच्चे को कब और कहाँ शौच करना चाहिए, का उसे ज्ञान कराया जाता है। हाथ साफ करना, कपड़े मैले न करना, आदि की भी उसे शिक्षा दी जाती है। इस अवस्था में बच्चा अपनी और अपनी माँ की भूमिका को आन्तरीकृत करता हैं वह माँ से प्यार पाता है और उसे प्यार भी करता हैं सही व्यवहार करने पर उसे मां से प्यार मिलता है और गलत व्यवहार करने पर दण्ड। सभी समाजों में बच्चे को गलत व सही में भेद करना सिखाया जाता है। सही व्यवहार के लिए उसे पुरस्कृत एवं गलत के लिए दण्डित किया जाता है।

इस अवस्था में माँ की दोहरी भूमिका होती है। एक तरफ वह बच्चे को शीघ्र प्रशिक्षण देती है और दूसरी तरफ वह परिवार के सभी कार्यों में भी भाग लेती है। इस अवस्था में माँ बच्चे के लिए, 'एक साधक नेता' होती है क्योंकि बच्चे की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह अभी भी मुख्य रूप से उत्तरदायी होती है। बालक इस प्रणाली में सहयोग और प्यार देकर भावात्मक योगदान देता है। इस अवस्था में बच्चा अपने परिवार व समाज के सामान्य मूल्यों से परिचित होता है। उनके अनुसार आचरण करता है और उसमें अनुकरण की प्रवृत्ति का उदय होता है। इस अवस्था में बच्चा परिवार के अन्य सदस्यों के सम्पर्क में आता है और उनके व्यवहार से प्रभावित होता है। सदस्यों द्वारा क्रोध, स्नेह, विरोध और सहयोग प्रदर्शित करने पर बच्चे में भी तनाव और प्रेम की स्थिति पैदा होती है। इसी अवस्था में बच्चे में व्यक्तित्व के विविध गुण उत्पन्न होते हैं।

समाजीकरण की यह अवस्था माँ व बच्चे दोनों के लिए असुखकर होती है। बच्चे को दूध छुड़ाते समय, शौच प्रशिक्षण देते समय तथा उसे कष्ट उठाते देखकर माँ को आनन्द नहीं मिलता। फिर भी उसके अन्तिम परिणामों को सोचकर वह अपने को सान्त्वना देती है। माता की दोहरी भूमिका होने के कारण वह कुछ हद तक बालक को परिवार के अन्य सदस्यों के दबाव से बचा पाती है और अपनी भावात्मक भूमिका निभाती है। इस अवस्था में बच्चा थोड़ा–बहुत बोलने व चलने–फिरने लगता है और उसके सामाजिक सम्बन्धों का विकास हो जाता है क्योंकि अब वह माँ के अतिरिक्त अन्य सदस्यों के भी सम्पर्क में आता है।

ग. **गुप्तावस्था–जॉनसन** के अनुसार समाजीकरण की तीसरी अवस्था प्रायः चौथे–पाँचवें वर्ष से प्रारम्भ होकर युवा हाने तक अर्थात् बारह–तेरह वर्ष की आयु तक रहती है। यह आयु अलग–अलग भी हो सकती है लेकिन गुप्तावस्था को विभाजक रेखा माना जा सकता है। इस स्तर पर बालक पूरे परिवार से सम्बन्धित

रहता है। वह परिवार के सब सदस्यों की स्थिति एवं भूमिकाओं से परिचित रहता है। यद्यपि वह यौन–व्यवहार से पूर्ण परिचित नहीं होता लेकिन उसके अन्दर अव्यक्त रूप से यौन–भावना विकसित होने लगती है। इस स्तर पर उससे आशा की जाती है कि वह अपने लिंग के अनुसार व्यवहार करे। अतः लड़के और लड़कियाँ समाज द्वारा निश्चित पृथक–पृथक व्यवहार प्रतिमानों के अनुसार व्यवहार करने लगते हैं। इसके लिए कभी–कभी बच्चों पर दबाव डाले जाते हैं तथा अपने लिंग के अनुसार व्यवहार करने पर पुरस्कृत किया जाता है। इस अवस्था में जब बच्चा अपने लिंग के प्रति पूर्ण जागरूक हो जाता है तो विपरीत लिंग में उसकी रूचि बढ़ने लगती है।

घ. **किशोरावस्था–** समाजीकरण की प्रक्रिया की चौथी अवस्था किशोरावस्था सामान्यतः यौवनारम्भ के समय से प्रारम्भ होती है। समाजीकरण की इस अवस्था को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि इस अवस्था में बालक एवं बालिकाएँ गंभीर तनावों का अनुभव करते हैं। किशोरावस्था के साथ–साथ बालक–बालिकाओं में जो शारीरिक परिवर्तन होने लगते हैं वे तनाव का कारण बनते हैं क्योंकि यदि यौन–क्रियाओं की पूर्ण छूट दे दी जाय तो कोई समस्या खड़ी नहीं होती लेकिन इस सम्बन्ध में उन्हें छूट न देकर उनके व्यवहारों पर नियंत्रण किया जाता है। अतः वे अधिकाधिक स्वतंत्रता की माँग करते हैं। इस समय बच्चों से यह आशा की जाती है कि वे अपने जीवन से सम्बन्धित आवश्यक निर्णय स्वंय लें। कई समाजों में किशोरों को जीवन–साथी का चुनाव स्वंय करना पड़ता है जबकि कुछ समाजों में बड़े–बूढ़ों द्वारा परम्परागत रूप से होता है। इसी प्रकार किशोरों को, विशेष रूप से पुरूषों को, अपना व्यवसाय स्वंय चुनना होता हैं इन निर्णयों के सम्बन्ध में भी समाज यह आशा करता है कि वे इन निर्णयों को लेते समय भी सांस्कृतिक मूल्यों को ध्यान में रखें। लेकिन चूँकि यह किशोरों की भावनाओं के प्रतिकूल होता है, अतः उनमें कुछ न कुछ मानसिक तनाव अवश्य बने रहते हैं। इसी स्तर पर बच्चों को अपने पड़ोसियों, खेल के साथियों, मित्रों, अध्यापकों आदि के विचारों एवं भावनाओं के साथ भी समायोजन करना पड़ता है। इस स्तर पर समाजीकरण की प्रक्रिया समाज के निषेधात्मक नियमों जो किसी संस्कृति में विशेष महत्व रखते हैं, से भी प्रभावित होती है। इस प्रकार विभिन्न तनावों एवं संघर्षों से जूझते हुए किशोर समाज के नियमों एवं निषेधों के अनुसार विभिन्न स्थितियों से समायोजन करना सीख जाते हैं। इस स्तर के अंतिम चरण में Super Ego अर्थात नैतिकता की भावना के दर्शन होने लगते हैं। किशोरावस्था जो कि प्रायः यौवनारम्भ के समय से शुरू होती है, एक ऐसी अवस्था है जिसमें युवा बालक अथवा बालिका अपने माता–पिता के नियन्त्रण से अधिकाधिक स्वतन्त्रता चाहते हैं, विशेष रूप से यौन सम्बन्धी गतिविधियों में। इस अवस्था में बालक के शरीर में कुछ स्पष्ट शारीरिक परिवर्तन होने लगते हैं।

यदि यौन–कर्म की पूरी छूट दी जाय तो कोई समस्या खड़ी नहीं होगी। किन्तु ऐसी छूट नहीं दी जाती है। इसलिए इन शारीरिक परिवर्तनों के कारण किशोर के मन में एक तरफ स्वतन्त्रता की कामना तीव्र होती जाती है और दूसरी तरफ वह स्वतन्त्रता से भयभीत होने लगता है।

किशोरावस्था भारी तनाव का काल है क्योंकि भावी व्यस्क को प्रायः स्वयं ही कई आवश्यक निर्णय लेने होते हैं, जैसे जीवन साथी का चुनाव और अपने व्यवसाय का चुनाव, आदि के निर्णय उसे स्वयं ही लेने हों तो उसके सामने दुविधा अवश्य आ जाती है क्योंकि उसके बाद उसे नयी स्थिति के अनुसार नये कार्य करने होते हैं। उससे यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह निर्णय करते समय पारिवारिक परम्पराओं और सांस्कृतिक मूल्यों को ध्यान में रखे। किशोर पर लगाये गये इस प्रकार के

नियन्त्रण उसके मनोभावों के प्रतिकूल होते हैं। अतः बच्चे को तनावों का शिकार होना पड़ता है। किशोरावस्था में बच्चा परिवार के अतिरिक्त पड़ोस, विद्यालय, खेल के साथियों और नवागन्तुकों के सम्पर्क में आता हैं इन सभी के विचारों एवं व्यवहारों से उसे समायोजन करना होता है। वह अपनी संस्कृति के अनेक निषेधों एवं यौन सम्बन्धी निषेधों का पालन करना सीखता है। इस अवस्था में उसे अनेक नयी परिस्थितयों का सामना करना पड़ता है और उसे कई नये–नये अनुभव होते हैं। कई समाजों में तो किशोर को आर्थिक क्रियाओं में भी भाग लेना होता है। अपने आर्थिक जीवन में सफलता बहुत कुछ उसके समाजीकरण पर निर्भर है। इस अवस्था में उसमें परा अहम् अर्थात नैतिकता की भावना पैदा होती हैं इस प्रकार इस अवस्था में सांस्कृतिक मूल्यों एवं व्यक्तिगत अनुभवों के द्वारा किशोर में आत्म–नियन्त्रण की क्षमता पैदा होती है।

समाजीकरण के अन्य सोपान–समाजीकरण की प्रक्रिया उपर्युक्त चार अवस्थाओं में ही समाप्त नहीं हो जाती है वरन् यह आजीवन चलती रहती है, किन्तु व्यक्तित्व निर्माण की दृष्टि से ये सोपान अधिक महत्वपूर्ण हैं। बाद की अवस्था में यह प्रक्रिया सरल हो जाती है क्योंकि तब तक व्यक्ति भाषा का अच्छी तरह से ज्ञान प्राप्त कर चुका होता है। वह अपनी क्रियाओं को उद्‌देश्यमूलक बना लेता है और नयी भूमिकाएँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में पहले पूरी की गयी भूमिकाओं के अनुरूप ही होती हैं। अतः बाद की अवस्था में समाजीकरण की प्रक्रिया स्वचालित हो जाती है। किशोरावस्था के बाद भी समाजीकरण की प्रक्रिया तीन प्रमुख सोपानों–युवावस्था, प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था से गुजरती है।

युवावस्था में व्यक्ति को अनेक नये पद प्राप्त होते हैं और उनसे सम्बन्धित भूमिकाओं को उसे निभाना होता है। उसे एक पति, पिता, दामाद, अधिकारी आदि की प्रस्थितियाँ प्राप्त होती हैं और उनके अनुरूप भूमिकाएँ भी निभानी होती हैं। इस अवस्था में वह परिवार तथा बाह्य जगत में कई महत्वपूर्ण दायित्वों को निभाता है, कभी–कभी उसे भूमिका–संघर्ष की स्थिति का भी सामना करना पड़ता है।

प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति पर सामाजिक दायित्व और बढ़ जाते हैं। उस पर अपने बच्चों की शिक्षा–दीक्षा एवं विवाह, आदि का भार पड़ता है। उसे माँ–बाप के रूप में एवं ऑफिस में वरिष्ठ अधिकारी या सेवक के रूप में नये उत्तरदायित्व सम्भालने होते हैं। **जॉनसन** कहते हैं कि कम–से–कम तीन कारणों से वयस्कों का समाजीकरण बच्चों के समाजीकरण से सरल होता है–(1) वयस्क साधारणतया उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करने को प्रेरित होता है जो स्वयं देख चुका है।, (2) जिस नयी भूमिका को वह आन्तरीकृत करने का प्रयास करता है, उसमें और उसके व्यक्तित्व में पहले से उपस्थित भूमिकाओं में काफी समानता होती है, तथा (3) समाजीकरण करने वाला भाषा के माध्यम से सरलता से सीख लेता है।

वृद्धावस्था में व्यक्ति में शारीरिक, मानसिक व सामाजिक दृष्टि से कई परिवर्तन आ जाते हैं। अब वह दादा, परदादा, श्वसुर, नाना आदि के रूप में कई नये पद ग्रहण करता है और उसके अनुरूप भूमिकाएँ भी निभाता हैं यदि वह नौकरी कर रहा है तो सेवानिवृत कर दिया जाता है। अब वह आर्थिक रूप से कमाने योग्य नहीं रहता। अतः उसे पराश्रित होना पड़ता है, अनेक इच्छाओं का दमन करना पड़ता है। नयी परिस्थितयों से अनुकूलन न कर पाने की अवस्था में उसे कई तनावों को सहन करना होता है। पुत्र, पौत्री एवं स्वयं के विचारों में पीढ़ीगत भेद के कारण कई बार उसे लगता है कि उसके अनुभवों की अवहेलना की जा रही है और अब वह कुण्ठाग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्ति का समाजीकरण जीवनपर्यन्त चलता रहता है और वह कुछ न

कुछ सदैव सीखता ही रहता है। वृद्धावस्था में व्यक्ति में शारीरिक, मानसिक व सामाजिक दृष्टि से कई परिवर्तन आ जाते हैं।

समाजीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया के चारों स्तरों का वर्णन करते हुए **जॉनसन** ने समाजीकरण प्रक्रिया में निहित मूल तत्व की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि ''समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें समाजीकरणकारी और उसके शिष्य के बीच समाजिक अन्तःक्रिया पाई जाती है।'' समाजीकरणकारी अपने शिष्य के लिए संकेत प्रदान करते हैं, विरोधी प्रतिक्रिया को डाँट, दण्ड आदि के द्वारा हतोत्साहित करते है, तथा उपेक्षित व्यवहार करने पर पुरस्कृत करते हुए समाजीकरण की प्रक्रिया को निर्देशित करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रक्रिया में शिष्य का व्यक्तित्व धीरे–धीरे लगभग उसी दिशा की ओर परिवर्तित होता रहता है। जिस ओर समाजीकरणकारी ले जाना चाहते हैं। इस प्रकार **जॉनसन** के शब्दों में ''यह स्पष्ट हो गया होगा कि समाजीकरण के चार स्तरों की अन्तरीकृत भूमिकाएँ जिसनमें आधारभूत सामन्यक और सामाजिक आवश्यकताएँ, आधारभूत सामाजिक स्वीकृतियों के प्रति सजगता तथा आधारभूत परिवर्ती प्रतिमानों के सभी मूल्य सम्मिलित रहते हैं जो बाद की सभी भूमिकाओं के आदि प्रारूप माने जा सकते हैं।''

समाजीकरण की उपर्युक्त चारों अवस्थाओं से यह नहीं समझना चाहिए कि समाजीकरण की प्रक्रिया किशोरावस्था पर आकर रूक जाती है। वास्तविकता यह कि समाजीकरण की प्रक्रिया जीवनपर्यन्त चलती रहती है, लेकिन इतना अवश्य है कि किशोरावस्था के बाद यह प्रक्रिया अपेक्षाकृत सरल हो जाती है। **जॉनसन** ने इसके तीन कारण बताये हैं–

(1) व्यस्क साधारणतया उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करने के लिए प्रेरित होता है जो वह स्वयं देख चुका हो।
(2) वह जिस नई भूमिका को अन्तरीकृत करना चाहता है उसमें तथा उसके द्वारा पहले की गई भमिकाओं में काफी समानता होती है।
(3) वह भाषा के माध्यम से नई प्रत्याशाओं को सरलता से समझ लेता है।

13.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके हैं कि–

समाजीकरण व्यक्ति को सामाजिक बनाने की प्रक्रिया है इस प्रक्रिया का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को सामाजिक एवं योग्य प्राणी बनाना है ताकि वह अपनी प्रस्थिति एवं भूमिका के अनुसार कार्य कर सकें। समाजीकरण के द्वारा ही व्यक्ति में 'अहम' का विकास होता है, आदर्श–नियमों का आत्मसात् होता है और संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होता है। मनुष्य एक जैविकीय प्राणी के रूप में जन्म लेता है। जन्म के समय उसमें तथा पशुओं के बच्चों में प्राणीशास्त्रीय, आधार पर अंतर अवश्य होता है परन्तु उसका स्वभाव एवं व्यवहार पशुओं की भाँति ही होता है। समाज में जन्म लेने के पश्चात् मनुष्य के बच्चे का समाज में ही पालन–पोषण होता है तथा समाज में रहकर ही वह बड़ा होता है।

परिवार, पड़ौस, क्रीडा समूह, स्कूल, विवाह तथा धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं के द्वारा सामाजिक सीख तथा इनके साथ परस्पर अन्तःक्रिया के आधार पर उसकी पाशविक प्रवृत्तियों का दमन करके उसमें मानवीय एवं सामाजिक गुणों को विकसित कर दिया जाता है अर्थात उसे मानव अथवा एक सामाजिक

प्राणी बना दिया जाता है। सामाजिक सीख की इसी प्रक्रिया को, जिसके आधार पर मानव शिशु को पशुता से मानवता की ओर लाया जाता है, स्पष्ट है कि मानव अथवा सामाजिक प्राणी बनने के लिए समाजीकरण की अनिवार्य प्रक्रिया है।

13.10 शब्दावली

समाजीकरण (Socialization) : समाजीकरण व्यक्ति और उसके समाज के बीच अन्तःक्रियात्मक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समाज से स्वीकृत मान्यताओं एवं मूल्यों को ग्रहण करके समाज का एक क्रियाशील एवं उत्तरदायी सदस्य बन जाता है।

प्रक्रिया (Process) : किसी लक्ष्य की ओर निर्देशित क्रियाओं के व्यवस्थित क्रम को प्रक्रिया कहते हैं जिससे क्रियाएँ निरन्तर होती है। अन्तःक्रिया के विभिन्न स्वरूपों को ही प्रक्रिया के नाम से पुकारा जाता है।

अवधारणा (Concept) : किसी वस्तु, घटना अथवा प्रक्रिया के वैधानिक प्रेक्षण एवं बोध के आधार पर निर्मित समान्य विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए जिन विशिष्ट शब्द–संकेतों का प्रयोग किया जाता है, उन्हें अवधारणा करते हैं। एक अवधरणा वस्तुओं, घटनाओं, व्यक्तियों, संबंधों, प्रक्रियाओं आदि के विशिष्ट वर्ग अथवा समूह को दिया गया एक विशिष्ट नाम अथवा संकेतात्मक पद है।

परिभाषा (Definition) : किसी वस्तु व घटना का तार्किक वर्ण अथवा किसी शब्द या पद के अर्थ व्यक्त करने वाली व्याख्या है। इस व्याख्या में उसके महत्वपूर्ण विशिष्ट गुणें एवं लक्षणों के उल्लेख के साथ–साथ उसकी अन्तर्गत एवं सीमाओं का निर्धारण सम्मिलित होता है।

13.11 अभ्यास हेतु प्रश्न एवं उत्तर

1. नवजात शिशु को सामाजिक प्राणी बनाने वाली प्रक्रिया का क्या नाम है–
   A. समाजीकरण B. पश्चिमीकरण C. संस्कृतिकरण D. स्थानीयकरण
2. समाजीकरण के सामूहिक प्रतिनिधान के सिद्धान्त के प्रतिपादक कौन हैं–
   A. दुर्खीम B. कूले C. फ्रायड D. मीड
3. समाजीकरण का दर्पण में आत्मदर्शन के सिद्धान्त के प्रणेता कौन हैं–
   A. स्पेन्सर B. कूले C. कॉम्ट D. मार्क्स
4. 'मानव समाज' नाम पुस्तक के लेखक कौन हैं–
   A. के0डेविस B. वेबर C. योगेन्द्र सिंह D. पारसन्स
5. स्टीवर्ट एवं ग्लिन के समाजीकरण के आवश्यक तत्वों को कितने भागों में बाँटा है–
   A. एक B. दो C. तीन D. चार
6. ''वह प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समाज की संस्कृति को सीखते हैं, समाजीकरण के नाम से जानी जाती है'' यह परिभाषा किसने दी है–
   A. न्यूमेयर B. फिचर C. जॉनसन D. हारालाम्बोस
7. व्यक्ति x समाज = सामाजिक व्यवहार = समाजीकण, यह सूत्र निम्नलिखित में किसने प्रकट की है–
   A. मर्टन B. लुण्डबर्ग C. बोटोमोर D. किम्बाल यंग

8. किसके मतानुसार समाजीकरण की प्रक्रिया में 'अपने संबंध में आत्म चेतना' या ''स्वचेतना'' महत्वपूर्ण है–
   A. मीड B. सोरोकिन C. कूले D. फ्रायड
9. किसने सामाजीकरण की व्याख्या को अबोधात्मा (ID) बोधात्मा (Ego) तथा आदर्शात्मक (Super Ego) को धारणा के आधार पर समझने का प्रयत्न किया–
   A. ग्रीन B. मीड C. कॉम्ट D. वान विज
10. किसने लिखा है कि समाजीकरण मिलकर काम करने, सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करने और दूसरों का कल्याण सबंधी आवश्यकताओं द्वारा निर्देशित होने की प्रक्रिया है–
    A. के0 डेविस B. टॉनीज C. बोगार्डस D. फिचर
11. किसने लिखा है कि समाजीकरण एक प्रकार का सीखना है, जो सीखने वाले को समाजिक कार्य करने के योग्य बनाता है–
    A. किम्बाल यंग B. ग्रीन C. फ्रायड D. जॉनसन

उत्तरमाला

1. (A) 2. (A) 3. (B) 4. (A) 5. (C) 6. (D) 7. (B) 8. (A) 9. (B) 10. (C)

11. (D)

13.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

गुप्ता एवं शर्मा– समाजशास्त्र (2001), साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

जे.एस.राठौर– समाज मनोविज्ञान (2003), विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर–दिल्ली।

किम्बाल यंग– पर्सनालिटी एण्ड प्रोबलेम्स ऑफ एडजस्टमेन्ट, (1952), रटलेज एण्ड केगन पॉल, लंदन।

ई.बी. रायटर– हैंडबुक ऑफ सॉश्योलॉजी, (1941), ड्राईडेन प्रेस, नई दिल्ली।

13.13 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

जी0के0 अग्रवाल, समाजशास्त्र, एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स, आगरा, (2016)।

13.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. समाजीकरण का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए।
2. परिवार समाजीकरण की प्रथम पाठ्शाला है, स्पष्ट कीजिए।
3. समाजीकरण की प्रकृति एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. समाजीकरण की प्रक्रियाओं की उदाहरण सहित विवेचना कीजिए।

इकाई–14

समाजीकरण के प्रमुख अभिकरण एवं इसके कारक

इकाई की रूपरेखा

14.1 उद्देश्य

14.2 प्रस्तावना

14.3 अवधारणा

14.4 समाजीकरण के विभिन्न अभिकरण एवं इसके कारक

14.5 सारांश

14.6 शब्दावली

14.7 अभ्यास हेतु प्रश्न एवं उत्तर

14.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

14.9 सहायक/उपयोगी पाठ्यसाम्रगी

14.10 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ पायेंगे कि

- समाजीकरण के विभिन्न अभिकरण का समाज में क्या महत्व है।
- समाजीकरण के विभिन्न अभिकरण एवं इसके कारक समाज के विकास में क्या योगदान करते हैं।
- व्यक्ति एवं समाज के बीच समाजीकरण के अभिकरण कैसे संबंध स्थापित करते हैं।

14.2 प्रस्तावना

मानव के समाजीकरण की प्रक्रिया बडी लंबी एवं जटिल है। इस अर्थ में अनेक संस्थाओं एवं समूहों का योगदान होता है। ये संस्थाएं समय–2 पर विभिन्न बातें सिखाती हैं। कभी तो वे एक–दूसरे की पूरक एवं सहयोगी होती हैं तो कभी परस्पर स्वतंत्र व संघर्षकारी। बच्चे का समाजीकरण करने में अनेक प्राथमिक संस्थाओंः जैसे परिवार, पड़ोस, मित्र मण्डली, विवाह एवं नातेदारी समूह तथा द्वितीयक संस्थाओं जैसेः विद्यालय, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं व्यावसायिक संगठनों आदि का योगदान होता है। व्यक्ति इन संस्थाओं एवं समूहों से जितना अनुकूलन करता है, समाजीकरण भी उतना ही सफल माना जाता है।

14.3 अवधारणा

समाजीकरण की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें की एकाधिक संस्थाओं का योगदान होता है। दूसरे शब्दों में, समाजीकरण के कुछ साधन होते हैं जिनकी समाज में भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति का समाजीकरण जन्म से मृत्यु तक निरन्तर चलने वाली घटना है।

मूलतः मानव स्वभाव पशुओं की भांति स्वार्थी, असभ्य एवं पाशविक होता है। परिवार, पडोस, मित्र, स्कूल एवं समाज के असभ्य सदस्यों के संसर्ग में आने से मनुष्य के इस मूल स्वभाव में परिवर्तन एवं परिमार्जन होता है। यह समाज की मान्यताओं एवं मूल्यों को स्वीकार करके उनके अनुकूल व्यवहार करने लगता है। तभी वह मानव अर्थात् एक सामाजिक प्राणी कहलाने का अधिकारी होता है।

14.4 समाजीकरण के विभिन्न अभिकरण एवं इसके कारक

समाजीकरण एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम समाज के सक्रिय सदस्य बनते हैं। इसमें विभिन्न अभिकरणों, संस्थाओं और माध्यमों का योगदान रहता है। मनुष्य द्वारा सामाजिक मान्यताओं, आदर्शों एवं व्यवहार प्रतिमानों को स्वीकार करने की प्रक्रिया एकदम ही पूर्ण नहीं हो जाती वरन् जीवनपर्यन्त चलती है। पशुओं से मानवता की ओर बढ़ने अथवा एक जैविकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी बनने की इस दीर्घकालीन प्रक्रिया को प्रभावित, नियंत्रित एवं निर्देशित करने में समाज की किसी एक संस्था का हाथ नहीं होता है अपितु अनेक संस्थाऐं व माध्यम इसे प्रभावित करती हैं। जिनमें निम्नलिखित तथ्य महत्वपूर्ण है—इस प्रक्रिया में समाज के मानदंडों और मूल्यों के आन्तरीकरण के साथ—साथ अपनी सामाजिक भूमिकाओं को सम्पादन करना व सीखना दोनों बातें सम्मिलित होती हैं। इसी प्रक्रिया के द्वारा 'स्व' का विकास होता है, अतः कुछेक समाजशास्त्रियों ने इसे 'स्व' के विकास की प्रक्रिया भी कहा है। इस प्रक्रिया में परिवार समुदाय और विद्यालय की विशेष भूमिका होती है। यह अविरल रूप से जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। उसमें सम्प्रेषण, संस्कृतिकरण तथा सीखने की सभी उन प्रक्रियाओं का समावेश होता है जिनके द्वारा एक मानवीय सावयव सामाजिक प्रकृति को ग्रहण कर सामाजिक जीवन में भाग लेने योग्य बनाता है। मानव शिशु उस संसार में पाशविक प्रवृत्तियों एवं उद्वेगों को लेकर एक जैविकीय प्राणी के रूप में जन्म लेता हैं इस अवस्था में उसमें सामाजिक गुणों का सर्वथा अभाव होता है। सामाजिक प्राणी की संज्ञा से विभूषित किये जाने के लिए उसे सामाजिक गुणों को सीखना पड़ता है। समाजीकरण के प्रमुख अभिकरण निम्नवत् हैं—

परिवार

परिवार, समाजीकरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण माध्यम है। **डेविस** ने लिखा है, ''बालक के सन्दर्भ में चूंकि परिवार, प्रथम सर्वाधिक प्रभावी, सर्वाधिक निकट एवं एक सम्पूर्ण एजेन्सी है अतः व्यक्ति के निर्माण में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।'' वास्तव में परिवार समाजीकरण का आधार है।

जन्म के प्रारम्भिक काल में मानव शिशु एक जैविकीय प्राणी अथवा पशुतुल्य होता है। अर्थात् उसमें घृणा, द्वेष, क्रोध, प्रतिशोध आदि अनेक पाशविक प्रवृत्तियां पाई जाती हैं। परिवार में रहकर बच्चा परिवार के सब सदस्यों को एक—दूसरे से प्रेम, सहयोग, सहानुभूति आदि पर व्यवहार करते हुए देखता है। अतः उसमें भी इन मानवोचित भावनाओं का विकास हो जाता है। इसके अतिरिक्त परिवार में ही व्यक्ति मानवोचित खान—पान, रहन—सहन, वेशभूषा, आचार—विचार, व्यवहार के ढंग सीखता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास तथा सामाजिक

संगठन एवं व्यवस्था को बनाने रखने के लिए जिन व्यवहारों, आचरणों, मूल्यों, एवं आदर्शों का पालन करना आवश्यक होता है। उन सबकी समुचित शिक्षा व्यक्ति को परिवार में ही प्राप्त होती है। इतना ही नहीं सार्वजनिक क्षेत्र में व्यक्ति के सामाजिक पद तथा सम्बन्धित भूमिकाओं का निर्धारण परिवार द्वारा होता है। परिवार में ही व्यक्ति को इन पदो के अनुरूप भूमिकाएं निभाने और साथ ही परिवार एवं समाज के नियमों, प्रथाओं, आदर्शो एवं मूल्यों के अनुरूप कार्य करने की शिक्षा मिलती है। व्यक्ति को उन गुणों की शिक्षा भी परिवार में ही मिलती है जो इसे समाज का आदर्श नागरिक बनने में सहायता करते हैं।

परिवार व्यक्ति को समाज की विभिन्न परिस्थितियों के साथ सामंजस्य करने में सहायता करते है जिन पर सामाजिक संगठन एवं व्यवस्था निर्भर करती है। **किम्बाल यंग** के शब्दों में ''बच्चे का मौलिक समाजीकरण परिवार में ही होता है। समस्त आधारभूत विचार, हस्टपुस्ट कौशल तथा मानदण्ड परिवार में ही प्राप्त किये जाते है।'' डेविस ने भी समाजीकरण में परिवार की भूमिका स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''समाजीकरण के प्रारम्भिक चरण घर में ही प्रारम्भ होते हैं।'' **राबर्ट बीरस्टीड** के शब्दों में ''संक्षेप में यह परिवार ही है जो असभ्य बच्चों को सभ्य युवकों में परिवर्तित कर देता है।'' **सैमुअल** के अनुसार,'' मुख्य रूप से यह घर ही है जहाँ दिल खुलता है, आदतों का निर्माण होता है। बुद्धि जाग्रत होती है तथा अच्छा–बुरा चरित्र ढलता है।'' कूले ने भी कहा है कि ''व्यक्ति की सामाजिक प्रवृत्ति और आदर्शों के निर्माण में परिवार मूलभूत है।'' इस प्रकार जैसा कि **किम्बाल यंग** का कथन है ''समाज में समाजीकरण के विभिन्न माध्यमों में से परिवार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। परिवार प्राथमिक समूह है।

सी0एच0 कूले ने स्वीकार किया है कि आदर्शों तथा सामाजिक स्वभाव के निर्माण में परिवार प्राथमिक होते हैं। मनुष्य सर्वप्रथम जिस समूह के सम्पर्क में आता है वह परिवार ही है। इसलिए इसका प्रभाव काफी स्थायी होता है। माँ उसे दूध पिलाती है तथा उसकी रक्षा करती है। पिता व परिवार के अन्य सदस्य शिशु के साथ स्नेहपूर्ण व्यावहार करते हुए उसकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयत्न करते हैं। इससे शिशु के मन में सुरक्षा की भावना पनपती है वह जानने लगता है किस प्रकार के कार्य व व्यवहार करने से उसे किस प्रकार का सम्मान प्राप्त होगा। इसके साथ–साथ उसे भाषा का ज्ञान भी परिवार से ही होता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य के अपने विचार, व्यवहार के ढंग आदि होते हैं। लेकिन बच्चे घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण सभी उसके साथ घनिष्ठता से रहते हैं। इस प्रकार बच्चा उससे अनुकूलन करना सीखता है। कुछ बड़ा होने पर वह नियम एवं परम्पराओं के अनुसार कार्य करना सीखता है। अगर परिवार में कोई कमी है या समाजीकरण त्रुटिपूर्ण रहा है तो उस दशा में व्यक्ति का व्यक्तित्व विघटित हो जाता है।

परिवार के माध्यम से बच्चा अपने सामाजिक व्यवहार, भाषा, कपड़े पहनने का ढंग, भोजन का तरीका तथा अपनी संस्कृति के अनुरूप व्यवहार करना सीखता हैं। अगर परिवार में कोई कमी है या समाजीकरण से बच्चा अपने सामाजिक व्यवहार, भाषा, कपड़े पहनने का ढंग, भोजन का तरीका तथा अपनी संस्कृति के अनुरूप व्यवहार करना सीखता है तो बच्चे के समाजीकरण पर गहरा प्रभाव पड़ता हैं। कुछ विद्वानों ने परिवार की समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए इसे संस्कृति और परम्पराओं का वाहक कहा है। काफी सीमा तक यह बात ठीक भी है। अपनी संस्कृति के बारे में बच्चे को ज्ञान सर्वप्रथम परिवार में ही होता है। परिवार ही समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा संस्कृति को एक पीढी से दूसरी पीढी में हस्तांरित करने का एक प्रमुख माध्यम है। परिवार एक प्राथमिक समूह है। **जेल्डिच** ने छप्पन समाजों का मानवशास्त्रीय अध्ययन करके समाजीकरण में माता एवं पिता की भूमिका का पता लगाया। सभी समाजों में पिता 'साधक नेतृत्व' और माता 'भावात्मक नेतृत्व' प्रदान करते हैं। साधक नेता के रूप में पिता ही खेत एवं व्यवसाय का मालिक होता है, आखेट में अगुआ होता है।

सभी शिकायतें उसी के पास आती हैं, वही उनका निर्णय करता है और बच्चों को दण्ड देता है, उन्हें अनुशासन एवं नियन्त्रण में रखता है। परिवार में माता बच्चे के लिए भावात्मक भूमिका निभाती हैं वही परिवार में मध्यस्थता करती , हैं समझौता करने का कार्य करती हैं। परिवार में माता झगड़ों को शान्त करती हैं , और वैमनस्य को दूर करती हैं, माता का व्यवहार बच्चे के प्रति स्नेहमय, घनिष्ठ, हितैषी और भावपूर्ण होता है, वह उदार एवं दण्ड न देने वाली होती हैं। सभी समाजों में पत्नी पति से भावात्मक दृष्टि से सम्बद्ध होती हैं। रौब जमाने वाली औरतें समाज में अच्छी नहीं मानी जाती। पुत्र सदेव पिता के समान और पुत्री मां के समान बनना चाहती हैं। इस प्रकार बच्चे पर माता–पिता का सर्वाधिक प्रभाव होता है।

परिवार के अन्य सदस्यों एवं भाई–बहिनों का भी बच्चे के समाजीकरण पर गहरा प्रभाव पड़ता हैं सदस्यों के पारस्परिक प्रेम, सहयोग, त्याग, अधिकार, बलिदान, सेवा, कर्तव्यनिष्ठा, आदि से बच्चे में भी सद्गुण जन्म लेते हैं। परिवार में आयु, लिंग एवं पद की दृष्टि से विभिन्न प्रकार के व्यक्ति होते हैं, जिनके सम्पर्क से बच्चा उनके आचरणों का अनुकरण करता है। वह माँ, बहिन तथा पिता और भाई में लिंग भेद होने से विषम लिगिंयों के प्रति समाज में प्रचलित व्यवहारों एवं मूल्यों को ग्रहण करता है। इसी प्रकार से परिवार में छोटी एवं बड़ी सभी आयु के व्यक्ति होते हैं। बड़े छोटों के प्रति अधिकारों का एवं छोटे बड़ों के प्रति कर्तव्यों का निर्वाह करते हैं जिसे बच्चा भी ग्रहण करता है। अधिकारों एवं दायित्वों का परिवार में सुन्दर समन्वय पाया जाता है। परिवार का सहयोग एवं भवात्मक पर्यावरण बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं अनेक

महापुरूषों के उदाहरणों से स्पष्ट है कि उनके महान बनने में परिवार का प्रमुख हाथ रहा है। परिवार में बच्चा जो कुछ सीखता है, उसे पुनः गुड़ियों के खेल के दौरान प्रकट करता है। माता पिता जब उसकी क्रियाओं को अनुरूप पाते हैं तो उसे स्नेह से पुरस्कृत करते हैं और विपरीत क्रिया करने पर डांटते हैं। पुरस्कार एवं दण्ड के आधार पर बच्चा उचित एवं अनुचित में भेद करना सीखता है, उसमें नैतिकता के भाव पैदा होते हैं और वह सही कार्यों को ग्रहण करता है। परिवार में बच्चा जो कुछ सीखता है, वह उसके जीवन की स्थायी पूंजी होती है।

परिवार के सदस्यों में से ही वह किसी को अपना आदर्श चुन लेता है और अपने व्यवहार को उसी प्रकार बनाने का प्रयास करता है। भाषा का प्रयोग भी बच्चा परिवार में ही सीखता है। परिवार में भिन्न–भिन्न स्वभाव एवं रूचि वाले व्यक्ति होते हैं, बच्चा उन सभी के साथ अनुकूलन करना सीखता है। अनुकूलन के दौरान उसमें सहिष्णुता का गुण पैदा होता है। परिवार में सबसे छोटा हाने के कारण शिशु को दूसरों के व्यवहारों को सहन करना पड़ता है। इसमें उसमें सहनशीलता पैदा होती है, जो एक महत्वपूर्ण सामाजिक गुण है। छोटा होने के कारण उसे बड़ों की आज्ञा का पालन करना, अभिवादन करना, पूजा–पाठ एवं आचरण के अन्य नियमों को सीखना होता हैं। पारिवारिक आदर्श और मूल्य बच्चे के भी आदर्श और मूल्य बन जाते हैं। परिवार ही उसे आदर्श नागरिकता का पाठ पढ़ाता है। वही उसमें प्रेम, त्याग, बलिदान, सहयोग, दया, क्षमा, परोपकार, देश प्रेम, सहिष्णुता, आज्ञाकारिता, अनकूलन, आदि गुण भरता है। इसलिए ही कहा जाता है कि परिवार शिशु की प्रथम पाठशाला है। बच्चा परिवार का ही प्रतिरूप होता है।

कीडा समूह

परिवार के बाद क्रीडा समूह दूसरा प्राथमिक समूह है जो बच्चे के व्यक्तित्व के निर्माण एवं समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। परिवार से बाहर निकलने पर बच्चे को आस–पास के परिवारों के समान आयु के बच्चे मिलते हैं जो उसके खेल के साथी बन जाते हैं। विभिन्न परिवारों से आए हुए इन बच्चों की आदतों, रूचियाँ, मनोंवृत्तियाँ, रीतियाँ आदि अलग अलग होती हैं। साथ–साथ खेलने के लिए बच्चा इन सब

बच्चों में अनुकूलन स्थापित कर लेता है। इससे अन्दर विषम परिस्थितियों से अनुकूलन करने की क्षमता का विकास होता है। अपने खेल के साथियों के साथ खेलते हुए बच्चे में नेतृत्व, उत्तरदायित्व ग्रहण करने की क्षमता, कर्तव्यपालन, अपनी गलती को स्वीकार करने की आदत आदि गुणों का विकास होता है। यही सब गुण बच्चे के व्यक्त्वि को आधार प्रदान करते हैं। बच्चा जब कुछ बड़ा होता है तो वह कीडा समूह के सम्पर्क में आता है। इसके अधिकतर सदस्य उसकी उम्र के ही होते हैं जिस कीडा समूह में वह खेलता है। विभिन्न बालकों की रूचि, विचारधारा आदि का प्रभाव उस पर निरन्तर पड़ता है और जिसमें वह आकर्षण पाता है उसे अपना लेता है।

कीडा समूह में सामाजिक सम्बन्धों से अनुकूलन आदि बातें भी बच्चा जान जाता है। एक ही आयु समूह होने के कारण कीडा समूह समाजीकरण का महत्वपूर्ण अभिकरण माना जाता है।

पडोस

परिवार और कीडासमूह के बाद बच्चे के व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाला तीसरा महत्वपूर्ण अभिकरण पड़ोस है। पड़ोसियों के सम्पर्क में आने से बच्चे के व्यक्तित्व पर उनके विचारों, आदर्शो, मान्यताओं, क्रियाओं एवं सुझावों का प्रभाव पड़ता है। सीख एवं समाजीकरण की प्रक्रिया में पड़ोस की महत्वपूर्ण भूमिका के कारण ही विद्वानों ने इसे विस्तृत परिवार की संज्ञा दी है। पड़ोस के कार्यों को दो रूपों में देखा जा सकता है। प्रथम पड़ोसियों के व्यवहार तथा विचारों के ढंग का प्रभाव बालक पर पडता है और वह उनका अनुकरण प्रारम्भ कर देता है। दूसरे उसके व्यवहार पर भी नियन्त्रण पड़ोस ही रखता है। इस प्रकार बालक उचित कार्यों को करने का प्रयत्न करता है।

नातेदारी समूह

नातेदारी समूह के अन्तर्गत व्यक्ति के वे सभी सम्बंधी आते हैं जो रक्त अथवा विवाह के बंधनों द्वारा एक–दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। बच्चों पर इनके विचारों, व्यवहारों, एवं सुझावों का बहुत प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार समाजीकरण की प्रक्रिया में रिश्तेदारों की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

स्कूल

बच्चे के व्यक्तित्व के बहुमुखी विकास की दृष्टि से परिवार के बाद दूसरा स्थान स्कूल का ही आता है। स्कूल में बच्चे का न केवल बौद्धिक अपितु संवेगात्मक एवं सांस्कृतिक विकास भी होता है बच्चे को बोल–चाल, रहन–सहन, व्यवहार–प्रतिमानों, रीति–रिवाजों, आदर्शों, मूल्यों, मान्यतओं एवं विभिन्न विचारधाराओं की शिक्षा स्कूल में ही मिलती है। स्कूल में प्राप्त शिक्षा व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक शक्तियों एवं क्षमताओं का विकास करती है ताकि व्यक्ति समाज की विभिन्न परिस्थितियों के बीच सामंजस्य स्थापित कर सके। स्कूल में गुरूजनों एवं पुस्तकों से प्राप्त शिक्षा व्यक्ति का उसके पर्यावरण से अनुकूलन कराती है और सांस्कृतिक विशेषताओं को सिखाती है। ट

यक्ति की सीख में वृद्धि करके आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता करती है तथा उचित अनुचित का ज्ञान कराकर व्यक्ति के विचारों एवं व्यवहारों को नियमित एवं नियन्त्रित करती है। व्यक्ति के समाजीकरण में शिक्षा की भूमिका के संबंध में **बोटोमोर** ने लिखा है कि ''शिक्षा ने स्वतंत्र रूप से आचरण के निर्धारण में योगदान दिया है और वह शिशु का प्रारम्भिक समाजीकरण है।'' **रॉबर्ट बीरस्टीड** के शब्दों में, ''यह स्कूल में ही होता है कि संस्कृति का सही तरीके से प्रेषण और उपार्जन होता है जिससे एक पीढ़ी का साहित्य और ज्ञान–विज्ञान और

कला दूसरी पीढ़ी तक चलती है।'' वहाँ वह पढ़ाई व पाठ्यपुस्तकों को पढ़ने के अतिरिक्त अपनी संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करता है तथा उसका अन्य संस्कृतियों से परिचय होता है। अनुशासन एवं आज्ञापालन जैसी बातें भी बच्चा शिक्षा संस्थाओं में ही सीखता है। यदि स्कूल के अध्यापकगण एवं सहपाठी ठीक नहीं हैं तो बच्चा अनुशासनहीन बन जाता है। अगर वातावरण अनुकूल एवं प्रजातांत्रिक है तो बच्चे का विकास पूर्ण रूप से होता है। शिक्षण संस्थाओं में वह नए मित्रों एवं शिक्षकों के सम्पर्क में आता है और उनसे वार्तालाप व विचारों का आदान–प्रदान करता है। इससे उसके विचारों व व्यवहार में समाजिकता आ जाती है। विद्यालयों या शिक्षण संस्थाओं में मनुष्य का बौद्धिक विकास होता है।

विवाह

व्यक्ति के समाजीकरण की प्रक्रिया में विवाह का महत्व भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। विवाह एक अति महत्वपूर्ण संस्था है जो मानव जीवन को आदर्श रूप में संचालित करने की व्यवस्था करती है। यह मनुष्य की अनेक जैविकीय, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली संस्था है। विवाह के द्वारा स्त्री–पुरूष के बीच पारस्परिक संबंधों का आधार भावात्मक होता है। विवाह एक ओर पत्नी से प्यार, सुरक्षा एवं संरक्षण की अपेक्षा करती है तो दूसरे ओर पति–पत्नी से प्यार, कोमलता एवं समर्पण की आशा रखता है। दोनों भिन्न–भिन्न सामाजिक वातारण से आते हैं। तथा दोनो का पृथक–पृथक व्यक्तित्व होता है, अतः दोनों को एक–दूसरे से समायोजन करना पडता है। दोंनों के बीच यह समायोजन जितना अधिक होता है व्यक्ति का वैवाहिक, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन उतना ही सुखी होता है। इसी समायोजन पर परिवार के अन्य सदस्यों के व्यक्तित्व का विकास निर्भर करता है। इसके विपरीत यदि पति–पत्नी के बीच समायोजन नहीं हो पाता तो उनका वैवाहिक, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन सुखपूर्ण नहीं रह पाता। पति–पत्नी के बीच यह समायोजन उनके जीवन की सफलता एवं अपने वातावरण के साथ उनके समायोजन को प्रभावित करता है।

मनुष्य की साथ–साथ रहने की स्वाभाविक प्रवृत्ति संतुष्ट होती है। इसी आधार पर व्यक्ति एक गृहस्थी का निर्माण करता है। विवाह के बाद स्त्री–पुरूष के बीच एक नया अध्याय प्रारम्भ होता है। व्यक्ति नये–नये सम्बंधों की स्थापना करता है जिससे उसकी नवीनता की इच्छा की पूर्ति होती है। **बर्टेन्ड रसेल** ने मानव जीवन में वैवाहिक सम्बंध की महत्ता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''मैं विश्वास करता हूँ कि दो मानव प्राणियों के बीच विभिन्न संभावित सम्बंधों में विवाह–संबंध सर्वाधिक श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण है।''

अन्य द्वैतीयक समूह एवं संस्थाएँ

व्यक्ति के समाजीकरण में उपर्युक्त अभिकरणों के अतिरिक्त कुछ अन्य द्वैतीयक समूहों एवं संस्थाओं की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इनमें निम्नलिखित बिन्दु महत्वपूर्ण हैं–

जाति एवं वर्ग

व्यक्ति के समाजीकरण की प्रक्रिया में जाति एवं वर्ग की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। प्रत्येक जाति की अपनी प्रथाएँ, परम्पराएँ, मान्यताएँ, विचार, भावनाएँ तथा खान–पान, रहन–सहन आदि सम्बन्धित व्यवहार प्रतिमान आदि होते हैं। इन सबके बीच पलते हुए व्यक्ति व्यक्तित्व संबंधी कुछ विशिष्ट गुणों को प्राप्त कर लेता

है। फलतः विभिन्न जातियों के व्यक्तियों के व्यक्तित्व में कुछ–न–कुछ भिन्नता अवश्य दिखाई देती है। इस प्रकार ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न बच्चे के समाजीकरण की प्रक्रिया शूद्र बच्चे के समाजीकरण की प्रक्रिया से भिन्न होती है। इसी प्रकार प्रत्येक वर्ग के विचारों, मनोवृत्तियों, भावनाओं, रहन–सहन,

व्यवहार–प्रतिमान आदि से सम्बंधित पृथक–पृथक परिस्थितियां होती हैं जो व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं समाजीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार जाति और वर्ग व्यक्ति के समाजिकरण की प्रक्रिया को एक विशिष्ट दिशा प्रदान करते हैं।

आर्थिक संस्थाएँ

समाज की आर्थिक संस्थाओं का संबंध उत्पादन की प्रणाली, उत्पादक शक्तियों, उत्पादन के स्वरूप, उपभोग की प्रकृति, वितरण व प्रतिस्पर्द्धा आदि से होता है। इन सबका व्यक्ति के पारस्परिक संबंधों, विचारों, मान्यताओं, आदि पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है। उदाहरण के लिए कृषि प्रधान आर्थिक व्यवस्था व्यक्ति के प्राथमिक अनौपचारिक एवं घनिष्ठ सामाजिक सम्बन्धों को विकसित करती है जबकि औद्योगिक अर्थव्यवस्था अवैयक्तिक, द्वैतीयक, अनौपचारिक एवं कम घनिष्ठ सम्बन्धों को विकसित करती है। व्यक्ति के शारीरिक एवं बौद्धिक लक्षण भी आर्थिक संस्थानों से प्रभावति होते हैं। कृषि अर्थव्यवस्था में आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा नहीं पायी जाती जबकि औद्योगिक व्यवस्था में कटु आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा पाई जाती है।

वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था ने व्यक्ति की तार्किकता एवं वैज्ञानकिता प्रदान की है। जिसके कारण उसकी अंधविश्वासी एवं रूढ़िवादी मनोवृत्तियाँ समाप्त होती जा रहीं हैं। इसी प्रकार आर्थिक दशाओं का प्रभाव विवाह एवं परिवार के स्वरूप, आकार एवं कार्यों पर भी पडता है। वर्तमान औद्योगिक व्यवस्था ने संयुक्त परिवार एवं उसके घनिष्ठ एवं सहानुभूति संबंधों को एकाकी एवं व्यक्तिवादी परिवारों में परिवर्तित कर दिया है तथा सदस्यों के बीच घनिष्ठ, व्यक्तिवादी एवं भौतिकवादी संबंधों को विकसित कर दिया है। विवाह के क्षेत्र में प्रेम विवाह, अंतर्जातीय विवाह, विलम्ब विवाह, न्यायिक प्रथक्करण, विवाह–विच्छेद आदि वैवाहिक प्रवृत्तियाँ भी वर्तमान औद्योगिक अर्थव्यवस्था का परिणाम हैं। इस प्रकार समाज की आर्थिक संस्थाएँ व्यक्ति की समाजीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। आर्थिक संस्थाओं का सम्बंध मुख्यतः मनुष्य के जीविकोपार्जन से होता है। इन संस्थाओं के माध्यम से व्यक्ति परिश्रम, प्रतिस्पर्द्धा, उद्देश्यपूर्णता सहयोग व भविष्य की चिन्ता आदि परमावश्यक गुणों की प्राप्ति करता है। आर्थिक संस्थाएँ व्यक्ति को विभिन्न व्यवसायों तथा व्यापारिक संघों में बाँटती हैं। इनका प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर निरन्तर पडता है।

सांस्कृतिक संस्थाएँ

समाज की सांस्कृतिक संस्थाएँ भी व्यक्ति के समाजीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। संस्कृति के अन्तगर्त ज्ञान, विश्वास, प्रथा, कानून, आदर्श, मूल्य आदि व्यक्ति के व्यक्तित्व को एक विशेष दिशा प्रदान करते हैं। वास्तव में समाजीकरण की प्रक्रिया के अन्तगर्त मनुष्य जो गुण विचार एवं व्यवहार सीखता है वे सब संस्कृति के अन्तगर्त ही आते हैं। संस्कृति मनुष्य के व्यवहार को परिष्कृत करती है। संस्कृति की सहायता से व्यक्ति पशु के रूप में जन्म लेकर एक मानव अर्थात सामाजिक प्राणी बनता है। **रॉबर्ट बीरस्टीड** के शब्दों में ''हम जन्म से मानव नहीं हैं वरन् अपनी संस्कृति को अर्जन करके ही मानव बनते हैं।'' इस प्रकार मनुष्य के समाजीकरण में संस्कृति का अत्याधिक महत्व है। संस्कृति के इसी महत्व एवं प्रभाव के कारण प्रत्येक समाज में समाजीकरण का कम अलग–अलग होता है क्योंकि प्रत्येक समाज की संस्कृति भिन्न– भिन्न होती है।

धार्मिक संस्थाएँ

व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास एवं समाजीकरण में धर्म भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। बच्चा किस आयु में क्या सीखेगा, उसका पालन पोषण एवं शिक्षा किस प्रकार होगी, जन्म से लेकर मृत्यु तक किन–किन संस्कारों का पालन करेगा समाज में उसकी परिरिस्थिति एवं उत्तरदायित्वों तथा उचित–अनुचित का निर्धारण आदि अन्ततः उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहता है जो उसके व्यक्तित्व को संगठित करते हैं। मानव के इन अन्ततः उद्देश्यों का निर्धारण धर्म के द्वारा ही होतां है। धर्म के अन्तगर्त पाप–पुण्य, कर्म–पुनर्जन्म तथा नरक–स्वर्ग की धारणा व्यक्ति को उचित पुण्य धार्मिक कार्यों को करने की तथा अनूचित, पाप अधार्मिक एवं समाज–विरोधी कार्यों को न करने की प्रेरणा प्रदान करती है। धर्म व्यक्ति को अलौकिक शक्ति का भय दिखाकर सामाजिक नियमों का पालन करवाता है, भ्रातृत्व, सामुदायिक कल्याण तथा विश्वबन्धुत्व की भावना को विकसित करता है, व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों में स्थिरता उत्पन्न करता है। मानवीय कल्याण व विकास में योगदान देता है तथा जन्म से मृत्यु तक प्रत्येक व्यवहार को निश्चित करते हुए मनुष्य का जीवन भर साथ देता है। इसके साथ ही धर्म ज्ञान–प्राप्ति का वह साधन है जो व्यक्ति को ईश्वर के समकक्ष लाने में सहायता प्रदान करता है। **डेविस** ने कहा है कि धर्म समाज तथा व्यक्तित्व के समन्वय में सहायता करता है। **ओडिया** के शब्दों में ''धर्म समूह से मनुष्य का तारत्म्य स्थापित करता है, अनिश्चितता की स्थिति में उसकी सहायता करता है। उसे ढ़ाढस बंधाता है। समाज के लक्ष्यों से सम्बन्धित करता है और अन्दर तारत्म्य के तत्वों को पैदा करता है। ''व्यक्ति का धर्म से परिचय उस आयु में ही करा दिया जाता है जब वह धर्म को समझा भी नहीं है। धार्मिक संस्थाओं से व्यक्ति में नैतिकता, सच्चरित्रता, पवित्रता, कर्त्तव्यपरायणता, त्याग व बलिदान और शान्ति तथा न्याय के प्रति अनुराग विकसित होता है दूसरे के प्रति सहिष्णुता व सभी प्राणी समान हैं, इस तरह के विचारों को बच्चा इन्हीं संस्थाओं से ग्रहण करता है। धर्म व्यक्ति को उचित और अनुचित का ज्ञान देता है। इस प्रकार धर्म के द्वारा मनुष्य के समाजीकरण में सबसे बड़ी सहायता मिलती है। व्यक्ति का धर्म से परिचय उस आयु में ही करा दिया जाता है जब वह धर्म को समझता भी नहीं है। धार्मिक संस्थाओं से व्यक्ति में नैतिकता सच्चरित्रता, पवित्रता, कर्तव्यपरायणता, त्याग व बलिदान और शान्ति तथा न्याय के प्रति अनुराग विकसित होता है, दूसरों के प्रति सहिष्णुता व सभी प्राणी समान हैं इस तरह के विचारों को बच्चा इन्हीं संस्थाओं से ग्रहण करता है। धर्म व्यक्ति को उचित और अनुचित का ज्ञान देता है। इस प्रकार धर्म के द्वारा मनुष्य के समाजीकरण में सबसे बड़ी सहायता मिलती है।

राजनैतिक संस्थाएँ

व्यक्ति के समाजीकरण में योगदान देने वाली एजेन्सियों में राजनैतिक संस्थाओं का योगदान भी महत्वपूर्ण होता है। राज्य व्यक्ति के जीवन के पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि सभी पहलुओं को प्रभावित करता है। आधुनिक जटिल समाजों में जहाँ व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध औपचारिक एवं अप्रत्यक्ष होते हैं। व्यक्ति के व्यवहारों को निश्चित, नियमित एवं नियंत्रित करने में राज्य की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। राज्य व्यक्ति की आवश्कताओं की पूर्ति करके उसका मार्गदर्शन करके उसके समाजीकरण में योगदान करता है। **काम्टे**, **वार्ड** ,**गिडिंग्स**, **पैरेटो व हॉबहाऊस** आदि विद्वानों ने राज्य को अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं आवश्यक संस्था माना है। क्योंकि यह जटिल समाजों में सम्बन्धों को नियंत्रित करने के लिए और अपने सदस्यों की सुरक्षा के लिए सर्वाधिक उपयुक्त साधन है। राज्य के साथ–साथ कानून की भूमिका भी वर्तमान जटिल समाजों में व्यक्ति के अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्धारण करने एवं उनका मार्गदर्शन करने में अत्यधिक महत्तवपूर्ण है। व्यक्ति के अधिकारों एवं कर्तव्यों का बोध, निर्धारण एवं तद्नानुसार दिशा निश्चित करके कानून व्यक्ति के व्यक्तित्व को व्यवस्थित करने

अर्थात समाजीकरण करने में योगदान देता है। व्यक्ति के समाजीकरण में कानून व्यवस्थित करने अर्थात समाजीकरण में योगदान देता है। व्यक्ति के समाजीकरण में कानून की भूमिका स्पष्ट करते हुए **मैलिनॉस्की** ने लिखा है कि ''कानून का मूलभूत कार्य व्यक्ति के प्राकृतिक उद्वेगों तथा मूलप्रवृत्तियों के प्रभाव को कम करना अथवा नियंत्रित करना है तथा अनिवार्य समाजीकृत व्यवहार को प्रोत्साहन देना है।'' उपर्यक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समाजीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले अनेक प्राथमिक एवं द्वितियक समूह एवं संस्थाएँ अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हैं। इनमें भी **किम्बाल यंग** के शब्दों में, ''समाज में समाजीकरण के विभिन्न माध्यमों में से परिवार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ''व्यक्ति ज्यों–ज्यों अपने जीवन की अनेक समस्याओं से जूझता है त्यों–त्यों उसके जीवन में राजनैतिक संस्थाओं का प्रवेश होता है। इन संस्थाओं कें द्वारा वह अपने वास्तविक विचारों का निर्माण करता है। राजनीतिक संस्थाएँ व्यक्ति को शासन, कानून, अधिकार, कर्त्तव्य व अनुशासन से परिचित कराती हैं। राजनीतिक प्रशासन का प्रकार तथा व्यक्ति को मिली स्वतंत्रता भी उसके व्यक्तित्व को काफी सीमा तक प्रभावित करती है। व्यक्ति विभिन्न राजनीतिक दलों की विचारधाराओं में से किसी एक विचारधारा को (जिसे वह अपने विचारों के अधिक नजदीक समझता है) समर्थन करना शुरू कर देता है। साथ ही नेताओं का अनुश्रवण करके तथा चुनाव इत्यादि राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सा लेकर व्यक्ति काफी कुछ सीखता है।

ऐच्छिक संस्थाएँ

इसके अन्तर्गत ऐसी संस्थाएँ आती है जिनमें व्यक्ति का प्रवेश स्वाभाविक रूप में नहीं होता वरन् वह अपनी इच्छा अथवा अन्य व्यक्तियों कें आग्रह पर ऐसी संस्थाओं के सम्पर्क में आता है जिनका निर्माण व्यक्तियों द्वारा अपनी सांस्कृतिक गतिविधियों के संचालन और पूर्ति के लिए स्वंय किया जाता है। इनसे व्यक्ति का समाजीकरण और अधिक पुष्ठ तथा विस्तृत होता है। ऐच्छिक संस्थाएँ हमें प्रथा, परम्परा, आचार–विचार के ढंग, व्यवहार के तौर तरीके, आपसी संगठन व किसी त्रुटिपूर्ण परम्परा अथवा विचार का संगठित विरोध करना सीखाता है। ऐच्छिक संस्थाओं में विवाह का प्रमुख स्थान है। कुछ समाजशास्त्रियों का मत है कि विवाह व्यक्ति के समाजीकरण को काफी हद तक पूर्णता की प्राप्ति कराने वाला माध्यम है। इसके कारण व्यक्ति में इतने उच्च सामाजिक मूल्यों का समावेश होता है कि वह पूर्ण व्यक्तित्व को प्राप्त करता है और समाज को नई इकाइयाँ प्रदान करता है। विवाह के द्वारा वह उत्तरदायित्व, धैर्य, त्याग, पारिवारिक कल्याण, परोपकार और दूरदर्शिता के पाठ ग्रहण करता है।

14.5 सारांश

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि व्यक्ति के समाजीकरण की प्रक्रिया में एकाधिक सामाजिक अभिकरणों या साधनों का योगदान होता है। इनमें परिवार सबसे अधिक महत्वपूर्ण संस्था है। श्री **कुले** का कथन है कि प्राथमिक समूह में परिवार का स्थान सबसे ऊपर है। परिवार के घनिष्ठ आंतरिक तथा स्नेह–प्रीतिपूर्ण संबंधों कें बीच बच्चा जो कुछ भी सीखता है वह उसके जीवन में चिरस्थायी हो जाता है। यही कारण है कि परिवार को नागरिक तथा समाजिक जीवन की आधारभूत पाठशाला कहा गया है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि समाजीकरण की प्रक्रिया में परिवार ही सब कुछ है। वृहत्तर सामाजिक जीवन के लिए अन्य संस्थाओं का योगदान भी वास्तव में महत्वपूर्ण होता है। समाजीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले अनेक प्राथमिक एवं द्वैतीयक समूह व संस्थाएँ हैं। इनमें प्राथमिक समूह एवं संस्थाएँ अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हैं।

14.6 शब्दावली

संस्थाएँ: संस्थाएँ सामाजिक व्यवहार की सामूहिक प्रणालियाँ हैं। ये समाज द्वारा मान्य कार्य करने के ढंग हैं। इसलिए समाज अपने सदस्यों से संस्थागत व्यवहार की आशा रखता है।

अभिकरणः यह एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों को कार्यान्वित किया जाता है। अभिकरण को केन्द्रीकृत करके सामाजिक संस्थाओं की कार्यवाही को आगे बढ़ाया जाता है। यह अपने आप में एक एजेन्सी है जो सामाजिक प्रक्रियाओं को आगे बढ़ाने में मदद करता है।

14.7 अभ्यास हेतु प्रश्न एवं इसके उत्तर

1. 'समाजीकरण' के प्रारम्भिक चरण घर में ही प्रारम्भ होते हैं। ''यह परिभाषा किसने की है–
   अ) कूले ब) सैमुअल स) डेविस द) किम्बाल यंग
2. निम्न में से कौन सा समाजीकरण के महत्व का आधार नहीं है–
   अ) सामाजिक प्राणी बनने में सहायक
   ब) व्यक्तित्व के विकास में सहायक
   स) व्यवहारों पर नियंत्रण
   द) कृषि का विकास
3. निम्नलिखित में से किसे समाजीकरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण माध्यम माना जाता है–
   अ) परिवार ब) क्रीडा समूह स) पड़ोस द) विद्यालय
4. निम्न में कौन सा समाजीकरण के द्वितीयक संस्था का सही विकल्प है–
   अ) विवाह ब) नातेदारी समूह स) आर्थिक समूह द) पड़ोस

उत्तरमाला

1. (ब) 2. (द) 3. (अ) 4. (स)

14.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

रवीन्द्र नाथ मुकर्जी–भारतीय समाज व संस्कृति (2006), विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर–दिल्ली

14.9 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

गुप्ता एवं शर्मा–समाजशास्त्र (1998), साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

14.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. समाजीकरण के प्रमुख साधन या अभिकरण कौन से हैं? व्याख्या कीजिए।
2. समाजीकरण से आप क्या समझते हैं? व्यक्ति के समाजीकरण में परिवार तथा विद्यालय के योगदान को समझाइये।
3. समाजीकरण की प्रमुख संस्थाओं का वर्णन कीजिए।
4. समाजीकरण की प्रत्याशित अवस्था से आप क्या समझते हैं?

इकाई–15

समाजीकरण के सिद्धांतः दुर्खीम, कूले और मीड

इकाई की रूपरेखा

15.1 उद्देश्य

15.2 प्रस्तावना

15.3 अवधारणा

15.4 सिद्धांत का अर्थ

15.5 समाजीकरण के सिद्धांत

15.6 दुर्खीम के सिद्धांत

15.7 कूले के सिद्धांत

15.8 मीड के सिद्धांत

15.9 सारांश

15.10 शब्दावली

15.11 अभ्यास हेतु प्रश्न एवं उत्तर

15.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

15.13 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

15.14 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ पायेंगे कि –

- वास्तविक रूप में समाजीकरण के सिद्धांत क्या है।
- दुर्खीम, कूले और मीड के समाजीकरण के सिद्धांत का क्या महत्व है।
- समाजीकरण के सिद्धांत का समाज में क्या भूमिका है।

15.2 प्रस्तावना

व्यक्ति के समाजीकरण में समाज या विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के महत्व को सभी स्वीकार करते हैं। परिवार सामाजिक जीवन की आधारभूत इकाई होता है और इसलिए वह समाजीकरण की प्रक्रिया में सर्वाधिक भूमिका अदा करता है। उसी प्रकार सुझाव, अनुकरण, सहानुभूति आदि कुछ मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ भी सामाजीकरण में सहायक होती हैं। इनका विश्लेषण वास्तव में एक जटिल कार्य है। एक सामाजिक–मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया जिसके द्वारा हम समाज के सक्रिय सदस्य बनते हैं। इस प्रक्रिया में समाज के मानदंडों और मूल्यों के आन्तरीकरण के साथ–साथ अपनी सामाजिक भूमिकाओं को संपादन करना और सीखना दोनों बातें सम्मिलित होती है। इसी प्रक्रिया के द्वारा 'स्व' का विकास होता है।

15.3 अवधारणा

विभिन्न परिवर्त्यों या चर के बाहय कारणात्मक संबंधों को प्रदर्शित करने वाले प्रस्थापनाओं के एक समूह को सिद्धांत कहते हैं। यह एक ऐसा सामान्यीकरण है जिसे तथ्यों के एक वृहद् समूह के प्रमाणीकरण के बाद प्राप्त किया जाता है। सिद्धांत किसी घटना के संबंध में 'क्यों' और 'कैसे' के प्रश्नों के उत्तर देने का एक तरीका है। व्यक्ति के समाजीकरण की प्रक्रिया को समाज की अनेक संस्थाएँ, माध्यम एवं एजेन्सियाँ प्रभावित करती हैं। इनमें परिवार, क्रीडा–समूह, पड़ोस, नातेदारी, समूह, स्कूल, जाति, वर्ग तथा अन्य अनेक आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक संस्थाएँ अधिक महत्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त सुझाव, अनुकरण, सहानुभूति आदि मानसिक प्रक्रियाएँ भी समाजीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं।

15.4 सिद्धांत का अर्थ

सिद्धांत शब्द का प्रयोग अत्यंत सामान्य अर्थ में 'व्यावहारिक' के विपर्यय के अर्थ में भी कर लिया जाता है। एक वैज्ञानिक सिद्धांत अनुभवजन्य परीक्षणीय प्रस्थापनाओं के तार्किक रूप में अर्न्तसम्बंधित समूह को कहते हैं। सिद्धांत परिवर्त्यों की बीच संबंधों से बनता है। समाजीकरण की प्रक्रिया किस प्रकार होती है तथा इसमें क्या–क्या प्रेरणाएँ कार्य करती हैं। इसका उत्तर देने के लिए समाजशास्त्रियों ने कुछ सिद्धातों का प्रतिपादन किया है। इन सभी सिद्धातों ने 'स्व' के विकास को प्रमुख आधार माना है। 'स्व' के विकास का अर्थ व्यक्ति का स्वयं के बारे में ज्ञान है जो व्यक्ति को समाज में अन्तःक्रियाएँ करने हेतु समर्थ बनाता है।

15.5 समाजीकरण के सिद्धांत

समाजीकरण एक अत्यंत जटिल प्रक्रिया है। इस जटिल प्रक्रिया का पूर्ण एवं व्यवस्थित विश्लेषण करना वस्तुतः बहुत कठिन कार्य है। समाजशास्त्रियों ने समाजीकरण के सिद्धांत को 'आत्म या स्व के विकास' के आधार पर समझाने का प्रयत्न किया है। ''आत्म'' कोई शारीरिक न होकर मानसिक तथ्य है। व्यक्ति के समाजीकरण में ''आत्म'' या ''स्व'' का उद्‌भव और विकास केन्द्र बिन्दु है। कुछ प्रमुख ''विद्वानों'' ने समाजीकरण के सिद्धांत को विश्लेषण करने का प्रयास किया है जो निम्नलिखित है–

15.6 दुर्खीम का सिद्धांत

दुर्खीम ने अपनी पुस्तक ‘Sociology and Philosophy’ में सामूहिक प्रतिनिधान (Collective Representation) की धारणा के आधार पर समाजीकरण के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। दुर्खीम के अनुसार प्रत्येक समाज में कुछ सामान्य विचार, भावनाएँ, धारणाएँ, आदर्श, विश्वास आदि होते हैं जिनका समाज के अधिकांश सदस्य पालन करते हैं। सम्पूर्ण समूह की अभिमति होने के कारण ये सम्पूर्ण समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन्हीं सामान्य विचारों, धारणाओं और मूल्यों को **दुर्खीम** ने सामूहिक प्रतिनिधान कहा है।

एक ओर सामूहिक स्वीकृति होने के कारण और दूसरी ओर सामाजिक मूल्यों से सम्बन्धित होने के कारण ये अत्याधिक प्रभावशाली होते हैं। इसलिए ये व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते रहते हैं। समाजीकरण का उददेश्य व्यक्ति में सामूहिक प्रतिनिधानों के अनुसार व्यवहार करने की आदत उत्पन्न करना है। माता–पिता, मित्र, अध्यापक आदि सामूहिक प्रतिनिधानों के अनुसार बच्चे पर नियंत्रण करके उसके व्यक्तित्व को सही दिशा में विकसित करते हैं। बच्चा सामूहिक प्रतिनिधानों को माता–पिता की सहायता से स्वीकार करता है और धीरे–धीरे ये उसके व्यक्तित्व के अंग बन जाते हैं। इस प्रकार सामूहिक प्रतिनिधान समाजीकरण का उददेश्य भी है और साधन भी।

प्रारम्भ में इनका सम्बन्ध व्यक्तित्व चेतना से होता है, किन्तु सभी लोगों की पारस्परिक अन्तःक्रिया के कारण सामूहिक चेतना का निर्माण होता है। जो सामूहिक प्रतिनिधान के उदाहरण हैं। इन सभी का निर्माण किसी व्यक्ति विशेष द्वारा नहीं होता वरन् समूह अथवा समाज के सभी या अधिकांश लोगों द्वारा होता है। अतः समूह के सभी लोग इनका पालन करते हैं, मानते हैं एवं उनके अनुसार आचरण करते हैं। सामूहिक प्रतिनिधानों का पालन करना व्यक्ति अपना दायित्व समझते हैं। इनके पीछे नैतिकता का दबाव होता है, समाज इन्हें मानने के लिए व्यक्तियों को बाध्य करता है। इनकी अवहेलना करने पर सामूहिक प्रतिक्रिया होती है, दण्ड की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार समाज के रीति–रिवाज़ों, प्रथाओं, कानूनों, संस्थाओं, धर्म एवं आदर्शों, आदि को सामूहिक जीवन के द्योतक होने के कारण ही सामूहिक प्रतिनिधान कहा गया है।

व्यक्ति इन सामाजिक प्रतिनिधानों को सीखता है, आत्मसात् करता है और उनके अनुरूप आचरण करता है, इससे उसका समाजीकरण होता है। अन्य शब्दों में, व्यक्ति द्वारा सामाजिक प्रतिनिधानों का आन्तरीकरण करना ही समाजीकरण है। व्यक्ति ज्यों–ज्यों सामाजिक प्रतिनिधानों को आत्मसात् करता जाता है, त्यों–त्यों उसका समाजीकरण होता जाता है। सामूहिक विचारों एवं धारणाओं को व्यक्ति किस प्रकार मानता और उनके अनुसार आचरण करता है, इसे हम एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं। व्यक्ति जब भीड़ में होता है तो वैसा ही व्यवहार करने लगता है जैसा दूसरे व्यक्ति कर रहे होते हैं। यदि भीड़ तोड़ फोड़, हिंसा व अनैतिकता पर उतारू है तो उसमें सम्मिलित सभी व्यक्ति वैसा ही करने लगते हैं।

भीड़ में व्यक्ति की व्यक्तिगत इच्छा दब जाती है, रीति–रिवाज, आदर्श और मूल्य जो कि सामाजिक प्रतिनिधान हैं, व्यक्ति को पूरी तरह से प्रभावित करते हैं और उसे अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं का दमन करके भी उन्हें मानने को बाध्य करते हैं। इनके अनुरूप आचरण करने के अतिरिक्त उसके सामने कोई अन्य चारा नहीं होता। सामाजिक प्रतिनिधानों का दबाव उसमें सामाजिक गुणों का विकास करता है, उसे समाज के अनुरूप बनाकर उसका समाजीकरण करता है।

दुर्खीम ने समाजीकरण की प्रक्रिया को सामूहिक प्रतिनिधान (प्रतिनिधित्व) के आधार पर समझाने का प्रयास किया है। इनका सिद्धान्त पूर्णतः सामाजिक है तथा यह व्यक्ति और समाज के परस्पर सम्बन्धों में समाज को अधिक महत्व देता है। इनके अनुसार सामूहिक प्रतिनिधानों का आन्तरीकरण अर्थात सामूहिक मान्यताओं को

आत्मसात करना ही समाजीकरण है। समाज में व्यवहार के जो मान्यता प्राप्त प्रतिमान, मूल्य, विश्वास एवं आदर्श होते हैं, उन्हीं को सामूहिक प्रतिनिधान कहा जाता है। ये सामाजिक विरासत के रूप में पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरित होते रहते हैं तथा जैविक व्यक्ति द्वारा इन सामूहिक प्रतिनिधानों को सीखना एवं इनके अनुकूल व्यवहार करने के लिए प्रेरित करना ही समाजीकरण कहलाता है।

सामूहिक प्रतिनिधान, क्योंकि सम्पूर्ण समूह अथवा समाज द्वारा बनाए जाते हैं स्वं स्वीकृत होते हैं, इसलिए वे सामाजिक तथ्य हो हैं। **दुर्खीम** ने सामूहिक प्रतिनिधानों को सामाजिक तथ्यों की दोनों प्रमुख विशेषताओं (1) ये व्यक्ति से बाहर हैं तथा (2) इनमें बाध्यता पाई जाती है–से युक्त बताया है। सामूहिक प्रतिनिधान के आन्तरीकरण को **दुर्खीम** ने सामूहिक या सामाजिक अन्तःकरण से जोड़ा है। सामूहिक चेतना का विकास यद्यपि व्यक्तिगत चेतनाओं से होता है, फिर भी यह न तो व्यक्तिगत चेतना ही है और न ही व्यक्तिगत चेतनाओं का संकलन मात्र। यह तो बहुत–सी व्यक्तिगत चेतनाओं के सम्मिश्रण द्वारा विकसित एक ऊँचे एवं श्रेष्ठ स्तर की चेतना होती है। सामूहिक प्रतिनिधान समूह अथवा समाज द्वारा स्वीकृत होने के कारण, प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा (व्यक्तिगत आत्मा) में विलीन हो जाते हैं। सभी लोगों द्वारा स्वीकार कर लेने पर ये सामूहिक अन्तःकरण (चेतना) का रूप ले लेते हैं।

इसलिए समाज का प्रत्येक व्यक्ति इन्हें बिना प्रश्न चिन्ह या चुनौती दिए स्वीकार कर लेते हैं। **दुर्खीम** के अनुसार सामूहिक प्रतिनिधान सामाजिक एकता बनाए रखने में सहायक है। संक्षेप में, कहा जा सकता है कि सामूहिक प्रतिनिधानों को सामूहिक अन्तःकरण के रूप में व्यक्ति द्वारा आन्तरीकरण व आत्मसात करना ही समाजीकरण है। जैसे–जैसे व्यक्ति इनको आत्मसात करता जाता है वैसे–वैसे उसका समाजीकरण भी होता रहता है।

15.7 कूले के सिद्धांत

समाजीकरण का दूसरा प्रमुख सिद्धान्त **चार्ल्स कूले** द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इन्होंने **Social organization** एवं **Human Nature and the Social Order** नामक अपनी पुस्तकों में यह कहने का प्रयास किया है कि एक जैविक प्राणी किस प्रकार से सामाजिक प्राणी बनता है। यह सिद्धान्त भी सामाजिक है क्योंकि इसका आधार भी व्यक्ति और समाज के परस्पर सम्बन्ध का मूल्यांकन है। कूले के अनुसार बच्चा तीन बातों के बारे में सोचता है–

1) दूसरे मेरे बारे में क्या सोचते हैं?

2) दूसरों की राय के सन्दर्भ में मैं अपने बारे में क्या सोचता हूँ?

3) मैं अपने बारे में सोचकर अपने को कैसा मानता हूँ?

इन तीन बातों को स्पष्ट करने के लिए **हार्टन व हण्ट** ने एक उदाहरण दिया है–मान लीजिए आप एक कमरे में प्रवेश करते हैं जहाँ कुछ व्यक्ति एक समूह में परस्पर बातें कर रहे हैं। आपके आते ही वे बहाना बनाकर वहाँ से चले जाते हैं और ऐसा कई बार होता है तो आपको अपने बारे में हीनता की भावना महसूस होगी। इसके विपरीत, आपके कमरे में प्रवेश करने पर सभी व्यक्ति आपको घेर लेते हैं और आपसे चर्चा करना चाहते हैं तो आपको गर्व महसूस होगा। इस प्रकार दूसरे व्यक्ति हमारे प्रति जिस प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं हम अपने बारे में वैसी धारणा बनाते हैं। इसे हम एक अन्य उदाहरण द्वारा भी स्पष्ट कर सकते हैं।

हम किसी स्त्री को बार–बार यह कहें कि तुम सुन्दर या असुन्दर हो तो वह अपने को सुन्दर या असुन्दर महसूस करने लगेगी और वैसा ही आचरण करने लगेगी। इस प्रकार दूसरों के द्वारा व्यक्त प्रतिक्रिया के आधार पर ही व्यक्ति अपने को सुन्दर–असुन्दर, मिलनसार, झगड़ालू, मूर्ख–बुद्धिमान तथा हीन व श्रेष्ठ समझने लगता है। किन्तु कई बार ऐसा भी होता है कि दूसरे हमारे बारे में जो राय बनाते हैं, उसे जिस रूप में हम सोचते हैं उसमें तथा वास्तव में दूसरों द्वारा हमारे प्रति बनायी गयी धारणा में अन्तर होता है। कई बार हम दूसरों द्वारा अपने बारे में बनायी गयी राय को गलत समझ लेते हैं। अक्सर हम अपने बारे में दूसरों की वैसी धारणा बना लेते हैं जो समूह के प्रति हमारे मन में होती है। अतः कभी–कभी 'स्व' निर्माण गलत धारणा पर हमारी प्रशंसा करते हैं तो हम यह सोचने लगते हैं कि हम प्रशंसनीय है। जबकि वास्तविकता यह होती है कि हमारे मित्र हमें इतना योग्य नहीं समझते। इस प्रकार हमारे द्वारा अपने बारे में मित्रों की प्रशंसा पर बनायी गयी धारणा त्रुटिपूर्ण है।

कूले ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को स्पष्ट करने के सन्दर्भ में किया। उनका मत है कि समाज के सम्पर्क में आने पर ही व्यक्ति के 'आत्म' का विकास होता है। समाज व्यक्ति के लिए दर्पण का कार्य करता है, वह उसमें अपनी छवि देखता है और समाज के लोग उसके बारे में क्या कहते हैं, इसी आधार पर वह अपने बारे में अपनी धारणा बनाता है। जिस प्रकार से हम आइना देखकर यह ज्ञान करते है कि हम अमुक पोशाक पहनने पर कैसे लगते हैं, बाल ठीक से संवारे हुए हैं या नहीं, मेक–अप कैसा लग रहा है, आदि। इस प्रकार इसी आधार पर वह अपने बारे में राय बनाता है। इसी राय के आधार पर ही उसमें हीनता या श्रेष्ठता के भाव पैदा होते हैं। उदाहरण के लिए, जब परिवार के लोग, मित्र या अन्य लोग उसके बारे में यह कहते हैं कि वह बुद्धिमान है, लम्बा है, शक्तिशाली है, आकर्षक है, या गन्दा है, मूर्खं, कमजोर या ठिगना, लड़ाकू, क्रोधिला है तो व्यक्ति भी अपने बारे में वैसा ही सोचने लगता है। इस प्रकार अपने बारे में दूसरों की प्रतिक्रिया स ही व्यक्ति के 'स्व' का निर्माण होता है। इसलिए ही **कूले** इसे 'आत्म दर्पण दर्शन' कहते हैं। **हार्टन व हण्ट** का मत है कि कूले ने Looking glass self शब्द थेकरे की 'वेनिटी केयर' नाम कृति से लिया है। **थेकरे** कहते हैं, 'संसार एक दर्पण है जो प्रत्येक व्यक्ति को उसका स्वयं का चेहरा प्रतिबिम्बित करता है। आप भौंहे चढ़ाइये तो इसमें आप चिड़चिड़े दिखायी देगें, आप इसकी ओर तथा इसके साथ हँसिये तो यह आपका खुशमिजाज व कृपालू साथी होगा। इस प्रकार **कूले** के अनुसार व्यक्ति का दूसरों से सम्पर्क होने से ही 'स्व' का निर्माण होता है जो कि समाजीकरण का प्रमुख आधार है। स्व के निर्माण के आधार पर ही व्यक्ति अपना मूल्यांकन करता है, वह अपने को हीन या श्रेष्ठ समझता है और समाजीकरण की दिशा तय करता है। व्यक्ति समाज का ही प्रतिविम्ब है। **कूले** का कहना है कि व्यक्ति समाज रूपी दर्पण में अपना विम्ब देखता है। इससे वह यह जानने का प्रयास करता है कि दूसरे उसके बारे में क्या सोचते हैं। यह जान लेने के पश्चात् कि दूसरे उसके बारे में क्या सोचते हैं, वह अपने बारे में राय बनाता है। इस राय के परिणामस्वरूप बच्चे में हीनता या श्रेष्ठता के भाव विकसित होते हैं अर्थात् यदि उसे लगता है कि दूसरे उसके बारे में अच्छे विचार रखते हैं तो उसमें श्रेष्ठता की भावना आ जाती है। और इसके विपरीत यदि उसे लगता है कि दूसरे उसके बारे में अच्छी राय नहीं रखते, तो उसमें हीन–भाव आ जाते हैं। हम निरन्तर समाज रूपी दर्पण में अपना विम्ब देखते रहते हैं। अतः 'स्व' के बारे में हमारी धारणा स्थायी नहीं है अपितु समय–समय पर बदलती रहती है।

चार्ल्स कूले ने 'सामाजिक अन्तःक्रिया' के आधार पर समाजीकरण की प्रक्रिया की व्याख्या की हैं। उनके अनुसार जब तक व्यक्ति अन्य 'व्यक्तियों के सम्पर्क में नही आता अर्थात् उनके साथ अन्तःक्रिया नहीं करता तब तक

उसका समाजीकरण नहीं हो सकता। समाजिक अन्तःक्रिया के परिणामस्वरूप व्यक्ति में 'स्व' अथवा 'आत्म' जो समाजीकरण की आत्मा है, का विकास होता है। इस प्रकार **कूले** ने समाजिक अन्तःक्रिया तथा 'स्व' के आधार पर अपने विचारों को स्पष्ट किया है। व्यक्ति के 'स्व' अथवा 'आत्म' को तीन मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की सहायता से समझा जा सकता है। इस प्रकार अन्य व्यक्तियों के साथ अन्तःक्रिया के दौरान, उपर्युक्त तीनों प्रक्रियाओं के आधार पर, व्यक्ति के आत्म का विकास होता हैं व्यक्ति के यही विचार विश्वास एवं आदतें उसके समाजीकरण के लिए उत्तरदायी है। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि बच्चा समाज रूपी दर्पण में आत्मदर्शन द्वारा अपना मूल्यांकन करता है और इस मूल्यांकन के परिणमस्वरूप जो भाव (श्रेष्ठता या हीनता के भाव) उसमें विकसित होते है, उसी से उसकी समाजीकरण की दिशा निर्धारित होती है। अतः इन्होंने समाजीकरण एवं 'स्व' के विकास को प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित किया है।

15.8 मीड के समाजीकरण का सिद्धान्त

समाजीकरण की एक अन्य मनोवैज्ञानिक व्याख्या मीड द्वारा प्रस्तुत की गई है। 'स्व' के विकास सम्बन्धी इनके विचार इनकी पुस्तक **Mind, Self and Society** में मिलते हैं। **मीड फ्रायड** के विचारों से सहमत नहीं थे। इनके अनुसार 'स्व' का विकास अनुकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप होता है। शिशु अपने प्रारम्भिक जीवनकाल में जिस किसी व्यक्ति के सम्पर्क में आता है, वह उनके व्यवहार का अनुकरण करने का प्रयास करता है। इस प्रकार मीड ने अपने सिद्धान्त में 'स्व' के विकास में बालक द्वारा अपने प्रति जागरूकता तथा दूसरों की दृष्टि से अपने मूल्यांकन में महत्वपूर्ण माना है। इसे इन्होंने दो भागों ''मैं'' (I) तथा मुझे (Me) शब्दों द्वारा व्यक्त किया है। 'मैं' दूसरों के व्यवहार का प्रत्युत्तर है, जबकि 'मुझे' मेरे द्वारा किया गया व्यवहार है। 'मै' और 'मुझे' एक ही चीज के दो पहलू (अर्थात विषय व वस्तु) हैं जिनमे समाजीकरण होता है। दूसरों की दृष्टि से वह अपना मूल्यांकन इसलिए करता है क्योंकि वह जानता है कि दूसरों को सन्तुष्ट करके ही उसकी अपनी इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं और उसे स्वयं को सन्तुष्टि मिल सकती है। **मीड** ने इस सिद्धान्त को **'सामान्यीकृत अन्य'** की अवधारणा द्वारा समझाने का प्रयास किया है। 'सामान्यीकृत अन्य' शब्द से अभिप्राय व्यक्ति की दूसरों के मूल्यांकन द्वारा अपने बारे में बनी धारणा है जिसका कि वह आन्तरीकरण कर लेता है। वह अपनी भूमिका निभाने के साथ–साथ अपनी तुलना 'सामान्यीकृत अन्य' से करता है और इसी से उसका समाजीकरण होता है। जब कोई व्यक्ति 'स्व' को समझने के लिए दूसरों की भूमिका को ग्रहण नहीं कर पाता है तो उसके व्यक्तित्व के विकास में बाधा उत्पन्न होन लगती है। मीड के अनुसार समाजीकरण की प्रक्रिया में भूमिका ग्रहण करना एक अत्यावश्यक प्रक्रिया है।

मीड ने अपनी पुस्तक में समाजीकरण सम्बन्धी अपने विचार प्रकट किये हैं। **मीड** यह मानते हैं कि व्यक्ति ही समाज का निर्माता है जिसमें दिमाग और 'स्व' होता है। 'स्व' मौलिक रूप से एक सामाजिक संरचना है और यह समाजिक अनुभवों के कारण ही पैदा होता है। 'स्व' के जन्म के बाद ही व्यक्ति सामाजिक अनुभव करता है। **मीड** ने उस प्रक्रिया का भी उल्लेख किया है। जिसके एक जैविकीय व्यक्ति होता है जिसमें बुद्धि का अभाव होता है। **जार्ज मीड** ने आत्म को 'स्वयं' के सम्बन्ध में चेतना कहा है। उसके अनुसार व्यक्ति के अन्दर इस आत्म की चेतना होना ही समाजीकरण है। व्यक्ति में स्वयं के सम्बन्ध में चेतना समाजिक अन्तःक्रिया के परिणामस्वरूप विकसित होती है।

समाज के सम्पर्क के कारण बच्चा जो कुछ सीखता है, उसे वह पुनः गुड़ियों के खेल के दौरान प्रकट करता है। चोर, डाकू व पुलिसमैन तथा माता–पिता व भाई–बहिनों की भूमिका वह खेल के दौरान प्रकट करता ह। आपस में ही बच्चे मम्मी–पापा या चोर–पुलिस बनकर वैसा ही व्यवहार प्रकट करते हैं। जैसा उन्होंने वास्तव में उन दोनों को व्यवहार करते देखकर सीखा है। अनुकरण, संकेत एवं भाषा के माध्यम से बच्चा दूसरों के व्यवहारों को ग्रहण करता है और उसमें विभिन्न प्रकार की भूमिकाएँ निभाने की क्षमताएँ पैदा हो जाती है। इसी स्थिति को मीड 'आत्म का विकास' कहते है। **मीड** के इस सिद्धान्त को हम संक्षेप में इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं। (1) समाजीकरण का अर्थ व्यक्ति के 'आत्म' के समुचित विकास से है, (2) 'आत्म' का विकास दूसरे लोगों के 'सामन्यकृत व्यवहार' को अपने व्यवहार में समावेश करने से होता है।, (3) 'आत्म' के विकास के बाद व्यक्ति जैविकीय प्राणी से 'सामाजिक रूप' में आत्म चेतन के रूप में बदल जाता है एवं संवेगात्मक व्यक्तित्व के प्रभाव को कम कर देता है, (4) स्वयं में तथा अन्य व्यक्तियों में भेद करने की चेतना पैदा होना ही आत्म का विकास है। और इसी आधार पर वह दूसरों के प्रति अपने व्यवहार को निश्चित करता है, तरह–तरह की आदतें सीखता है अर्थात् अपना समाजीकरण करता है। **मीड** के अनुसार व्यक्ति के जीवन के दो पक्ष होते हैं–प्राणिशास्त्रीय और सामाजिक अथवा स्वचेतन। प्राणिशास्त्रीय व्यक्ति पशुवत होता है, इसमें तर्क एक बुद्धि का अभाव होता है। इसके विपरीत सामाजिक अर्थात् स्वचेतन व्यक्ति तर्क एवं बुद्धि द्वारा संचालित होता है।

प्राणीशास्त्रीय व्यक्ति से सामाजिक अथवा स्वचेतन व्यक्ति बनने की प्रक्रिया को ही **मीड** ने समाजीकरण कहा है। **मीड** के अनुसार, जन्म के समय व्यक्ति केवल एक जैविकीय व्यक्ति होता है। उसके जन्म के साथ ही समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इसके पश्चात माता–पिता, भाई–बहिन, मित्र, अध्यापक एवं विचारों, भावों, मान्यताओं, मूल्यों आदि का आन्तरीकरण कर लेता है। इन सबके साथ अन्तःक्रिया के दौरान वह स्वयं के बारे में एक विशिष्ट धारणा का निर्माण कर लेता है। उसकी यह धारणा अन्य व्यक्तियों के विचारों एवं व्यवहारों से प्रभावित होती है और यही धारणा उसका वास्तविक 'आत्म' है जो उसके व्यक्तित्व के विकास का आधार है। इस प्रकार 'मै' और 'मुझे' का ज्ञान ही बच्चे का समाजीकरण है। स्पष्ट है कि **मीड** के अनुसार समाजीकरण सामाजिक अन्तःक्रिया का परिणाम है।

15.9 सारांश

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर सारांश स्वरूप यह उल्लेख किया जा सकता है कि सामूहिक प्रतिनिधानों को सामूहिक अन्तःकरण के रूप में व्यक्ति द्वारा आन्तरीकरण व आत्मसात करना ही समाजीकरण है। **दुर्खीम** के अनुसार सामूहिक प्रतिनिधान सामाजिक एकता बनाए रखने में सहायक है। जैसे–जैसे व्यक्ति इनको आत्मसात करता जाता है वैसे–वैसे उसका समाजीकरण भी होता रहता है। **कूले** के अनुसार, बच्चा समाज रूपी दर्पण में आत्मदर्शन द्वारा अपना मूल्यांकन करता है और इस मूल्यांकन के परिणामस्वरूप, जो भाव (श्रेष्ठता या हीनता के भाव) उसमें विकसित होते हैं, उसी से उसकी समाजीकरण की दिशा निर्धारित होती है। अतः इन्होंने समाजीकरण एवं 'स्व' के विकास को प्रत्यक्ष रूप से संबंधित किया है। है। इन्होंने अपने सिद्धान्त प्रतिपादित कर यह बताने का प्रयास किया है कि व्यक्ति का समाजीकरण किस प्रकार से होता है? उसकी मानसिक स्थिति क्या होती है? मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों ने समाजीकरण के सिद्धान्त को 'आत्म या स्व के विकास' के आधार पर समझाने का प्रयत्न किया है। अमरीकन समाजशास्त्री कूले ने अपनी पुस्तक में अपने समाजीकरण सम्बन्धी सिद्धान्त को प्रस्तुत किया है। उनका सिद्धान्त 'आत्म दर्पण दर्शन सिद्धान्त' के नाम से भी जाना जाता है। कूले ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को स्पष्ट करने के सन्दर्भ में किया। उनका मत है कि समाज के सम्पर्क में आने पर ही व्यक्ति के 'आत्म' का विकास होता है।

जिस प्रकार से हम आइना देखकर यह ज्ञात करते हैं कि हम अमुक पोशाक पहनने पर कैसे लगते हैं, बाल ठीक से संवारे हुए हैं या नहीं, मेक–अप कैसा लग रहा है, आदि। इसी प्रकार से बालक भी समाज रूपी आइने में अपने आपको देखता है। समाज के लोग उसके बारे में क्या कहते हैं, इसी आधार पर वह अपने बारे में राय बनाता है। इसी राय के आधार पर ही उसमें हीनता या श्रेष्ठता के भाव पैदा होते हैं। इस प्रकार अपने बारे में दूसरों की प्रतिक्रिया से ही व्यक्ति के 'स्व' का निर्माण होता है। इसलिए ही कूल इसे 'आत्म दर्पण दर्शन' कहते हैं। **थेकरे** कहते हैं, संसार एक दर्पण है जो प्रत्येक व्यक्ति को उसका स्वयं का चेहरा प्रतिबिम्बित करता है। आप हंसिये तो यह आपका खुशमिजाज़ व कृपालू साथी होता और आप भौंहे चढ़ाइये तो इसमें आप चिड़चिड़े दिखाई देगें।

जी0एच0मीड ने अपने सिद्धांत को 'सामान्यीकृत अन्य' की अवधारणा द्वारा समझाने का प्रयास किया है। इस शब्द से अभिप्राय व्यक्ति को दूसरों के मूल्यांकन द्वारा अपने बारे में बनी धारणा है जिसका कि वह आंतरीकृत कर लेता है। वह अपनी भूमिका निभाने के साथ–साथ अपनी तुलना 'सामान्यीकृत अन्य' से करता है और इसी से उसका समाजीकरण होता है। जब कोई व्यक्ति 'स्व' को समझने के लिए दूसरों की भूमिका को ग्रहण नहीं कर पाता है तो उसके व्यक्तित्व के विकास में बाधा उत्पन्न होने लगती है। **मीड** के अनुसार, जन्म के समय व्यक्ति केवल एक जैविकीय व्यक्ति होता है। उसके जन्म के साथ ही समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

15.10 शब्दावली

सामूहिक प्रतिनिधान (Collective Representation)

समाज द्वारा मान्य उन विचारों, धारणाओं, भावनाओं तथा प्रतीकों को सामूहिक प्रतिनिधान की संज्ञा दी जाती है जो सामूहिक रूप से समस्त समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन्हें समाज के सदस्य आदर की दृष्टि से देखते हैं। इनका निर्माण सामाजिक अन्तक्रियाओं के दौरान या व्यक्तिगत चेतना के पारम्परिक प्रभावों के फलस्वरूप होता है।

ये ही बाद में सामाजिक प्रतीकों के रूप में विकसित हो जाते हैं। राष्ट्रीय ध्वज सामूहिक प्रतिनिधार का एक श्रेष्ठ उदाहरण है जो समूह विशेष अर्थात किसी राष्ट्र की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है।

आत्मदर्पण (Looking Glass Self)

दूसरे व्यक्तियों द्वारा व्यक्त प्रतिक्रिया के आधार पर 'स्व' का निर्माण होता है। इस प्रतिक्रिया को **सी0एच0कूले** ने 'आत्मदर्पण' कहा है। इस प्रक्रिया में दूसरे व्यक्ति अर्थात् समाज, दर्पण का कार्य करता है। जिसमें व्यक्ति अपनी छवि देखता है। यह छवि दूसरे व्यक्तियों की उस व्यक्ति के प्रति व्यक्त प्रतिक्रिया होती है। दूसरे व्यक्ति उसके विषय में क्या सोचते हैं या क्या कहते हैं, इसी के आधार पर वह अपने विषयक में जो धारणा बनाता है, वह 'स्व; की रचना है। इसे 'सामाजिक स्व' भी कहते हैं।

इद्म (Id)

व्यक्तित्व विभाजन की अपनी योजना में प्रसिद्ध मनोविश्लेषक **एस0फ्रायड** ने अचेतन की संज्ञा दी है जो अव्यवस्थित, जन्मजात, मूलप्रवृत्यात्मक, आवेगों को तत्काल तृष्टि के गुणों से युक्त होता हैं इद्म का निर्माण

दमित, पाशविक एवं असमाजिक इच्छाओं एवं आवेगों द्वारा होता है। व्यक्तित्व के इस भाग को तर्कहीन तथा अनैतिक माना जाता है। यह कामूक तथा अक्रामक दोनों असीमित शक्तियों का भंडार है।

अहम् (Ego)

व्यक्तित्व का वह भाग अहम् के नाम से जाना जाता है जो व्यक्ति के वास्तविक तथ्यों की चेतन जानकारी देता है। मनोविश्लेषण में (**फ्रायड द्वारा**) अहम् व्यक्ति का वह अंश माना गया है जिसका कार्य 'इड' की प्रकृत इच्छा–भावों और नैतिक मन (पराहम्) के कठोर नियमों के बीच मध्यस्थता करना है। यह भाग अंशिक रूप से चेतन व आंशिक रूप से अचेतन होता है। इड की भाँति यह भाग तात्कालिक एवं प्रकृत सुख नहीं चाहता, किन्तु यह वास्तविक सापेक्ष सुख पाने में इड की मदद अवश्य करता है।

पराहम् (Super Ego)

व्यक्तित्व का वह भाग पराहम् कहलाता है जो नैतिकता का प्रतिनिधित्व करता है, वास्तविकता का नहीं। नैतिक मन प्रायः बलवान शक्तियों और व्यक्तित्व का प्रमुख निर्धारक होता है। इसी के आधार पर मानव की समस्त क्रियाओं की आलोचना–प्रव्यालोचना होती है और व्यक्ति अनुचित कार्य करने से डरता हैं इसका प्रमुख व्यक्तित्व के अन्य भागों 'इड' तथा 'अहम' पर होता है। इसका विकास अहम से होता है और यह अहम् की क्रियाओं का ही प्रतिफल है।

15.11 अभ्यास हेतु प्रश्न एवं उत्तर

1. सामूहिक प्रतिनिधान की धारणा के आधार पर समाजीकरण का सिद्धांत किसने विकसित किया है?

   (क) कूले (ख) मीड (ग) मार्क्स (घ) दुर्खीम

2. 'स्वचेतन इगो' और 'सुपर इगो' के आधार पर समाजीकरण के सिद्धांत की व्याख्या का श्रेय किसको जाता है? और व्यक्ति बनने की प्रक्रिया को किसने सामाजिक कहा है?

   (क) वेबर(ख) सोरोकिन (ग) मीड (घ) फ्रायड

3. 'इड' की धारणा किसने विकसित है?

   (क) कॉम्ट (ख) फ्रायड (ग) पारसन्स (घ) मर्टन

4. 'Human Nature and the Social Order' पुस्तक के लेखक निम्नलिखित में से कौन हैं?

   (क) कूले (ख) फ्रायड (ग) मीड (घ)वेबर

5. 'Mind, Self and Society' नामक कृति किसके द्वारा लिखी गई है?

   (क) जॉनसन (ख) मीड (ग) फ्रायड (घ) कूले

उत्तरमाला– 1.(घ) 2.(ग) 3.(ख) 4.(क) 5.(ख)

15.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

इमाईल दुर्खीम– सोश्योलॉजी एण्ड फिलॉसोफी (1953), रटलेज, न्यूयार्क।

एल.पीयरे और– सोश्यल साइकोलॉजी (1949), मैक्ग्रो हील बुक कम्पनी, न्यूयार्क।
एफ.वर्थ

15.13 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

किम्बाल यंग– हैण्डबुक ऑफ सोश्यल साइकोलॉजी, रटलेज एण्ड केगन पॉल लिमिटेड, लंदन, 1957

15.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. **कूले** और **मीड** के समाजीकरण के सिद्धांतों की विवेचना कीजिए।
2. **दुर्खीम** का समाजीकरण का सिद्धांत क्या है?
3. समाजीकरण के प्रमुख सिद्धांतों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. दुर्खीम और कूले के सिद्धांत का तुलनात्मक वर्णन कीजिए।
5. चार्ल्स कूले के समाजीकरण के सिद्धांत का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
6. मीड के समाजीकरण के सिद्धांत का वर्णन कीजिए तथा यह उल्लेख कीजिए कि फ्रायड के समाजीकरण के सिद्धांत से यह किस प्रकार भिन्न है।

इकाई—16

व्यक्तित्वः परिभाषा, प्रकार एवं प्रभावित करने वाले कारक व सामाजिक कारक

इकाई की रूपरेखा

16.1 उद्देश्य

16.2 प्रस्तावना

16.3 व्यक्तित्व

16.4 अवधारणा

16.5 व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाषा

16.6 व्यक्तित्व के प्रकार

16.7 व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक

16.8 व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक

16.9 सारांश

16.10 शब्दावली

16.11 अभ्यास हेतु प्रश्न एवं उत्तर

16.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

16.13 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

16.14 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ पायेंगे कि –

- ✓ व्यक्तित्व का सही अर्थ एवं परिभाषा क्या है।
- ✓ व्यक्तित्व के कितने प्रकार हैं तथा इसे प्रभावित करने वाले कारक कौन से हैं।
- ✓ वर्तमान समय में व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक समाज में क्या भूमिका अदा करते हैं।

16.2 प्रस्तावना

''मनुष्य की उत्कृष्ट विशेषता उसका व्यक्तित्व है।'' –आलपोर्ट

व्यक्तित्व सामाजिक मनोविज्ञान की अत्यंत महत्वपूर्ण एवं केन्द्रीय अवधारणा है। लोगों का सामाजिक व्यवहार एवं अन्तःक्रिया, जो कि सामाजिक मनोविज्ञान की प्रमुख विषय वस्तु है, उसके व्यक्तित्व पर ही निर्भर रहती है। व्यक्ति कोई जन्मजात वस्तु नहीं है वरन् यह व्यक्ति की वंशानुक्रम से प्राप्त प्राणीशास्त्रीय क्षमताओं तथा उसके सामाजिक व सांस्कृतिक पर्यावरण के बीच दीर्घकालीन अन्तःक्रियात्मक प्रक्रिया का परिणाम है।

प्राचीन काल में व्यक्तित्व ईश्वरीय देन समझा जाता था। कोई व्यक्ति प्रभावशाली है, सामान्य बुद्धि का अथवा व्यक्ति प्रभावशाली है, सामान्य बुद्धि का अथवा मूढ़ है। यह ईश्वरीय इच्छा का परिणाम समझा जाता था। इस प्रकार ईश्वर की कृपा के आधार पर व्यक्ति का व्यक्तित्व जन्म के समय से ही निश्चित हो जाता था और आजीवन अपरिवर्तित रहता था। परन्तु आधुनिक युग में व्यक्तित्व के संबंध में इस विचारधारा में विश्वास नहीं किया जाता।

16.3 व्यक्तित्व

व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और सामाजिक गुणों का वह संगठित एवं गतिशील संगठन व्यक्तित्व कहलाता है जिसकी अभिव्यक्ति अन्य व्यक्तियों के प्रति रोज़मर्रा के सामाजिक जीवन के आदान–प्रदान के दौरान होती है। व्यक्तित्व की रचना जैविकीय रूप में हस्तांतरित मनो–दैहिक कार्य प्रणाली तथा सामाजिक रूप में संचारित सांस्कृतिक प्रतिमानों के आधार पर होती है। हमारे विचारों, मनोभावों तथा आचरण संबंधी कार्यकलापों का मिला–जुला जो प्रभाव दूसरों पर पड़ता है, उसी से व्यक्तित्व का ढाँचा तैयार होता है। व्यक्तित्व का सामान्य प्रचलित अर्थ व्यक्ति के मात्र शारीरिक गठन यथा रूप–रंग, नाक–नक्श और चाल–ढाल को ही महत्व देता है। किन्तु यह व्यक्तित्व का एक ही पक्ष (बाहय) ही है। इसमें आन्तरिक पक्ष के गुण, विचार, मूल्य, आचरण, विश्वास आदि सम्मिलित नहीं होते।

16.4 अवधारणा

'व्यक्तित्व' शब्द का उदगम लैटिन भाषा के '**पर्सनेअर**' शब्द से माना गया है, जिसका तात्पर्य ध्वनि करने के सदृश्य से है। 'व्यक्तित्व' शब्द एक पात्र की आवाज को भी व्यक्त करता है जो **वेश बदले हुए** होता है। ईसा के एक सदी पूर्व '**पर्सोना**' शब्द व्यक्ति के कार्यों को स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त किया जाता था। अधिकतर नाटकों आदि में इस शब्द की महत्ता थी। किन्तु वर्तमान काल में प्रायः 'व्यक्तित्व' शब्द से हमारा तात्पर्य ऐसे गुणों के संगठन से है जिसमें बहुत से मानवीय गुण अन्तर्निहित और संगठित होते हैं। किन्तु व्यक्तित्व का यह विचार मानवीय गुणों के बारे में हमें कोई निश्चित माप नहीं देता।

कुछ व्यक्ति अपना मत इस प्रकार प्रकट करते हैं कि व्यक्तित्व में वे सभी बातें आती हैं जिनको लेकर एक व्यक्ति पैदा होता है। जिनको वातावरण प्रभावित नहीं कर पाता और जो व्यक्ति के प्रत्येक क्रिया में झलकती हैं। कुछ अन्य व्यक्ति व्यक्तित्व की परिभाषा इस प्रकार देते हैं कि व्यक्तित्व ही व्यक्ति है। किन्तु व्यक्ति और व्यक्तित्व दो अलग–अलग शब्द है जिसका एक–दूसरे से संबंध रहते हुए भी बहुत विभेद है। यही नहीं कुछ व्यक्ति व्यक्तित्व के बारे में स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि व्यक्तित्व मानवीय व्यवहार के प्रतिमान हैं जो किसी

परिस्थिति–विशेष के प्रत्युत्तर में किये जाते हैं और इनका उस परिस्थिति विशेष से अलग कोई अस्तित्व नहीं होता है। इस प्रकार विभिन्न मतों का मूल्यांकन करते हुए इस निष्कर्ष पर आते हैं कि व्यक्तित्व संबंधी सामान्य विचार बहुत ही व्यापक है और विभिन्न व्यक्ति मतानुसार स्पष्ट करते हैं।

16.5 व्यक्तित्व का अर्थ एवं परिभाषा

व्यक्तित्व शब्द अंग्रेज़ी भाषा के पर्सनालिटी शब्द का हिन्दी रूपान्तर है जो स्वयं लैटिन भाषा के **पर्सोना** शब्द से निकला है जिसका अर्थ है **नकाब** अथवा कृत्रिम चेहरा। पर्सोना शब्द भी ग्रीक भाषा के प्रसोपोन शब्द से बना है जिसका अर्थ है आकृति अथवा चेहरे का भाव। इस प्रकार शाब्दिक अर्थों में व्यक्तित्व का अर्थ है किसी व्यक्ति का बाहय रूप अर्थात जैसा वह बाहर से दिखता है। परन्तु मनोविज्ञान में व्यक्तित्व का अर्थ अधिक व्यापक है। विभिन्न विद्वानों ने इसे अनेक अर्थों में प्रयुक्त तथा परिभाषित किया है। **ऑलपोर्ट** ने 50 तरीकों की एक सूची तैयार की है जिन आधारों पर व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग किया जाता है।

ऑलपोर्ट ने व्यक्तित्व की परिभाषा करते हुए लिखा है कि ''व्यक्तित्व व्यक्ति की उन मनो–दैहिक पद्धतियों का गतिशील संगठन है जो वातावरण के साथ उसका अद्वितीय समायोजन स्थापित करता है।'' **ऑलपोर्ट** ने इस परिभाषा में व्यक्तित्व की मनो–दैहिक विशेषताओं के साथ–साथ सामाजिक अनुकूलन की विशेषता को भी महत्व प्रदान किया है। उन्होंने व्यक्तित्व को मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक गुणों का एक संगठन माना है। यह संगठन गतिशील होता है जो समय एवं परिस्थिति के साथ–साथ परिवर्तित होता रहता है। मनो–शारीरिक विशेषताओं का यह संगठन व्यक्ति को उसके वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करने में सहायक होता है।

प्रिन्स के शब्दों में ''व्यक्तित्व व्यक्ति की समस्त जैविकीय आन्तरिक व्यवस्थाओं, प्रेरणाओं, प्रवृत्तियों, अभिरूचियों और मूलप्रवृत्तियों तथा अपने अनुभव द्वारा अर्जित प्रेरणाओं एवं प्रवृत्तियों का सम्पूर्ण योग है।'' **प्रिन्स** ने व्यक्तित्व को जैविकीय तथा अनुभव के आधार पर अर्जित मनोवैज्ञानिक एवं जैविकीय गुणों का संगठन माना है। मन्न के अनुसार, ''व्यक्तित्व को एक व्यक्ति की बनावट, व्यवहार के ढंग, रूचियों, अभिवृत्तियों, क्षमताओं, योग्यताओं तथा प्रवीणता के अत्याधिक विशिष्ट संगठन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''

मन्न ने व्यक्तित्व को व्यक्ति के विभिन्न शारीरिक, मानसिक एवं व्यवहार सम्बन्धी गुणों का एक संगठन बताया है। उनके अनुसार विभिन्न विशेषताओं का यह संगठन विशिष्टता लिए हुए होता है जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से पृथक करता है। **ड्रेवर** ने व्यक्तित्व को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ''व्यक्तित्व व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक गुणों का वह समन्वित और गतिशील संगठन है जो व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के साथ सामाजिक जीवन के आदान–प्रदान में प्रदर्शित करता है।'' ड्रेवर ने व्यक्तित्व के अन्तर्गत सामाजिक–मानसिक तथा सामाजिक–सांस्कृतिक सभी गुणों का संगठन माना है। इसी संगठन के आधार पर व्यक्ति समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ सामाजिक अन्तःक्रियाएँ एवं सम्बन्ध स्थापित करता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि ''व्यक्तित्व व्यक्ति के सम्पूर्ण जैविकीय तथा अर्जित शारीरिक, मानसिक व सामाजिक–सांस्कृतिक गुणों का एक गतिशील संगठन है। जिसके आधार पर व्यक्ति अपने वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करता है तथा जिसका प्रदर्शन व्यक्ति अपने सामाजिक जीवन के आदान–प्रदान में करता है।''

16.6 व्यक्तित्व के प्रकार

विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न आधारों पर व्यक्तित्व के अनेकानेक प्रकार बताए हैं। **अरस्तु** ने नाक की बनावट के आधार पर, **हैवलॉक ऐलिस** ने बालों के आधार पर, गाल ने मस्तिक की स्थिति के आधार पर, **कैनन** ने ग्रन्थि व्यवस्था के आधार पर, **क्रेश्चमर और शैल्डन** ने शारीरिक रचना के आधार पर, **हिप्पोक्रेटस बुहलर** आदि विद्वानों ने स्वभाव के आधार पर, **जेम्स, युग** आदि ने मनौवैज्ञानिक आधार पर **थॉमस एवं जैनिकी, स्प्रेन्गर, मुरे, लासवैल** आदि विद्धानों ने समाजशास्त्रीय आधार पर व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकार बताये हैं। व्यक्तित्व के इन विभिन्न प्रकारों को शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक निम्न तीन वर्गों में रखकर प्रस्तुत किया जा सकता है–

(क) शारीरिक प्रकार–व्यक्ति के व्यक्तित्व में पाये जाने वाले विभिन्न शारीरिक गुणों के आधार पर अनेक विद्धानों ने व्यक्तित्व के निम्नलिखित वर्गीकरण प्रस्तुत किए हैं–

1- क्रेश्चमर ने व्यक्तित्व के निम्न प्रकार बताये हैं–

(I) ऐसथेनिक–लम्बे–पतले, नाजुक स्वभाव वाले, एकान्तप्रिय, भावुक तथा आलोचक प्रकृति के।

(II) ऐथलेटिक–सुविकसित, सुडौल शरीर वाले तथा दूसरों से कम सम्पर्क रखने वाले।

(III) पिकनिक–छोटे कद के, भारी–भरकम शरीर वाले तथा अधिक मिलनसार।

(IV) डिस्प्लैस्टिक–इसके अन्तर्गत वे आते है जो उपर्युक्त तीनों वर्गों के अन्तर्गत नहीं आते हैं।

2- शैल्डन ने व्यक्तित्व के निम्न तीन प्रकार बताये हैं–

(I) स्थूलकाय– मोटे, गोल–मटोल, खाने के शौकीन, चिन्तित तथा आलसी।

(II) गठित–काय– हष्टपुष्ट, साहसी तथा प्रतिस्पर्द्धा की तीव्र भावना वाले।

(III) कृश–काय– दुबले–पतले, लम्बे शरीर वाले, असामाजिक एवं सशक्ति प्रकृति के।

(ख) मनोवैज्ञानिक प्रकार–व्यक्ति के व्यक्तित्व में पाये जाने वाले मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर विभिन्न विद्धानों ने व्यक्तित्व के निम्नलिखित वर्गीकरण प्रस्तुत किए हैं–

1- हिप्पोक्रेटस ने व्यक्तित्व के चार प्रकार बताये हैं–

(i) वायुतत्व–उत्साही, आशावादी, मिलनसार एवं प्रसन्नचित।

(ii) जलतत्व–निर्बल, निष्क्रिय एवं आलसी।

(iii) पृथ्वीतत्व–उदासीन, निराश, मौन एवं चिन्तनशील।

(iv) अग्नितत्व–क्रोधी एवं उग्र स्वभाव वाले।

2- जेम्स ने व्यक्तित्व के निम्न दो प्रकार बताये हैं–

(i) नर्म स्वभाव वाले–आदर्शवादी, धार्मिक एवं रूढ़िवादी।

(ii)सख्त प्रकृति वाले–व्यवहारवादी एवं भौतिक दृष्टिकोण।

3- युंग ने व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताये हैं–

(i) अर्न्तमुखी–आत्मकेन्द्रित, एकान्तप्रिय, विचार–प्रधान तथा दर्शन एवं विज्ञान में रूचि रखने वाले।

(ii) बहिर्मुखी–बाहय संसार में रूचि, क्रिया–प्रधान, आत्म प्रदर्शनप्रिय एवं महत्वाकांक्षा युक्त।

(iii)उभयमुखी–उपर्युक्त दोनों प्रकार के व्यक्तित्व का समन्वय ।

4- केन्टल ने दो प्रकार के व्यक्तित्व बताये हैं–

(i) बेगवान–प्रसन्नमुख एवं बहिर्मुखी प्रकृति के।

(ii) बेगहीन–अन्तर्मुखी प्रकृति के।

5- स्टीफेन्सन ने व्यक्तित्व के दो प्रकार बताये हैं–

I. प्रसारक–अन्तर्मुखी प्रकृति के।

II. अप्रसारक–बहिर्मुखी प्रकृति के।

6- पैवलॉव ने व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताये हैं–

I. क्रोधी–उग्र एवं क्रोधी प्रकृति के।

II. केन्द्रीय–उत्साही प्रकृति के।

III. उदासीन–हतोत्साही एवं निराशा।

7- थार्नडाइक ने व्यक्तित्व के निम्न तीन प्रकार बताये हैं–

I. सूक्ष्म विचारक–कार्य करने से पहले अच्छाई–बुराई पर भली–भॉति विचार करने वाले, दर्शन, विज्ञान, तर्क गणित, मनोविज्ञान में रूचि।

II. प्रत्यय विचारक–शब्द, संख्या, संकेत आदि के आधार पर चिन्तन

III. स्थूल विचारक–क्रियाशील प्रकृति के।

8- टरमन ने बुद्धि लब्धि के आधार पर व्यक्तित्व के निम्न प्रकार बताये हैं–

I. अति प्रतिभाशाली

II. प्रतिभाशाली

III. अत्युत्कृष्ट

IV. उत्कृष्ट

V. सामान्य

VI. मन्दबुद्धि

VII. निर्बल बुद्धि

VIII. हीन बुद्धि

IX. मूर्ख

X. मूढ़

XI. जड़

9- भारतीय आयुर्वेदशास्त्र के आधार पर व्यक्तित्व तीन प्रकार के होते हैं–

I. बात प्रधान–वे वयक्ति जिनमें 'बात' की प्रधानता होती है।

II. पित्त प्रधान–वे व्यक्ति जिनमें 'पित्त की प्रधानता होती है।

III. कफ प्रधान–वे व्यक्ति जिनमें 'कफ की प्रधानता होती है।

10- कपिलमुनि ने 'सांख्यशास्त्र' में निम्न तीन प्रकार के व्यक्तित्व बताये हैं। 'गीता' में भी व्यक्तित्व के इन्हीं तीन प्रकारों का वर्णन किया गया है–

I. सतोगुणी–सौम्य, शान्त, सुख–दुख में समान।

II. रजोगुणी–चंचल, उत्तेजित प्रकृति के।

III. तमोगुणी–आलसी प्रकृति के।

(ग) **समाजिक प्रकार**– व्यक्ति के सामाजिक गुणों के आधार पर विभिन्न विद्वानों ने व्यक्तित्व के निम्नलिखित वर्गीकरण किये हैं–

1- बुहलर ने व्यक्तित्व के निम्न तीन प्रकार बताये हैं–

I. सामाजिक अन्ध–स्वयं में मस्त।
II. समाज निर्भर–मिलनसार।
III. समाज उदासीन–दूसरों से मिलकर न आनन्द, न सुख।

2- स्प्रेंगर ने व्यक्तित्व के छः प्रकार बताये हैं–

I. सिद्धान्तवादी–सत्य एवं ज्ञान की खोज में रूचि रखने वाला।
II. आर्थिक–प्रत्येक वस्तु एवं परिस्थिति पर व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से विचार करने वाला।
III. राजनैतिक–शक्ति एवं सत्ता की तीव्र इच्छा रखने वाला।
IV. धार्मिक–आध्यात्मिकता एवं ईश्वर में विश्वास रखने वाला।
V. सामाजिक–मानवतावादी, दया एवं सहानुभूति रखने वाला।
VI. रागात्मक–सौन्दर्य–प्रेमी, प्रत्येक वस्तु को कलात्मक दृष्टि से देखने वाला।

3- थॉमस एवं ज़ैनिकी ने व्यक्तित्व के निम्न तीन प्रकार बताये हैं–

I. व्यावहारिक–आत्म–सुरक्षा को महत्व देने वाला।
II. बोहेमियन–वर्तमान परिस्थिति के अनुसार कार्य करने वाला।
III. रचनात्मक–जो कुछ नवीन रचना करना चाहता है।

4- मूरे ने व्यक्तित्व के चार प्रकार बताये हैं–

I. सिद्धान्तवादी–सिद्धान्तों में रूचि रखने वाला।
II. मानवतावादी–मानवता की भावना से ओत–प्रोत।
III. संवेदनशील–सौन्दर्य प्रिय, कलाकार, प्रेमी आदि।
IV. व्यवहारिक–किसान, सैनिक, श्रमिक आदि।

5- भारतीय वर्ण व्यवस्था के आधार पर व्यक्तित्व निम्न चार प्रकार के होते हैं–

I. ब्राहमण–अध्ययन–अध्यापन, तप, त्याग, परोपकार में रूचि रखने वाले।
II. क्षत्रिय–वीरता, साहस, युद्ध एवं रक्षा की भावना वाले।
III. वैश्य–कृषि, व्यापार एवं धन–संग्रह में रूचि रखने वाले।
IV. शूद्र–दासवृत्ति एवं सेवा भाव वाले।

व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाओं तथा विभिन्न आधारों पर अनेक सिद्धानों द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व के उपर्युक्त विविध प्रकारों के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व एक विस्तृत एवं विभिन्न अर्थों वाली अवधारणा है।

16.7 व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक

''मानव का व्यक्तित्व जन्म से ही पूर्ण नहीं होता। जन्म के समय उसके पास न भाषा होती है, न समझ, उसके न कोई विचार होते हैं, न विश्वास, वह न नियम जानता है, न संस्कृति, लेकिन सामाजिक सीख की लम्बी प्रक्रिया और अनुभवों के द्वारा उसमें व्यक्तित्व सम्बन्धी बहुत से सामाजिक गुणों का समावेश हो जाता है।'' **क्यूबर** का यह कथन बिल्कुल सत्य है कि जन्म के समय मनुष्य तथा पशु के बच्चों में प्राणिशास्त्रीय आधार पर अन्तर

अवश्य होता है, लेकिन उसका व्यवहार तथा स्वभाव पशुओं की भाँति ही होता हैं। सामाजिक सीख एवं समाजीकरण की लम्बी प्रक्रिया मानव–शिशु को पशुता से मानवता की ओर लाती है एवं उसके व्यक्तित्व का विकास करती हैं। इस प्रकार व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रारम्भ से ही पूर्ण नहीं होता अपितु सामाजिक सीख एवं समाजीकरण की दीर्घ प्रक्रिया, जो व्यक्ति के वातावरण अर्थात समाज और संस्कृति पर निर्भर करती है, के दौरान व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है।

लेकिन इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि व्यक्तित्व का विकास पूर्णतया वातावरण पर ही निर्भर है, क्योंकि इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि ''वही अग्नि जो मक्खन को पिघलाती है, अंडे को सख्त कर देती है अर्थात एक ही पर्यावरण में रहकर एक बच्चा संत बन जाता है तो दूसरा अपराधी।'' अतः व्यक्तित्व के विकास के लिए न केवल पर्यावरण अर्थात् समाज और संस्कृति ही आवश्यक हैं वरन् उसका जैविकीय ढाँचा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

वास्तव में यह प्रश्न बड़ा विवादास्पद है कि व्यक्तित्व के विकास में आनुवंशिकता अधिक महत्वपूर्ण है अथवा परिवेश। **वुडवर्थ** ने इस समस्या को बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है कि ''क्या माली धरती को उपजाऊ बनाने की ओर अधिक ध्यान दें अथवा उत्तम चीज़ों की ओर।'' व्यक्तित्व के विकास से सम्बन्धित इस विवाद में एक ओर **केश्चमर, शैल्डन** आदि विद्वान हैं जो व्यक्तित्व के विकास के लिए जैविकीय ढाँचे को ही महत्वपूर्ण मानते हैं जबकि दूसरी ओर **वॉटसन** आदि व्यवहारवादी विद्वान हैं जो जैविकीय ढाँचे को बिल्कुल महत्व न देकर व्यक्तित्व के विकास में पर्यावरण को ही सब–कुछ मानते हैं।

वास्तविकता यह कि मानव व्यक्तित्व न तो पूर्णतया आनुवंशिकता पर निर्भर रहता है और न ही परिवेश पर अपितु व्यक्तित्व के विकास में आनुवंशिकता और परिवेश दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। **मर्फी** के अनुसार व्यक्तित्व न तो जैविकीय है और न सामाजिक वरन् जीव–सामाजिक है। वह दोनों कारक एक–दूसरे के पूरक हैं। अतः इनमें से किसी को भी छोड़ा नहीं जा सकता। **मैकाइवर एवं पेज** ने उचित ही लिखा है कि ''जीवन की प्रत्येक घटना दोनों का फल है। किसी परिणाम के लिए जितना एक आवश्यक है उतना ही दूसरा। न तो किसी को हटाया जा सकता है और न ही सर्वथा अलग किया जा सकता है।'' **चार्ल्स फॉक्स** ने भी लिखा है कि ''सावयव और पर्यावरण दोनों मिलकर एक इकाई बनाते हैं जिन्हें केवल कल्पना–लोक से ही अलग किया जा सकता है, वास्तविकता में नहीं'' दोनों के पारस्परिक सहयोग के सम्बन्ध में **लेन्डिस एवं लेन्डिस** ने भी लिखा है कि ''आनुवंशिकता हमें विकसित होने की क्षमताएँ प्रदान करती है परन्तु इन क्षमताओं के विकास का अवसर परिवेश से ही मिलता है। आनुवंशिकता से हमें क्रियाशील पूँजी प्राप्त होती है और परिवेश उसे व्यय करने का अवसर देता है।'' इस प्रकार व्यक्तित्व के विकास में व्यक्ति का जैविकीय ढाँचा तथा परिवेश दोनों ही आवश्यक हैं। **मन्न तथा बोरिंग** का भी कथन है कि जब प्राणिशास्त्रीय लक्षण व्यक्ति के सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश के साथ अनतः क्रिया करते हैं तभी व्यक्तित्व का विकास होता है।

16.8 व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारक

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह समाज में ही जन्म लेता है, समाज में ही उसका पालन–पोषण होता है और समाज में रहकर ही वह बड़ा होता है। उसके तथा उसके समाज के बीच परस्पर आदान–प्रदान की प्रक्रिया के द्वारा उसका समाजीकरण होता है अर्थात व्यक्ति के व्यक्तित्व का रूप उसके सामाजिक सम्बन्धों पर निर्भर करता हैं। **मैकाइवर एवं पेज** ने कहा है कि ''प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक सम्बन्धों की उपज है।

''वास्तव में व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है, वे एक–दूसरे के पूरक कहे जा सकते हैं। मैकाइवर एवं पेज के शब्दों में,''बिना समाज एवं सामाजिक विरासत की सहायता के व्यक्ति के व्यक्तित्व का

विकास एवं अस्तित्व सम्भव नहीं है। इस प्रकार परिवार, पड़ोस, स्कूल, समाज की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संस्थाएँ आदि अनेक सामाजिक कारक व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं। व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण सामाजिक कारक निम्नलिखित हैं–

(1) **परिवार**–परिवार मानव जीवन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण एवं आधारभूत संस्था है। अतः व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में परिवार की भूमिका अद्वितीय है। यह व्यक्ति के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन का केन्द्र है। परिवार में रहकर ही व्यक्ति में प्रेम, सेवा, सहयोग, सहानुभूति, आज्ञापालन आदि गुणों का विकास होता है तथा यही मनुष्य समाजीकरण सन्तानोत्पत्ति, यौन, आर्थिक उत्पादन, शिक्षा धर्म, मनोरंजन आदि आवश्यकताओं को पूरा करता है। इस प्रकार परिवार मानव जीवन की मूलभूत जैविकीय, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को पूरा करने वाली सामाजिक इकाई है। जन्म से लेकर मृत्यु तक परिवार व्यक्ति के व्यवहार को जितना अधिक संगठित, नियमित एवं नियंत्रित करता है उतना शायद समाज का कोई संगठन नहीं करता। व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करने के लिए जिन व्यवहारों, आचरणों, मूल्यों एवं आदर्शों का पालन करना आवश्यक है उन सबकी समुचित शिक्षा परिवार में ही मिलती है। **डेविस** ने लिखा है कि ''बालक के संदर्भ में चूँकि परिवार प्रथम, सर्वाधिक प्रभावी, सर्वाधिक निकट एवं एक सम्पूर्ण ऐजेन्सी है। अतः परिवार व्यक्तित्व के निर्माण में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।'' परिवार बच्चे की प्रथम पाठशाला है और माता–पिता बच्चे की दो प्राथमिक पुस्तकें हैं। बच्चा सुझाव तथा अनुकरण की प्रक्रियाओं द्वारा इन्हीं दो पुस्तकों के अनुसार अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है। **फ्रायड तथा एडलर** ने कहा है कि बच्चा परिवार में जो कुछ बन जाता है वह बड़ा होकर समाज में वैसा ही व्यवहार करता है। उन्होंने परिवार को व्यक्तित्व के विकास का मूल आधार माना है। **साइमण्डस** के अनुसार, यदि एक व्यक्ति के माता–पिता स्वस्थ, धीर, साहसी तथा स्नेही हैं तो उस व्यक्ति के साथ एक अच्छा नागरिक होने के अवसर रहते हैं।''

इसके विपरीत, यदि परिवार में माता–पिता एवं अन्य सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध अस्वस्थ एवं तनावपूर्ण होंगे तो बच्चे का व्यक्तित्व भी इसी प्रकार का बन जायेगा। इस प्रकार परिवार ही बच्चे को महान बनाता है और परिवार ही उसे अपराधी बनाता है। **हीली एवं ब्रोनर** ने 4000 बाल अपराधियों का अध्ययन करके देखा तो पाया कि उनमें से 50 प्रतिशत टूटे परिवारों से सम्बद्ध थे। **सदरलैण्ड** ने 30 प्रतिशत से 60 प्रतिशत बाल–अपराधियों को नष्ट घरों का सदस्य पाया। **जॉनसन** ने अपराधी बच्चों में से 52 प्रतिशत बच्चों को बर्वाद परिवारों का पाया। **बर्ट, सालसन** तथा **मैरिल** के अनुसार भी भग्न परिवारों से बाल–अपराधियों की संख्या अधिक होती है। स्पष्ट है कि परिवार का अस्वस्थ वातावरण बच्चे के व्यक्तित्व को भी अस्वस्थ बना देता है। इस प्रकार व्यक्तित्व के विकास में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका के सम्बन्ध में **सैमुअल** के शब्दों को दोहराया जा सकता है कि ''मुख्यतः घर में ही दिल खुलता है, आदतों का निर्माण होता है, बुद्धि जागृत होती है तथा अच्छे–बुरे चरित्र ढलते हैं।''

(2) **स्कूल**–परिवार के पश्चात् व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में दूसरा स्थान स्कूल का है। स्कूल में बच्चे की बुद्धि तथा ज्ञान को विकसित किया जाता है जो उसके व्यक्तित्व को उचित दिशा में मोड़ते हैं। इसके साथ ही स्कूल में बच्चे को नियमित, नियन्त्रित एवं अनुशासित व्यवहार करने की शिक्षा मिलती है, जिसके द्वारा उसके व्यवहार को समायोजित दिशा प्रदान होती है। स्कूल में अन्य सहपाठियों के साथ मिल–जुलकर रहने एवं कार्य करने की शिक्षा मिलती हैं जिससे बच्चे में पारस्परिक सहयोग एवं सहानुभूति की भावना का विकास होता है।

खेल एवं अन्य सांस्कृतिक कार्यों के द्वारा उसमें कर्तव्यपालन एवं उत्तरदायित्व निर्वाह करने की शिक्षा मिलती है। स्कूल में शिक्षक बच्चों के समक्ष आदर्श व्यवहार एवं विचार प्रस्तुत करते हैं। बच्चा इन्हीं व्यवहारों एवं विचारों का अनुसरण करता है, इससे उसका व्यवहार भी आदर्श व्यवहार की ओर उन्मुख हो जाता है। इस प्रकार योग्य एवं आदर्श शिक्षक बच्चे के व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास में सहायक होते हैं। लेकिन अयोग्य एवं दोषपूर्ण शिक्षक बच्चे के विनाश का कारण भी बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त स्कूल में बच्चा अनेक गुण अपनी पुस्तकों से भी ग्रहण करता हैं **रॉबर्ट बीरस्टीड** ने लिखा है कि ''यह स्कूल में ही होता है कि संस्कृति का सही तरीके से प्रेषण और उपार्जन होता है। जिससे एक पीढ़ी का साहित्य, ज्ञान–विज्ञान और कला दूसरी पीढ़ी तक चलता रहता है। इस प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में स्कूल की भूमिका भी बहुत महत्वपूर्ण है।

(3) धर्म–व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में धर्म की भूमिका भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बच्चा किस आयु में क्या सीखेगा, उसका पालन–पोषण एवं शिक्षा–दीक्षा किस प्रकार होगी। जन्म से मृत्यु तक किन–किन संस्कारों को अपनाएगा, समाज में उसकी स्थिति एवं उत्तरदायित्वों की व्यवस्था तथा उचित–अनुचित आदि का निर्धारण धर्म के द्वारा ही होता है। मनुष्य अपने जीवन में कुछ सामान्य उद्देश्यों तथा मोक्ष, निर्वाण आदि को प्राप्त करना चाहता है, जो उसके व्यक्तित्व को संगठित करते हैं। इन अनन्त उद्देश्यों का निर्धारण धर्म के द्वारा ही होता है। धर्म मनुष्य में सदाचार, परोपकार, सेवाभाव, सत्याचरण, सहिष्णुता, समाज कल्याण आदि सद्गुणों का विकास करता है। **थामस ओ'डिया** के शब्दों में, "धर्म समूह में व्यक्ति का तादात्म्य स्थापित करता है, अनिश्चितता की स्थिति में उसकी सहायता करता है, निराशा में उसे ढाढ़स बँधाता है, समाज के लक्ष्यों से उसे सम्बन्धित करता है और उसके अन्दर तादात्म्य के तत्वों को पैदा करता है।'' धर्म मानव जीवन के उद्देश्यों को निश्चित करने, उन्हें प्राप्त करने के साधन निश्चित करने तथा जीवन की गतिविधियों को निर्देशित करने के लिए, सामाजिक मूल्यों का निर्माण करता है। यह मूल्य व्यक्ति की गतिविधियों को निर्देशित करने के लिए सामाजिक मूल्यों का निर्माण करता है। यह मूल्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के अंग बन जाते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि धर्म व्यक्तित्व के संगठन एवं विकास में बहुविध भूमिका अदा करता है।

(4) आर्थिक स्थिति–व्यक्तित्व के विकास में व्यक्ति के परिवार की आर्थिक स्थिति का प्रभाव भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। परिवार की सम्पत्ति, आय, जीवन–स्तर आदि आर्थिक स्थितियों का बच्चों की रूचियों, मनोवृत्तियों, आदतों अर्थात उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। धनी परिवारों में बच्चों की रूचियों, मनोवृत्तियों, आदतों अर्थात् उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। धनी परिवारों में बच्चों की मूलभूत एवं अन्य आवश्यकताओं की सरलता से पूर्ति होती रहती है। वे किसी प्रकार की चिन्ता, अभाव, असुरक्षा एवं हीनभावना का अनुभव नहीं करते। अतः उनके व्यक्तित्व के स्वाभाविक एवं संतुलित विकास होने के अवसर अधिक रहते हैं। इसके विपरीत निर्धन परिवारों में कभी–कभी जब बच्चों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति भी सरलता से नहीं हो पाती और वे चिन्ता, अभाव, असुरक्षा एवं दीनता की भावना से पीड़ित रहते हैं तो उनके व्यक्तित्व का स्वाभाविक एवं संतुलित विकास नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त प्रत्येक समाज में आर्थिक स्थिति के आधार पर धनी तथा निर्धन वर्ग की अपनी–अपनी अलग–अलग संस्कृति होती है और चूँकि व्यक्ति अपने व्यक्तित्व में अपनी संस्कृति के गुणों को ही ग्रहण करता है। अतः दोनो वर्गों के बच्चों के व्यक्तित्व में अन्तर देखने को मिलता हैं समाज की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के आधार पर भी व्यक्ति के व्यक्तित्व में अन्तर दिखाई देता है। उदाहरण के लिए कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में लोग धर्म, प्रथा, परम्परा, सहयोग, त्याग, सेवा–भाव, रूढ़िवादिता एवं भाग्यवादिता को महत्व देते हैं जबकि उद्योग प्रधान अर्थव्यवस्था में विज्ञान, व्यक्तिवाद, भौतिकवाद, प्रतिस्पर्द्धा आदि गुण व्यक्ति के व्यक्तित्व में पाये जाते हैं। इस प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व की रचना में आर्थिक स्थिति की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(5) सामाजिक संस्थाएँ– व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में समाजिक संस्थाओं का स्थान भी बहुत महत्वपूर्ण है। सामाजिक संस्थाएँ व्यक्ति के व्यक्तित्व के गुणों को नियमित एवं नियन्त्रित करती हैं। उदाहरण के लिए हमारे देश की जाति–व्यवस्था जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति के सम्पूर्ण विचारों, मनोवृत्तियों, आदतों, व्यवहारों तथा पारिवारिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक स्थिति एवं सामाजिक संबंधों का निर्धारण करती थी। जिसका व्यक्ति को अनिवार्य रूप से पालन करना पड़ता था। अतः जातीय नियमों में भिन्नता होने के कारण प्रत्येक जाति के व्यक्ति के व्यक्तित्व में अलग–अलग गुण पाये जाते थे। जातीय आधार पर ब्राह्मण बच्चों में जन्मजात गौरव एवं श्रेष्ठता तथा शुद्र बच्चों में जन्मजात अधमता एवं हीनता प्रारम्भ से ही पाई जाती है। इसी प्रकार जब हमारे देश में संयुक्त परिवार व्यवस्था थी तब लोगों में सहयेग, त्याग, परोपकार, आदर्शवादिता, धार्मिकता, रूढ़िवादिता आदि गुण पाये जाते थे। लेकिन आज के व्यक्तिवादी परिवार व्यक्ति में व्यक्तिवाद, प्रतिस्पर्द्धा एवं भौतिकवादी विचारों को विकसित कर रहे हैं। इस प्रकार व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक संस्थाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करती हैं।

(6) प्रस्थिति और भूमिका– प्रस्थिति और भूमिका की धारणाओं को स्पष्ट करते हुए **लिन्टन** ने लिखा है कि ''किसी व्यवस्था के अन्तर्गत किसी समय विशेष में व्यक्ति को जो स्थान अथवा गौरव प्राप्त होता है वही उस व्यवस्था के संदर्भ में उस व्यक्ति की प्रस्थिति है। अपनी इस प्रस्थिति का औचित्य सिद्ध करने के लिए व्यक्ति को जो कुछ करना पड़ता है वह उसकी भूमिका है।'' व्यक्ति की इस प्रस्थिति तथा इससे सम्बन्धित भूमिका का उसके व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रत्येक समाज में प्रत्येक प्रस्थिति एवं भूमिका से सम्बन्धित एक विशेष परिस्थिति है तथा कुछ मान्यताएँ, प्रवृत्तियों, आदतें एवं मूल्य होते हैं। किसी विशेष प्रस्थिति के अनुसार ही व्यवहार करना पड़ता है। अतः विभिन्न प्रस्थिति वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व में भिन्न–भिन्न विशेषताएँ एवं गुण पाये जाते हैं।

प्रस्थिति तथा भूमिका का निर्धारण करने वाले तत्वों में आयु, लिंग, नातेदारी तथा अर्थिक स्थिति प्रमुख हैं। आयु के आधार पर प्रत्येक समाज में विभिन्न आयु के व्यक्यिों से अलग–अलग प्रकार के व्यवहारों की आशा की जाती है। **मीड** ने न्यूगिनी की संस्कृति का उल्लेख करते हुए कहा है कि यहाँ बच्चों को प्रारम्भिक अवस्था से ही शारीरिक श्रम और आत्मनिर्भरता की शिक्ष दी जाती थी। अतः वे जैसे–जैसे प्रौढ़ावस्था की ओर बढ़ते हैं स्वयं को शारीरिक दृष्टि से आकर्षक एवं प्रशंसनीय बनाने का प्रयास करते हैं। **किड** ने अमेरिका की संस्कृति का उदाहरण देते हुए कहा है कि वहाँ बच्चों में प्रारम्भ से ही नम्रता, विनय तथा समाज–सेवा की भावना पैदा की जाती है। इसी प्रकार हमारे प्राचीन भारतीय समाज में वृद्धावस्था सम्मान एवं प्रतिष्ठा की सूचक थी जबकि एस्कीमो लोगों में वृद्धावस्था आर्थिक असुरक्षा अर्थात अभिशाप की स्थिति है। स्पष्ट है कि आयु के आधार पर समाज बच्चे से जैसी आशाएँ रखता है अर्थात जैसी प्रस्थिति एवं भूमिका प्रदान करता है बच्चे का व्यक्तित्व भी उसी के अनुरूप विकसित होता है। लिंग–भेद के आधार पर भी स्त्री व पुरूष को अलग–अलग प्रस्थिति एवं भूमिकाएँ प्राप्त होती है। अतः दोनो के व्यक्तित्व में भिन्नता देखने को मिलती है। लिंग के आधार पर लड़कों को प्रारम्भ से ही वीरता, शारीरिक श्रम, आत्मनिर्भरता एवं उत्तरदायित्व का पाठ पढ़ाया जाता है। जबकि लड़कियों से लज्जा, दया, कोमलता, प्रेम, सहानुभूति एवं सुकुमारिता की आशा की जाती है।

गोल्डन वाइज़र, मूरडॉक, मीड आदि विद्वानों ने व्यक्तित्व के विकास में लिंग–भेद को महत्वपूर्ण माना है। इसी प्रकार व्यक्तित्व को निश्चित करने में नातेदारी एवं आर्थिक स्थितियों का स्थान भी महत्वपूर्ण होता है।

(7) सामाजिक सीख की प्रक्रिया और व्यक्तित्व का विकास–क्यूबर ने लिखा है कि ''मनुष्य का व्यक्तित्व जन्म से ही पूर्ण नहीं होता है। जन्म के समय उसके पास न भाषा होती है, न समझ, उसके पास न कोई विचार होते हैं और न विश्वास, वह न नियम जानता है न संस्कृति, लेकिन सामाजिक सीख की लम्बी प्रक्रिया और अनुभवों के आधार पर उसमें व्यक्तित्व सम्बन्धी अनेक सामाजिक गुणों का समावेश हो जाता है।" वास्तव में हमारे व्यवहार के ढंग, आदतें, रूचियाँ, अभिवृत्तियाँ, आदर्श एवं मूल्य आदि सामाजिक सीख की प्रक्रिया द्वारा ही हमें प्राप्त होते हैं। मानव व्यवहार के निर्धारण में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य संस्कृति है जिसे मनुष्य सीख की प्रक्रिया द्वारा ही अर्जित करता है। **किम्बाल यंग** ने सामाजिक सीख की प्रक्रिया स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''सामाजिक सीख कुशलताओं, तथ्यों और मूल्यों की प्राप्ति की ओर संकेत करता है जो दूसरे व्यक्तियों के साथ सम्पर्क में अभ्यास के फलस्वरूप आते हैं।'' सामाजिक सीख द्वारा प्राप्त की गई यह कुशलताएँ, तथ्य एवं मूल्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में सहायक होती हैं। इन्हीं कुशलताओं एवं मूल्यों के आधार पर व्यक्ति अपने पर्यावरण के साथ अनुकूलन स्थापित करता है। पर्यावरण के साथ अनुकूलन स्थापित करना ही व्यक्तित्व का उद्देश्य है। जैसा कि **ऑलपोर्ट** ने कहा है कि ''व्यक्तित्व व्यक्ति की उन मनोवैहिक पद्धतियों का गतिशील संगठन है जो वातावरण के साथ उसका अद्वितीय समायोजन स्थापित करता है।'' इस प्रकार सीखने की प्रक्रिया के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व में उन गुणों का समावेश होता है जिनके आधार पर व्यक्ति अपने पर्यावरण के साथ समायोजन स्थापित करता है। वास्तव में परिस्थितियों से अनुकूलन स्थापित करने एवं अपनी रक्षा के लिए सीख बहुत आवश्यक है। हमारा व्यवहार, अभिवृत्तियाँ, आदतें, विचार मूल्य आदर्श, निष्ठाएँ, कुशलताएँ, स्थायीभाव आदि तथा वह सब कुछ जो हम आज हैं तथा कल होने की आशा एवं कल्पना करते हैं वह सब हमारी सीखने की प्रक्रिया पर ही आधारित है। इसी के आधार पर हमारे व्यक्तित्व का विकास होता है तथा पर्यावरण तथा परिवर्तित परिस्थितयों के साथ हमारा समायोजन सम्भव होता है। इसी आधार पर **किम्बाल यंग** ने कहा है कि ''सीखना व्यक्ति की उत्तेजन प्रत्युत्तर व्यवस्था में होने वाले उन परिवर्तनों को कहते हैं जो पर्यावरण में उत्पन्न उत्तेजनाओं पर निर्भर होते हैं।''

सीखने का एक और स्पष्ट परिणाम है–आदत। आदत शब्द का प्रयोग हम उन संगठित एवं अर्जित प्रतिक्रियाओं के लिए करते हैं जो बार–बार दोहराई जाती है। इस प्रकार नियमित समय पर उठना, भोजन करना, विद्यालय जाना, वस्त्र पहनना आदि व्यवहार आदतों के अन्तर्गत ही आते हैं। इन आदतों के आधार पर व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता है तथा अपने एवं अपने पर्यावरण के बीच के सम्बन्धों को स्थिरता, दृढ़ता एवं निरन्तरता प्रदान करता है। इन्हीं के कारण व्यक्ति सामाजिक नियमों एवं मान्यताओं के अनुसार कार्य करता है। मानव व्यक्तित्व में आदतों के इसी महत्व के कारण **जेम्स** ने आदतों को दूसरा स्वभाव कहा है। **मैरेट** ने भी लिखा है कि 'सीखना वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रक्रियाओं व प्रतिक्रियाओं को हम नई आदतों के रूप में संगठित करते हैं।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सीखने की प्रक्रिया का व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है यही नहीं वरन् सीखने के कारकों को भी व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है। सीखने के कारकों को सामान्यतः मानसिक, शारीरिक, भौतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक पाँच निम्नलिखित भागों में विभाजित किया गया है–

(अ) सामाजिक सीख के मानसिक कारक तथा व्यक्तित्व विकास–सामाजिक सीख की प्रक्रिया में मानसिक कारकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। **हल्ल** ने सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले मानसिक कारकों में अन्तर्नोद प्रत्युत्तर, संकेत तथा पुनर्बलन को महत्वपूर्ण माना है। यह चारों कारक व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में भी

अपना योगदान देते हैं। अन्तर्नोद का तात्पर्य उन प्रेरणाओं अथवा उत्तेजनाओं से है जो अधिक शक्तिशाली होती हैं। इन चालकों के आधार पर ही व्यक्ति विभिन्न प्रकार के व्यवहार एवं व्यक्तित्व के गुणों को सीखता है। इस प्रकार जिस व्यक्ति में चालक शक्ति जितनी अधिक होती है वह अपने व्यक्तित्व में उतने ही नए–नए गुणों को सीखता है। चालक व्यक्ति को प्रत्युत्तर देने के लिए प्रेरित करते हैं। प्रथम प्रत्युत्तर ठीक होने पर व्यक्ति शीघ्र सीखता है। जिस व्यक्ति में प्रत्युत्तर की क्षमता जितनी अधिक होती है वह उतनी ही शीघ्रता से नवीन वस्तुओं को सीख जाता है। इसलिए बच्चों की प्रत्युत्तर देने की क्षमता में वृद्धि करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। संकेत यह निर्णय करते हैं कि प्रत्युत्तर क्यों, कब और कहाँ देने चाहिए। चालक व्यक्ति को प्रत्युत्तर देने को प्रेरित करते हैं लेकिन प्रत्युत्तर की दिशा, समय, स्वरूप और स्थिति का निर्धारण संकेत करता है। पुनर्बलन के अभाव में भी सीखना सम्भव नहीं है किसी व्यवहार से जब मनुष्य के उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है अथवा वह पुरस्कृत हो जाता है तो व्यक्ति उस व्यवहार को बार–बार दोहराता है जिससे उसके व्यवहार की पुष्टि होती है। इस प्रकार ये चारों मानसिक तत्व व्यक्ति के सीखने की प्रक्रिया तथा उसके फलस्वरूप व्यक्तित्व को प्रमावित करते हैं।

(ब) सामाजिक सीख के शारीरिक कारक तथा व्यक्तित्व विकास–सामाजिक सीख की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले शारीरिक कारकों में अन्तःस्रावी गन्थियाँ, केन्द्रीय स्नायुमंडल, आयु, लिंग–भेद, बीमारियाँ, थकान, औषधियाँ, नशीली वस्तुएँ आदि महत्वपूर्ण हैं जो सीखने के साथ–साथ मानव व्यक्तित्व को भी बहुत अधिक प्रभावित करते हैं।

(स) सामाजिक सीख के भौतिक कारक तथा व्यक्तित्व विकास–मनुष्य की सीख की प्रक्रिया को प्रभावित करने में भौतिक कारक भी बहुत महत्वपूर्ण है। इनके अन्तर्गत जलवायु, ऋतुएँ, तापमान, प्रकाश, वायु आदि प्राकृतिक अथवा भौतिक परिस्थितयाँ व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं और मानव व्यक्तित्व को प्रभावित करती है।

(द) सामाजिक सीख के सामाजिक कारक तथा व्यक्तित्व विकास–मनुष्य की सीखने की प्रक्रिया में सामाजिक कारकों का भी अत्याधिक प्रभाव पड़ता है। सामाजिक कारकों के अन्तर्गत सुझाव, अनुकरण, सहानुभूति, प्रतिस्पर्द्धा, सहयोग, प्रोत्साहन, प्रशंसा आदि विशेष महत्वपूर्ण है जिनका व्यक्ति के व्यवहारों, रूचियों एवं आदतों अर्थात व्यक्तित्व पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

(य) सामाजिक सीख के सांस्कृतिक कारक तथा व्यक्तित्व विकास–मनुष्य के सीखने की प्रक्रिया पर धर्म, प्रथा, परम्परा, संस्थाएँ आदि सांस्कृतिक कारकों का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। ये सांस्कृतिक कारक व्यक्ति के विचारों, मनोवृत्तियों, व्यवहारों आदि को प्रभावित करते हैं, क्योंकि व्यक्ति जिस संस्कृति के अन्तर्गत रहता है। उसी के अनुरूप उसे व्यवहार करना पड़ता है। संस्कृति व्यक्ति के व्यक्तित्व के लक्षणों का निर्धारण करती है तथा संस्कृति की इनमें संशोधन एवं परिवर्तन करती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति जो कुछ प्राप्त करता है। उसका आधार कोई न कोई सांस्कृतिक तत्व ही होता है। अतः प्रत्येक समाज में व्यक्तित्व के विकास में संस्कृति को अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक के रूप में स्वीकार किया जाता है।

अनेक सामाजिक वैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन के आधार पर यह सिद्ध किया है कि व्यक्ति के समाजीकरण का उसके व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव पड़ता है। प्रसिद्ध मानवशास्त्री **मीड** का यही मत है। **लिन्टन** के अनुसार ''विशिष्ट प्रकार के समाजीकरण के आधार पर एक विशिष्ट प्रकार के व्यक्तित्व का विकास होता है।'' मनोविश्लेषणवादी विद्वानों ने भी मनुष्य के प्रारम्भिक समाजीकरण की पद्धतियों को उसके व्यक्तित्व के

विकास में महत्वपूर्ण माना है। **ग्रीन** ने भी लिखा है कि समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक सांस्कृतिक अर्न्तवस्तु सहित आत्म एवं व्यक्तित्व को प्राप्त करता है। व्यक्तित्व के विकास में समाजीकरण की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हुए **बोगार्डस** ने लिखा है कि ''एक प्रक्रिया के रूप में समाजीकरण के द्वारा व्यक्ति मानव कल्याण के लिए एक दूसरे पर निर्भर होकर व्यवहार करना सीखते हैं और ऐसा करने में वे सामाजिक आत्म–नियंत्रण, सामाजिक उत्तरदायित्व और संतुलित व्यक्तित्व का अनुभव करते हैं।"

16.9 सारांश

व्यक्तित्व के संबंध में समाज मनोवैज्ञानिकों के विभिन्न विचार हैं। इसकी परिभाषा विभिन्न प्रकार से दी जाती है। हमें व्यक्तित्व की वह परिभाषा उपयुक्त प्रतीत होती है जो व्यक्तित्व को सक्रिय बताती है और अंतरग्रसित व्यवहार की ओर इंगित करती है तथा व्यक्ति के वंशानुक्रमण और पर्यावरण में प्रतिक्रिया की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है। व्यक्तित्व के विकास में ये चार तत्व मुख्य रूप से प्रभावशाली होते हैं– (1) शरीर, (2) ग्रन्थि–रचना, (3) पर्यावरण के तत्व तथा (4) सीखना। ग्रंथियों में जो सबसे अधिक प्रभावशाली है वे है एड्रिनल ग्रंथि, गोन्डस, थॉयरायड ग्रंथियाँ तथा पिटयूटरी ग्रन्थि। परिवार संबंधी तत्वों में प्रमुख हैं– परिवार का प्रभाव तथा पाठशाला का वातावरण। **गार्डन ऑलपोर्ट** महोदय व्यक्तित्व के गुणों को सक्रिय परिवर्तित हो जाने वाले संस्कार समझते हैं जो कम–से–कम अंशतः रूप में विशिष्ट आदतों से उत्पन्न होते हैं और वातावरण में व्यवस्थापन के ढंग को बताते हैं। ये गुण वातावरण के प्रभाव को बदलते भी रहते हैं।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व एक विस्तृत एवं विभिन्न अर्थों वाली अवधारणा है। व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया को तीन निर्माणक तत्वों के संदर्भ में समझा जा सकता है – (क) जैविकीय ढाँचा (ख) समाज और (ग) संस्कृति। अंततः यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में जैविकीय कारकों तथा समाजीकरण की प्रक्रिया का अत्याधिक महत्व है।

16.10 शब्दावली

I. **व्यक्तित्व**–व्यक्तित्व व्यक्ति का सम्पूर्ण मानसिक संगठन है जो उसके विकास के किसी भी अवस्था में होता है। व्यक्तित्व समाज द्वारा मान्य तथा अमान्य गुणों का संतुलन है। यह व्यक्ति के व्यवहारों का एक समायोजित संकलन है, जो व्यक्ति अपने सामाजिक व्यवस्थापन के लिए करता है।
II. **सामाजिक**–एक ऐसी स्थिति जिसमें एक व्यक्ति अपने आप को किसी समूह के साथ सक्रिय रूप में जुड़ा हुआ अनुभव करता है तथा समूह के हितों के प्रति जागरूक पाता है। एक अन्य परिप्रेक्ष्य में, व्यक्तियों अथवा समूहों के रूप में मानव प्राणियों की अन्तःक्रियाओं के आधार पर निर्मित पारस्परिक संबंध है। 'सामाजिक' शब्द का प्रयोग किसी भी ऐसी घटना के लिए किया जा सकता है जो सामाजिक प्रणालियों, उनकी विशेषताओं और व्यक्तियों को उनमें सहभागिता से जुड़ी हुई हों।

16.11 अभ्यास हेतु प्रश्न एवं उत्तर

1. ''मनुष्य की उत्कृष्ट विशेषता उसका व्यक्तित्व है।'' यह किसका कथन है–
   (अ) ऑलपोर्ट (ब) प्रिन्स (स) मन्न (द) ड्रेवर
2. निम्न में से कौन सा व्यक्तित्व विकास का सांस्कृतिक कारक नहीं है–
   (अ) परम्पराएँ (ब) प्रथाएँ (स) रूढ़ियाँ (द) सामाजिक संस्थाएँ

3. ''व्यक्तित्व क्या नहीं है'' और ''व्यक्तित्व क्या है'' की महत्वपूर्ण धारणा के जनक कौन हैं–
   (अ) प्रिन्स (ब) मन्न (स) न्यूकॉम्ब (द) ड्रेवर
4. निम्न में से कौन सा व्यक्तित्व विकास का जैविकीय आधार नहीं है–
   (अ) बुद्धि (ब) स्नायुमंडल (स) ग्रंथियाँ (द) परिवार
5. ऑलपोर्ट ने 'व्यक्तित्व' शब्द के प्रयोग के लिए कितने तरीके की एक सूची तैयार की है–
   (अ)25 (ब)50 (स)75 (द)100

उत्तरमाला

1. (अ) 2.(द) 3. (स) 4. (द) 5.(स)

16.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

हार्श, चार्ल्स एम.– एवं एच.जी.शीकेल — पर्सनेलिटी, रोनाल्ड,(1905) न्यूयार्क, यू0एस0ए0।

सिन्हा, जे0एन0– मनोविज्ञान (1960), लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, (उ0प्र0)।

16.13 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

Burgess E.W. and Paul Wallin - Engagement & Marriage (1953), Philadlephia, Lippincott.

W.H. Sheldon (et.al) - The Varieties of Human, Physique (1940), Harper, New York-USA

16.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. व्यक्तित्व विकास के जैविकीय आधार में बुद्धि का महत्व बताइये।
2. समाजीकरण और व्यक्त्तिव पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. व्यक्तित्व से आप क्या समझते हैं? व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों की विवेचना कीजिए।
4. व्यक्तित्व की परिभाषा दीजिए तथा इसके प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।

इकाई–17

सामाजिक सीखने का अर्थ, परिभाषा, सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक, सीखने के सिद्धान्त

17.1 प्रस्तावना
17.2 सामाजिक सीखने का अर्थ
17.3 सामाजिक सीखने की परिभाषा
17.4 सीखने के प्रकार
17.5 सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारक
- मनोवैज्ञानिक कारक
- सामाजिक कारक
- भौतिक कारक

17.6 सीखने के सिद्धान्त
- प्रभाव का नियम
- स्थानापन्न का नियम
- पुरस्कार एवं दण्ड का नियम

17.7 सारांश
17.8 शब्दावली
17.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
17.10 निबन्धात्मक प्रश्न
17.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

17.1 प्रस्तावना

सीखना एक व्यापक सतत् एवं जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। मनुष्य जन्म के उपरांत ही सीखना आरंभ कर देता है और जीवन भर कुछ न कुछ सीखता रहता है। सीखने की प्रक्रिया मुख्यतः जैविक, मनोवैज्ञानिक, भौतिक तथा सामाजिक कारकों द्वारा प्रभावित होती है। विभिन्न मनोवैज्ञानिक द्वारा सीखने के महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये है।

प्रस्तुत इकाई में आप सामाजिक सीखने के अर्थ व परिभाषा से अवगत हो सकेंगे। इसके विभिन्न प्रकारों को जान सकेंगे। इस प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों से परिचित हो सकेंगे। इसके अलावा सीखने के विभिन्न सिद्धान्तों का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है ताकि आप इसकी विषयवस्तु को पूर्णतः समझ सकें।

17.2 सीखने का अर्थ

जीवन के प्रारंभ में मनुष्य अपने माता–पिता, परिवार तथा समाज के अन्य लोगों के सम्पर्क में आकर अपने अनुभवों तथा व्यवहार में परिवर्तन कर वातावरण के साथ समयोजन करना सीखना शुरू कर देता है। दूसरे शब्दों में, वातावरण के प्रति उपयुक्त प्रतिक्रिया को अपनाने की प्रक्रिया सीखना है। (Learning as the process of acquiring the appropriate responses.)

व्यक्ति जैसे–जैसे वृद्धि करता जाता है उसका शारीरिक–संवेदनात्मक संस्थान (Physio-sensory system) परिपक्व होता जाता है। यह भी उसे सीखने के लिए एक प्रेरक की भाँति कार्य करता है। सीखने में सामान्यतः दो तत्व सम्मिलित होते है–

1- परिपक्वता (Maturation)

2- अनुभवों से लाभ प्राप्त करने की योग्यता (The Ability to profit by experience)

सीखने की प्रक्रिया उस समय होती है जब व्यक्ति स्वयं को समाज में अनुकूलित करने की चेष्टा करता है क्योंकि उसके वातावरण में दूसरे सामाजिक प्राणी उपस्थित रहते है जो उस पर किसी न किसी प्रकार से प्रभाव डालते है और उसे सीखने के लिए प्रोत्साहित करते है इसलिए हम सीखने को एक सामाजिक प्रक्रिया की संज्ञा दे सकते है।

17.3 सीखने की परिभाषा

किम्बल यंग (1960) के अनुसार ''सीखना प्रतिक्रिया संस्थान में एक परिवर्तन है जो ऐच्छिक रूप से अथवा अचेतन रूप से नये उत्तेजकों को पुराने तथा नये प्रत्युत्तरों से सम्बन्धित करने के द्वारा लाया जाता है।''

Learning may be defined as “a change in response system brought about by deliberate or unconscious linkage or association of new stimuli and old or new responses.”

-K.Young:Personality and Problems of Adjustment, p.70.

गिलफोर्ड (1965) के अनुसार ''व्यवहार के कारण व्यवहार में परिवर्तन ही सीखना है। (“Learning is any change in behaviour, resulting from behaviour.”)

गेट्स के अनुसार ''अनुभव के द्वारा व्यवहार में रूपांतर लाना ही सीखना है।(“Learning is modification of behaviour through experience.”)

-Gates & Others : Educational Psychology, p. 238.

बर्नहर्ट के अनुसार ''सीखना व्यक्ति के कार्यों में एक स्थायी सम–परिवर्तन लाना है, जो निश्चित परिस्थितियों में किसी ईष्ट को प्राप्त करने अथवा किसी समस्या को सुलझाने के प्रयास में अभ्यास द्वारा लाया जाता है।

"Learning is defined as "the more or less permanent modification of an individual's activity in a given situation, due to practice in attempt to achieve some goal or solve some problems."

-Bernhardt : Practical Psychology, p.259.

हिलगार्ड (1966) के अनुसार ''सीखना वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई क्रिया आरम्भ होती है या सामना की गई परिस्थिति के द्वारा परिवर्तित की जाती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि क्रिया परिवर्तन की विशेषताओं को पैतृक प्रत्युत्तर प्रवृत्ति, परिवक्वता और जीव की अस्थाई अवस्थाओं के आधार पर समझाया न जा सके।

"Learning is the process by which an activity originators or is changed through reacting to an encountered situation provided that the characteristics of the change in activity cannot be exptained on the basis of native response tendencies, maturation or temporary status of organism.

-Hillguard

किम्बल यंग ने अपनी पुस्तक समाज–मनोविज्ञान में सामाजिक सीखने की परिभाषा इस प्रकार दी है–''सामाजिक सीखना कुशलता, तथ्यों और मूल्यों की प्राप्ति की ओर संकेत करता है जो कि हम दूसरे व्यक्तियों के साथ आचरण करने की परिणाम स्वरूप प्राप्त करते है।

"Social Learning , refer to the acquisition of skills, facts and values which comes about as a result of practice in our conduct with other persons."

-K.Young : A Hand-book of social Psychology, p.34.

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सीखना वह प्रक्रिया है जिसमें व्यवहार का परिमार्जन एवं संशोधन होता है। सीखने का सम्बन्ध किसी न किसी उद्देश्य से होता है, उद्देश्य के अभाव में सीखने की क्रिया असम्भव है।

सामाजिक सीखने में व्यक्ति विभिन्न कुशलताओं, तथ्यों मूल्यों के अतिरिक्त समाज में प्रचलित अनेक मान्यताओं तथा अन्य सामाजिक व्यवहारों को सीखता है। वह अपने संप्रत्ययों को संगठित कर संसार की समझ प्राप्त करता है वह सब सामाजीकरण द्वारा ही सीखता है। समाजीकरण के द्वारा ही वह भाषा सीखता है जिसके द्वारा वह अपने विचारों को व्यक्त कर दूसरों से बातचीत करता है। स्वयं की पहचान तथा स्वमूल्यांकन करना भी सामाजिक रूप से ही सीखता है। अतएव सामाजिक सीखने की प्रक्रिया एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है।

17.4 सीखने के प्रकार (Types of Learning)–

मनोवैज्ञानिकों ने सीखने की प्रक्रिया को निम्न प्रकारों में बाँटा है जिनका **अध्ययन हम विस्तारपूर्वक करेंगे**–

1- निरीक्षण द्वारा सीखना (**Learning by Observation**)

2- प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखना (**Learning by Trial and Error**)

3- शास्त्रीय अनुबंधन द्वारा सीखना (**Learning by Classical Conditioning**)

4- सूझ द्वारा सीखना (**Learning by insight**)

5- प्रतीकात्मक सीखना (**Symbolic Learning**)

6- अनुकरणात्मक सीखना/मॉडलिंग (**Imitative learning/Modelling**)

1- निरीक्षण द्वारा सीखना (Learning by Observation) :– निरीक्षण वस्तुतः प्रत्यक्षीकरण ही है। उसमें अवधान और सम्मिलित कर लिया जाता है। निरीक्षण का तात्पर्य किसी वस्तु पर अवधान को केंद्रित करना है। अवधान के केन्द्रीकरण से प्रत्यक्षीकरण और अधिक समृद्ध होता है। निरीक्षण उस समय सफल होता है जब सीखने की क्रिया मूर्त वस्तुओं से आरंभ की जाती है।

प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखना (Learning by Trial and Error) :– इस प्रकार के सीखने को सफल प्रतिक्रियाओं द्वारा सीखना (Learning by selection of the successful variant) भी कहते है। त्रुटि एवं प्रयास द्वारा सीखने में वह प्रतिक्रियाएँ शक्तिशाली हो जाती है जो कि सीखने वाले को संतुष्टि प्रदान करती है तथा जो प्रतिक्रियाएँ असफल होती है या बाधा उत्पन्न करने वाली होती है, समाप्त कर दी जाती है। जब एक अवस्था व्यक्ति को संतुष्टि देती है तब सीखने वाला उन प्रतिक्रियाओं से बचना नहीं चाहता। इसके विपरीत जब कोई प्रतिक्रिया सीखने वाले को कष्ट पहुँचाती है तो वह उसे दोहराना नहीं दोहराता। प्रायः ऐसे कार्य व प्रतिक्रिया को वह समाप्त ही कर देता है। इस विधि का प्रयोग करके बालक बहुत सी यांत्रिक क्रियाओं को सीखता है। वह खिलौनो से खेलना तथा कपड़े पहनना सीखता है।

3- शास्त्रीय अनुबंधन द्वारा सीखना (Learning by Classical Conditioning) :– अधिकांश मनोवैज्ञानिक, विशेष रूप से व्यवहारवादियों का यह विचार है कि यह सिद्धांत सीखने की क्रिया की लगभग ठीक व्याख्या करता है। विचार यह है कि सीखना एक प्रतिक्रिया को एक उद्दीपक के साथ सम्बद्ध कर देता है। सम्बद्ध क्रिया को समझने के लिए पावलॉव का कुत्ते के साथ किये गये प्रयोग का अध्ययन आवश्यक है। पावलॉव ने भोजन को देखने पर लार बहने की प्राकृतिक प्रतिक्रिया को घण्टी बजने के कृत्रिम उद्दीपक (artificial stimulus) से सम्बन्धित कर दिया। कुत्ते को भोजन देने से पहले घण्टी बजाई फिर भोजन दिया। इसके बाद केवल घण्टी बजाई गयी और भोजन नहीं दिया और प्रतिक्रिया को देखा। यह देखा गया कि अब भी लार बहने की प्रतिक्रिया हुई। तात्पर्य यह निकला कि घण्टी (कृत्रिम उद्दीपक) से लार बहने की प्राकृतिक क्रिया को नियन्त्रित कर दिया गया, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक प्राकृतिक उद्दीपक ने किया था। सम्पूर्ण सीखने को हम उस प्रकार की सम्बद्धता कह सकते है जो कृत्रिम प्रतिक्रिया को प्राकृतिक उद्देश्यों के साथ सम्बद्ध करती है।

अनुबन्धन द्वारा किस प्रकार सीखने की प्रक्रिया संपादित होती है यह निम्न चार्ट द्वारा दर्शाया गया है–

सीखने के पहले

अनुबन्धित उद्दीपक	–	इस प्रकार का कोई प्रत्युत्तर नहीं।
घंटी (पावलॉव)		लार टपकना
डॉक्टर (प्रतिदिन का अनुभव)	–	रोना

चूहा (वाटसन एवं रेनर) –		भय
भनभन आवाज	–	चूसना

सीखने के समय

अनुबंधित उद्दीपक तथा अनअनुबंधित उद्दीपक –	अनअनुबंधित अनुक्रिया
(C.S + U.C.S)	(U.C.R)
घंटी तथा भोजन	लार टपकना
डाक्टर तथा भय	रोना
चूहा तथा शोर	भय
भनभन आवाज तथा भोजन	चूसना

सीखने के बाद

अनुबंधित उद्दीपक	अनुबंधित अनुक्रिया
घंटी	लार टपकना
डाक्टर	रोना
चूहा	भय
भनभन आवाज	चूसना

सूझ द्वारा सीखना (स्मंतदपदह इल पदेपहीज):– गेस्टाल्टवादी सम्प्रदाय ने आकारात्मक सीखने (ब्वदपिहनतंजपवदंस समंतदपदह) को महत्व दिया है। ''आकारात्मक सीखने से तात्पर्य है कि प्रत्यक्षीकरण, स्मृति एवं साहचर्य आदि में जो भी सीखने के प्रमुख कारक है हमें उनसब को समग्र आकार में ध्यान में रखना आवश्यक है न कि विशिष्ट एवं निमित्त तत्वों के रूप में।'' ("The essence of this process is that in perception, association- in short, in relation to the important factors of learning we must deal with total configuration or patterned wholes, not with highly specific and discrete elements.)

-K.Young : A Hand Book of social Psychology, p.99

गेस्टाल्टवादी सम्प्रदाय ने सीखने में एक अन्य तत्व का प्रतिपादन किया है, जिसको सूझ कहते है। वह मानसिक संगठन जिसके द्वारा एक समस्या सहसा अपने सहसम्बन्धों के साथ स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगती है, सूझ कहलाती है। साधारण शब्दों में यह क्रियाएँ सूझ द्वारा सीखने की क्रियाएँ कहलाती है जो व्यक्ति की स्थिति का अवलोकन कराकर समस्या को पूर्णरूप से समझने योग्य बनाती है। मानवों में यकायक किसी समस्या का हल निकाल लेना बहुधा देखा जाता है। हमारी बहुत सी खोजें तथा अंवेषण इस प्रकार की सूझ के उत्पन्न होने के कारण ही होती हैं। अंत में हम कह सकते है कि सीखने की स्थिति में सूझ से तात्पर्य यह है कि व्यक्ति संपूर्ण स्थिति को समझता है। सूझ उस समय सक्रिय होती है जबकि स्थिति का प्रत्यक्षीकरण होता है, कठिनाईयों को समझ लिया जाता है, उसके तत्वों का ज्ञान होता है एवं उसके उद्देश्य का पता होता है।

प्रतीकात्मक सीखना ँ(लउइवसपब स्मंतदपदह):– प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक यंग के अनुसार सबसे जटिल या सबसे उच्च प्रकार का सीखना प्रतीकात्मक सीखना है, जिसमें प्रतीकों के साथ तार्किक ढंग से बर्ताव किया जाता है।''(The most complex or highest form of learning is the symbolic which involves the manipulation of symbols in reasoned or logical fashion.)

-K.Young

प्रतीकात्मक सीखना अधिकतर आंतरिक नियंत्रणों पर आधारित होता है। व्यक्ति आंतरिक वाणी के द्वारा अपने आपसे बात करना सीखता है। प्रतीकों का प्रयोग वस्तुओं के स्थान पर करना एवं सम्पूर्ण प्रत्युत्तरों को सूक्ष्म रूप से प्रदर्शित करना सीख लेता है। इस प्रकार का सीखना भाषा के ज्ञान पर निर्भर हो सकता है। प्रतीकात्मक सीखना बाह्‌य उद्दीपकों से नियन्त्रित, आंतरिक नियन्त्रणों की ओर परिवर्तित करने पर निर्भर रहता है। व्यक्ति की प्रतीकों द्वारा सीखने की कुशलता उसको किसी एक विशिष्ट परिस्थिति में कार्य करने तथा निर्णय करने योग्य बना देती है। इस प्रकार व्यक्ति अपने को स्वयं वातावरण में अनुकूलित करने के लिए एक अच्छी स्थिति में होता है।

6- उच्चस्तरीय अनुबन्धन (Higher Order Conditioning):– जब एक अनुबंधित उद्दीपक एक अनुबंधित अनुक्रिया को विश्वासपूर्ण ढंग से उत्पन्न करता है तो उच्चस्तरीय अनुबंधन की प्रक्रिया होती है। इससे तात्पर्य यह है कि अनअनुबंधित उद्दीपक जब कई बार एक अनुबंधित उद्दीपक के साथ दिया जाता है। तो वह स्वयं में एक अनुबंधित उद्दीपक बन जाता है। इस प्रकार के अनुबंधन द्वारा हम कुछ शब्दों के अर्थों को सीख सकते है। सीखना प्रारम्भ होने से पहले एक छोटा बच्चा एक वस्तु जिसे छूना मना है। उसको छूने में कोई ध्यान नहीं देता। किंतु यदि उसके छूने पर उसे पीटा जाता है तो उसकी प्रतिक्रिया दुःखपूर्ण होती है, अनुबंधन हो जाने के बाद बालक द्वारा वस्तु को छूना ही उसके अंदर भय उत्पन्न कर देता है। अर्थात् बालक उस भयग्रस्त वस्तु से दूर रहना सीख लेता है।

7- क्रियाप्रसूत अनुबन्धन (Operant Conditioning):– प्रसिद्ध व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक बी0एफ0 स्कीनर ने क्रियाप्रसूत अनुबन्धन द्वारा सीखने को प्रक्रिया को समझाया है। स्कीनर का मत था कि क्रियाप्रसूत व्यवहार ऐसा व्यवहार होता है जिसे व्यक्ति किसी उद्दीपक से प्रभावित होकर नहीं बल्कि अपनी इच्छा से करता है। ऐसे व्यवहार को करने के बाद यदि उसे पुरस्कार मिलता है तो भविष्य में ऐसे व्यवहार की पुनरावृत्ति होने की अधिक संभावना रहती है। परंतु यदि इस तरह के व्यवहार के बाद उसे दण्ड मिलता है तो वह उसे भविष्य में नहीं दोहराता। जिस प्रक्रिया द्वारा क्रियाप्रसूत व्यवहार का अनुबंधन होता है उसे क्रियाप्रसूत अनुबन्धन कहा जाता है। स्कीनर ने एक स्कीनर बॉक्स द्वारा चूहों पर प्रयोग करके उक्त तथ्य की व्याख्या की है।

8- अनुकरणात्मक सीखना (Imitative learning):– इस प्रकार के सीखने पर बाण्डुरा एवं वाल्टर्स ने बल दिया है। उन्होंने इसकी परिभाषा एक ऐसी प्रवृत्ति के रूप में दी है जो जीवित अथवा प्रतीकात्मक मॉडल के व्यवहार को पुनरूत्पादित करने की होती है। बालकों में बड़ों का अनुकरण करने की जन्मजात प्रवृत्ति होती है। माता–पिता बालकों को वांछित अथवा अवांछित व्यवहार सिखाने के लिए राष्ट्र के महान व्यक्तियों को मॉडल के रूप में प्रस्तुत करते है। आजकल समाज में प्रतीकात्मक मॉडल जो मौखिक, लिखित

अथवा चित्रित ढंग से प्रस्तुत किये जाते है वह विशेष रूप से महत्वपूर्ण समझे जाते है। बच्चों को चित्रों वाली पुस्तकें दी जाती है जिनमें महान व्यक्तियों के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएँ दी होती है। बालक उनसे प्रेरणा ग्रहण करता है और वांछित व्यवहार सीखता है। इस प्रकार बहुधा मॉडल का अनुकरण सीखने की गति में तीव्रता लाता है। बाण्डुरा रॉस एवं रॉस ने अपने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया है कि मॉडल के व्यवहार का अनुकरण करके नई प्रतिक्रियाएँ सीखी जा सकती है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि सीखने का प्रकार चाहे कोई भी हो व्यक्ति के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाने हेतु सीखने का प्रत्येक प्रकार अपने आप में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

17.5 सामाजिक सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारकः–

सामाजिक सीखना एक जटिल प्रक्रिया है इस प्रक्रिया को अनेक कारक प्रभावित करते है। सीखने को प्रभावित करने वाले कारकों को हम मुख्य रूप से चार भागों में विभाजित कर सकते है–

1. मनोवैज्ञानिक कारक (**Psychological Factors**)
2- शरीरिक कारक (**Physiological Factors**)
3- सामाजिक कारक (**Social Factors**)
4- भौतिक कारक (**Physical Factors**)

I. **सीखने के मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors of Learning)**:– सीखने के कुछ मनोवैज्ञानिक कारक है जिनका वर्णन निम्नलिखित है–

1- अन्तर्नोद (Drive):– मनोविज्ञान के क्षेत्र में सर्वप्रथम वुडवर्थ ने सन् 1918 में इस शब्द का प्रयोग किया। अन्तर्नोद वह परिस्थिति है जो प्राणी में शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकता से उत्पन्न होती है। आइजनेक और उनके साथियों (1972) के अनुसार ''अन्तर्नोद वह दैहिक अवस्था परिस्थितियाँ है– जैसे खाने से वंचित रखना, जो व्यवहारिक कार्य क्षमता को बढ़ा देती है। (Certain psychological states such as food deprivation, tend to increase animals behavioural output).

डोलार्ड और मिलर (1941) के अनुसार, अन्तर्नोद वह शक्तिशाली उत्तेजनाएँ है जो कार्य को प्रेरित करती है। कोई भी उत्तेजना अन्तर्नोद बन सकती है यदि वह अधिक शक्तिशाली है। उत्तेजना जितनी अधिक शक्तिशाली होगी अंतर्नोद कार्य उतना ही अधिक होगा। (Strong stimuli which impel action are drive. Any stimulus can become a drive if it is made strong enough. The stronger the stimulus the more drive function it possesses).

जो अन्तर्नोद जन्म से उपस्थित होते है उन्हें जन्मजात अन्तर्नोद कहते है जैसे–भूख (Hunger), प्यास(Thirst), निद्रा (Sleep) और काम (Sex) आदि। यह जैविक अंतर्नोद भी कहलाते है तथा अधिक शक्तिशाली होते है। कुछ अन्तर्नोद की उत्पत्ति व्यक्ति अपने जीवनकाल में सीखता है इन्हें अर्जित अन्तर्नोद तथा सामाजिक अंतर्नोद भी कहा जाता है। जन्मजात तथा अर्जित दोनों प्रकार के अंतर्नोद अपना अलग–अलग स्थान रखते है।

अंतर्नोद और प्राणी के सीखने में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है जिन व्यक्तियों में अंतर्नोद का अभाव होता है वे अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा सीखने में कमजोर होते है। व्यक्ति व्यवहार के जिस पहलू को सीख रहा है उससे सम्बन्धित अंतर्नोद यदि उनमें उपस्थित है तो उसे उस अंतर्नोद की उपस्थिति से प्रेरणा मिलेगी और वह व्यक्ति उस कार्य को जल्दी सीख लेगा। डोलार्ड एवं मिलर (1941) के अनुसार ''पूर्ण रूप से स्वयं संतुष्ट व्यक्ति कमजोर सीखने वाले होते है।'' (Completely self satisfied people are poor learners.)

2- संकेत या क्यू (Cue) :– यह भी व्यक्ति के सीखने की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण कारक है। किम्बल यंग (1960) के अनुसार ''संकेत ही इस बात को निश्चित करते है कि व्यक्ति कब, कहाँ और कौन सी प्रक्रिया करेगा।'' (The cue determines when, where and which response an individual will make) उदाहरण के लिए एक भूखा व्यक्ति अनेक स्थानों पर अपनी भूख मिटा सकता है परंतु वास्तव में एक व्यक्ति भूख शांत करने के लिए क्या करेगा यह संकेतों पर ही निर्भर करता है अर्थात् भूखा व्यक्ति कब, कहाँ और क्या खाना खायेगा। यह संकेतों पर ही निर्भर करता है।

संकेत कभी–कभी अन्तर्नोद का कार्य करते है। उदाहरण के लिए सुन्दर स्त्री के हाव–भाव को देखकर किसी पुरूष की कामेच्छा जागृत हो सकती है यहाँ सुन्दर स्त्री के हाव–भाव संकेत का कार्य करते हैं। अन्तर्नोद और संकेत दोनों ही उत्तेजनाओं से उत्पन्न होते है। अंतर्नोद के जाग्रत हो जाने से ही कोई व्यक्ति कार्य नहीं सीख लेता है। वह कार्य को तब तक नहीं सीखता जब तक कि उसे संकेत ज्ञात नहीं होते अर्थात् वह कब कहाँ और क्या प्रतिक्रिया करे।

3- अनुक्रिया (Response) :– हल के अनुसार अनुक्रिया भी सीखने का महत्वपूर्ण कारक है। अन्तर्नोद व्यक्ति को अनुक्रिया करने के लिए प्रेरित करते है। यह देखा गया है कि यदि व्यक्ति की पहली अनुक्रिया सही है तो व्यक्ति जल्दी सीख लेता है। छोटे बच्चों की अपेक्षा बड़े बच्चे शीघ्रता से सीख लेते है क्योंकि वे नयी परिस्थितियों के प्रति अपेक्षाकृत सही अनुक्रिया करते है। एक व्यक्ति सही अनुक्रियायें तभी कर सकता है जबकि वह संकेतों को भली भाँति जानता पहचानता है। अनुक्रियाओं में स्तरीकरण (Hierarchy) होता है। कुछ क्रियाओं के घटित होने की संभावना अधिक और कुछ अनुक्रियाओं के घटित होने की संभावना कम होती है। पुरस्कृत अनुक्रियाएँ पहले प्रगर होती है। सीखने के कारण अनुक्रियाओं के स्तरीकरण में परिवर्तन हो जाता है और व्यवहार संशोधित या परिवर्तित हो जाता है। अतः हम कह सकते है कि सीखना अनुक्रियाओं के क्रम में परिवर्तन करना है।

4- पुनर्बलन (Reinforcement):– जब किसी प्रत्युत्तर को पुरस्कार दिया जाता है और पुरस्कार के फलस्वरूप प्रत्युत्तर की पुनरावृत्ति हो तो इसे पुनर्बलन कहा जा सकता है। किसी अंतर्नोद की तीव्रता को पुरूस्कार के द्वारा कम करना पुनर्बलन कहलाता है। अन्तर्नोद के अभाव में पुनर्बलन सम्भव नहीं है। हल के अनुसार किसी व्यक्ति के सीखने के लिए केवल पुनरावृत्ति ही आवश्यक नहीं है वरन् पुनरावृत्ति के साथ–साथ आनन्द अथवा सुख या संतुष्टि का अनुभव भी आवश्यक है। अतः सीखने की प्रक्रिया पुनर्बलन महत्वपूर्ण योगदान है।

5- प्रत्याशा या उम्मीद (Expectancy):– जब कोई व्यक्ति, वस्तु या घटना की प्रत्याशा रखता है तब वह इस अवस्था में भी जल्दी सीख लेता है। यह देखा गया है कि व्यक्ति प्रत्याशा की उपस्थिति में उत्तेजना पर अधिक ध्यान देता है यही कारण है कि व्यक्ति प्रत्याशा की उपस्थिति में जल्दी सीखता है।

6- सामान्यीकरण और विभेदीकरण (Generalization & Discrimination):– जब कोई व्यक्ति एक प्रकार की उत्तेजना के प्रति अनुक्रिया करना सीख लेता है तो उस उत्तेजना से मिलती–जुलती अन्य के प्रति भी उत्तेजनाओं भी प्रतिक्रिया करना सामान्यीकरण के आधार पर जल्दी सीख लेता है। इसी प्रकार व्यक्ति दो उत्तेजनाओं में तुलना करके विभेदीकरण के आधार पर सीखता है। जब एक समान बहुत सी उत्तेजनाएँ उपस्थित होती है तब व्यक्ति विभेदीकरण के आधार पर ही सीखता है।

7- परिणामों का ज्ञान (Knowledge of Results):– यह देखा गया है कि परिणामों का ज्ञान भी सीखने वाले व्यक्ति को प्रेरित करता है। यदि किसी व्यक्ति को सिखाते ही चले जाये परंतु उसे यह न बतायें कि उसका सीखना प्रगतिपूर्ण है या त्रुटिपूर्ण तो ऐसे व्यक्ति की एक अवस्था के बाद सीखने की गति मंद और अंत में समाप्त हो जायेगी। अतः परिणामों का ज्ञान सीखने वाले व्यक्ति के लिए आवश्यक है।

8- अभ्यास (Practice):– सीखने की प्रक्रिया को अभ्यास की प्रभावित करता है। किसी नयी क्रिया को जीव जितनी बार दुहरायेगा या अभ्यास करेगा वह क्रिया उतनी ही जल्दी दृढ़ हो जायेगी। थॉर्नडाइक के अनुसार जब किसी स्थिति विशेष के प्रति बार–बार एक ही क्रिया की पुनरावृत्ति की जाती है तो उस परिस्थिति और अनुक्रिया के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

II. सीखने के शारीरिक कारक (Physiological factors in learning)

1- केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (Central Nervous System):– केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के दो मुख्य भाग है– सुषुम्ना नाड़ी (Spinal Card) तथा मस्तिष्क (Brain)। जिन व्यक्तियों में इन दोनों अंगों का सामान्य विकास नहीं होता है उनमें सीखने की प्रक्रिया भी सामान्य रूप में सम्पादित नहीं हो पाती है। सरल सीखी हुई क्रियाओं का संचालन और नियन्त्रण सुषुम्ना करती है तथा उच्च क्रियाओं का संचालन और नियन्त्रण मस्तिष्क के अग्र भाग से होता है। अग्र भाग का सम्बन्ध तुरंत सीखी गयी क्रियाओं से होता है। यदि इस भाग को क्षतिग्रस्त कर दिया जाये तो व्यक्ति तुरंत सीखी गयी क्रियाएँ भूल जाता है। अतः सीखने में केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि बुद्धि, स्मृति, तर्क आदि मस्तिष्क से ही सम्बन्धित है। यदि केन्द्रीय स्नायु प्रणाली स्वस्थ नहीं है तो यह मानसिक योग्यताएँ भी सामान्य नहीं होंगी और ऐसी अवस्था में व्यक्ति का सीखना सामान्य कैसे हो सकता है।

2- अंतःस्रावी ग्रंथियाँ (Endocrine Glands):– अंतःस्रावी ग्रंथियों से जो स्राव निकलता है वह रक्त में मिलकर सम्पूर्ण शरीर में फैलकर शारीरिक क्रियाओं और व्यवहारों को प्रभावित करता है। जब यह ग्रन्थियाँ सामान्य रूप से कार्य करती है तो तब स्राव की मात्रा सामान्य और इसके फलस्वरूप व्यक्ति का व्यवहार भी सामान्य होता है। इस अवस्था में सीखने की प्रक्रिया भी सामान्य रूप से चलती है। परंतु स्राव की कमी या अधिकता में व्यक्ति की सभी शारीरिक व मानसिक प्रक्रियाएँ प्रभावित होती है अर्थात् सीखना भी प्रभावित होता है। उदाहरणार्थ– थायरॉइड ग्रंथि के नष्ट हो जाने से व्यक्ति को मायक्सीडिमा (Myxaedema) नामक

रोग हो जाता है जिससे व्यक्ति में शिथिलता आ जाती है, मस्तिष्क और पेशियों की क्रिया मंद पड़ जाती है, ध्यान लगाना, चिन्तन करना आदि कार्य कठिन हो जाते है। इसी प्रकार अग्नाशय के असामान्य रूप से कार्य करने पर व्यक्ति के स्वभाव में परिवर्तन अर्थात् चिड़चिड़ापन आ जाता है।

इसी प्रकार स्पष्ट है कि जब किसी व्यक्ति में अंतःस्रावी ग्रंथियाँ ठीक ढंग से कार्य नहीं करती तो व्यक्ति के व्यवहार में असमान्यता आ जाती है जो सीखने में सहायक न होकर बाधक ही सिद्ध होती है।

3- रोग (Diseases):– सभी प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोग सीखने में बाधक होते है। व्यक्ति की मानसिक योग्यताओं को प्रत्येक शारीरिक रोग कुछ न कुछ प्रभावित करता है। रोगों की उपस्थिति में मानसिक क्षमताएँ क्षीण हो जाती है या उनके कार्यों में असमान्यता आ जाती है। ऐसी अवस्था में जब मानसिक क्षमता का कार्य न हो तो क्या सीखना सामान्य हो सकता है, कभी नहीं।

4- थकान (Fatigue):– थकान व्यक्ति की वह शारीरिक और मानसिक अवस्था है जिसमें दूषित पदार्थों के उत्पन्न होने से व्यक्ति की कार्यक्षमता कम हो जाती है और कार्य करने में मन नहीं लगता। अतः इस अवस्था में सीखना निश्चित रूप से प्रभावित होगा। शारीरिक रूप से थके हुए व्यक्ति में कुछ न कुछ मानसिक थकान भी होती है। अतः ऐसे व्यक्तियों को मानसिक कार्यों को भी सरलता से नहीं सिखाया जा सकता है। व्यक्ति की शारीरिक थकान हो या चाहे मानसिक थकान दोनों ही सीखने में बाधक है।

5- लिंग भेद (Sex Difference):– व्यवहार के अनेक क्षेत्रों में प्रकृति की दृष्टि से स्त्री और पुरूष दोनों की सीखने की क्षमता लगभग समान है। यह कहना गलत होगा कि स्त्रियाँ पुरूषों की अपेक्षा सीखने में या पुरूष स्त्री की अपेक्षा सीखने में कमजोर होते है। यदि सीखने में लिंग भेद है तो यह अंतर समाज की परिस्थितियों एवं सामाजिक मूल्यों के कारण है। एक समाज में व्यवहार के एक क्षेत्र में यदि स्त्रियाँ पुरूषों से सीखने में पीछे है तो आवश्यक नहीं कि संसार के सभी समाज में यही स्थिति हो। समाज में प्रत्येक पुरूष ओर स्त्री अपने पद ओर प्रतिष्ठा के आधार पर बहुत से कार्यों को सीखते व करते है।

6- मादक पदार्थ (Drugs):– विभिन्न मादक पदार्थ जैसे शराब, गाँजा, चरस, अफीम, सुल्फा, तम्बाकू आदि सीखने में हानिकारक है। इन नशीले पदार्थों को आवश्यकता से अधिक प्रयोग करने पर व्यक्ति की मानसिक क्षमताओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जिससे उस व्यक्ति का व्यवहार भी असामान्य हो सकता है। व्यक्ति को इस अवस्था में उतना अधिक और अच्छा नहीं सिखाया जा सकता जितना कि सामान्य अवस्था में। अतः मादक पदार्थों का सेवन भी सीखने की प्रक्रिया में बाधक तत्व है।

सीखने में सामाजिक कारक (Social Factors in Learning):–

1. **सामाजिक प्रोत्साहन (Social Encouragement)**:– समाज में मिलने वाला प्रोत्साहन भी व्यक्ति के सीखने को प्रभावित करता है। सामाजिक प्रोत्साहन व्यक्ति को समाज के अंदर व्यक्तियों से या तो मौखिक रूप से मिलता है या सामाजिक रूप से सुविधाओं के रूप में मिलता है। जिस समाज में व्यक्ति को सामाजिक प्रोत्साहन मिलता हैया सुविधाओं के रूप से अधिक व्यवहार कुशल होते है।

2- **प्रशंसा और निन्दा (Praise & Blame)**:– प्रशंसा और निन्दा भी महत्वपूर्ण कारक है जिनकी उपस्थिति में सीखने वाले व्यक्ति को प्रोत्साहन मिलता है। यह देखा गया है कि यदि व्यक्ति के सीखते समय अच्छे प्रयासों या कार्यों के लिए प्रशंसा की जाए और त्रुटिपूर्ण प्रयासों या कार्यों के लिए निन्दा की जाये तो इस अवस्था में प्रशंसा और निन्दा व्यक्ति के सीखने में सहायक होते है अर्थात् प्रेरक का कार्य करते हैं।

3- **अनुकरण (Imitation)**:– किम्बल यंग (1960) के अनुसार ''एक ऐसी क्रिया करना है जो किसी अन्य व्यक्ति की क्रिया के समान या उससे मिलती–जुलती हो।'' (Setting up an act which is identical or similar to the act of another)

अनुकरण के द्वारा एक बच्चा समाज में प्रचलित भाषा को ही नहीं सीखता बल्कि वह सामाजिक व्यवहार, रीति–रिवाज, फैशन, वेश–भूषा सामान्य संस्कृति और सभ्यता को भी अनुकरण के द्वारा सीखता है। अतः अनुकरण सीखने का एक महत्वपूर्ण सामाजिक कारक है। टार्डे के अनुसार अनुकरण पर समस्त समाज निर्भर है। सम्पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया अनुकरण और आविष्कार पर आधारित है इसीलिए समाज में अनुकरण का महत्वपूर्ण स्थान है। बालक सामाजिक व्यवहार और परम्पराओं का अपने माता–पिता, गुरूजनों एवं परिवार तथा समाज के अन्य व्यक्तियों से सीखता है। अनुकरण के कारण ही समाज की संस्कृति पीढ़ी दर पीढ़ी चलती है। इतना ही नहीं बल्कि अनुकरण के द्वारा समाज में नये विचार भी तेजी से फैलते है।

4- **सुझाव (Suggestion)**:– किम्बल यंग (1960) के अनुसार ''सुझाव शब्दों, चित्रों या किसी प्रकार के किसी दूसरे माध्यम द्वारा दिया जाने वाला वह सन्देश है जो प्रमाण या तर्क के बिना स्वीकार कर लिया जाता है।'' (**Suggestion is a form of symbol communication by words, pictures or some similar medium including acceptance of the symbol without any self evident or logical ground for its acceptance.**)

सामाजिक व्यवहार को सीखने में सुझाव एक महत्वपूर्ण कारक है। सुझावों के द्वारा भी व्यक्ति समाज में प्रचलित रीति–रिवाजों, मूल्यों, आदर्शों आदि को सीखता है। हुल्यालकर तथा उनके साथियों (1960) के अनुसार सामाजिक जीवन में सुझाव का बहुत महत्व है। यह एक महत्वपूर्ण तरीका है जिसके द्वारा व्यक्तियों के व्यवहार को बदला जा सकता है। व्यक्ति के समाजीकरण में भी इसका मुख्य कार्य है।'' (Suggestion plays a great part in social life. It is an important way of modifying an individual's behaviour. Suggestion plays a key role in the socialisation of individual By it persons made, unmade and remade)''.

5- **सहानुभूति (Sympathy)**:– अवलोकन (1960) के अनुसार ''सहानुभूति का अर्थ है– इसी प्रकार के संवेग का अनुभव करना, जिसका अनुभव हमारा साथी करता है।'' (This means experiencing any emotion which is experienced by a fellow-being)

सहानुभूति के द्वारा ही व्यक्ति दूसरे के कष्टों का साझीदार बनना सीखता है। दूसरों को सांत्वना देना सीखता है। इसी के द्वारा व्यक्ति को वश में किया जा सकता है और जब कोई व्यक्ति वश में हो तो उसे सरलता से सिखाया जा सकता है। अतः सीखने में सहानुभूति एक महत्वपूर्ण कारक है।

IV. सीखने में भौतिक कारक (Physical Factors in Learning):– भौतिक कारकों का अभिप्राय वातावरण सम्बन्धी कारकों से है। सीखने की प्रक्रिया को प्रकाश, तापक्रम, वायु की शुद्धता–अशुद्धता, शोरगुल, वायु की नमी, ध्यान को प्रभावित करते है। इस सम्बंध में अनेक प्रयोगात्मक अध्ययनों के आधार पर इन कारकों के महत्व और प्रभाव को सिद्ध किया जा चुका है। भौतिक कारक भी सीखने की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते है।

सामाजिक सीखने के अन्य महत्वपूर्ण कारकः– यहाँ हम उन महत्वपूर्ण कारकों को अध्ययन करेंगे जो एक निश्चित सीमा तक सामाजिक सीखने को संगठित करने के लिए उत्तरदायी है जिनका वर्णन निम्नलिखित है–

1- सुगमता का अवरोध (Facilitation and Inhibition):– जब एक अनुक्रिया अन्य अनुक्रियाओं में वृद्धि करती है तो उसे हम सुगमता कहते है। उदाहरण के लिए जब एक टेनिस का खिलाड़ी अपने खेल को कम या अधिक पुरस्कार जीतने से सम्बन्धित कर देता है तो यह पुरस्कार एक ऐसे उत्तेजक की तरह से कार्य करता है जो किसी भी दूसरी अनुक्रिया की पुष्टि करता है जो कि टेनिस के खेल से सम्बन्धित हो। वह अपने खेल में टेनिस के बल्ले को अच्छी प्रकार से पकड़कर या विशिष्ट प्रकार से गेंद हिट लगाकर अच्छे ढंग से गेंद को हाथ में पकड़कर अपने खेल को अच्छा बनाता है।

कभी–कभी यह भी देखा गया है कि एक क्रिया दूसरी क्रिया के होने में रूकावट या बाधा उत्पन्न कर देती है इसे अवरोध कहते है। उदाहरण के लिए, जब हम क्रोधित होते है। तब तर्कपूर्ण मत को तैयार नहीं होते और बहुधा हमारे निर्णय गलत हो जाते है। जब किसी कार्य के पश्चात् कोई पुरस्कार नहीं मिलता तो यह व्यक्ति को उस कार्य को दुबारा दोहराने से रोक सकता है। लोपीकरण (Extinction) अवरोध का एक विशिष्ट प्रकार है लोपीकरण उस समय होता है जब किसी प्रतिक्रिया को पुरस्कार प्राप्त नहीं होता। डोलार्ड एवं मिलर के अनुसार जब एक सीखा गया प्रत्युत्तर बिना पुष्टिकरण के दोहराया जाता है तो उस प्रवृत्ति की शक्ति जो उस प्रत्युत्तर को सक्रिय करती है क्रमशः घटती जाती है। यह कभी प्रयोगात्मक लोपीकरण या अधिक सरल भाषा में लोपीकरण कहलाती है।'' (**When a learned response is repeated without reinforcement, the strength of the tendancy to perform that response undergoes a progressive decrease. This decrement is called experimental extinction, or more simply extinction.**)

2- विभेदीकरण तथा सामान्यीकरण (Discrimination and Generalisation):– विभेदीकरण एक ऐसी क्रिया है जो अनेक अनुभवों के बीच में महत्वपूर्ण अंतरो का प्रत्यक्षीकरण करती है। उदाहरण के लिए, एक बालक यह सीख जाता है कि अपना कुत्ता नुकसान नहीं पहुँचाता या काटता नहीं है जबकि एक अजनबी कुत्ता काटता है। विभेदीकरण के द्वारा सीखने वाला अनेक पूर्व अनुभवों में से उन अनुभवों को चुन लेता है जो कि निकटतम रूप से उस नई समस्या के हल में प्रयोग किये जा सकते है। जबकि सामान्यीकरण अनेक अनुभवों में से महत्वपूर्ण सम्बन्ध समानताएँ एवं आकार जो सब में समान होता है, निकालने की प्रतिक्रिया है। उदाहरण के लिए एक बालक अनेक हरे सेबों को खाकर इस सामान्यीकरण को बना लेता है कि सब हरे सेब खट्टे होते है।

3- पूर्वाक्षित प्रत्युत्तर (Anticipatory Response) :– पूर्वापेक्षित प्रत्युत्तर में हम आने वाले उद्दीपक की ओर बढ़ना सीख लेते है। हम मिठाई की दुकान में मिठाइयों का देखकर लार टपकने लगते है। यह लार टपकाने की प्रक्रिया हमारे पूर्वापेक्षित प्रत्युत्तर के कारण होती है। यह हमारे सामाजिक जीवन में बहुत महत्वपूर्ण है। सामाजिक प्रत्याशा इत्यादि इस सिद्धांत पर आधारित है।

4- संघटन (Integration) :– संघटन एक अन्य कारक है जो सीखने में महत्वपूर्ण है। यह प्रक्रिया सब प्रकार के गतिमानी सीखने में दिखाई पड़ती है। संघटन द्वारा असंगठित गतियों में सुसंगठन आ जाता है और वह अधिक बड़े तथा अधिक प्रभावशाली नमूनों में परिवर्तित हो जाते है। जब हम टेनिस खेलते है तो प्रारम्भ में हमारी गतियाँ अस्त–व्यस्त होती है किंतु धीरे–धीरे हम संघटन के द्वारा व्यवस्था लाते है तथा एक कुशल खेल खेलना सीख जाते है जिसमें कि बड़े या छोटे माँसपेशियों के समूहों का एकीकरण प्रभावशाली ढंग से हो जाता है। एक व्यक्ति समाज के कर्त्ता का अनुकरण करना सीखता है किंतु उसकी स्वयं की भी क्रियाएँ रूचियाँ तथा अभिरूचियाँ होती है। सामाजिक सीखने में कर्त्ता के अनुकरण एवं व्यक्ति के विचारों इत्यादि में संघटन लाया जाता है।

17.6 सीखने के मूल सिद्धान्त (Basic Principles of learning)

सीखने के 3 मुख्य सिद्धान्त है–

1. प्रभाव का नियम (Law of effect)
2. स्थानापन्न का नियम (Law of substitution)
3. पुरूस्कार एवं दण्ड (Law of Reward and Punishment)

हम यहाँ उपरोक्त सभी नियमों का अध्ययन विस्तारपूर्वक करेंगे।

1- प्रभाव का नियम (The Law of Effect):– इस नियम का प्रतिपादन थॉर्नडाइक द्वारा किया गया। इस नियम का तात्पर्य यह है कि ''सन्तोषजनक परिणाम शक्तिवर्द्धक होते है और कष्टकारक तथा प्रतिक्रिया के सम्बन्ध को निर्बल बना देते है।'' ''(Satisfying results strengthen and discomfort weakens the bond between situation and response)'' इस नियम के साथ–साथ थॉर्नडाइक ने दो अन्य नियम भी दिए हैं। वे हैं– तत्परता का नियम तथा अभ्यास का नियम। यह तीनों नियम इस बात पर बल देते है कि सीखने की क्रिया में सफलता एवं असफलता बहुत महत्वपूर्ण होती है। किसी कार्य में सफलता सामान्य रूप से ऐसे भाव के साथ जुड़ जाती है जो सीखने की प्रतिक्रिया पर अच्छा प्रभाव डालती है किंतु असफलता विपरीत प्रकार की संवेगात्मक स्थिति को उत्पन्न करती है और इसलिए सीखना कम होता है। संवेगात्मक दशाएँ अभ्यास पर प्रभाव डालती है और अभ्यास में संवेगात्मक प्रभाव से इस बात का पता चलता है कि बालक एक अन्य स्थिति में सीखने के लिए कितना तत्पर है एक बालक जो असफल हुआ है अपने पाठ को पढ़ने के लिए तत्पर नहीं रहता किंतु जो सफल होता है वह पढ़ने के लिए मानसिक रूप से अधिक तत्पर हो जाता है।

2- **स्थानापन्न का नियम (Law of Substitution)**:– स्थानापन्न का नियम सम्बद्धता के नियम पर आधारित है। पावलॉव द्वारा कुत्ते के साथ किये गये प्रयोग का वर्णन करते समय हमने इस बात की व्याख्या की थी कि कृत्रिम उद्दीपक–घण्टी का बजना– ने प्राकृतिक उद्दीपक–भोजन की उपस्थिति का स्थानापन्न कर दिया। हमारे दैनिक जीवन में इस प्रकार का स्थानापन्न जो प्राकृतिक उद्दीपक के स्थान पर कृत्रिम उद्दीपक को प्राकृतिक प्रत्युत्तर से सम्बन्धित कर देता है, बराबर चलता रहता है। हमारे सामाजिक जीवन में इस प्रकार का स्थानापन्न बहुधा मिलता है। हम कोई विशिष्ट तस्वीर या चित्र देखते है या किसी प्रतीक की ओर तो तुरंत ही कोई ऐसा कार्य करके लगते है जो उस उद्दीपक से किसी भी प्रकार से सम्बन्धित न हो। ऐसा इस कारण होता है क्योंकि हमने इस तस्वीर या प्रतीक को प्राकृतिक प्रत्युत्तर देने में वह स्थान दिया है जो कि प्राकृतिक उद्दीपक का था। यह याद रखना चाहिए कि बहुधा स्थानापन्न अचेतन रूप से होता है।

3- **पुरस्कार एवं दण्ड का नियम (The Principle of Reward and Punishment)**:– इस सिद्धान्त पर हल ने प्रकाश डालते हुए कहा है। उनका कथन है कि पुष्टीकरण उस समय होता है जबकि उसके साथ काई पुरूस्कार जुड़ा होता है। जब प्रणोद का प्रारम्भ होता है तो यह बताते है कि कब, कहाँ और क्या प्रतिक्रिया होगी। पुरस्कार प्रणोद की संतुष्टि की ओर संकेत करते है।

सकारात्मक पुरस्कारों के साथ नकारात्मक दण्ड भी सीखने की क्रिया में महत्वपूर्ण है। सामाजिक जीवन में दण्ड एवं पुरस्कार प्रभावशाली हो जाते है और कभी–कभी स्थानापन्न की क्रिया द्वारा उच्च सामाजिक, सांस्कृतिक रूप ले लेते है। अतएव एक स्त्री अच्छे कपड़े केवल इसलिए नहीं पहने होती कि वह पुरूषों में कामेच्छा को बढ़ाए किंतु इसलिए भी कि अच्छे कपड़े पहने होने पर उसका समाज में आदर होता है।

सामाजिक सीखने के सिद्धान्तः–

अल्बर्ट बाण्डुरा को प्रेक्षणात्मक अधिगम का प्रवर्तक माना जाता है। इस प्रकार के अधिगम में बालक सामाजिक व्यवहारों को अनुकरण द्वारा सीखता है अतः इसे सामाजिक अधिगम का सिद्धान्त भी कहा जाता है। बाण्डुरा का मत है कि बालक सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज में किसी प्रतिमान (उवकमस) के व्यवहार को देखकर उसका अनुकरण करने का प्रयास करता है। विशिष्ट व्यवहार को देखकर तथा उसे दोहराकर वैसा ही व्यवहार करना सीख लेता है इसे मॉडलिंग की संज्ञा दी जाती है।

इस सिद्धान्त की व्याख्या बाण्डुरा, रॉस एवं रॉस (1963) ने एक लोकप्रिय प्रयोग द्वारा की है। इस प्रयोग में कुछ स्कूली बच्चों को वयस्क मनुष्य द्वारा 3 से 4 फीट की एक गुड़िया जिसे बॉब गुड़िया (ठवइ क्वसस) का नाम दिया गया, को उछालकर, मारकर एवं उसके प्रति आक्रामकता (हहतमेपवद) करते हुए दिखाया। जब उन बच्चों को गुड़िया के साथ अकेले छोड़ा गया तो देखा कि उन्होंने भी गुड़िया के प्रति वैसा ही आक्रामक व्यवहार किया। बाद के प्रयोगों में यह देखा गया कि जब बच्चों ने टेलीविजन पर ऐसे ही आक्रामक दृश्य देखे तो उनके आक्रामक व्यवहार में उन बच्चों की तुलना में वृद्धि होते पायी गयी जिन्होंने टेलीविजन पर ऐसे दृश्य नहीं देखे थे। बाण्डुरा (1986) द्वारा किये गये शोधों द्वारा यह स्पष्ट होता है कि प्रेक्षणात्मक सीखने की प्रक्रिया निम्न 4 प्रक्रियाओं द्वारा नियंत्रित होती है–

1- **अवधान (Attention)**:– अवधान प्रेक्षणात्मक अधिगम की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। प्रेक्षक सममानिक मॉडल के व्यवहार को जितने ध्यान से देखता है। अधिगम उतना ही मजबूत होता है। मॉडल के व्यवहार का मात्र प्रत्यक्षीकरण कर लेने से यह निश्चित नहीं हो जाता कि प्रेक्षणत्मक अधिगम की प्रक्रिया संचालित होगी ही। प्रेक्षक का अपने मॉडल पर ध्यान केन्द्रित करना भी मॉडल की उम्र, लिंग, समाज में स्थिति आदि बातों पर निर्भर करता है। जब मॉडल और प्रेक्षक की उम्र और लिंग में समानता होती है तो प्रेक्षक मॉडल के व्यवहार का सफलतापूर्वक प्रेक्षण करता पाया जाता है।

2- **धारण (Retention)**:– प्रेक्षणात्मक अधिगम की दूसरी महत्वपूर्ण प्रक्रिया धारण है। मॉडलिंग की प्रक्रिया में यह भी आवश्यक है कि प्रेक्षक केवल सामाजिक मॉडल पर ठीक–ठीक ध्यान देने के साथ उसे याद भी रखे अर्थात् वह मॉडल के सभी संगत व्यवहारों को मन ही मन दोहराये और समय आने पर ठीक वैसे ही व्यवहार की पुनरावृत्ति कर सके।

3- **पुनरूत्पादन (Reproduction)**:– प्रेक्षणात्मक अधिगम की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया पुनरूत्पादन भी है। इससे तात्पर्य सांकेतिक अभिनय को व्यवहार में प्रदर्शित करने से होता है। प्रेक्षक पुनभ्यास (Rehearsal) द्वारा मॉडल के जटिल व्यवहारों को करना सीख लेता है। माना कोई व्यक्ति कम्प्यूटर चलाना सीख रहा है ऐसी स्थिति में प्रेक्षक मात्र मॉडल को मात्र कम्प्यूटर चलाते देखकर ही उसे नहीं सीख सकता जब तक कि वह कम्प्यूटर चलाने का वास्तविक अभ्यास नहीं करता।

4. **अभिप्रेरणा (Motivation)**:– प्रेक्षणात्मक सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरणा का महत्वपूर्ण योगदान है। प्रेक्षक मॉडल के व्यवहार को कितना भी ध्यान से देखे कितना ही धारण करके रखे लेकिन वह उस व्यवहार को तब तक ठीक ढंग से नहीं सीख पाता जब तक कि उसे उस व्यवहार को सीखने पर पर्याप्त पुनर्बलन नहीं मिलता। जब प्रेक्षक को संगत व्यवहार करने पर पर्याप्त पुनर्बलन मिलता है तो प्रेक्षक शीघ्रतापूर्वक उस व्यवहार को कार्य में परिणत कर लेता है।

17.7 सारांश

सीखना एक सतत् व्यापक और जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। एक बालक जो जन्म लेता है वह सीखता है और उसके सीखने में बहुत से सामाजिक कारक प्रभाव डालते है। समाजीकरण में व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से समाज के कर्त्ता प्रशिक्षित करते है। व्यक्ति कजो कुछ भी समाज के प्रभाव के कारण तथा समाज के कर्त्ता द्वारा सीखता है वह सब सामाजिक सीखने के अंतर्गत आता है।

सीखने की प्रक्रिया विभिन्न प्रकार से संपादित होती है। यथा–निरीक्षण द्वारा, प्रयास एवं त्रुटि द्वारा, शास्त्रीय अनुबन्धन द्वारा, सूझ द्वारा, प्रतीकात्मक सीखना तथा अनुकरणात्मक सीखना आदि। मनोवैज्ञानिक कारक, शारीरिक कारक, भौतिक कारक तथा सामाजिक कारकों द्वारा सीखना प्रभावित होता है। सामाजिक सीखने की प्रक्रिया को अन्य महत्वपूर्ण कारक जैसे सुगमता का अवरोध, विभेदीकरण तथा सामान्यीकरण, पूर्व अपेक्षित प्रत्युत्तर एवं संघटन भी प्रभावित करते है।

प्रस्तुत इकाई में सीखने के मुख्य सिद्धांत प्रभाव का नियम, स्थानापन्न का नियम तथा पुरस्कार एवं दण्ड का नियम आदि का वर्णन किया गया है। साथ ही अल्बर्ट बाण्डुरा द्वारा प्रतिपादित प्रेक्षणात्मक सीखना जो सामाजिक सीखने का मुख्य सिद्धांत है की व्याख्या भी विस्तारपूर्वक की गयी है।

17.8 शब्दावली

- **सीखना–** एक सामाजिक प्रक्रिया है। यह जन्म से प्रारम्भ होती है और जीवन पर्यन्त चलती रहती है। सीखना उचित प्रत्युत्तरों को प्राप्त करने की प्रक्रिया है। सीखना अनुभवों के आधार पर व्यवहार में रूपांतरण करना है।
- **अन्तर्नोद–** अन्तर्नोद हमारी जैविक आवश्यकताओं से उत्पन्न होते है और सीखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।
- **संकेत–** यह इस बात का निर्धारण करते है कि एक व्यक्ति कब, कहाँ और क्या प्रत्युत्तर देगा ? अंतर्नोद तथा संकेत दोनों का आधार उद्दीपकों में मिलता है।
- **पुनर्बलन–** जब किसी स्थिति में एक प्रतिक्रिया अधिक शक्तिशाली हो जाती है और बार–बार दोहरायी जाती है तब हम इस पुनर्बलन कहते है। प्रतिक्रियाओं के पुनर्बलन द्वारा ही हम सीखते है।

17.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः–

1. अनुभव द्वारा व्यवहार में रूपांतर करना ही .... है।
2. सीखने के सिद्धान्त में प्रभाव का नियम .... द्वारा प्रतिपादित किया गया।
3. सीखने की प्रक्रिया में .... तथा .... पुनर्बलन का महत्वपूर्ण योगदान है।
4. अनुकरणात्मक सीखना (मॉडलिंग) सिद्धांत के प्रतिपादक .... है।

प्रश्नों के उत्तर

1. सीखना 2. थॉनडाइक 3. धनात्मक, ऋणात्मक 4. अल्बर्ट बाण्डुरा

17.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. समाजिक सीखने का क्या अर्थ है ? क्या सीखना एक सामाजिक प्रक्रिया है?
2. सामाजिक सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।
3. सीखने के मूलभूत सिद्धान्तों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
4. मॉडल के अनुकरण से आप क्या समझते है ? समाजिक सीखने में इनका क्या महत्व है ?

17.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- समाज मनोविज्ञान– डॉ0 एस0एस0 माथुर, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
- उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान– डॉ0 अरूण कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसीदास
- आधुनिक समाज मनोविज्ञान– डॉ0 डी0 एन0 श्रीवास्तव, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
- Systematic Social Psychology- Willium S.Sahakian, Chandler Publishing Company, New York.

इकाई 18
नेतृत्व की समप्रत्यय, प्रकार व विशेषतायें

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 नेतृत्व की संकल्पना

18.3 नेतृत्व के सामान्य गुण

18.3.1 बुद्धि

18.3.2 शारीरिक गठन

18.3.3 शब्दाडंबर

18.3.4 प्रभुता व आत्मसंस्थापन

18.3.5 आत्मविश्वास

18.3.6 बहिर्मुखता

18.3.7 समायोजन

18.3.8 परिश्रमी

19.3.9 कल्पना व दूरदर्शिता

18.3.10 चमत्कार

18.3.11 इच्छाशक्ति

18.4 नेता के प्रकार

18.4.1 बोगार्डस के अनुसार नेतृत्व के प्रकार

18.4.2 किम्बल यंग के अनुसार नेतृत्व के प्रकार

18.4.3 लिपिट एवं व्हाइट के अनुसार नेतृत्व के प्रकार

18.5 अध्ययन सारांश

18.6 कुंजी शब्द

18.7 आगे अध्ययन_के लिये

18.8 प्रतिदर्श जवाब आपकी प्रगति की जांच करने के लिए

18.0 उद्देश्य

जब आप यह अध्याय पूर्ण करेगें तब तक आप यह जान चुके होगें कि–

- नेतृत्व किसे कहते हैं व इससे सम्बन्धित अनेको मनोवैज्ञानिकों के विभिन्न परिभाषाओं का मूल्यांकन कर चुके होगें उसके अर्न्तनिहित अवयवों को समझ चुके होगें।
- आप यह जान चुके होगें कि नेतृत्व के सामान्य शीलगुण क्या हैं एव विभिन्न शीलगुणों से युक्त नेता का व्यवहार कैसा होगा।
- कुछ प्रमुख समाज मनौवैज्ञानिकों के अनुसार नेतृत्व के प्रकारों को समझने का प्रयास करेगें एवं यह सुनिश्चित करेगें कि एक विशेष अंदाज का नेतृत्व करने के लिये कौन–कौन से शलिगुणो का क्रम या सेट अवश्यंभावी होगा।

18.1 प्रस्तावना :

इकाई 1 में हमने अधिगम के एक व्यवहारिक पक्ष सामाजिक अधिगम के विषय को समझा। विभिन्न मनोवैज्ञानिक द्वारा इस समप्रत्यय के अन्तर्गत अवयवों को समझने की कोशिशि की गयी थी। इकाई–2 में नेतृत्व के सम्प्रत्यय को समझाने का प्रयास किया गया एवं नेतृत्व के अर्न्तनिहित शीलगुणों पर प्रकाश डाला गया है। भाग–2.1 में प्रस्तावना उल्लिखित है। भाग 2.2 में नेतृत्व के सम्प्रत्यय को समझाया गया है। भाग 2.3 में नेतृत्व के सामान्य गुणों के विषय में बताया गया है। भाग 2.3.1 बुद्धि का नेतृत्व में भूमिका को समझाता है। 3.3.2. शारीरिक गठन के विषय में बताता है। इसी प्रकार शब्दाडम्बर अधिक होने पर नेता बनने की योग्यता बढ़ जाती है इस भाग को 2.3.3 में बताया गया है। 2.3.4 भाग प्रभुता व आत्मसंस्थापन का नेतृत्व में महत्व का विषय में उल्लेखित करता है। जबकि भाग 2.3.5 में आत्मविश्वास को समझाया गया है भाग 2.3.6 व 2.3.7 में क्रमशः बर्हिमुखता व समायोजन शीलगुण का नेतृत्व में उपयोगिता बर्हिमुखता व समायोजन शीलगुण का नेतृत्व में उपयोगिता को लेकर व्याख्या किया गया है। एक नेता के लिये परिश्रम का क्या महत्व है इस तथ्य को 2.3.8 मे बताया गया है 2.3.9 कल्पना व दूददर्शिता को समझाता है 2.3.10 में चमत्कार शीलगुण को नेतृत्व के परिप्रेक्ष्य में समझाया गया है। 2.3.11 अनुभाग में नेतृत्व के लिये इच्छाशक्ति की महत्ता को समाझाया गया है। 2.4 भाग में प्रमुख समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा नेतृत्व के प्रकार की व्याख्या की गयी है।

18.2 नेतृत्व की संकल्पना

नेतृत्व एक विश्वव्यापी प्रक्रिया है। ये विश्व के लगभग सभी समाजों में पायी जाती है। सही अर्थों में समझे तो एक व्यक्ति जो समूह लक्ष्यों व समूह की भलाई के लिये अग्रसर होता है अर्थात् सामूहिक कार्य को आरम्भ करता है, समूह के अन्य लोगों को निर्देशित करता है, आवश्यकतानुसार निर्णय लेता है, सभी के

लिये प्रतिमान स्थापित करता है तथा समूह के अन्य सदस्य अनुयायी के रूप में उसकी बातों का अनुसरण करते हैं। परन्तु मात्र इतने से ही नेतृत्व की सही व्याख्या नहीं की जा सकती है।

समाज मनोवैज्ञानिकों ने इसकी व्याख्या करने के लिये निम्न परिभाषायें दी हैं।

लापीयर तथा फ्रेन्सबर्थ (1949) के अनुसार– नेतृत्व वह व्यवहार है जो अन्य व्यक्तियों के व्यवहारों को उनसे कहीं अधिक प्रभावित करता है।

किम्बाल एवं यंग (1960) के अनुसार नेतृत्व एक महत्वपूर्ण प्रतिष्ठित पद है जो दूसरे के व्यवहार को नियन्त्रित करने का मार्ग दिखाने अथवा व्यवहार का आदर्श निश्चित करने की योग्यता द्वारा अर्जित किया जाता है।

हालैण्डर (1989)–'' सामाजिक मनोवैज्ञानिकों के लिये नेतृत्व अध्ययन एक रूचिकर विषय रहा है। नेतृत्व की अनेकों परिभाषायें दी गयी हैं। सभी परिभाषाओं में न्यूनाधिक मात्रा में एक बात पर बल दिया गया है। नेतृत्व सामूहिक, संगठनात्मक अथवा सामाजिक उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये नेता और अनुसरण कर्ताओं के सामाजिक प्रभाव का एक प्रक्रम है।

यदि हम परिभाषाओं का विश्लेषण करें तो हम पायेंगे कि इन परिभाषाओं में काफी समानता है। नेतृत्व निःसन्देह एक महत्वपूर्ण बिमा है तथा इसके दो महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं– एक नेता जो नेतृत्व करता है तथा दूसरा अनुयायी जो नेतृत्व को स्वीकार करते हैं। यदि हम नेतृत्व का गहन विश्लेषण करें तो हम पायेंगे कि नेतृत्व को नेता एवं उनके अनुयायीजनों के सन्दर्भ में समझा जा सकता है। नेता एवं उसके अनुयायियों के बीच का सम्बन्ध एक तरफा न होकर दो तरफा होता है अर्थात् नेता के कथन व व्यवहारों का अनुयायियों पर अधिक प्रभाव पड़ता है अनुयायियों के कथन व व्यवहार का प्रभाव नेता पर कम पड़ता है।

स्थायी नेतृत्व अनुयायियों के सहयोग व सद्भावना पर निर्भर करता है अर्थात् नेता यदि एक सफल एवं प्रभावी नेतृत्व देना चाहता है, तो यह आवश्यक है कि वह अपने अनुयायियों, के विचारों भावनाओं, संवंगों क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के साथ समतुल्यता व संयोजन स्थापित करें।

प्रायः देखा गया है कि नेता कई बार तो अपने अनुयायियों को प्रभावित करना चाहते हैं परन्तु अनुयायियों के व्यवहार से कम ही प्रभावित होते हैं। ऐसी परिस्थिति में नेता निरंकुश प्रभुत्व पाने का प्रयास करने लगता है, इसी कारण वह अधिक दिनों तक नेता नहीं बने रह पाता व उसका नेतृत्व जल्द ही समाप्त हो जाता है।

एक नेता को अपने को प्रभावी व अपने नेतृत्व की स्थायी बनाने के लिये यह आवश्यक है कि अपने समूह सदस्यों की प्रतिक्रियाओं को समझे व उसके अनुसार एक सीमा तक व्यवहार करने की कोशिश करें।

नेता के संकल्पना को समझने के लिये नेता और औपचारिक अध्यक्ष में अन्तर समझना अति आवश्यक है। नेता और औपचारिक अध्यक्ष में यह प्रमुख अन्तर है कि औपचारिक अध्यक्ष को अपने पद के कारण प्रभाव दिखलाने का अधिकार मिल जाता है व पद से हटते ही वे अधिकार समाप्त हो जाते हैं परन्तु नेता को अपने अनुयायियों द्वारा स्वतः ही प्रभाव दिखलाने का अधिकार मिल जाता है जैसे–कुलपति जब तक अपने पद पर रहता है तब तक उसका प्रभाव कुलपति, विश्वविद्यालय के शिक्षकों कर्मचारियों एवं छात्रों पर रहता है परन्तु अपने पद से हटते ही उसका प्रभाव हमेशा के लिए कम हो जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि सभी औपचारिक अध्यक्ष वास्तविक नेता नहीं होते हैं। कई बार समूह औपचारिक अध्यक्ष को अच्छा नेता समझकर अनुसरण करने लगते हैं। अतः हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि नेता अनुयायी

दोनों को एक दूसरे को पर्याप्त प्रभावित कर सकते हैं परन्तु नेता का प्रभाव अनुयायियों पर काफी अधिक पड़ता है।

18.3 नेतृत्व के सामान्य गुणः–

नेतृत्व के कुछ शीलगुण होते हैं परन्तु उनमें एक रूपता नहीं पायी जाती है। भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में नेता को भिन्न–भिन्न समस्याओं से निपटना पड़ता है। अतः कुछ परिस्थितियों में किन्हीं विशेष तरह के शीलगुणों की आवश्यकता होती है किन्हीं में नहीं। नेतृत्व के अन्तः क्रियात्मक उपागम से यह पता चलता है कि नेतृत्व. तीनों पक्ष अर्थात् नेता, परिस्थिति व अनुयायी की आपसी अन्तः क्रिया प्रक्रिया पर निर्भर करता है। विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के नेतृत्व की आवश्यकता पड़ती है तथापि नेता समूह की सबसे महत्वपूर्ण स्थिति तथा केन्द्रीय भूमिकाओं को अंगीकृत करने में अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक क्रियाशील व तत्पर हैं।

नेतृत्व के लिये कुछ प्रमुख गुणों का होना अति आवश्यक है। आलपोर्ट के अनुसार नेतृत्व के 18 गुण होते हैं। बनार्ड, बोगार्ड व टीड ने भी कुछ प्रमुख गुणों का उल्लेख किया है समाज मनोवैज्ञानिकों ने गहन विश्लेषण के पश्चात् कुछ प्रमुख शीलगुणों को आवश्यक बताया है। जिसमें निम्नांकित प्रमुख हैं।

18.3.1 **बुद्धि** :–समाज मनोवैज्ञानिकों के अनुसार नेता सामान्यतः अपने अनुयायियों से अधिक बुद्धि का होता है स्टागडिल (1948) के प्रयोग में उन्होंने पाया कि भिन्न–भिन्न समूहों में समूह के नेता अपने अनुयायियों की अपेक्षा अधिक बुद्धि के थे। लिंडग्रेन (1973) ने नेतृत्व व बुद्धि में घनात्मक सहसम्बन्ध पाया।

परन्तु यह बात बहुत ही महत्वपूर्ण है कि नेता और अनुयायियों में बुद्धि का बहुत अन्तर नहीं होना चाहिये।

18.3.2 **शारीरिक गठन**– किसी भी समूह के नेता आसानी से प्रत्यक्षित कर लिये जाते है यह इस बात की ओर इशारा करता है कि विभिन्न समूहों के नेताओं में कुछ तो सामान्य होता ही है। स्टागडिल के अनुसार नेता अपने अनुयायियों को अपेक्षा लम्बे होते हैं काल्टवेल (1953) ने भी अपने अध्ययन से यह स्पष्ट किया कि नेता के चार प्रमुख शारीरिक गुण होते हैं–ऊँचाई, वजन, स्फूर्ति एवं अच्छा स्वास्थ्य। नेता की ऊँचाई औसत से अधिक होती है परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि छोटे कद के नेता नहीं होते हैं श्री लाल बहादुर शास्त्री इसके प्रमुख उदाहरण है। ऊँचाई ओर वजन का घनात्मक रिश्ता है। प्रायः यह देखा गया है कि नेता अधिक वजन वाले होते हैं।

यदि स्फूर्ति व स्वास्थ्य को परखा जाय तो इस स्टागडिल (1966) ने अपने अध्ययन में पाया कि प्रायः नेता का स्वास्थ्य आम व्यक्तियों की अपेक्षा अच्छा होता है तथा उनमें स्फूर्ति भी अधिक होती है।

18.3.3 **शब्दाडम्बर** :– शब्दाडम्बर नेता के लिये परमआवश्यक व प्रमुख शीलगुणों में से एक है। शब्दाडम्बर से तात्पर्य ज्यादा बोलने की आदत से होता है। सारेन्टीनों तथा बुटिलियर (1975) ने अपने अध्ययन में पाया कि समूह का जो व्यक्ति अधिक बोलता है उसके नेता बनने की सम्भावना भी अधिक होती है। मैकग्रेथ व जुलियन (1968) ने अपने–अपने अध्ययन में इस बात की पुष्टि की है कि समूह के सबसे अधिक बोलने वाले सदस्य को नेता के रूप में देखा जाता है।

18.3.4 <u>प्रभुता व आत्मसंस्थापन</u>ः– नेता के लिये प्रभुता या प्रभुत्व बनाये रखने की क्षमता एक आवश्यक गुण होता है। किम्बाल यंग (1957) के अनुसार प्रभुत्व एक ऐसी अनुक्रिया है जो दूसरों की मनोवृत्ति एवं क्रियाओं को प्रभावित करता है यह एक शक्ति साधन है जिसका उपयोग एक व्यक्तियों द्वारा दूसरे व्यक्ति की मनोवृत्ति एवं क्रियाओं को नियन्त्रित या परिवर्तित करने के लिए की जाती है।

नेतृत्व व प्रभुत्व में घनात्मक सहसंबंध होता है। माइनर (1968) ने अपने अध्ययन अनुसार बताया कि नेता के लिये प्रभुता तथा आत्मसंस्थापन का गुण अति आवश्यक है।

18.3.5 <u>आत्मविश्वास</u>– नेता के सभी शीलगुणों के बीच इस शीलगुण की अपनी अलग महत्ता है। आत्म विश्वास से तात्पर्य है कि खद में विश्वास अर्थात अपने निर्णयों व अपने आचरण पर विश्वास।
यदि नेता में ही आत्म विश्वास की कमी होगी तो अनुयायियों का भी विश्वास नेता पर से उठ जायेगा और उसका नेतृत्व समाप्त हो जायेगा। अतः एक निश्चित मात्रा में इस गुण का होना परमआवश्यक है। ब्राउन (1964) और हैरेल (1969) के अध्ययनों के अनुसार सफल नेतृत्व के लिये नेता में आत्म विश्वास का होना अत्यन्त आवश्यक है।

18.3.6 <u>बर्हिमुखता</u>ः– अधिकतर नेतृत्व में यह देखा गया है कि उनमें बर्हिमुखता का गुण पाया जाता है। अन्तर्मुखी व्यक्ति की अपेक्षा बर्हमुखी व्यक्ति के नेता होने की संभावना अधिक होती है। बहिर्मुखी व्यक्ति दोनों लोगों से अधिक मिलता जुलता है एवं लोगों को संगठित करता है।

18.3.7 **समायोजन**– नेता में सामंजस्यता का गुण अवश्यभावी है। समूह का नेतृत्व करने के दौरान एक नेता को भांति–भांति की कठिन परिस्थितियों से जुझना पड़ता है और ऐसी परिस्थिति में समायोजन का गुण उनकी मदद करता है। नेता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है। कि उसमें संवेगात्मक स्थिरता का गुण हो ताकि वह अपने संवेगों पर नियन्त्रण रख सके व अपने व्यवहारों व विचारों में लचीलापन ले आ पाए। फिजिसिमोन्स तथा मारकुस (1961) द्वारा किये गये एक अध्ययन में 50 नेता तथा 50 अनुयायियों का समायोजन स्तर 12 प्रकार के वाक्य पूर्ति परीक्षण द्वारा मापा गया। परिणाम में देखा गया कि 12 में से 11 क्षेत्रों में समूह के नेता अपने अनुयायियों से ज्यादा समाायोजित थे।

18.3.8 <u>परिश्रमी</u>ः– नेता का परिश्रमी होना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि जब नेता आलस में आता है तो उससे समूह लक्ष्य प्राप्ति के कई मौके छूट जाते हैं। और समूह के अनुयायियों के साथ भी पारस्परिक्ता में कमी आती है। जिससे समूह या तो टूटने लगता है अथवा समूह सदस्यों द्वारा नेतृत्व परिवर्तन कर दिया जाता है। जब कोई व्यक्ति परिश्रम नहीं कर पायेगा तो इसका स्पष्ट मतलब है कि वह सफल नेता नहीं बन सकता। इतिहास इस बात का गवाह है कि कभी कोई आलसी व्यक्ति लम्बे समय तक नेतृत्व नहीं संभाल सका। बल्कि साधनहीन व गरीब परिवार में जन्म लेने वाले व्यक्ति भी अपने परिश्रम की वजह से आगे चलकर एक प्रमुख नेता बने हैं।

18.3.9 <u>कल्पना व दूरदर्शिता</u>ः– समाज मनोवैज्ञानिकों ने प्रभावी नेता के लिये उत्कृष्ट कल्पनाशील व एवं उच्चकोटि की दूरदर्शिता को अवश्यभावी गुण माना है। इस तरह की शक्ति के आधार पर नेता आगे आने वाली समस्याओं का अन्दाज लगा लेता है और फिर इस प्रकार अपने व्यवहारों व विचारों में परिवर्तन लाता

है कि लक्ष्य–उपलब्धि के संबंध में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव न हो। साथ ही साथ दूरदर्शिता का गुण होने से नेता को अपने अनुयायियों के प्रतिक्रियाओं को समझने में तथा समूह के बारे में पूर्व कथन करने में उसे काफी मदद मिलती है। लिण्डग्रेन 1973 ने अध्ययनों की समीक्षा करके यह बतलाया है कि अधिकतर मनोवैज्ञानिकों ने नेतृत्व के लिये अच्छी कल्पना शक्ति एवं उच्च कोटि की दूरदर्शिता को परम आवश्यक शीलगुण बतलाया है।

18.3.10 चमत्कारः– कुछ नेताओं के व्यक्तित्व में एक विशेष प्रकार का चुम्बकीय आर्कषण पाया जाता है जो उनके अनुयायियों को उनके तरफ चमत्कारीक रूप से खींचता है। इस प्रकार का गुण संसार के कुछ प्रमुख नेताओं में पाया गया है। जैसे – जॉन एफ केनेडी, मार्टीन लूथर किंग, एडाल्फ हिटलर, महात्मा गांधी।

वेबर (1958) के अनुसार यह एक प्रकार का अलौकिक गुण होता है। ये नेता संकटकालीन परिस्थिति में कुछ इस ढंग से कार्य करते हैं कि आम आदमी कुछ समझ नहीं पाते हैं। परन्तु सभी लोग ही इनसे प्रभावित हो ये जरूरी नहीं जैसे महात्मा गांधी के व्यक्तित्व में एक अलग आभा थी परन्तु फिर भी उनके आलोचकों की संख्या भी कम न थी।

18.3.11 इच्छा शक्ति नेता को अनेकानेक परिस्थितियों होकर गुजरना पड़ता है। अतः ऐसी परिस्थिति में उनके द्वारा लिया गया निर्णय से समूचा समूह प्रभावित होता है तो ऐसी कठिन परिस्थितियों में संकल्पच्युत होना नेता का एक महान गुण समझा जाता है। कठिन परिस्थिति में जो नेता जितनी अधिक संकल्पशक्ति दिखाता है उसकी प्रतिष्ठा अनुयायियों के नजर में उतनी ही होती है।
उपर्युक्त शीलगुणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि अधिकतर नेताओं में कुछ सामान्य शीलगुणा का सेट होता है –आजकल मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि नेताओं में सामान्य गुणों का या नेतृत्व गुण सेट का होना अनिवार्य नहीं है। सचमुच में नेतृत्व शारीरिक गुणों के सेट के अलावा काफी कुछ मिलता है।

अपनी प्रगति जांचें 1

1– नेतृत्व सम्प्रत्यय का विश्लेषण करें व इनके महत्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डाले?

....

....

....

2– एक नेता को अपने नेतृत्व को स्थायी व प्रभावी बनाने के लिये किन–किन बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिये?

....

....

....

3– नेतृत्व के सामान्य शीलगुण से क्या समझते हो?

....
....
....

4– एक नेता के अन्दर कौन–कौन से शीलगुणों का होना अवश्यभावी है?

....
....
....

18.4 नेता के प्रकार

नेतृत्व प्रकार या नेतृत्व शैली से नेता के दृष्टिकोण के विषय में ज्ञात होता है साथ ही साथ समूह के सदस्यों के साथ उसके सम्बन्धों का बोध होता है। नेतृत्व शैली से यह भी ज्ञात होता है कि वह समूह लक्ष्य को कैसे निर्धारित करता है किस विधि के द्वारा उसे प्राप्त करता है। अतः जैसे–जैसे समूह भिन्न होगा, उसके अनुयायी भी भिन्न होंगे उसके लक्ष्य भी भिन्न होंगे व उन लक्ष्यों को प्राप्त करने की विधि भी भिन्न होगी। इसी भिन्नता को समझने के लिये समाज मनोवैज्ञानिकों ने नेता के कई प्रकारों का वर्णन किया है। सभी की विस्तृत व्याख्या यहाँ सम्भव नहीं हैं किन्तु प्रमुख मनोवैज्ञानिकों द्वारा बताया गया निम्नलिखित है:–

18.4.1 (क) बोगार्डस (1940) ने नेतृत्व के पाँच
प्रकार उल्लेख किया है जो निम्न प्रकार है–

1. <u>प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष नेतृत्व–</u> यहाँ प्रत्यक्ष नेतृत्व से मतलब अपने अनुयायियों के साथ सीधे सम्पर्क से है। प्रत्यक्ष नेतृत्व में नेता अपने अनुयायियों से प्रत्यक्ष बातचीत करता है, उनकी समस्याओं को सुनता है, उनके समाधान के विषय में सीधे अपना सुझाव प्रत्यक्ष पेश करता है, उनकी सलाह भी सुनता है। निश्चित रूप से यहाँ नेता उत्तरोत्तर प्रभावी होता जाता है।

अप्रत्यक्ष नेतृत्व में नेता अपने समूह के सदस्यों या अनुयायियों को सीधे तौर पर प्रभावित नहीं करता है बल्कि विचारों के द्वारा उन पर नियन्त्रण करता है जैसे–वैज्ञानिक, लेखक व दार्शनिक इत्यादि अप्रत्यक्ष रूप से अपने अनुयायियों को प्रभावित करते हैं।

2. <u>सपक्षीय व वैज्ञानिक नेतृत्वः</u>– सपक्षीय नेतृत्व में नेता हमेशा अपने समूह के सम्मानजनक व प्रशंसनीय पहलुओं की चर्चा दूसरे समूहों के सामने करता है अर्थात बुरे व निन्दनीय पहलुओं को दूसरों के सामने छिपा ले जाता है। इस प्रकार वह यही प्रयत्न करता है कि उसका समूह अन्य समूहों की तुलना में सबसे अच्छा समझा जाय। आज कल के राजनीतिक नेता प्रायः सपक्षीय होते हैं क्योंकि वे आम जनता के सामने पार्टी के गुणों को दर्शाते हैं।

वैज्ञानिक नेतृत्व में प्रायः इसके विपरीत प्रक्रिया पायी जाती है। वैज्ञानिक नेतृत्व में नेता सत्य व न्यायप्रियता को ज्यादा महत्व देता है तथा अन्य समूहों के सामने वह अपने समूह के अच्छाई व बुराई दोनों पक्षों की चर्चा करते हैं सत्य की खोज में वे अच्छे व बुरे दोनों ही प्रकार के तथ्यों पर प्रकाश डालते हैं।

3. <u>सामाजिक कार्यकारिणी एवं मानसिक नेतृत्व</u>:– सामाजिक नेतृत्व में नेता अपने समूह के लिये सामाजिक एवं सार्वजनिक कार्य करता है। इस तरह के नेतृत्व में अनुयायी अपने नेता से सीधे जुड़े होते हैं। और सभी प्रकार की समस्याओं पर वार्ता एक खुले वातावरण में होती है। अतः हम कह सकते हैं कि इस प्रकार के नेता में समाज सेवी गुणों की प्रधानता होती है।

मानसिक नेतृत्व जैसा कि नाम से स्पष्ट है इसमें नेता अपने अनुयायियों व समूह सदस्यों पर विचारों के द्वारा प्रभाव डालता है। ऐसा काम करने के लिये शान्तिपूर्ण व एकाकी स्थान चाहिये। जिससे वह लोगों को अपनी बात मनवाने में उत्प्रेरित कर सके।

कार्यकारिणी नेतृत्व में नेता में सामाजिक व मानसिक दोनों तरह के गुणों व समावेश पाया जाता है। ऐसे नेता में एक अच्छे समाज सेवी का तो गुण होता है साथ ही साथ उसमें अच्छे विचारों को भी प्रस्तुत करने की क्षमता होती है।

<u>4 सत्ताधारी एवं करिश्माई नेतृत्व</u>:–

सत्ताधारी नेतृत्व में नेता अपने समूह का सब कुछ होता है। ऐसे नेता को निरपेक्ष अधिकार अधिक होता है। वह स्वयं ही सभी नीति व योजनाओं को बनाता है और उन्हें क्रियान्वित करता है। यह इच्छा पर निर्भर करता है कि वो कब और किसे दण्ड दे या पुरस्कार दे। इसके लिये किसी के सामने न तो उत्तरदायी होता है और न ही उससे कोई इस बात का औचित्य ही पूछ सकता है। ऐसे नेता को अपने सदस्यों की भलाई की चिन्ता कम ही होती है वह अपने और अपने परिवार की भलाई के विषय में ज्यादा सोचता है।

करिश्माई नेता का नेतृत्व कुछ करिश्मों तथा चमत्कारी कार्यों पर निर्भर करता है। ऐसे व्यक्तियों में कुछ अद्वितीय एवं असाधारण गुण पाये जाते हैं। ऐसे नेताओं की वास्तविक शक्ति (जो उनके अनुयायियों का उनमें विश्वास से बनती है एवं कल्पना शक्ति अधिक होती है। जादूगर, धार्मिक नेता पैगम्बर इत्यादि इसी श्रेणी के नेता होते हैं। ऐसे नेता का नेतृत्व तब तक चलता है जब तक उसमें चमत्कार करने की शक्ति है।

<u>5 पैतृक एवं प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व</u>:–

पैतृक नेतृत्व में नेता अपने अनुयायियों के लिये पिता होता है। अनुयायियों के मन में इस तरह के नेता के प्रति अधिक श्रद्धा एवं आदर का भाव होता है और ऐसे नेता भी एक पिता के समान अपने अनुयायियों के उचित, अनुचित का ख्याल करता है।

प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व सत्ताधारी नेता के ठीक विपरित होता है। इस तरह के नेता समूह के सभी सदस्यों के साथ ही विचार–विमर्श कर ही किसी नीति एवं योजना का निर्माण करता है। इस तरह के नेता व सदस्यों के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। इस प्रकार के नेता सदस्यों के सुख सुविधाओं एवं भावनाओं की काफी कद्र करते हैं।

मालिक एक ऐसा नेता होता है जो या तो अपने पद की वजह से लोगों का ध्यान अपनी तरफ खींच लेता है या अपनी चतुराई व वाक्पटुता के कारण दूसरे व्यक्तियों का ध्यान खींचता है। ऐसे नेताओं में चतुराई व वाक्पटुता का गुण अधिक होता है।

18.4.2 (ख) <u>किम्बल यंग का वर्गीकरण</u>:– इसे निम्नांकित 6 भागों में बाँटा गया है।

राजनैतिक नेताः— इस प्रकार के नेता राजनैतिक पार्टी से चुनाव के संघर्ष के दौरान उत्पन्न होते हैं। ऐसे नेता लोगों का विरोध करने पर भी अपने नेतृत्व को बचाने में लगे रहते हैं ये बेहद ही वाक्पटु व चतुर होते हैं। ऐसे नेता अपने दल को ठीक ढंग से रखने की कोशिश में लगे रहते हैं ताकि दल का काम सुचारू रूप से चल सके क्योंकि दल टूटने का बेहद ही नाकारात्मक प्रभाव उन पर पड़ेगा।

2. <u>प्रजातन्त्रात्मक नेता</u>ः— इस तरह के नेता समूह के साथ विचार विमर्श करते हुये, समूह के मतों को आदर करते हुए किसी नीति व योजना का निर्धारण करता है। यह किसी तरह का भी निर्णय मिल—जुल कर करता है न कि अपने द्वारा लिये गये निर्णय को जबरदस्ती किसी पर थोपना।

3. <u>सुधारक नेता</u>ः— सुधारक नेता एक आदर्शवादी नेता होता है जो समाज की बुराईयों को खत्म करने का बीड़ा उठाता है। भले ही इसके लिये उसे कितना ही दुःख क्यों न हो। ऐसे नेता प्रायः समाज के नियमों से इतर अपना सैद्धान्तिक नियम बनाकर चलते हैं। महात्मा गांधी, राजा राम मोहन राय की गणना इस प्रकार के नेताओं से की जा सकती है।

4. <u>नौकर शाही</u>ः— इस प्रकार का नेता प्रशासन से सम्बंधित होता है तथा नियम व कानून पर सख्ती से अमल करता है। ऐसे नेता सरकारी विभागों का काम काफी कुशलता से करते हैं। वे किसी समस्या पर निर्णय स्वयं न लेकर अपने उच्चाधिकारियों पर छोड़ देते हैं।

5. <u>कूटनीतिज्ञ</u>ः— इस प्रकार के नेता सरकार के प्रतिनिधि के रूप में दूसरे देशों में काम करते हैं। कूटनीतिज्ञ हमेशा अपनी सरकार के बनाये हुये नियमों व कानूनों के अनुसार ही काम करता है। वह अपने सरकार के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये काफी चतुराई एवं कुशलता से कार्यों को करता है।

6. <u>सिद्धान्तवादी</u>ः— सिद्धान्तवादी नेता के विचारों का सम्बन्ध मात्र सिद्धान्तों से होता है अतः यह स्वाभाविक है कि उसके विचारों एवं व्यवहारों में व्यवहारिकता कम हो। पुष्टि के लिये तर्क का सहारा लेता है।

18.4.3 (ग) <u>लिपिट एवं व्हाइट का वर्गीकरण</u>ः— लिपिट एवं हाईट (1939) ने नेतृत्व के तीन प्रकार बताये हैं।

1. <u>सत्ताधारी नेतृत्व</u>ः—सत्तावादी नेता अपने समूह में निरपेक्ष प्रभाव रखता है वह स्वयं ही नीतियों का निर्माण करता है समूह की योजनाएँ तैयार करता है अपने द्वारा निर्धारित लक्ष्य को वह स्वयं जानता है। स्वयं ही वह सदस्यों के क्रियाओं का नीति निर्धारित करता है उन पर नजर बनाये रखता है। स्वयं ही दण्ड निर्धारित करता है व पुरस्कार भी स्वयं निर्धारण करता है। यह समूह सदस्यों के आपसी सम्बन्धों को बनाने से रोकता है और इस तरह की व्यवस्था रखता है कि कोई भी संदेश उससे होते हुये ही अगले चरण तक पहुँचे। वह समूह के केन्द्र में रहना चाहता है (अरूण कुमार सिंह, 2006)

इस प्रकार के नेता को अपने सदस्यों के कल्याण की चिन्ता कम होती है वह केवल अपने सदस्यों से काम लेना जानते हैं। फलतः समूह के सदस्यों का मनोबल काफी कम होता है और समूह धीरे—धीरे टूटने लगता है।

2. <u>प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व</u>ः—

इस प्रकार के नेता सत्तावादी नेता के ठीक विपरीत होते हैं। इन्हें अपने समूह के सदस्यों के कल्याण की चिन्ता अधिक होती है। ये समूह लक्ष्यों के प्राप्ति के लिये बनने वाले नीतियों व योजनाओं में अपने समूह सदस्यों की भागीदारी सुनिश्चित करते हैं। इस प्रकार के नेता समूह के सभी कार्यों को समूह सदस्यों में बॉट देते हैं। इस तरह के नेतृत्व में अधिकार व सत्ता का विकेन्द्रीकरण होता है। ऐसे नेतृत्व में समूह के सदस्यों का मनोबल ऊँचा होता है। (अरूण कुमार सिंह, 2006)। नेता के अनुपस्थिति में भी यह समूह टूटता नहीं है।

3. अहस्तक्षेपी नेतृत्वः– इस तरह के नेतृत्व में नेता अपने समूह के सदस्यों पर नाम मात्र का नियन्त्रण रखता है। अर्थात नेता न तो अपने समूह को मार्गदर्शन देता है न ही अपनी तरफ से कोई निर्देश जारी करता है। इसमें सदस्यगणों को पूरी स्वतंत्रता होती है। समूह सदस्य यह स्वयं से निर्णय ले सकते हैं उन्हें कौन कार्य करना और कौन सा नहीं करना है।

खेर (1985) के अनुसार '' समाज मनोविज्ञान में अहस्तक्षेपी नेतृत्व उस तरह के नेतृत्व तंत्र को कहा जाता है जो न्यूनतम नियन्त्रण के साथ कार्य करता है। वास्तविक अहस्तक्षेपी तंत्र में नेता द्वारा किसी ढंग का नियन्त्रण नहीं किया जाता है यहाँ तक कि किसी प्रकार की सहायता या मार्गदर्शन भी नहीं किया जाता है।''

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो गया है कि समाज मनोविज्ञान में नेतृत्व के दो प्रकार अधिक लोकप्रिय है। सत्तावादी नेता तथा प्रजातन्त्रात्मक नेता। इनमें से भी प्रजातान्त्रिक नेतृत्व ही आज दुनिया के अधिक्तर देशों में देखने को मिलता है।

अपनी प्रगति जांचें 2

1– नेतृत्व के प्रकार से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

2– बोगार्डस के अनुसार नेतृत्व के प्रकारों का उल्लेख करें?

....

....

3– किम्बल यंग के अनुसार वर्गीकरण समझायें?

....

....

4– लिपिट एवं व्हाईट का वर्गीकरण समझायें?

....

18.5 सारांश

1. नेतृत्व एक ऐसी अंतवैयक्तिक अन्तः क्रिया है जो समूह के सभी सदस्यों के मध्य होती है। इसमें समूह का प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्य को प्रभावित करता है परन्तु एक व्यक्ति बाकी के समूह सदस्यों को ज्यादा प्रभावित करता है और उसे हम समूह का नेता कहते हैं।
2. नेता के कुछ सामान्य शीलगुण बताये गये हैं। ये गुण है–ऊँचाई, वजन, स्फूर्ति, बुद्धि, आत्मविश्वास, शब्दाडम्बर प्रभुत्व, समायोजन की क्षमता, सामाजिकता, परिश्रमप्रियता कल्पना, दूरदर्शिता, चमत्कार एवं संकल्पशक्ति

18.6 कुंजी शब्द :

नेतृत्व – नेतृत्व एक विषय है जिसके दो महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं। एक नेता जो नेतत्व करता है दूसरा अनुयायी जो नेतृत्व को स्वीकार करता है।

बुद्धि :
सामान्यतः नेता अधिक बुद्धि के होते हैं भिन्न समूहों के नेता अपने अनुयायियों की अपेक्षा अधिक बुद्धि के होते है।

शब्दाडम्बर :
शब्दाडम्बर से तात्पर्य ज्यादा बोलने की आदत से होता है। प्रायः यहां देखा गया है कि जो व्यक्ति ज्यादा बोलता है उसके नता बनने की सम्भावना अधिक होती है।

प्रभुता व आत्मसंस्थापन :
प्रभुता या प्रभुत्व एक ऐसी अनुक्रिया है जो दूसरो की मनोवृत्ति एवं क्रियाओं को प्रभावित करती है। यह एक शक्ति साधन है जिसका उपयोग एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के क्रियाओं को नियंत्रित व परिवर्तित करने के लिये की जाती है।

चमत्कार :
कुछ नेताओं के व्यक्तित्व में एक चुम्बकीय आकर्षण पाया जाता है। जो उनके अनुयायियों को चुम्बकीय रूप से उनकी ओर खींचता है।

बर्हिमुखता :
बहिर्मुखी व्यक्ति अनुयायियों से अधिक मिलता–जुलता है एवं लोगों को संगठित करता है।

समायोजन :
नेता में समायोजन का गुण होता है यह अत्यन्त आवश्यक है यह बताता है कि व्यक्ति में संवेगात्मक स्थिरता है।

प्रत्यक्ष नेतृत्व :
नेता जब अपने अनुयायियों से प्रत्यक्ष सम्पर्क में होता है तो समक्ष रूप से उनकी समस्याओं को सुनता है व अपनी सुझाव पेश करता है।

अप्रत्यक्ष नेतृत्व :
अप्रत्यक्ष नेतृत्व में नेता अपने समूह के सदस्यों को सीधे तौर पर प्रभावित नहीं करता है।

18.7 आगे अध्ययन के लिये :

1– समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, (2017), डॉ0 अरुण कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन

2— उच्चतर समाज मनोविज्ञान (2014), डॉ0 मुहम्मद सुलेमान मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन।
3— आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान (1998), डॉ0 रामजी श्रीवास्तव, डॉ0 काजी आसिम आलम, डॉ0 काजी गौस आलम, मोतीलाल बनारसीदास, पब्लिकेशन।
4— समाज मनोविज्ञान (1998), डॉ0 रामजी श्रीवास्तव, बद्रीनारायण तिवारी, रमेश चन्द्र दूबे, बानी आनन्द मोतीलाल बनारासीदास पब्लिकेशन।

18.8 प्रतिदर्श जवाब आपकी प्रगति की जांच करने के लिए :

अपनी प्रगति जांचें 1

1—नेतृत्व वह व्यवहार, प्रक्रिया एवं एक प्रतिष्ठित पद है जो अन्य व्यक्तियों के व्यवहारों को नियन्त्रित करने का मार्ग तथा व्यवहार का आदर्श निश्चित करने की योग्यता द्वारा अर्जित किया जाता है। नेतृत्व सामूहिक, संगठनात्मक अथवा सामाजिक उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये नेता और अनुसरणकर्त्ताओं के सामाजिक प्रभाव का एक प्रक्रम है।

2—एक नेता को अपने नेतृत्व को स्थायी व प्रभावी बनाने के लिये अपने समूह के प्रतिक्रियाओं को समझना व उसके अनुसार व्यवहार करने की कोशिश करनी चाहिये।

3—नेतृत्व करने के लिये व्यक्ति में कुछ प्रमुखशील गुणों का होना अति आवश्यक है जिनकी सहायता से वह, परिस्थिति व अनुयायीयों के बीच परस्पर समन्वयता स्थापित कर पाता है।

4—एक नेता के अन्दर बुद्धि, शब्दाडम्बर, आत्मविश्वास, समायोजन, कल्पना व दूरदर्शिता, परिश्रम, चमत्कार व इच्छाशक्ति जैसे शीलगुणों का होना अवश्यभावी है।

अपनी प्रगति जांचें 2

1—नेतृत्व के प्रकार से यहाँ तात्पर्य नेतृत्व के लिये अपनाये गये तरीकों से है। नेतृत्व के प्रकार के विषय में विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न मत दिये हैं जिनमें बोगडिस, किम्बल यंग एवं लिपिट एवं ह्वाइट के द्वारा दिया गया वर्गीकरण प्रमुख है।

2—बोगार्डस के अनुसार नेतृत्व निम्न पांच प्रकार के होते हैं :—

1— **प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष नेतृत्व** :— प्रत्यक्ष नेतृत्व से स्पष्ट है कि नेता अपने अनुयायियों से सीधे बातचीत करता है उनकी समस्याओं को सुनता है व अपना सुझाव वेश करता है। अप्रत्यक्ष नेतृत्व में नेता अपने समूह के सदस्यों या अनुयायियों से सीधे तौर पर प्रभावित न होकर अपने विचारों द्वारा उन पर नियंत्रण करता है।

2— **सपक्षीय व वैज्ञानिक नेतृत्व** :— सपक्षीय प्रकार में नेता अपने समूह के प्रशंसनीय कामों को दूसरों के सामने रखता है अपने समूह को अन्य समूहों की तुलना में अच्छा साबित करता है।
वैज्ञानिक नेतृत्व में प्रायः नेता सत्य व न्यायप्रियता को ही ज्यादा महत्व देता है।

3— **सामाजिक कार्यकारिणी एवं मानसिक नेतृत्व** :— सामाजिक नेतृत्व मे नेता अपने समूह के लिये सामाजिक एवं सार्वजानिक कार्य करता है, एवं मानसिक नेतृत्व में नेता अपने अनुयायियों व समूह सदस्यों पर विचारों द्वारा प्रभाव डालता है।

4– **सत्ताधारी एवं करिशमाई नेतृत्व** :– सत्ताधारी नेतृत्व में नेता को अपने समूह का निरपेक्ष अधिकार अधिक होताहै। वह अपने समूह के लिये सामाजिक एवं सार्वजनिक कार्य करता है। वह स्वयं ही सभी नीति व योजननाओं को बनता है और उन्हें क्रियान्वित करता है।
करिश्माई नेतृत्व कुछ करिश्मों तथा चमत्कारी कार्यों पर निर्भर करता है। ऐसे व्यक्तियों में कुछ असाधारण व अद्वितीय गुण पायें जाते हैं।
5– **पैतृत्व व प्रजातंत्रात्मक नेतृत्व** :– पेतृक नेतृत्व में नेता अपने अनुयायियों के लिये पिता समान होता है। अनुययियों के मन में इस तरह के नेता प्रति अधिक श्रद्धा का भाव होता है।
प्रजातंत्रात्मक नेतृत्व सत्ताधारी नेता के ठीक विपरित होता है। इस तरह के नेता समूह के सभी सदस्यों के साथ विचार–विमर्श करके ही किसी नीति एवं योजना निर्माण करते है।
3– किम्बल यंग ने नेतृत्व के 6 प्रकारों का वर्णन किया है–
राजनैतिक नेतृत्व, प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व, सुधारक नेतृत्व, नौकर शाही नेतृत्व, कूटनीतिज्ञ नेतृत्व, सिद्धान्तवादी नेतृत्व ।
4–लिपिट एवं ह्वाइट ने नेतृत्व के तीन प्रकार बताये हैं। 1– सत्ताधारी नेतृत्व, (2) प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व, (3) अहस्तक्षेपी नेतृत्व ।

नेतृत्व का उद्‍भव व तकनीकें

29.0 उद्‍देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 नेतृत्व का उद्‍भव

19.2.1 समूह जटिलता

19.2.2 समूह अस्थिरता

19.2.3 समूह संकट

19.2.4 अधिकृत अध्यक्षों की विफलता

19.2.5 व्यक्तित्व कारक

19.2.6 नेता की आवश्यकताएँ

19.3 नेतृत्व की तकनीकें

19.3.1 स्पष्ट निर्देश प्रदान करना

19.3.2 अच्छे कार्यों की सराहना करना

19.3.3 समूह के सदस्यों के सलाह को महत्व देना

19.3.4 समूह सदस्यों के वैयक्तिक विकास पर बल देना

19.3.5 लक्ष्य प्राप्ति के विषय में सम्प्रेषण

19.3.6 सार्वजनिक स्थानों पर प्रशंसा

19.3.7 समूह सदस्यों को उपकरण अथवा सुविधा मुहैया कराना

19.3.8 अपने समूह के सदस्यों में रूचि लेना

19.4 नेतृत्व प्रशिक्षण एवं प्रविधियाँ

19.4.1 भाषण विधि

19.4.2 सम्मेलन विधि

19.4.3 समस्या चर्चा विधि

19.4.4 भूमिका र्निवाह

19.5 नेतृत्व प्रशिक्षण में बाधायें

19.6 अध्ययन सारांश

19.7 कुंजी शब्द

19.8 आगे अध्ययन_के लिये

19.9 प्रतिदर्श जवाब आपकी प्रगति की जांच करने के लिए

19.0 उद्देश्य

जब आप यह अध्याय पूर्ण करेंगे तब आप यह जान चुके होंगे की

- नेतृत्व का उद्भव कब और किन परिस्थितियों में होता है।
- नेतृत्व के लिय क्या–क्या तकनीकें है, नेतृत्व में प्रशिक्षण का क्या महत्व है।
- नेतृत्व की क्या प्रविधियाँ हैं। नेतृत्व प्रशिक्षण में बाधक तत्व क्या–क्या हैं।

19.1 प्रस्तावना

इकाई 1 में हमने सामाजिक सीखना के विषय में जाना। उसकी विभिन्न समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गयी परिभाषा के विषय में समझा। सामाजिक सीखना के कारक व प्रक्रिया के विषय को समझा।

इकाई 2 में हमने नेतृत्व के समप्रत्यय को सीखा। नेतृत्व के प्रकार व अर्न्तनिहित गुणों को समझा।

इकाई 3 में हम नेतृत्व के उद्भव को समझेंगे कि किन–किन परिस्थितियों जैसे समूह जटिलता, समूह अस्थिरता इत्यादि में नेतृत्व का उद्भव होता है।

भाग 3.3 में नेतृत्व की तकनीकों का समझने का प्रयास किया गया है एवं यह जानने का प्रयास किया गया है कि ऐसी कौन–कौन सी तकनीकें हैं जिन्हें व्यवहार में लाकर एक कुशल नेतृत्व किया जा सकता है।

भाग 20.4 में नेतृत्व प्रशिक्षण की प्रविधियों के विषय में समझा जा सकता है जैसे भाषण विधि सम्मेलन विधि, समस्या चर्चा विधि और भूमिका र्निवाह विधि द्वारा नेतृत्व प्रशिक्षण को समझाने का प्रयत्न किया गया है।

भाग 20.6 में नेतृत्व प्रशिक्षण की बाधाओ में विषय में चर्चा की गयी है कि ऐसे कौन–कौन से कारक हैं जो नेतृत्व प्रशिक्षण में बाधा उत्पन्न करते हैं।

19.2 नेतृत्व का उद्भव या आर्विभाव

यह सर्वविदित है कि नेतृत्व एक विश्वव्यापी प्रक्रिया है और लगभग सभी समूह में एक अथवा एक से अधिक नेता होते ही हैं। यह एक बेहद ही प्रांसगिक प्रश्न है कि नेता का उद्भव कैसे होता है ? नेतृत्व की उत्पत्ति के लिये कौन–कौन से कारक जिम्मेदार हैं ? ऐसे कारक क्या समूहजन्य होते हैं या परिस्थितिजन्य? समाज मनोवैज्ञानिकों के अनुसार नेतृत्व की उत्पत्ति समूह की जटिलता, उसके आकार, उसकी स्थिरता–अस्थिरता, लक्ष्यों, संरचना, विचारों आदि पर निर्भर करता है। अन्य समाज मनोवैज्ञानिकों के

अनुसार यह तात्कालिक नेतृत्व की सफलता, व विफलता द्वारा भी निर्धारित होता है। यहाँ निम्नलिखित कुछ ऐसे कारकों का वर्णन किया गया है जिनसे नेतृत्व के उद्‌भव प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

19.2.1 समूह जटिलता

नेतृत्व उद्‌भव समूह की संरचना पर बहुत हद तक निर्भर है। जैसे–जैसे समूह की जटिलता बढ़ती है वैसे–वैसे उसकी संरचना भी बदलती है लक्ष्य व आकार व कार्यों में परिवर्तन होता जाता है व नये नेतृत्व की अविर्भाव की संभावना प्रबल होती जाती है। प्रायः यह देखा गया है कि छोटे समूहों के लक्ष्य, आवश्यकता, कार्य मूल्य इत्यादि सीमीत है। किन्तु आकार बढ़ने पर आवश्यकतायें लक्ष्यों आदि में वृद्धि होने के कारण नेतृत्व की आवश्यकता भी बढ़ती जाती है। सामूहिक अन्तः क्रिया बढ़ने की वजह से जटिलता बढ़ती है तथा इससे नेतृत्व श्रृंखला का जन्म होता है। श्रृंखला में सबसे ऊपर (Primary Leaders) प्राथमिक स्तर के नेता तथा निचली सतह पर (Secondary Leader) द्वितीयक स्तर के नेता होते हैं अतः यहाँ यह स्पष्ट है कि बड़ा समूह होने से कई तरह के नेताओं का जन्म होता है।

19.2.2समूह अस्थिरता

नेतृत्व के उद्‌भवन में समूह की अस्थिरता की काफी अहम् भूमिका है। जब समूह के सदस्यों के मतभेद काफी बढ़ जाते हैं और उनमें सद्‌भाव व पारस्पारिकता की कमी हो जाती है व समूह लक्ष्य की प्राप्ति खतरे में पड़ जाती है तो नये नेता के बनने की संभावना तीव्र हो जाती है। ऐसे समय में जो व्यक्ति समूह में शान्ति व अनुशासन कायम करने में व समूह लक्ष्यों को प्राप्त करने में सक्षम होता है वही नेता बनने के योग्य होता है और इसी वजह से समूह के सभी सदस्य उस पर विश्वास करने लगते हैं। कोई भी नेता अपने उभरने के समय अनौपचारिक रूप से समूह का पथ प्रदर्शन करता है परन्तु शीघ्र ही वह अपने योग्यता की वजह से समूह का औपचारिक नेता बन जाता है।

19.2.3 समूह संकट

प्रायः यह देखा गया है कि समूह पर जब–जब संकट के बादल आते हैं और समूह वाहय शक्तियों से अपनी रक्षा करने में असफल होता है या अपने निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में असफल होता है तो ऐसी परिस्थिति में भी नये नेता का जन्म होता है, जो अपने संकटग्रस्त समूह को संकट से निकालने का कार्य करें व लक्ष्य प्राप्ति को सुनिश्चित करें। इस सन्दर्भ में एक प्रयोग उल्लेखित है। हैम्बलिन (1958) द्वारा किये गये इस अध्ययन 3–3 व्यक्तियों के 24 समूहों को लिया गया जिसमें 12 प्रायोगिक समूह थे व 12 नियंत्रित समूह थे। इस प्रयोग में प्रयोगात्मक समूह को एक खेल संकटकालीन परिस्थिति में सीखना था जहाँ खेल नियम में अचानक परिवर्तन कर उसे कठिन बना दिया जाता था और नियन्त्रित समूह को वही खेल सामान्य परिस्थिति में सीखना था। परिणाम में यह पाया गया कि 12 प्रायोगिक समूह में से 9 प्रायोगिक समूहों ने व 3 नियन्त्रित समूहों ने अपना नेता संकटकालीन परिस्थितियों के समय बदल दिया। यह भी देखा गया कि संकट के समय नेता की शक्ति बढ़ जाती है और समूह द्वारा उसकी बात आसानी से मान ली जाती है। परन्तु यदि नेता अपने समूह को संकटग्रस्त परिस्थितियों से निकालने में असमर्थ होता है तो समूह नेता को प्रतिस्थापित कर देता है। अर्थात् नेता का उद्‌भव उसके व्यक्तित्व कारकों के साथ–साथ अन्य परिस्थितिजन्य कारकों पर भी निर्भर करता है। इससे नेतृत्व की उत्पत्ति के अलावा नेतृत्व का समूह में

वितरण भी प्रभावित होता है क्योंकि ऐसी परिस्थिति में सत्ताधारी नेता की उत्पत्ति होने की सम्भावना अधिक होती है।

19.2.4 अधिकृत अध्यक्षों की विफलता

जब किसी समूह के निर्वतमान अध्यक्ष अपन कार्यों का निर्वहन करने में विफल होने लगते हैं तो ऐसी परिस्थिति में नये नेतृत्व की उद्भवन की संभावना काफी तीव्र हो जाती है। अधिकृत प्रधान अथवा अध्यक्ष अनेकों कार्य जैसे– योजना निर्माण, समूह की नीति बनाना, विरोधकार्य इत्यादि करते हैं और जब वे अपने से अपेक्षित इन कर्तव्यों को पूरा करने में विफल हो जाते हैं तथा निर्धारित लक्ष्यों को पूर्ण करने में असफल होने लगते हैं तो ऐसे समय में नेता को समूह के द्वारा परिवर्तित कर दिया जाता है। क्रोकेट (1955) ने अपने एक अध्ययन में पाया कि 83% असफल औपचारिक अध्यक्षों को समूह के द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया तथा मात्र 39% सफल औपचारिक अध्यक्षों के जगह पर समूह के सदस्यों ने नये नेतृत्व को चुना।

19.2.5 व्यक्तित्व कारक

नेतृत्व की उत्पत्ति में प्रभावशाली व्यक्त्वि की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है समाज मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि, शक्ति, सूझ, सांवेगिक स्थिरता, दूरदर्शिता, सम्प्रेषण कौशल आत्मविश्वास, लचीलापन प्रोत्साहन एवं रूपक का उपयोग कर स्थितियों की व्याख्या करने के लिये निर्धारिक व्यक्तित्व कारक हैं। जिन व्यक्तियों में उपरोक्त वर्णित गुण पाये जाते हैं समूह का नेता बनने में कम मुश्किलें आती हैं औेर ये अपने इन्हीं गुणों की वजह से समूह सदस्यों को प्रभावित कर लेते हैं । उपरोक्त वर्णित गुण उन्हें विभिन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान में मदद करते हैं। परन्तु इन गुणों के अलावा नेतृत्व उद्भवन के लिये उपयुक्त सामाजिक परिस्थिति का भी होना अनिवार्य है।

19.2.6 नेता की आवश्यकताएँ

नेतृत्व के उद्भवन में कुछ आवश्यक्तायें भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है जैसे– शक्ति या सत्ता की आवश्यकता, प्रतिष्ठा की आवश्यता, धर्नाजन की आवश्यकता, प्रभुत्व की आवश्यकता। ये आवश्यकतायें जिन व्यक्तियों में प्रबल होती हैं उनमें नेतृत्व करने की क्षमता होती है। यदि किसी समूह के कुछ लोगों में इस तरह की आवश्यकतायें हो तो उनमें नेतृत्व के लिये स्पर्धा होगी।

आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों के अनुसार नेता के अविर्भाव के लिये शीलगुणों के साथ–साथ उपर्युक्त सामाजिक परिस्थिति का भी होना अनिवार्य है। इसके लिए नेता को अपने समूह सदस्यों को संप्रेषण के माध्यम से यह मालूम करना पड़ता है कि उन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता है या नहीं और तब उन्हें यह वस्तु दे दी जाती है।

अपनी प्रगति जांचें 1

1– नेतृत्व के उद्भव को प्रभावित करने वाले कारक कौन–कौन सें हैं?

....

....

....

2– उन व्यक्तित्व कारकों पर प्रकाश डालें जो नेतृत्व उत्पत्ति के दौरान मुख्य भूमिका निभातें हैं।

....
....
....

3– नेतृत्व की आवश्यकताओं के विषय में विवरण दीजिए?

....
....
....

19.3 नेतृत्व की तकनीकें (**Techniques of Leadership**)

नेतृत्व की नई तकनीकों को सीखना एक नेता की प्रभावशीलता में सुधार करता है, अतः यह एक नेता के लिये अति आवश्यक है कि वह समय व परिस्थिति के अनुसार नयी–नयी तकनीकों को सीखे व समझे व विकसित भी करें। यह सर्वविदित है कि नेतृत्व की एक ही शैली हर स्थिति में उपर्युक्त नहीं हो सकती है। प्रभावशाली नेताओं ने समय–समय पर परिस्थितियों की जाँच करने और नेतृत्व की नयी–नयी तकनीक विकसित किया है। नेतृत्व को प्रभावी बनाने में निम्न विधियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं।

19.3.1 स्पष्ट निर्देश प्रदान करना

प्रभावी नेता यह अच्छी तरह जानते हैं कि उनका समूह लक्ष्य क्या है और उस लक्ष्य प्राप्ति में क्या–क्या बाधायें व सहयोग है। साथ ही साथ समूह के सदस्यगण व कर्मचारी भी अपनी–अपनी भूमिका व कार्यों के विषय में स्पष्ट जानना चाहते हैं अतः यह नेता के लिये अत्यन्त आवश्यक है कि वह समूह सदस्यों से अपनी अपेक्षाओं का संचार करें। नेता को समूह के लक्ष्य व नैतिक मूल्यों के विषय में भली–भांति ज्ञात होना आवश्यक है।

समूह में अपने उम्मीदों को निरन्तर संप्रेषित करना नेता के लिये नितांत आवश्यक है, चाहे वह वैयक्तिक तौर पर हो अथवा समूह के बैठक के दौरान।

19.3.2 उचित व अच्छे कार्यों की सराहना करनाः

सफल नेता का यह मूलभूत गुण होता है कि वह यह समझे कि उसके समूह के लिए क्या उचित व लाभदायक है और क्या अनुचित व हानिकारक। अच्छा नियम या कार्य को समझने के साथ–साथ उसे कब व कैसे लागू करना है, उसमें कितना समय लगेगा इत्यादि की जानकारी एक प्रभावी नेता को होती है किन कार्यों को समूह के सदस्यों की सहायता से पूर्ण करना है, उस कार्य को करने करने के दौरान आने वाली बाधा उनका हल खोजना, सफलता के दर को उच्च करना, विफलता के दर को कम करना, कार्य को करने की पहल करना, तथाकथित कार्य को करने के दौरान भी सीखना इत्यादि कुछ ऐसे गुण है जो हर नेता में होने अवश्यंभावी है। सफल नेता को अपने सहयोगियों को उनके अच्छे कार्यों के लिये ईमानदारी से तारीफ करना आना चाहिये।

19.3.3 समूह सदस्यों के सलाह को महत्व देनाः

समूह के सदस्य भी काम की प्रक्रिया में शामिल होना चाहते हैं व उनका समय–समय पर समूह निर्णयों के दौरान सलाहों को देना तरफ इंगित करता है कि वह भी समूह लक्ष्य व समूह कार्यों के बारे में उतनी ही ईमानदारी से समझना चाहते हैं। अतः यह नेता की नैतिक जिम्मेदारी एवं कर्तव्य है कि वह अपने समूह सदस्यों की आवश्यकताओं एवं सलाहों को सुने तथा समझे उन्हें समय दे और यदि सम्भव हो तो उनकी राय स्वीकार करें। क्योंकि किन रायों को स्वीकार करना है जिससे लाभ मिले व किन रायों को अस्वीकार करना जिससे हानि होगी इत्यादि की समझ एक प्रभावी नेता को होती है। एक नेता को यह मापदण्ड निर्धारित करना होता है कि किस तरह के कार्यों को सम्मिलित किया जाना चाहिये अथवा किस प्रकार के निर्णयों के धनात्मक प्रभाव सभी पर पड़े ताकि हर कोई उसके विचार से अधिक लाभ उठा सके साथ ही साथ समूह सदस्यों को भी यह बात पता चल सके कि किस प्रकार के विचारों को सम्मिलित किया जायेगा। एक नेता को यह भी नियत करना होता है कि कब और कैसे व किन भाषाओं का उपयोग करते हुये अपने सुझाव को सामने रखने हैं साथ ही साथ किन सुझावों और सूचनाओं का चयन करना है इसके साथ समूह सदस्यों को अभिप्रेरित करना उनकी भावनाओं का ख्याल रखना भी एक नेता को प्रभावी नेता के रूप में संस्थित करता है।

19.3.4 समूह सदस्यों का वैयक्तिक विकास पर बल देनाः

जब समूह का हर सदस्य व्यक्तिगत रूप से सक्षम होगा तो समूह भी सक्षम और मजबूत होगा। इसलिये एक नेता की यह जिम्मेदारी है कि वह अपने समूह सदस्यों के विकास पर ध्यान दें। उन्हें प्रशिक्षण प्राप्ति के लिये अभिप्रेरित करें उन्हें कठिन कार्य जिससे वे कुछ सीख प्राप्त कर सकें करने के लिये दें समय–समय पर उनको सहायता प्रदान करें एवं आगे बढ़ने के लिए मौके दें। यह उनका परम कर्तव्य है कि समय–समय पर अपने समूह सदस्यों के मार्ग में आने वाली बाधाओं को हटायें। इस तरह से समूह के सदस्य भी अपने नेता के प्रति ईमानदार हो जाते हैं और यह प्रभावी नेतृत्व के लिये अच्छा संकेत है।

19.3.5 लक्ष्य प्राप्ति के विषय में संप्रेक्षणः–

एक नेता यह जानता है कि एक अपने समूह के साथ लगातार संप्रेक्षण ही सफलता की कुंजी है। एक सफल नेता इस बात को अच्छी तरह से जानता है कि कब उसके समूह सदस्यों को फीडबैक की जरूरत है और कब अभिप्रेरण की। वह इस बात की भी पूरी कोशिश करता है कि उसके अनुयायियों को हमेशा पता रहे कि उन्होंने समूह लक्ष्यों को प्राप्त करने के मार्ग में कहाँ तक का सफर तय किया है। और वे इस वक्त इससे कितनी दूर है। लगातार संप्रेषण से समूह सदस्यों व नेता दोनों ही पक्षों को यह पता होता है कि समूह लक्ष्यों की प्राप्ति में कैसी व कितनी बाधा है। साथ ही साथ नेता समूह सदस्यों की सहायता भी करते जाते हैं लक्ष्य प्राप्ति के लिये जहाँ तक सम्भव हो वहाँ प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करते हैं। परानुभूति, संगतता, ईमानदारी, और सकारात्मक मनोवृत्ति से प्रतिक्रिया देने पर सकारात्मक दृष्टिकोण कर्मचारियों को प्रतिक्रिया प्राप्त करने के तरीके के लिये महत्वपूर्ण है।

समूह सदस्यों का साथी बनना भी नेतृत्व गुणों में एक भूमिका निभाता है। एक नेता को यह बात हमेशा प्रभावित करती है कि उसके समूह के सदस्यों का पलायन किसी अन्य समह की तरफ तो नहीं हो रहा। एक नेता नेतृत्व के रास्तों पर चलते हुए यह महसूस करता है कि उसके समूह सदस्य भी दूसरे समूह सदस्य के पास जा सकते हैं या उसे पदच्युत कर सकते हैं फिर भी उसके समूह में बने हुये है।

एक नेता को अपने अनुयायियों को साथी के रूप में देखना चाहिये। उन्हें अक्सर समूह के लक्ष्यों, नैतिक मूल्यों इत्यादि के विषय में वार्ता करते रहने चाहिये। उनसे यह पता करते रहना चाहिये कि वे अपने आप को इस समूह में किस स्थान पर देखते हैं एवं समूह के लिये गये निर्णयों की प्रक्रिया में उन्हें स्थान देना चाहिये।

किसी भी समूह का नेतृत्व करना कोई आसान काम नहीं है। यह नेता की जिम्मेदारी होती है कि वह सदस्यगणों के उम्मीदों को प्रबंधन करे व यह सुनिश्चित भी करें समूह सदस्य भी साथ ही साथ प्रबंधन व टीम कार्य करते रहें।

19.3.6 सार्वजनिक जगहों पर प्रशंसाः

प्रायः यह हर कोई चाहता है कि उसकी प्रशंसा उसके द्वारा किये गये कार्य के लिये हो लेकिन जब यही प्रशंसा सार्वजनिक जगहों पर हो तो समूह के अन्य सदस्य भी अभिप्रेरित होते हैं। समूह के सदस्यों की भावनाओं को अनुभव करने से समूह के सदस्यों को यह पता चलता है कि नेतृत्व अच्छा प्रदर्शन करना चाहता है और यह सब कारक मिलकर संगत परिणाम देने का माद्दा रखते हैं।

यदि नेता अपने समूह या टीम में लोगों की गलतियों को खुले तौर पर सभी के सामने सुधारने की कोशिश करता है तो इससे समूह सदस्यों की भावनाएँ आहत होगी और समूह का मनोबल कम होता है अतः एक प्रभावी नेता को ऐसी गलतियों को करने से बचना चाहिये।

कोई भी पूर्ण रूपेण सक्षम नहीं होता है और एक नेता को ऐसे मौकों का प्रयोग करना चाहिए जब वह अपने समूह सदस्यों से मिले व उन्हें अकेले में सही सलाह व प्रतिक्रिया दे और सही व्यवहार करने के लिये अभिप्रेरित भी क्योंकि निजी तौर पर व्यक्तियों को संबोधित करने के लिये उन्हें सकारात्मक सुधार और सकारात्मक उपयोग करने का मौका मिलता है।

नेता को हमेशा यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि वह अधिकारों व मिले हुये प्राधिकारों को अपने ऊपर हावी न होने दें। वह समूह के समक्ष स्वयं को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करें और स्वयं उन तकनीकों को आदर्श रूप से प्रस्तुत करे जैसा कि आपके समूह से अपेक्षित है। यदि नेता लोगों या समूह सदस्यों के पीछे उनके विषय में बात करेगा तो उसका समूह बिखर जायेगा। अतः नेता को यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए कि लोगों को पीछे से बात न करें व टीम को एकीकृत रखें।

19.3.7 समूह सदस्यों को उपकरण अथवा सुविधा मुहैया कराना

समूह नेता की यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वह अपने समूह सदस्यों को वह सुविधा व प्रशिक्षण उपलब्ध कराये जिससे समूह सदस्यों को उद्देश्यों को प्राप्त करने में आसानी हो व दिया गया कार्य सुचारू रूप से हो सके।

19.3.8 अपने समूह के सदस्यों में रूचि लेनाः

एक सफल नेता के पास यह तकनीक होनी ही चाहिये जिसके द्वारा वह अपने समूह के सदस्यों के हित समझ सकें व उनकी रूचियों को जानने के लिये समय निकालें। उनके परिवारजनों के विषय में जानकारी ले। यह एक ऐसा तरीका होता है जो नेता को उसके समूह सदस्यों का पंसदीदा बना देता है

और इससे नेता को भी अपने समूह सदस्यों की सहायता का अवसर मिलता है और समूह का लक्ष्य भी प्राप्त करने में इस तरह के नेता को उसके कर्मचारियों व समूह के सदस्यों का पूरा सहयोग प्राप्त होता है जिससे वह अपने लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं।

अपनी प्रगति जांचें 2

1– नेतृत्व की तकनीके क्या होती हैं?

....

....

....

2– समूह सदस्यों के वैयक्तिक विकास पर बल देना क्यों आवश्यक है।

....

....

....

19.4 नेतृत्व प्रशिक्षण एवं प्रविधियाँ

नेतृत्व प्रशिक्षण जैसे कि नाम से प्रतिबिंबित है इसका अर्थ है नेतृत्व की भूमिका निर्वहन के लिये प्रशिक्षण एवं आवश्यक तथ्यों का ज्ञान कराना। नेतृत्व शिक्षा अथवा प्रशिक्षण के द्वारा नेता को अधिक प्रभावी व गुणकारी बनाया जा सकता है। नेतृत्व प्रशिक्षण की अभिधारणा मूलतः दो बातों पर आधारित है 1. प्रजातन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति नेता हो सकता है यदि उसे अनुकूल परिस्थिति मिल जाये तो। 2. नेता जन्मजात होते हैं जो जन्म से ही नेतृत्व के गुणों को लेकर पैदा हुआ है वह नेता बनकर ही रहेगा व जो पैदाईशी नेता नहीं है उन्हें प्रशिक्षण देकर नेता नहीं बनाया जा सकता है।

प्रजातंत्र में थोड़ी सी भी परिस्थिति अनुकूल मिल जाने पर कोई भी व्यक्ति नेता बन सकता है। ऊपर दी गयी दोनों ही अभिधारणायें आज चलन में ही हैं।

नेतृत्व प्रशिक्षण की आवश्यकता तथा महत्वः–

नेतृत्व प्रशिक्षण आज के परिप्रेक्ष्य काफी महत्वपूर्ण है। यदि समूह नेता प्रशिक्षित होते हैं तो उस समूह का मनोबल तथा उत्पादकता दोनों ही बढ़ जाते हैं। क्योंकि उन्हें प्रशिक्षण के दौरान नेतृत्व के अधिकार व कर्तव्य दोनों ही के विषय में ज्ञान हो जाता है। इन प्रशिक्षणों में यह भी पता चलता है कि समूह के सदस्यों की आवश्यकतायें क्या–क्या है व उन्हें कैसे समुचित व न्यायपूर्ण ढंग से पूरा किया जाता है।

उद्योग धन्धों व व्यवसायों के संदर्भ में नेतृत्व प्रशिक्षण का विशेष महत्व है। व्यवसाय में पर्यवेक्षकों व फोरमैनों के सामने नित्य नयी समस्याएँ आती हैं जिनका समाधान करने के लिये प्रशिक्षत होना अनिवार्य है। औद्योगिक संगठनों के लिये एक प्रशिक्षित पर्यवेक्षक अप्रशिक्षित पर्यवेक्षक की अपेक्षा कई गुना श्रेष्ठकर होता है। व्यवसाय संगठनों में कार्यपालकों तथा प्रबंधकों का निर्णय भी संगठन को मुनाफा या घाटा दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और यह उचित निर्णय लेने की क्षमता उन्हें दिये गये प्रशिक्षण से निर्धारित होती है।

सरकारी संस्थाओं में भी नेतृत्व प्रशिक्षण का महत्व होता है। प्रशासनिक अफसरों को भी समय–समय पर अपने कार्यकाल के दौरान भिन्न–भिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है व उचित निर्णय लेने पड़ते हैं। साथ ही साथ उन्हें अपने उच्चाधिकारियों व अधीनस्थों दोनों के साथ तालमेल रखना पड़ता है। इस तरह के परिस्थितियों से निपटने में प्रशासनिक कुशलता काम आती है और प्रशासनिक कुशलता के लिये प्रशिक्षण अति आवश्यक है अतः उच्च पदाधिकारियों को उनके चयन के पश्चात् सरकार कुछ दिनों का प्रशिक्षण कराती है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी नेतृत्व प्रशिक्षण की आवश्यकता है। यदि स्कूल व कालेज के प्रिंसिपल व टीचर प्रशिक्षित होंगे तो स्वभावतः उन्हें अपने कार्यों को पूरा करने में, उत्तरादायित्व निभाने व बच्चों को निर्देशन देने में सुविधा होगी।

प्राविधियाँः– नेतृत्व प्रशिक्षण की कई प्राविधयाँ है जिनमें निम्न प्रमुख हैं।

1. भाषण विधि (Lecture Method)
2. सम्मेलन विधि (Corferene Method)
3. समस्या चर्चा विधि (Case discussion Method)
4. भूमिका निर्वाह विधि (Role Playing Method)

19.4.1 भाषण विधिः–

इस विधि में एक विशेषज्ञ नेता को एक खास जगह पर एकत्रित कर, नेतृत्व करने के भिन्न–भिन्न विधाओं पर भाषण देता है, विभिन्न समस्याओं एवं उनके निराकरण व समाधान के लिये विभिन्न विकल्पों पर भी प्रकाश डालता है।

नेता अपने विशेषज्ञों की बातों को ध्यान से सुनकर उसे आत्मसात् करने की कोशिश करते है व अपने मनोवृत्तियों व व्यवहार में परिवर्तन के लिये उद्यत् होते हैं। यह एक तुलनात्मक रूप से आसान पद्यति है। परन्तु इस विधि की कुछ कमियाँ भी हैं जैसे–कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों का कहना है इस विधि द्वारा अधिकतर नेताओं को कोई विशेष लाभ नहीं मिलता क्योंकि वह जगह बैठकर केवल विशेषज्ञों की बातों को सुनता है कोई अन्तः क्रिया नहीं करता। मनोवैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि उच्च बुद्धि के नेता इस विधि से अधिक लाभ नहीं उठा पाते क्यों कि उनका ध्यान भाषण में केन्द्रित नहीं हो पाता है। मायर (1970) ने कहा है कि मात्र भाषण विधि द्वारा नेतृत्व के गुणों को विकसित नहीं किया जा सकता है क्योंकि उससे कौशलता नहीं आती है और ऐसे प्रशिक्षित नेताओं को अपने कार्य पर लौटने पर मुश्किल होती है।

19.4.2 सम्मेलन विधिः– (**Corference Method**)ः सम्मेलन विधि में सभी नेतागण जिन्हें प्रशिक्षित करना है किसी विशेषज्ञ की उपस्थिति में विचार विमर्श करते हैं यहाँ विशेषज्ञ उन्हें भाषण नहीं देता है परन्तु विचार विमर्श द्वारा नेतृत्व की कुशलता व प्रभावशीलता को बढ़ाने की विधि से अवगत कराता है। इस विधि द्वारा अधिक बुद्धि के नेताओं को प्रशिक्षण देना कठिन है। क्योंकि ऐसे नेता विचार विमर्श में सम्मिलित नहीं होते हैं और मानसिक रूप से अलग–थलग बने रहते हैं

19.4.3 समस्या विवेचन विधिः– समस्या विवेचन विधि भी कई मामलों में सम्मेलन विधि के ही समान होती है इसमें भी एक विशेषज्ञ होता है परन्तु प्रशिक्षण पाने वाले व्यक्तियों की संख्या कम होती है विशेषज्ञ व प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले नेता आपस में विचार विमर्श एवं अन्तः क्रिया करते हैं। इस विचार विमर्श से उन्हें नये–नये अनुभव प्राप्त होते हैं वे धीरे–धीरे प्रशिक्षित होने लगते हैं। समस्या विवेचन विधि में विचार–विमर्श विशिष्ट पहलुओं पर होता है व समूह छोटा होता है, हर सदस्य पर विशेषज्ञ पूर्ण रूप से ध्यान दे पाता है। इससे प्रशिक्षर्थियों को लाभ अधिक मिलता है। चूँकि इस विधि में समूह छोटा होता है अतः प्रशिक्षर्थियों को लाभ अधिक मिलता है।

19.4.4 भूमिका निर्वाह विधि (**Role Playing Method**):– इस विधि का उद्‌गम स्त्रोत (Psychodrama) मनोनाटक है और करके सीखना इसकी प्रमुख अभिधारणा होता है। क्योंकि जब हम कोई चीज करके सीखते हैं तो वह अधिक मजबूत व टिकाऊ होती है। इस विधि में प्रशिक्षण पाने वाले नेता को कोई विशेष भूमिका करने के लिये कहा जाता है भूमिका निभाते समय उससे कर्तव्यों व अधिकारों को सीखने व समझने का मौका मिलता है। भूमिका निभाते समय व्यवहारिक कठिनाइयाँ महसूस होती हैं जिनके समाधान हेतु नेता को सीखने का अवसर मिलता है।

अपनी प्रगति जांचें 3

1– नेतृत्व प्रशिक्षण से आप क्या समझते है इसकी उपयोगिता समझायें?

....
....
....

2– नेतृत्व प्रशिक्षण की विधियों का उल्लेख करें?

....
....
....

19.5 नेतृत्व प्रशिक्षण में बाधायें (Obstacles in the way of leadership training):–

कुछ कारक नेतृत्व प्रशिक्षण में बाधा उत्पन्न करते हैं।

- जब नेता यह महसूस करता है कि उसे किसी प्रकार की प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है एवं समूह की क्रियायें उसे ठीक से संचालित होते हुए हुयी दिखती है और वह समूह के मनोबल व उत्पादकता के स्तर में भी जब परिवर्तन नहीं चाहता तो ये कारक नेता प्रशिक्षण में बाधा उत्पन्न करते हैं। ऐसे व्यक्तित्व वाले नेता यदि समूह में कुछ गड़बड़ी आये तो उसे अपने ऊपर न लेकर वाह्य कारकों को दोषी ठहराते हैं।
- नेता की प्रशिक्षण प्रक्रियाओं के प्रति मनोवृत्ति भी एक प्रमुख कारक है। प्रशिक्षण प्रक्रियाओं के प्रति मनोवृत्ति अनुकूल न होने पर भी वह यह सोच सकता है कि नितियों व योजनाओं के निर्धारण में वह इतना सक्षम है कि उसे किसी प्रकार के प्रशिक्षण की जरूरत नहीं है।

- कभी–कभी नेता का अपना व्यक्तित्व भी नेतृत्व प्रशिक्षण के मार्ग में बाधक हो जाता है अक्सर देखा गया है कि नेताओं में पद चेतना काफी अधिक तेज है। वह प्रशिक्षण में प्रायः भाग इसलिये नहीं लेना चाहता है ताकि उसकी कमजोरियों प्रकाश में न आ जाय फलतः अपने आपको प्रशिक्षण से दूर रखने का प्रयास करता है।

अपनी प्रगति जांचें 4

1– नेतृत्व प्रशिक्षण में बाधा उत्पन्न करने वाले कारकों को उल्लेखित करें?

....

....

....

19.6 अध्ययन सारांश

- इस इकाई में नेता के उद्भव से सम्बन्धित कारकों का उल्लेख किया गया है। इन कारकों में से समूह जटिलता, समूह संकट, समूह अस्थिरता, अधिकृत अध्यक्षों की असफलता नेता की आवश्यकताएँ एवं व्यक्तित्व कारक प्रधान है।

- नेता के मुख्य दो तरह के कार्य होते हैं– प्रधान कार्य तथा सहायक कार्य । प्रधान कार्यों में कार्यकारिणी का कार्य, योजना निर्माता का कार्य, नीति निर्माता का कार्य, विशेषज्ञ के रूप में कार्य, वाह्य समूह के प्रतिनिधि के रूप में कार्य, आन्तरिक सम्बन्धों के नियंत्रक के रूप में कार्य, पुरस्कार एवं दण्ड के प्रबन्धक के रूप में कार्य तथा पंच एवं मध्यस्थ के रूप में कार्य प्रधान है। सहायक कार्यों में आदर्श नेता के रूप में कार्य, समूह के प्रतीक के रूप में नेता का कार्य, व्यक्तिगत उत्तदायित्व के लिए स्थानापन्न के रूप में कार्य, सिद्धान्तवादी के रूप में कार्य, पिता तुल्य के रूप में कार्य आदि प्रधान हैं।
- नेतृत्व प्रशिक्षण के चार प्रविधियों भाषण, सम्मेलन, समस्या चर्चा, भूमिका का विस्तृत वर्णन किया गया है। साथ ही, नेतृत्व प्रशिक्षण के मार्ग में आने वाले कुछ प्रमुख बाधाओं को भी उल्लेखित कया गया है।

19.7 कुंजी शब्द :

समूह जटिलता :

समूह जटिलता समूह संरचना से सम्बन्धित है जैसे–जैसे समूह बड़ा होता है उसकी संरचना भी बदलती है, वैसे–वैसे उसके लक्ष्य आकार व कार्यों में परिवर्तन होता जाता है। सामूहिक अन्तःक्रिया बढ़ने की वजह से जटिलता बढ़ती जाती है व इससे नेतृत्व श्रृंखला का जन्म होता है।

समूह अस्थिरता :

समूह अस्थिरता से तात्पर्य समूह के सदस्यों के आपसी मतभेदों के बढ़ने से है और उनमें सद्भाव व पारस्परिकता की कमी से है। इस अवस्था में समूह लाया की प्राप्ति खतरे मे पड़ जाती है और समूह अस्थिर होता जाता है।

नेतृत्व तकनीके :

नेतृत्व की तकनीको को सीखना एक नेता की प्रभावशीलता में सुधार करता है। नेतृत्व की तकनीकों से तात्पर्य है नेतृत्व के नये कौशल और उनको व्यवहार में लाने का तरिका सीखना।
नेतृत्व प्रशिक्षण इसका तात्पर्य है नेतृत्व की भूमिका के निर्वहन के लिये प्रशिक्षण एवं आवश्यक तथ्यों का ज्ञान करना।

भाषण विधि :

भाषण विधि मे नेता अपने अनुयायियों को एकत्रित करता है। भिन्न–भिन्न विधाओं पर भाषण देता है व उनके निराकरण व समाधान के लिये विभिन्न विकल्पों पर प्रकाश डालता है।

सम्मेलन विधि :

सम्मेलन विधि में सभी नेतागण जिन्हें प्रशिक्षित करना है किसी विशेषज्ञ की उपस्थिति में विचार विमर्श करते हैं।

समस्या विवेचना विधि :

समस्या विवेचन विधि कई मामलों में सम्मेलन विधि के समान होती है। इसमें भी एक विशेषज्ञ होता है तथा विशेषज्ञ व प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले नेता आपस में विचार विमर्श व अन्तःक्रिया करते हैं व नये–नये अनुभव प्राप्त करते हैं।

19.8 आगे अध्ययन के लिये :

1– समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, (2017), डॉ0 अरुण कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन
2– उच्चतर समाज मनोविज्ञान (2014), डॉ0 मुहम्मद सुलेमान मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन।
3– आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान (1998), डॉ0 रामजी श्रीवास्तव, डॉ0 काजी आसिम आलम, डॉ0 काजी गौस आलम, मोतीलाल बनारसीदास, पब्लिकेशन।
4– समाज मनोविज्ञान (1998), डॉ0 रामजी श्रीवास्तव, बद्रीनारायण तिवारी, रमेश चन्द्र दूबे, बानी आनन्द मोतीलाल बनारासीदास पब्लिकेशन।

19.9 प्रतिदर्श जवाब आपकी प्रगति की जांच करने के लिए

अपनी प्रगति जांचें 1

1– नेतृत्व एक विश्वव्यापी प्रक्रिया है। नेतृत्व की उत्पत्ति के प्रमुख समूहजन्य या परिस्थितिजन्य कारकों का वर्णन निम्नलिखित है– समूह, जटिलता, समूह अस्थिरता, समूह संकट, अधिकृत अध्ययनों को विकफलता, व्यक्तित्व कारक (बुद्धि, शक्ति, सूझ इत्यादि) व नेतृत्व प्रदान करने वाले व्यक्ति की आवश्यकता (शक्ति या सत्ता की आवश्यकता, प्रतिष्ठा की आवश्यकता प्रभुत्व की आवश्यकता इत्यादि)।

2– नेतृत्व उद्भवन के लिये कुछ प्रमुख व्यक्तित्व कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जैसे– बुद्धि, शक्ति, सूझ, सांवेगिक स्थिरता, दूरदर्शिता, सम्प्रेषण, कौशल, आत्मविश्वास, लचिलापन, प्रोत्साहन एवं रूप का उपयोग करने की क्षमता।

3– नेता की आवश्यकताओं से तात्पर्य व्यक्ति में उपस्थित आवश्यकता से है यह आवश्यकतायें जिन व्यक्तियों में होती हैं उनमें नेतृत्व करने की क्षमता होती है। जैसे– शक्ति की आवश्यकता या सत्ता की आवश्यकता, प्रतिष्ठा की आवश्यकता, धनारजन की आवश्यकता, प्रभुत्व की आवश्यकता।

अपनी प्रगति जांचें 2

1— नेतृत्व की तकनीकों से तात्पर्य नेतृत्व के कौशल व उनके प्रयोग से है। नेतृत्व की तकनीकें कालनुसार, जगह—अनुसार व परिस्थिति अनुसार बदलती रहती है, अतः एक नेता के लिये नयी—नयी तकनीकों को सीखना व उसे प्रयोग में लाना अति आवश्यक है ये नेतृत्व को प्रभावी बनाने में बहुम मद्दगार होती हैं। जैसे— स्पष्ट निर्देश प्रदान करना, समूह सदस्यों द्वारा किये गये उचित कार्यों की सरहाना, समूह सदस्यों के सलाह को महत्व देना, उनके द्वारा किये गये उचित कार्यों की सराहना करना समूह सदस्यों के वैयक्तिक विकास पर बल देना, लक्ष्य प्राप्ति के विषय में सम्प्रेषण।

2— समूह सदस्यों यदि व्यक्तिगत रूप से सक्षम होगें तभी समूह भी सक्षम होगा। इसीलिये यह एक नेता की नैतिक जिम्मेदारी है कि वह समूह सदस्यों के नैतिक जिम्मेदारी है कि वह अपने समूह सदस्यों के विकास पर ध्यान दे, उन्हें प्रशिक्षण के लिये अभिप्रेरित करे, उन्हें कठिन कार्य दे जिससे वह कुछ सीखें और उनके मार्ग में आने वाली बाधाओं को हटायें।

अपनी प्रगति जांचें 3

1 नेतृत्व प्रशिक्षण से तात्पर्य नेतृत्व की भूमिका निर्वहन के लिये प्रशिक्षण एवं आवश्यक तथ्यों का ज्ञान कराने से है। नेतृत्व प्रशिक्षण की अभिधारणा मूलतः दो बातों पर आधारित है—1— प्रजातंत्र में प्रत्येक व्यक्ति नेता हो सकता है यदि उसे अनुकूल परिस्थिति मिल जाय। 2— नेता जन्मजात होते हैं जो जन्म से ही नेतृत्व के गुणों को लेकर पैदा हुआ है वह नेता बनकर ही रहेगा।

2 नेतृत्व प्रशिक्षण की प्रमुख विधियाँ हैं

1— **भाषण विधि** : भाषण विधि में नेता अपने समूह सदस्यों को एक जगह भाषण देता है व समस्या समाधान और उसके विभिन्न विकल्पों की चर्चा करता है।

2— **सम्मेलन विधि** : इस विधि में नेता व समूह सदस्य आपस में विचार विमर्श व अन्तःक्रिया करते हैं। इससे उन्हें नये—नये अनुभव प्राप्त होता है।

3— **समस्या चर्चा विधि** : इसमें भी एक विशेषज्ञ होता है तथा विशेषज्ञ व प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले नेता आपस में विचार विमर्श व अन्तःक्रिया करते हैं

4—**भूमिका निवाह विधि** : इस विधि का उद्गम् स्रोत मनोनाटक है यह विधि इस अभिधारणा पर आधारित है कि जब हम कोई चीज करके सीखते हैं तो वह अधिक मजबूत व टिकाऊ होती है।

अपनी प्रगति जांचें 4

1— नेता जब इस बात को मानने लगता है कि समूह का मनोबल व उत्पादकता स्तर ठीक है व समूह की क्रियायें ठीक ढ़ंग से संचालित हो रही हैं तो ये कारक नेतृत्व प्रशिक्षण को बाधित करते हैं प्रशिक्षण प्रक्रियाओं के प्रति मनोवृत्ति का अनुकूल न होना भी एक प्रमुख कारक है।